रहस्य
अरुण कुमार शर्मा

रहस्य
अरुण कुमार शर्मा

रहस्य

(सत्य घटनाओं पर आधारित अविश्वसनीय रहस्य कथाएँ)
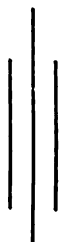
अरुण कुमार शर्मा

संकलन

मनोज कुमार शर्मा
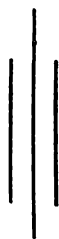
आस्था प्रकाशन

वाराणसी

- **पुस्तक**

  रहस्य

- **प्रकाशक**

  आस्था प्रकाशन

  आगम निगम संस्थान के साहित्य के प्रकाशक एवं वितरक

- **प्रथम संस्करण**

  सन् 2008 ई.

आस्था प्रकाशन

बी. 5/23, अवधगर्वी, हरिश्चन्द्र रोड

वाराणसी–221001 (उ.प्र.)

दूरभाष : 0542–2277093

- **मुद्रक**

  महावीर प्रेस

  वाराणसी

विषय सूची

●

मेरी आत्मा को जिसने

शरीर दिया

उस

माँ

को

शत् शत् प्रणाम

—अरुण कुमार शर्मा

प्रकाशकीय

पं. अरुण कुमार शर्मा के कथा–कहानी लिखने का एकमात्र उद्देश्य रहा है, घटनाओं का आश्रय लेकर योग तंत्र, ज्योतिष, धर्म संस्कृति आदि आध्यात्मिक विषयों को जनसाधारण के सम्मुख प्रस्तुत करना ताकि वे उनसे परिचित हो सके। इस प्रकार शर्माजी ने कथा साहित्य के क्षेत्र में कथा शैली की एक नवीनधारा का सृजन किया है।

पिछले पांच दशक के अन्तर्गत श्री शर्माजी ने कितनी कथा कहानियाँ लिखी, उन्हें उंगली पर नहीं गिना जा सकता। यहाँ यह कहना असंगत न होगा कि श्री शर्माजी का जीवन रहस्यमय रहा है। यहां तक कि वे स्वयं अपने आपमें एक रहस्य है। उनका सहज मिलनसार व्यक्तित्व निश्छल और अपनत्व भरा व्यवहार साथ ही साधारण जीवन देखकर ऐसा कभी नहीं प्रतीत होता कि एक दुबले, पतले लम्बे गौरवर्णीय वृद्ध शरीर में स्थित आत्मा ने सत्य की खोज में कितनी कष्टदायिनी दुर्गम यात्रायें की है। कितना कष्ट झेला है और उठाया है कितना दुःख जो समझने वाला होता है, वही उनके अन्तर्मुखी रहस्यमय व्यक्तित्व को समझ सकता है साधारणजन नहीं।

योग–तंत्र, ज्योतिष, शास्त्र, उपनिषद, वेद–पुराण और दर्शन की अद्‌भुत व्याख्या करते हैं शर्माजी। गूढ़ और रहस्यमय विषयों को सरल सुबोध और हृदयंगम बनाकर उसे अपनी प्राञ्जल भाषा में प्रस्तुत करना शर्माजी की अपनी मौलिक विशेषता है। उनकी पुस्तक उठाइये, पढ़िये, फिर उसे अपने से अलग करने की इच्छा ही न होगी पहले पचास सालों से अनवरत लिखने वाला व्यक्ति आज भी कहता है कि अभी तो कुछ लिखा ही नहीं। यदि देखा जाय तो एक प्रकार से उनका यह कहना सत्य भी है। दीर्घकाल का स्व अर्पित स्वानुभवपूर्ण उनका ज्ञान और उसकी आन्तरिक अध्यात्मपरक अनुभूतियाँ वस्तुतः पूर्णरूप से पुस्तक अथवा अन्य किसी रुप में अभिव्यक्त नहीं हो पायी है अभी तक। इसकी पीड़ा है श्री शर्माजी को और उस आन्तरिक पीड़ा को दबाये

आज इस अवस्था में भी लिखते ही रहते हैं कुछ न कुछ। जैसे 'लिखना' उनकी नियति है और है कर्तव्य।

इस प्रसंग में यह भी बतला देना आवश्यक हैं कि श्री शर्माजी की कई ऐसी महत्वपूर्ण आध्यात्मिक पुस्तके हैं जो अपूर्ण है। इसी प्रकार आध्यात्मिक विषयों से संबंधित कुछ ऐसी भी पाण्डुलिपियाँ है, जो इन पुस्तकों की ही तरह अधूरी पड़ी है। यदि अधूरी पुस्तकों और अधूरी पाण्डुलिपियों का प्रकाशन हो जाय तो आध्यात्मिक साधना क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रान्ति मच सकती है। इसका सबसे बड़ा कारण यह कि श्री शर्माजी जिस विषय पर लिखते हैं उस विषय का उन्हें अपना स्वानुभव होता है और यही उनकी रचनाओं की विशेषता है और यह विशेषता अन्यत्र कहीं नहीं दिखती।

इस संबंध में श्री शर्माजी का कहना है कि काल का प्रवाह ही जीवन है। मेरे लिए जीवन और उसके प्रत्येक क्षण मूल्यवान हैं। प्रत्येक क्षण को भोगना चाहता हूँ मैं। जैसाकि गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है–मैं समय में 'क्षण' हूँ। प्रत्येक क्षण का अपना भोग है। मनुष्य जब एक क्षण भोग लेता है तो दूसरा क्षण भोगने के लिए मिलता है उसे लेकिन काल का प्रवाह इतना तीव्र है कि इसका पता मनुष्य को नहीं चलता। मैं प्रत्येक क्षण को भोगने के लिए प्रयास करता हूँ और अपने प्रयास में सफल भी होता हूँ क्योंकि काल की गति से भलीभांति परिचित हूँ मैं और मैं यह भी जानता हूँ कि मेरे जीवन में अब समय बहुत ही कम है। मुझे विश्वास है इस अल्प समय में सभी अपूर्ण को पूर्ण कर लूंगा मैं यदि माँ महामाया की कृपा रही तो....। रही प्रकाशित होने की बात तो इसका उत्तरदायित्व मनोज कुमार शर्मा पर है। मैं संसार में रहूँ या न रहूँ, लेकिन मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह अवश्य करेंगे। मुझे यह भी विश्वास है कि मेरे प्रबुद्ध पाठकों की प्रेरणा भी सदैव उपलब्ध होती रहेगी उनको। मैं भलीभांति जानता हूँ कि मनोज कुमार शर्मा एक कर्मठ और दूरगामी विचार के व्यक्ति है। वे निश्चय ही मेरे संकल्प को साकार करेंगे इसमें सन्देह नहीं।

प्रकाशक

दो शब्द

श्री अरुण कुमार शर्मा के वैसे तो पांच कथा संग्रह अबतक प्रकाशित हो चुके हैं– वह रहस्यमय कापालिक मठ, तिब्बत की वह रहस्यमयी घाटी, मृतात्माओं से सम्पर्क, वक्रेश्वर की भैरवी, आकाशचारिणी लेकिन बहुत सी ऐसी सत्य घटनाओं पर आधारित और अनुभवपूर्ण कथाएँ हैं जो अभीतक अप्रकाशित ही रही हैं। जिनको विषय के अनुसार संकलित कर भविष्य में प्रकाशित किया जायेगा। जिनके अपने शीर्षक हैं। इस पुस्तक का शीर्षक है रहस्य। रहस्य इसलिए शीर्षक दिया गया है कि उसके अन्तर्गत संग्रहीत कथाएँ अपने आपमें रहस्यमय और रोमाञ्चकारी है। आशा है कथा संग्रह "रहस्य" रोचक तो होगी ही इसके अतिरिक्त पाठकों का ज्ञानवर्धन भी करेगी इसमें सन्देह नहीं।

इस दिशा में जिन लोगों की प्रेरणा मुझे उपलब्ध हुई वे हैं सर्वश्री स्व. म.म. डॉ. गोपीनाथजी कविराज, स्व. गोपालचन्द्र न्याय चूड़ामणि (असम), स्वामी सत्यानन्द परमहंस देव (गिरिनार), स्वामी ज्ञानविजय सरस्वती, पं. अशोक द्विवेदी (भ्राताश्री), डॉ. वी.पी. बंसल (इन्दौर), श्री आर.डी. काजले (खण्डवा), श्री उमेश वर्मा (अमेरिका), श्री रवीन्द्र लाखोटिया (भिवानी), डॉ. रोहित गुप्ता।

इसके अतिरिक्त इस कर्मयज्ञ में जिन लोगों का मुझे सहयोग प्राप्त हुआ है, वे हैं– जयप्रकाश रस्तोगी, रेखा शर्मा, नीतू शुक्ला।

उपर्युक्त समस्तजनों का हृदय से कृतज्ञ और आभारी हूँ कि भविष्य में भी इन महानुभावों की प्रेरणा और सहयोग बराबर उपलब्ध होता रहेगा मुझे।

चैत्र नवरात्र
2008 ई.
वाराणसी

मनोज कुमार शर्मा
व्यवस्थापक
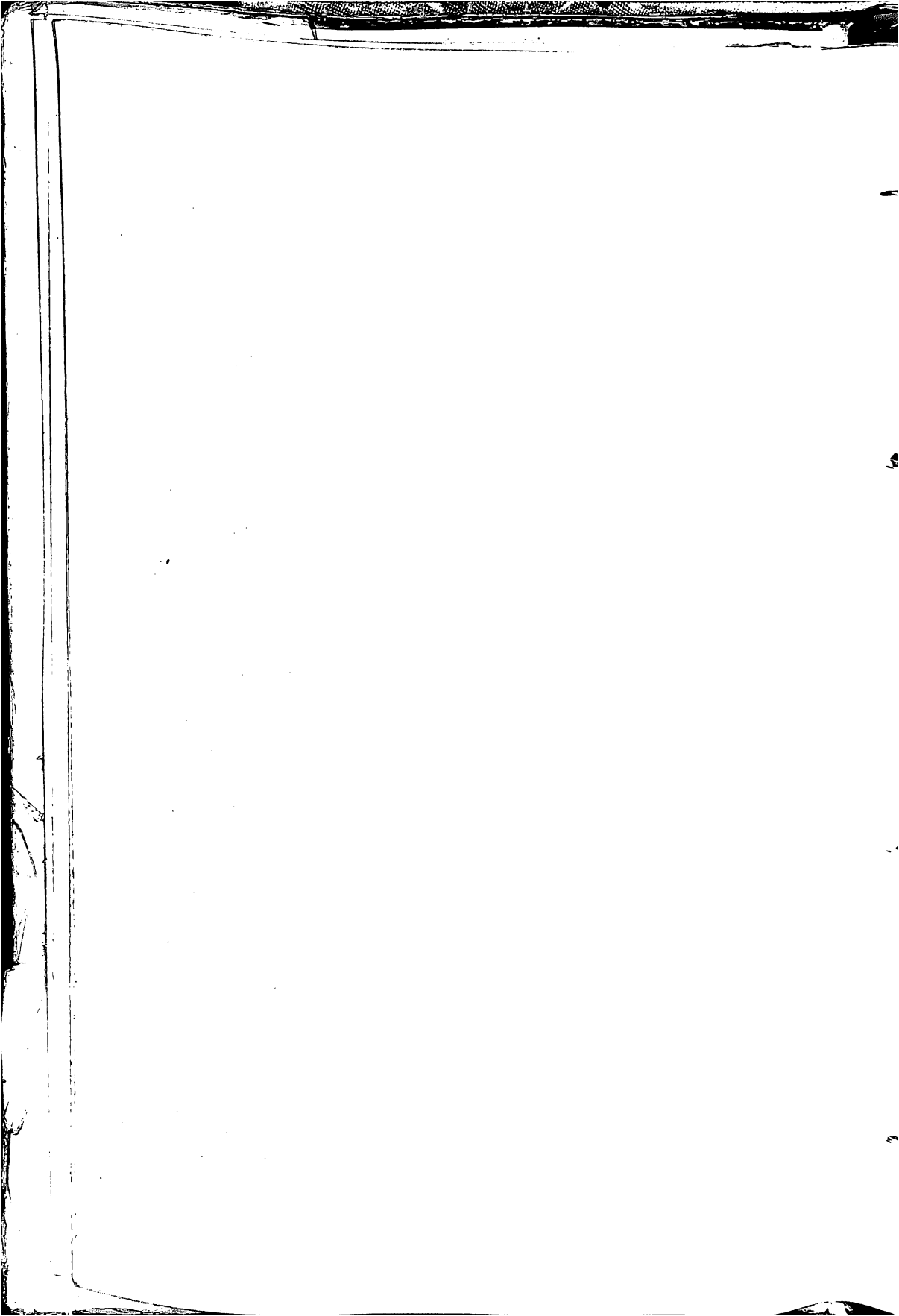
अपनी बात

प्रस्तुत संग्रह का शीर्षक है 'रहस्य'। 'रहस्य' इसलिए है कि उसके अन्तर्गत जो भी कथाएँ संकलित की गयी है। वे सभी किसी न किसी रूप में स्वयं में रहस्यों से भरी हुई है। सम्भव है उन्हें पढ़कर पाठकों के मन में किसी प्रकार की जिज्ञासा उत्पन्न हो, प्रश्न उत्पन्न हो और हो कौतूहलों की सृष्टि क्योंकि कथाएँ ही ऐसी है।

अभौतिक और पारलौकिक ये दो शब्द कोई अर्थ नहीं रखते मेरे लिए क्योंकि ये दोनों परम्परागत शब्द मन की सीमा में आते हैं। यदि हम उन दोनों शब्दों को कल्पना भी मान ले तो फिर भी वे मन की सीमा में बंध जाते हैं। इसलिए कि कल्पना का जन्मदाता मन ही है रही 'रहस्य' की बात वह भी मन की ही उपज है। जिस वस्तु का हमारी बुद्धि विश्लेषण नहीं कर पाती उसके कारण–कार्य को समझ नहीं पाती ठीक–ठीक। मन उस वस्तु को 'रहस्य' कहता है लेकिन जब वही रहस्य किसी कारण और किसी अवस्था में अनावृत्त हो जाता है तो फिर 'रहस्य' रहस्य नहीं रह जाता जैसे अनुभव और अनुभूति है। दोनों में अन्तर है। विशेष प्रयास से 'अनुभव' को किसी न किसी रूप में व्यक्त भी किया जा सकता है, लेकिन अनुभूति को नहीं। अनुभव मन का विषय है और अनुभूति है आत्मा का विषय। अनुभूति आत्मा में होती है और जो विषय आत्मा का होता है, वह साधारणतः कभी भी व्यक्त नहीं हो सकता, न भाव से, न भावना से और न तो शब्द से। अब रही सत्य की बात। सत्य, आत्मा का विषय है। उसे आत्मा के द्वारा ही जाना और समझा जा सकता है। जैसे–जैसे आत्मोन्नति होती जाती है, वैसे ही वैसे सत्य की अनुभूति होती जाती है हमे।

'सत्य' आत्मा का शब्दरूप है। जीवन 'सत्य' है इसलिए वह भी आत्मरूप है। जैसे आत्मा 'नित्य' है उसी प्रकार जीवन भी नित्य है। उसकी धारा सतत है। हर अवस्था में जीवन का अस्तित्व है। मृत्यु भी

जीवन की धारा को रोक नहीं सकती। उसके 'अस्तित्व' को नष्ट नहीं कर सकती क्योंकि मृत्यु अन्य घटनाओं की तरह एक दारूण घटना है, एक लम्बी निद्रा है और उस निद्रा की अवस्था में भी हम स्वप्न देखते हैं और वह स्वप्न होता है जीवनकाल में घटित महत्वपूर्ण घटनाओं से संबंधित। उस स्वप्न के बाद हम फिर चिरनिद्रा में सो जाते हैं और जब जागते हैं तो अपने आपको नये शरीर में पाते है। प्रायः लोग मृत्यु को सत्य मानते है लेकिन यह एक महाभ्रम है। मृत्यु सत्य है तो जीवन असत्य हो जाता है क्योंकि एक ही विषय से संबंधित दो सत्य कदापि नहीं हो सकते। मृत्यु के संबंध में अबतक बहुत कुछ लिखा जा चुका है। उसकी तरह–तरह से व्याख्या की गयी है। मृत्यु और मृत्यु के बाद की स्थितियों और 'आत्मा' को अमर मानकर के भी मरणोपरान्त उसकी गतिविधियों और विभिन्न अवस्थाओं पर न जाने कितने ग्रन्थ लिखे जा चके हैं और उन पर न जाने कितनी टीकाएं और न जाने कितने भाष्य प्रस्तुत किए जा चुके हैं। लेकिन जीवन और जगत इन दोनों के संबंध में वेद, पुराण, शास्त्र, उपनिषद आदि में कोई विशेष स्थान नहीं हैं, विशेष व्याख्या नहीं है और विशेष विवेचना भी नहीं है। शरीर को नश्वर जीवन को सपना और जगत को मिथ्या अथवा 'भ्रम' कहकर 'इति–श्री' कर दिया गया है।

मेरे विचार से मेरी धारणा से मेरे चिन्तन–मनन और अध्ययन से और स्वयं के अनुभव से 'जीवन सत्य' है और मृत्यु है एक घटना मात्र, अन्य घटनाओं की तरह एक घटना। वह घटना शरीर को बदल देती है, लेकिन संसार को नहीं। रही जीवन की बात–उसकी धारा तो निरन्तर प्रवाहित ही रहती है। कोई प्रभाव नहीं पड़ता उस पर मृत्यु का। जीवन की धारा का उद्‌गम कहाँ है और वह कहाँ जाकर समाप्त होती है– इस संबंध में सभी धर्म मौन है।

अब रही बात आत्म संकेत अथवा पूर्वाभास की। इस संबंध में थोड़ा यह समझ लेना आवश्यक है कि जीवन तीन अलग–अलग वस्तुओं का संयोग है– शरीर, मन और आत्मा। शरीर मृत हो जाने पर 'मन' आत्मा में लीन हो जाता है और यही कारण है कि मृत्यु के बाद भी 'स्व' का बोध यानी 'मैं' का बोध बराबर बना रहता है। जीवनकाल

में शरीर वर्तमान में मन अतीत में और आत्मा भविष्य में रहती है। इसी के परिणामस्वरूप हमें भविष्य का अपनी भाषा में संकेत देती और कराती है पूर्वाभास। आत्मा की अपनी एक स्वतंत्र इन्द्रिय है जिसे 'छठी इन्द्रिय' कहते है। इस इन्द्रिय का द्वार है तीसरा नेत्र। यह भ्रूमध्य के ऊपर है। पंच ज्ञानेन्द्रियां आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा क्रमशः दृष्टि, श्रवण, गन्ध, स्वाद और स्पर्श के प्रति संवेदनशील है। इनके माध्यम से मनुष्य अपने जीवन की हर क्रिया का संचालन कर्मेन्द्रियों द्वारा करता है किन्तु जहाँ तक भविष्य का संबंध है उसकी सूचना देने में इन्द्रियाँ असमर्थ हैं। इनके द्वारा किसी भी प्रकार का पूर्वाभास भी सम्भव नहीं। छठीं इन्द्रिय के संबंध में वैज्ञानिकों का मत है कि कोशिकाओं के एक छोटे से समूह के रूप में ललाट पर विद्यमान है जिसका आकार 'जौ' की तरह है। साधारणतः इसका कोई काम नहीं है वह सक्रिय नहीं रहती। वह विशेष अवस्था में सक्रिय होती है। 'योग' में तीसरा नेत्र का सर्वाधिक महत्व है। अपनी सक्रियता और संवेदनशीलता के कारण उसके सामने सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड कर कमलवत् है। यह तो निश्चित है कि वैज्ञानिकों को छठी इन्द्रिय अथवा तीसरा नेत्र के जानने समझने और उसका रहस्योद्‌घाटन करने में बहुत समय लगेगा, लेकिन जहां तक योग का संबंध है वह कई हजार वर्ष पूर्व उसका कर चुका है रहस्योद्‌घाटन।

पंच ज्ञानेन्द्रियों की जो शक्ति है वह मन की शक्ति है। मन की शक्ति से ही वे इन्द्रियाँ काम करती है। यहां यह भी जान लेना चाहिए कि मनःशक्ति द्वारा एक समय में एक ही इन्द्रिय कार्य करती है दूसरी नहीं। गहरी सुप्तावस्था में इन्द्रियों से मन का संबंध नहीं रहता। स्वयं मन ही सभी इन्द्रियों का काम करता है उस समय। 'मन' का एक रूप और है और वह है अवचेतन मन जिसे हम 'मन कहते है वह चेतन मन है। चेतन मन और आत्मा के बीच अवचेतन मन है। चेतन मन, अवचेतन मन, आत्मा का एक महत्वपूर्ण अंग है। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि आत्मा परमात्मा का ही एक रूप है और उस रूप में समस्त ब्रह्माण्ड की शक्ति विद्यमान है। आत्मा कालातीत है। सभी अवस्था में वह समान है। अवचेतन मन एक विशेष सीमा तक आत्मशक्ति को क्रियान्वित करता है। यही कारण है कि वैज्ञानिक अवचेतन मन को अलौकिक शक्ति का भण्डार कहते हैं जो उचित भी है।

जब हम कभी ऐसी स्थिति में रहते हैं जब दो क्षणों के बीच का समय होता है। उस समय हमारे चेतन मन से आत्मा का सीधा संबंध स्थापित हो जाता है। इसी संबंध के परिणामस्वरूप हमें आत्मा परिणाम द्वारा पूर्वाभास और भावी घटनाओं का संकेत प्राप्त होता है।

चेतन मन का संबंध लौकिक जगत से है जबकि अवचेतन मन का संबंध समस्त पारलौकिक जगतों से है। योगीगण ध्यानयोग द्वारा चेतन मन की शक्ति को क्षीण कर देते है जिसके परिणामस्वरूप अवचेतन मन और तत्पश्चात् आत्मा से उनका सीधा सम्पर्क स्थापित हो जाता है। योग का जो चमत्कार है उसका संबंध योगी के अवचेतन मन का कौतुक होता है। आत्मा से संबंध स्थापित होने के कारण योगीगण लोक लोकान्तरों में भ्रमण करते हैं और पारलौकिक ज्ञान प्राप्त करते हैं। प्रायः पाठकों को मेरी कृतियाँ विलक्षण चमत्कारपूर्ण और साथ ही आश्चर्यजनक प्रतीत होती है। ऐसा क्यों ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि मैं किसी भी लौकिक–पारलौकिक अथवा आध्यात्मिक विषय के तात्विक स्वरूप से पूर्णरूप से परिचित होने का पूर्ण प्रयास करता हूँ और उस प्रयास के फलस्वरूप मुझे जो प्राप्त होता है। उसे अपनी भाषा का रूप दे देता हूँ और यह तभी सम्भव हो सकता है। जबकि भाषा पर पूर्ण अधिकार हो और हो भाषा में प्राञ्जलता। कभी–कभी यह भी प्रश्न उठता है कि मेरी सृजनात्मक प्रक्रिया का रहस्य क्या है। कुछ आगे लिखने के पहले इस प्रश्न का भी समाधान आवश्यक समझता हूँ मैं। हम सदैव कुछ न कुछ देखते रहते है, लेकिन उसे ठीक से देख और समझ नहीं पाते। सत्य एक मौखिक धारणा मात्र है। उसे किसी भी विधि से प्रमाणित नहीं किया जा सकता। बुद्धि तो हमारा वहीं तक साथ देती है जहाँ तक वह जानती और सिद्ध कर सकती है। लेकिन एक ऐसी भी स्थिति आती है–जहाँ एकाएक छलांग लगाकर बोध के उच्चतर स्तर पर पहुँच जाती है। इस स्थिति को सहजोपलब्धि या अन्तर्ज्ञान कुछ भी कह सकते हैं पर उसे प्रमाणित करना सम्भव नहीं। संसार के अधिकांश आविष्कार ऐसी ही स्थिति में सम्भव हो सके हैं। भले ही वह आविष्कार कोई भी हो। अब तक विज्ञान के क्षेत्र में जो भी उन्नति हुई है और भविष्य में होगी। उसके मूल में वह रहस्यमयी अज्ञात स्थिति ही है। इस प्रसंग

में यह भी बतला देना आवश्यक है कि वेद, पुराण, शास्त्र उपनिषद, योग, तंत्र आदि से संबंधित ज्ञान, विज्ञान का भी आविर्भाव इसी रहस्यमयी स्थिति द्वारा हुआ है। महान वैज्ञानिक आइन्सटाइन ने भी इसे स्वीकार किया है। उनका कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में ऐसी स्थिति अवश्य आती है। जहाँ केवल ऐसे अन्तर्ज्ञान के द्वारा वह अनुभूति प्राप्त कर सकता है, जो मात्र ज्ञान द्वारा सम्भव नहीं और जिसका कोई हल विज्ञान प्रस्तुत नहीं कर सकता।

प्रश्न यह है कि वह रहस्यमयी स्थिति है क्या? वह है तुरीयातीत अवस्था। आत्मा की तीन अवस्थाएँ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति। सुषुप्ति जब गहन से गहन हो जाती है तो उस अवस्था को तुरीयावस्था कहते हैं। आत्मा की यह चौथी अवस्था है। जिसमें पहले की तीनों अवस्थाएं लीन हो जाती है। उनका एक प्रकार से प्रणास हो जाता है। वे तीनों अवस्थाएँ माया राज्य के अन्तर्गत है। जाग्रत अवस्था का संबंध स्थूल शरीर से, स्वप्नावस्था का संबंध वासना शरीर से और सुषुप्ति अवस्था का संबंध सूक्ष्म शरीर से समझना चाहिए। जाग्रत अवस्था में आत्मा का कार्य क्षेत्र भौतिक जगत होता है। स्वप्नावस्था में कार्य क्षेत्र होता है वासना जगत। इसी प्रकार सुषुप्ति अवस्था में उसका कार्य क्षेत्र होता है सूक्ष्म जगत। सूक्ष्म शरीर द्वारा आत्मा सूक्ष्म जगत में विचरण करती है। उसी प्रकार जैसे पार्थिव शरीर द्वारा भौतिक जगत में और वासना शरीर द्वारा वासना लोक में। योगियों का कहना है कि सुषुप्ति जितनी गहन होगी उतना ही सूक्ष्म शरीर शक्तिशाली और क्रियाशील होगा।

सहज समाधि की अवस्था में योगीगण गहन सुषुप्ति को उपलब्ध होकर सूक्ष्म शरीर द्वारा माया राज्य में इच्छानुसार भ्रमण करते है। कभी कदा स्थूल अथवा वासना जगत में भ्रमण करते हैं। अपनी प्रबल इच्छाशक्ति से एक स्थान से दूसरे स्थान पर तत्काल पहुंच जाते है। उन्हें इस भ्रमण से जो ज्ञान और जो अनुभव प्राप्त होता है—वह अपने आपमें विशिष्ट होता है।

एक महात्मा ने वासना लोक में भ्रमण कर मुझे वहाँ का जो अपना अनुभव सुनाया। उसने एकबारगी मुझे स्तब्ध कर दिया। सचमुच उनका अनुभव नारकीय जीवन का साकार रूप था मेरे लिए। माया राज्य के

ऊपर महामाया का राज्य है। माया राज्य के अधिष्ठात्र देवता शिव है और अधिष्ठात्री देवी काली है। महामाया राज्य में आत्मा की दो मुख्य अवस्थाएँ है–तुरीय अवस्था और तुरीयातीत अवस्था! महामाया राज्य के अधिष्ठात्र देवता सदाशिव और अधिष्ठात्री तारा है। तुरीय अवस्था में मनोमय शरीर द्वारा आत्मा मनोमय जगत में विचरण करती है। यहां योगी को अपने सद्गुरु का दर्शन लाभ होता है। दर्शन के प़श्चात् सद्गुरु आशीर्वाद प्रदान कर अपने लोक में चले जाते हैं। योग की यह उच्चावस्था है। इसके बाद है तुरीयातीत अवस्था। आत्मशरीर आत्मा का निज शरीर है। इस शरीर द्वारा आत्मा आत्मलोक में विचरण करती है। आत्मलोक परम ज्ञान–विज्ञान का क्षेत्र है।

महामाया राज्य के ऊपर परम निर्वाण भूमि है। जिसे हम परम सायुज्य लाभ और मोक्ष की भी संज्ञा दे सकते है। उसके पश्चात् परम शून्य है। कहने की आवश्यकता नहीं यह विषय अत्यन्त गहन और गम्भीर है मानव जीवन का। यदि मैं इसके आगे लिखता हूँ तो 'अपनी बात' की मर्यादा भंग हो जाती है और इसके स्थान पर एक पुस्तक का स्वतंत्र रूप से निर्माण हो जायेगा। (इस विषय पर विशेष अध्ययन के लिए पढ़े 'आवाह्न' शीघ्र प्रकाश्य)।

अब मैं आता हूँ मुख्य बिन्दु रहस्यमयी स्थिति पर। वह योग की परम और उच्च स्थिति है। जिसको उपलब्ध होने पर योगी के लिए परम निर्वाण का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। उस रहस्यमयी स्थिति को प्राप्त करने की दिशा में सर्वप्रथम आसन, प्राणायाम और ध्यान की आवश्यकता हैं। शरीर, प्राण और मन ये तीनों योग और तंत्र की मूल भित्ति है। लेकिन दुख का विषय तो यह है कि योग्य गुरु के अभाव से तीनों का स्वरूप विकृत हो चुका है। आसन का संबंध शरीर की साधना से है क्योंकि बिना शरीर को साधे कुछ भी सम्भव नहीं। प्राण का संबंध प्राणायाम से है। इसी प्रकार 'मन' का संबंध ध्यान से है। 'प्राण' के सधने पर ही 'ध्यान' में सफलता प्राप्त होती है। आन्तर ध्यान और आन्तर प्राणायाम के परिणाम स्वरूप प्राण और मन दोनों संयुक्त हो जाते हैं। कालान्तर में उन दोनों के संयुक्त अस्तित्व से वह रहस्यमयी परम स्थिति अपने आप हो जाती है उपलब्ध। जिसे योग की भाषा में तुरीयातीत अवस्था कहते है। जिसका संकेत ऊपर किया जा चुका है।

महान मनोवैज्ञानिक स्विनवर्न का कहना है कि जीवन एक नींद और दूसरी नींद के बीच देखा गया एक स्वप्न ही है। भारतीय दर्शन ने भी इस बात को स्वीकार करते हुए कहा है कि तुरीय अवस्था और तुरीयातीत अवस्था—दोनों महास्वप्न हैं। ये दोनों स्वप्न आत्मा का स्वप्न है। स्वप्न भंग होने पर ही आत्मा का जागरण होता है और वह अपने स्वरूप से परिचित होती है। इसी को निर्वाण और परमनिर्वाण कहते है। जागरण निर्वाण है और स्वरूप ज्ञान परम निर्वाण है। यह बहुत ही कम लोग जानते है कि मस्तिष्क में एक ऐसा छोटा सा स्थान है जिसमें लगभग पचास लाख कोशिकाएं है। उन कोशिकाओं के कारण वह लघु स्थान हमेशा जागृत रहता है और साथ ही साथ प्रकाशमय भी। उसी प्रकाश में बैठे ही बैठे योगीगण विश्व दर्शन करते हैं। निद्रा की अवस्था में हृदय की धड़कन 75 प्रति मिनट से कम होकर 60 प्रति मिनट हो जाती है। एक मिनट में 16 बार सांस न लेकर हम निद्राकाल में 12 बार ही सांस लेते है। शरीर के तापमान रक्तचाप और आभारिक कायाग्नि में थोड़ी कमी आ जाती है पर त्वचा का तापमान बढ़ जाता है और स्वेदज ग्रन्थियां भी अधिक सक्रिय हो जाती हैं। मस्तिष्क की ओर रक्त प्रवाह क्रमशः बढ़ता जाता है।

रहस्यमयी परम स्थिति तुरीयातीत अवस्था में हृदय की धड़कन धीरे–धीरे शून्य पर पहुँच जाती है। हृदय की धड़कन शून्य हो जाने पर भी आन्तरिक रूप से हृदय अपना काम बराबर करता रहता है। श्वास की गति भी शून्य पर पहुँच जाती है। 'तापमान' बराबर बना रहता है। उसमें किसी भी प्रकार की कमी नहीं आती। लेकिन रक्त की गति में थोड़ा अन्तर अवश्य आता है लेकिन मस्तिष्क तन्तुओं में उसका प्रवाह साधारण से अधिक हो जाती हैं। हम काल को उसके खण्डित रूपों—मिनट घंटे दिन महीने और वर्ष में ही जानते है लेकिन उस परम स्थिति में काल सीमा से परे रहता है। क्षण भर में भूत, वर्तमान और भविष्य की सारी अनुभूतियां साकार हो उठती हैं। वास्तव में योगनिद्रा का महास्वप्न है यह तुरीयातीत अवस्था। एक बात यहाँ और समझ लेना चाहिए और वह यह कि यदि जीवन सत्य है तो जीवन में देखे जाने वाले स्वप्न भी सत्य है। योगसूत्र का कहना है कि स्वप्न को

साधन बनाकर मनुष्य किस प्रकार उसके द्वारा स्वप्न जागरण और सुषुप्ति से परे की तुरीयावस्था को प्राप्त कर सकता है। यह भी बतलाया गया है कि स्वप्नावस्था को अधिकृत करके उसे समाधि का रूप दिया जा सकता है और इस समाधि में आत्म साक्षात्कार सम्भव है।

इसके पहले अपने संकल्प बल से स्वप्न को स्वप्न मात्र से देखने का प्रयास करना पड़ता है। स्वप्नावस्था में शरीर और मन दोनों अचेत हो जाते हैं और यही कारण है कि स्वप्नावस्था में वस्तुएँ अपने वास्तविक रूप से दिखलायी नहीं देती। जब कोई अपनी इच्छा और संकल्प शक्ति से मन और देह को अचेत कर स्वप्न देखता है तो स्वप्नों में दिखायी देने वाले दृश्य यथार्थ होते है भूत, भविष्य और वर्तमान के वास्तविक दृश्यों से युक्त। ऐसी अवस्था में अतृप्त वासनाएं नहीं रह जाती और कर्म भी निष्कर्म हो जाता है। यही मेरे आध्यात्मिक जीवन का रहस्य है। मैंने स्वप्न को स्वप्न मात्र के रूप में देखने का प्रयास नहीं किया है। मैं स्वप्न देखता हूँ तो यह अनुभूति मुझे बराबर बनी रहती है मैं स्वप्न देख रहा हूँ कोई वास्तविक दृश्य नहीं। ऐसी अवस्था में मुझे न सुख की अनुभूति होती है और न तो दुख की। अगर अनुभूति होती है तो आत्मा की अनुभूति होती है। जिसका वर्णन असम्भव है मेरे लिए। सम्भवतः योगीगण इसी को अपरिग्रह कहते है। इस संबंध में योग सूत्र का कहना है कि– अपरिग्रह स्थैर्य जन्म कथन्ता संबोधः।''

योग के इस सूत्र के अनुसार अपरिग्रह अवस्था को प्राप्त मेरी आत्मा आवागमन के तथ्य से पूर्ण परिचित हो चुकी है। स्वप्नवत् अस्थिर जगत से मुक्त होने के लिए प्रयत्नपूर्वक जगत को भी मिथ्या मानकर जीवन के दैहिक और मानसिक भोगों को समाप्त करता चला जा रहा हूँ मैं।

योग के दूसरे शब्दों में यह योगनिद्रा की अवस्था है। नींद एक भौतिक आवश्यकता है और योगनिद्रा है आध्यात्मिक।

योग निद्रा के विषय में यहां थोड़ा बतला देना आवश्यक है कि आधुनिक विज्ञान और मनोविज्ञान ने योगनिद्रा के अस्तित्व और महत्व को स्वीकार किया है। इस संबंध में श्री अरविन्द का यह कथन अति महत्वपूर्ण हैं–'हिन्दू धर्म या आधुनिक भौतिक विज्ञान दोनों में से कोई

भी इस सत्य पर सन्देह नहीं करता कि जब मन बिलकुल निष्क्रिय होता है तब समस्त चराचर सृष्टि में सक्रिय प्राकृतिक शक्तियाँ मुक्त क्रीड़ायें करती है। मनुष्य की इच्छा से स्वतंत्र क्रिया करने की शक्ति के अस्तित्व का पहला सच्चा प्रमाण भौतिक विज्ञान को सम्मोहन और योगनिद्रा में प्राप्त हुआ है। यूनानी दार्शनिक अरस्तु का भी विश्वास है कि 'सर्वश्रेष्ठ मानव वही है जिसके सपनों के कार्यकलाप दूसरे लोगों के जाग्रतावस्था के कार्यकलाप के समान होते हैं।

वास्तव में यही तुरीयातीत अवस्था है और है योगनिद्रा की अवस्था। योग की उच्चतम और अद्‌भुत अवस्था समझना चाहिए इसे। कई जन्मों की लम्बी आध्यात्मिक यात्रा के पश्चात् महामाया के राज्य की यह दुर्लभ अवस्था प्राप्त होती है। योगनिद्रा की सबसे बड़ी विशेषता है यह है कि वहाँ खण्डकाल नहीं केवल वर्तमान काल है। योगनिद्रा की दीर्घ स्वप्नावस्था में काल के वर्तमान पटल पर भौतिक काल का हजारों साल का भविष्य और हजारों साल का भूत विद्यमान हैं। जो घटनाएं इस भौतिक जगत में आज भी घटती है—वह उस विलक्षण काल पटल पर सैकड़ों वर्ष पूर्व घट चुकी होती है। इसी प्रकार जो आगे घटने वाली होती है वह भी इसी प्रकार घट चुकी होती है।

अपने पाठकों को यहां बतला देना चाहता हूँ कि मैं कोई योगी सिद्ध—साधक, सन्त—महात्मा आदि नहीं हूँ। हाँ यह सम्भव हैं कि पिछले जन्मों के आध्यात्मिक संस्कार के वशीभूत मेरी आत्मा में जीवन के आरम्भ काल में अवश्य उन आध्यात्मिक जिज्ञासाओं और कौतूहलों की सृष्टि हुई जिनके फलस्वरूप मुझे भारत के विभिन्न धार्मिक एवं आध्यात्मिक स्थानों के अतिरिक्त हिमालय के दुर्गम स्थानों के साथ—साथ तिब्बत की भी कठिन यात्रा करनी पड़ी।

कहने की आवश्यकता नहीं, उपर्युक्त यात्राकाल में गुप्त रूप से निवास करने वाले उच्चकोटि के दिव्यावस्था प्राप्त सिद्ध योगी और महात्माओं का सान्निध्य तो प्राप्त हुआ ही, इसके अतिरिक्त प्रच्छन्न अप्रच्छन्न भाव से संचरण विचरण करने वाले दीर्घ आयु सम्पन्न अनेक साधु सन्त और दिव्य आत्माओं का भी साक्षात्कार हुआ। किसी ने मुझे आशीर्वाद दिया, किसी ने मेरी दीर्घायु की कामना की, किसी ने मुझे

साधन बनाकर मनुष्य किस प्रकार उसके द्वारा स्वप्न जागरण और सुषुप्ति से परे की तुरीयावस्था को प्राप्त कर सकता है। यह भी बतलाया गया है कि स्वप्नावस्था को अधिकृत करके उसे समाधि का रूप दिया जा सकता है और इस समाधि में आत्म साक्षात्कार सम्भव है।

इसके पहले अपने संकल्प बल से स्वप्न को स्वप्न मात्र से देखने का प्रयास करना पड़ता है। स्वप्नावस्था में शरीर और मन दोनों अचेत हो जाते हैं और यही कारण है कि स्वप्नावस्था में वस्तुएँ अपने वास्तविक रूप से दिखलायी नहीं देती। जब कोई अपनी इच्छा और संकल्प शक्ति से मन और देह को अचेत कर स्वप्न देखता है तो स्वप्नों में दिखायी देने वाले दृश्य यथार्थ होते है भूत, भविष्य और वर्तमान के वास्तविक दृश्यों से युक्त। ऐसी अवस्था में अतृप्त वासनाएं नहीं रह जाती और कर्म भी निष्कर्म हो जाता है। यही मेरे आध्यात्मिक जीवन का रहस्य है। मैंने स्वप्न को स्वप्न मात्र के रूप में देखने का प्रयास नहीं किया है। मैं स्वप्न देखता हूँ तो यह अनुभूति मुझे बराबर बनी रहती है मैं स्वप्न देख रहा हूँ कोई वास्तविक दृश्य नहीं। ऐसी अवस्था में मुझे न सुख की अनुभूति होती है और न तो दुख की। अगर अनुभूति होती है तो आत्मा की अनुभूति होती है। जिसका वर्णन असम्भव है मेरे लिए। सम्भवतः योगीगण इसी को अपरिग्रह कहते है। इस संबंध में योग सूत्र का कहना है कि– अपरिग्रह स्थैर्य जन्म कथन्ता संबोध्ः।''

योग के इस सूत्र के अनुसार अपरिग्रह अवस्था को प्राप्त मेरी आत्मा आवागमन के तथ्य से पूर्ण परिचित हो चुकी है। स्वप्नवत् अस्थिर जगत से मुक्त होने के लिए प्रयत्नपूर्वक जगत को भी मिथ्या मानकर जीवन के दैहिक और मानसिक भोगों को समाप्त करता चला जा रहा हूँ मैं।

योग के दूसरे शब्दों में यह योगनिद्रा की अवस्था है। नींद एक भौतिक आवश्यकता है और योगनिद्रा है आध्यात्मिक।

योग निद्रा के विषय में यहां थोड़ा बतला देना आवश्यक है कि आधुनिक विज्ञान और मनोविज्ञान ने योगनिद्रा के अस्तित्व और महत्व को स्वीकार किया है। इस संबंध में श्री अरविन्द का यह कथन अति महत्वपूर्ण हैं–'हिन्दू धर्म या आधुनिक भौतिक विज्ञान दोनों में से कोई

भी इस सत्य पर सन्देह नहीं करता कि जब मन बिलकुल निष्क्रिय होता है तब समस्त चराचर सृष्टि में सक्रिय प्राकृतिक शक्तियाँ मुक्त क्रीड़ायें करती है। मनुष्य की इच्छा से स्वतंत्र क्रिया करने की शक्ति के अस्तित्व का पहला सच्चा प्रमाण भौतिक विज्ञान को सम्मोहन और योगनिद्रा में प्राप्त हुआ है। यूनानी दार्शनिक अरस्तु का भी विश्वास है कि 'सर्वश्रेष्ठ मानव वही है जिसके सपनों के कार्यकलाप दूसरे लोगों के जाग्रतावस्था के कार्यकलाप के समान होते हैं।

वास्तव में यही तुरीयातीत अवस्था है और है योगनिद्रा की अवस्था। योग की उच्चतम और अद्भुत अवस्था समझना चाहिए इसे। कई जन्मों की लम्बी आध्यात्मिक यात्रा के पश्चात् महामाया के राज्य की यह दुर्लभ अवस्था प्राप्त होती है। योगनिद्रा की सबसे बड़ी विशेषता है यह है कि वहाँ खण्डकाल नहीं केवल वर्तमान काल है। योगनिद्रा की दीर्घ स्वप्नावस्था में काल के वर्तमान पटल पर भौतिक काल का हजारों साल का भविष्य और हजारों साल का भूत विद्यमान हैं। जो घटनाएं इस भौतिक जगत में आज भी घटती है—वह उस विलक्षण काल पटल पर सैकड़ों वर्ष पूर्व घट चुकी होती है। इसी प्रकार जो आगे घटने वाली होती है वह भी इसी प्रकार घट चुकी होती है।

अपने पाठकों को यहां बतला देना चाहता हूँ कि मैं कोई योगी सिद्ध—साधक, सन्त—महात्मा आदि नहीं हूँ। हाँ यह सम्भव हैं कि पिछले जन्मों के आध्यात्मिक संस्कार के वशीभूत मेरी आत्मा में जीवन के आरम्भ काल में अवश्य उन आध्यात्मिक जिज्ञासाओं और कौतूहलों की सृष्टि हुई जिनके फलस्वरूप मुझे भारत के विभिन्न धार्मिक एवं आध्यात्मिक स्थानों के अतिरिक्त हिमालय के दुर्गम स्थानों के साथ—साथ तिब्बत की भी कठिन यात्रा करनी पड़ी।

कहने की आवश्यकता नहीं, उपर्युक्त यात्राकाल में गुप्त रूप से निवास करने वाले उच्चकोटि के दिव्यावस्था प्राप्त सिद्ध योगी और महात्माओं का सान्निध्य तो प्राप्त हुआ ही, इसके अतिरिक्त प्रच्छन्न अप्रच्छन्न भाव से संचरण विचरण करने वाले दीर्घ आयु सम्पन्न अनेक साधु सन्त और दिव्य आत्माओं का भी साक्षात्कार हुआ। किसी ने मुझे आशीर्वाद दिया, किसी ने मेरी दीर्घायु की कामना की, किसी ने मुझे

जीवन का रहस्य बतलाया। किसी ने मुझको जन्म–मृत्यु के सच्चे रूप का दर्शन कराया। किसी ने मुझे निरपेक्ष भाव से जीवन जीने की कला बतलायी। किसी ने मुझे भावातीत अवस्था का अनुभव कराया और किसी ने मुझे योगनिद्रा के उस अन्तहीन महास्वप्न का साक्षात्कार कराया। जिसमें प्रविष्ट होकर मेरी आत्मा अपने आपमें एक परम शून्य का बराबर अनुभव करती है। लगता है उसी परम शून्य में मृत्यु के समय मेरी आत्मा लीन हो जायेगी इसमें सन्देह नहीं।

यदि मेरी पुस्तकें और मेरी रचनाएं आपको शान्ति प्रदान करती है ज्ञान प्रदान करती है। आपके कौतूहल और जिज्ञासाओं का शमन करती है तो समझिए यह मेरा अहोभाग्य है। लेकिन एक बात है और वह यह है कि अति आवश्यकता पड़ने पर ही मुझसे सम्पर्क स्थापित करने की चेष्टा करें।

अध्यक्ष
आगम निगम संस्थान
वाराणसी

आपका अपना
अरुण कुमार शर्मा

रहस्य एक

वह रहस्यमय साधक

सन् 1950 ई0 पश्चिम बंगाल नवद्वीप का महाश्मशान। उन दिनों मेरे एक बंगाली मित्र थे। नाम था केशवचन्द्र सेन। सज्जन और हृदय के कोमल व्यक्ति थे सेन बाबू। सदैव सिर झुकाकर और विनम्र भाव से बात करते थे सभी से भले ही वह मित्र हो या शत्रु। मेरी मित्रता का एकमात्र आधार यही था यानी उनका सरल और निश्छल स्वभाव और उसी स्वभाव के वशीभूत होकर मैं गया था नदिया उनके पिता की मृत्यु का समाचार पाकर, तार में केवल इतना ही लिखा था पिताजी का साथ हमेशा के लिए छूट गया। मन अशान्त है तुम आ जाओ। अशान्त मन को थोड़ी शान्ति मिलेगी।" केशवचन्द्र सेन जैसे परम मित्र का ऐसा तार पाकर क्या एक क्षण रूक सकता था मैं ? नहीं, नहीं कभी नहीं। दूसरे ही दिन पहुँच गया मैं नदिया। वातावरण में सन्नाटा पसरा था। घर के सामने पानी फैला हुआ था। एक मिट्टी का घड़ा टूट कर बिखरा पड़ा था। समझते देर न लगी। लगभग दौड़ता हुआ श्मशान घाट गया। गंगा किनारे चिता जल रही थी। अपने सगे संबंधियों के साथ एक ओर पाषाणवत बैठा था सेन और अपलक निहार रहा था अपने पिता की धूँ–धूँ कर जलती हुई चिता की ओर। चुपचाप जाकर खड़ा हो गया मैं उसके सामने। एकबारगी चौंक पड़ा वह लगा जैसे गहरी नींद से जगा हो। हाहाकार कर उठा सेन का हृदय। गले से लग रोने लगा फफक कर। चोट गहरी लगी थी, इसलिए आँखे पथरा गयी थी। रो नहीं पाया

वह, अब मिला था जी भर कर रोने का अवसर उसे। न जाने कब तक रोता रहा और न जाने कब तक भींगता रहा उसके आँसुओं से मेरा सीना।

पूरे क्रियाकर्म तक रूकना आवश्यक था मेरे लिए। समाज की दृष्टि से नहीं मित्रता की दृष्टि से। चार पांच दिन तो लग गये मित्र की आत्मा को समझाने बुझाने में। तब कहीं जाकर अशान्त मन शान्त हुआ और कम हुआ दुख। फिर न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर प्रायः नित्य जाने लगा श्मशान घाट की ओर।

नवद्वीप के श्मशान की अपनी एक विशेषता है और वह यह कि श्मशान के चारों ओर विभिन्न प्रकार के रंग बिरंगे सुगन्धित फूलों के मनभावन बाग हैं। सुन्दर और स्वच्छ घाट है। बागों के अलावा नाना प्रकार के वृक्ष सुनियोजित ढंग से लगाये गये हैं। हम दोनों घाट की सीढ़ियों पर घंटो बैठकर मौन साधे कभी आकाश की ओर शून्य में तो कभी सामने जलती हुई चिताओं की ओर निहारा करते।

अब तक सेन का मस्तिष्क काफी हल्का हो चुका था। दुख, पीड़ा और व्यथा के बोझ से काफी सहज हो गया था वह। नित्य की भांति उस दिन भी बैठा था मैं सेन के साथ श्मशान घाट की सीढ़ियों पर, सांझ का समय था। आकाश में काले भूरे बादलों के छोटे बड़े टुकड़े तैर रहे थे। गंगा की लहरों से खेलती हुई पुरूवा हवा बह रही थी धीरे–धीरे। अब तक गुमसुम बैठा सेन अचानक बोल पड़ा–शर्मा तुम तो कई बार नवद्वीप आये हो। कभी श्मशानेश्वरी काली के मन्दिर की ओर गये हो?

यह नाम तो पहली बार सुन रहा हूँ तुमसे। मैं तो यहाँ एक ही काली मन्दिर को जानता हूँ जो श्मशान घाट के रास्ते में है।

नहीं, नहीं, उस काली मन्दिर की बात मैं नहीं कह रहा हूँ। सेन तड़क कर बोला–मैं तो श्मशानेश्वरी काली के संबंध में बतलाना चाहता हूँ तुमको।

यह सुनकर चौंक पड़ा मैं एकबारगी मेरी खोजी शक्ति जागृत हो उठी सहसा। थोड़ा उत्सुक होकर जिज्ञासु भाव से पूछा–कहाँ है श्मशानेश्वरी काली का मन्दिर?

अपने दोनों हाथ की उँगलियों को फँसाते हुए सेन बोला–पूरे दो मील चलना पड़ेगा और वह भी पैदल। काफी सुनसान और निर्जन

इलाका है वह। रात में क्या दिन में भी उधर लोग जाने में सहमते हैं। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि नवद्वीप श्मशान घाट का क्षेत्र काफी दूर तक फैला हुआ है। चिता जलाने का कोई निश्चित स्थान नहीं है। जिसको जहाँ इच्छा वहाँ जला सकता है चिता। उस दिन तो नहीं तीसरे दिन दोपहर के समय सेन के साथ चल पड़ा मैं श्मशानेश्वरी काली मन्दिर।

श्मशान की सीमा पार करते–करते हल्की–हल्की स्याही बिखरने लगी थी सांझ की। आकाश तो साफ था मगर कहीं–कहीं छोटे–मोटे बादलों के टुकड़े इधर–उधर भटक अवश्य रहे थे। जैसे–जैसे हम लोग आगे बढ़ते गये, वैसे ही वैसे सन्नाटा भी बढ़ता गया। अब तक गंगा के किनारे से लग कर जाने वाली पगडण्डी के रास्ते पर चल रहे थे। लेकिन एक स्थान पर जाकर वह पगडण्डी भी समाप्त हो गयी। फिर शुरू हो गया जंगली रास्ता उबड़ खाबड़ और टेढ़ामेढ़ा। अब तक सांझ की स्याह चादर पूरी तरह फैल चुकी थी चारो ओर वातावरण में। कुत्तों के भौकने की आवाज के साथ ही सियारों के समवेत स्वर में रोने की भी आवाज आने लगी थी जंगल की ओर से।

मेरा बायाँ हाथ कस कर पकड़ते हुए धीरे से सेन बोला–डर तो नहीं लग रहा है न! नहीं कैसा डर ? डर–वर मुझे नहीं लगता। ऐसी जगहों पर बहुत घूम चुका हूँ मैं तुम अपनी चिन्ता करो–थोड़ा हंसकर कहा मैंने। मेरा हाथ छोड़कर पहले की ही तरह धीरे से बोला सेन–दो बार आ चुका हूँ मैं। पहली बार किशोरी बाबू के साथ और दूसरी बार अकेले आया था किशोरी बाबू से ही मिलने के लिए। किशोरी बाबू के नाम का उच्चारण करते समय थोड़ा उत्साहित हो उठा था सेन। उसके उत्साह को भांपते हुए मैंने पूछा ऐसी क्या खास बात है तुम्हारे किशोरी बाबू में?

वे एक अच्छे व्यक्ति हैं। सदा सत्य भाषण करते है। उच्च विचार रखते हैं। तंत्र के साधक हैं। माँ श्मशानेश्वरी काली उनकी इष्ट देवी हैं। सुनने में तो यह भी आया है कि उनकी साधना अघोर मार्गीय है। थोड़ा रूककर मैं बोला–क्या तुमने कभी किशोरी बाबू की कोई साधना अपनी आँखों से देखी है ?

नहीं, ऐसा मौका अभी नहीं मिला मुझे–सेन ने उत्तर दिया।

एक बात पूछूँ ?

पूछो।''

साधना के संबंध में तुमने किशोरी बाबू के विचारों को कभी जानने समझने का प्रयत्न किया था ? मैंने अपनी ओर से कोई प्रयास इस दिशा में नहीं किया। उन्होंने स्वयं बातचीत के सिलसिले में मुझे बतलाया था कि तंत्र साधना से चित्त शुद्ध और शान्त होता है। अपने इष्ट से साधक का सीधा संबंध स्थापित हो जाता है। यह बहुत बड़ी उपलब्धि है तंत्र की।

थोड़ा रूककर सेन आगे बतलाने लगा–तंत्र की साधना तो करते अवश्य हैं किशोरी बाबू! लेकिन न भगवा वस्त्र धारण करते हैं। दाढ़ी भी नहीं रखते। न तो खोपड़ी, नर कंकाल, श्मशान आदि का उपयोग करते है। किसी भी प्रकार का आडम्बर या पाखण्ड कहीं नहीं दिखलायी देता उनमें। एक बार महाशय ने मुझसे कहा था–सांसारिक जीवन में रहते हुए भी साधक बहुत कुछ पा लेता है। लेकिन बन्धु पूर्ण निष्ठा होनी चाहिए माँ के प्रति। सेन की इन बातों से व्यक्तिगत प्रभावित हुए बिना न रह सका मैं। मुझमें किशोरी बाबू से मिलने की इच्छा तीव्र होने लगी।

तुमने पहले कभी किशोरी बाबू के विषय में मुझे नहीं बताया ?

तुम ठहरे बनारस में, साल दो साल में एक बार यहाँ आते हो और जब भी मिलते हो, हमारी बातचीत का विषय वर्तमान तक ही सीमित रहता है। कहीं अगर तंत्र–मंत्र की बात चली और मैं उपहास का पात्र बनूँ–ऐसा सोचकर मैंने कभी किशोरी बाबू का जिक्र तुमसे नहीं किया।

देखो सेन! तुम तो जानते ही हो कि मेरा इस संसार में जीवन कैसा है ? एक शव की जो स्थिति रहती है वही स्थिति लगभग मेरी है इस संसार में। सत्य की खोज मेरी है इस संसार में। सत्य की खोज मेरी आत्मा का कई जन्मों का संस्कार है। मैं इसी संस्कार के वशीभूत होकर तंत्र–मंत्र योग आदि पर खोज कर रहा हूँ। जंगल–जंगल भटक रहा हूँ। एक पहाड़ से दूसरे पहाड़ का चक्कर काट रहा हूँ मैं। विज्ञान अपनी जगह पर है और अध्यात्म अपनी जगह। मुझे मेरे देश की हर संस्कृति परम्परा, चिन्तन और प्राचीनता पर गर्व है।

गंगा का किनारा थोड़ा अलग हो गया था। थोड़े और घने हो गये थे जंगल। हवा में तेजी आ गयी थी। आकाश में बादल भी उमड़ने घूमड़ने लगे थे। लगा जैसे कभी भी बारिश हो सकती है। हम दोनों जल्दी–जल्दी पैर बढ़ाने लगे टार्च की रोशनी में। सहसा मेरे पैर से होता हुआ एक काला कोबरा सांप तेजी सी आगे बढ़ गया था। सारा शरीर सिहर उठा एकबारगी।

यहाँ सांप भी है क्या ?

हाँ बहुत सारे सांप हैं इस जंगल में–सेन ने जवाब दिया। फिर टार्च की रोशनी घुमाई एक बार उसने चारो ओर और उसी रोशनी में दिख गया मुझे थोड़ी ही दूर पर स्थित काली मन्दिर।

मन्दिर के चारो ओर लम्बे–लम्बे बासों के झुरमुट। जमीन पर फैली हुई जंगली घास और उन घासों के बीच कभी–कभी चमक उठते जुगनुओं के झुण्ड। रीं रीं करता बरसाती झींगुरों का अनवरत क्रन्दन।

मन्दिर काफी पुराना लगा मुझे जगह–जगह पत्थर उखड़ गये थे। ऊपर का शिखर आधा टूटकर लटक गया था एक ओर। झण्डा भी रहा होगा कभी लेकिन उस समय नहीं था। चार पांच सीढ़ियाँ थी टूटी फूटी और धूल से भरी। सीढ़ियों के बाद छोटा सा प्रांगण था और उसके बाद मन्दिर का गर्भगृह। एकाएक बादल गरजने लगे और छोटी–छोटी बूँदे गिरने लगी। मैं लपककर प्रांगण में खड़ा हो गया और मेरे साथ सेन भी। उसने झांककर देखा गर्भगृह के भीतर गजाधार पर सरसों के तेल का मिट्‌टी का दीपक जल रहा था। बत्ती थोड़ी मोटी थी इसलिए प्रकाश कुछ अधिक था। सेन बुदबुदाया–लगता है पुजारी बाबा मंदिर में दीपक जला गये हैं।

थोड़ी देर बाद सब कुछ स्पष्ट हुआ। दीपक का हल्का पीला प्रकाश 'माँ' श्मशानेश्वरी पर बिखर रहा था। समझते देर न लगी। वह महाशक्ति पंचमुण्डी आसन पर स्थापित थी। हल्का सा रोमांच हो आया। सनसना उठा सारा शरीर एकबारगी। काले पाषाण की आदमकद महामाया की प्रतिमा बिल्कुल सजीव लगी मुझे। अन्य काली के रूपों से उसमें काफी भिन्नता थी। "माँ" का चेहरा अधिक भयानक था।

बड़े–बड़े स्थिर नेत्र जिनमें करूणा, दया, अनुकम्पा और स्नेह का सागर लहरा था। क्रोध की मात्रा भी कम न थी वहाँ। मुख थोड़ा खुला हुआ था। सफेद दन्त पंक्तियों के बीच फंसी जीभ बाहर निकली हुई थी। लपलपाती जीभ को देखकर लगा मानो भगवती ने अभी–अभी किसी नर पशु का शोणित पान किया है। भय लगा देखकर। गले से लेकर पैर तक झूलती हुआ नरमुण्ड माला। विश्व को अमृतपान कराने वाले 'माँ' के दोनों पुष्ट स्तन अनावृत्त थे। श्रद्धा से नत हो गया मस्तक। पंचमुण्डी आसन त्रिकोणात्मक था और उस पर चिता का रूप बना था और उस पर रखा हुआ था शव जिस पर आरूढ़ थी जगजननी ब्रह्माण्ड रुपिणी महामाया श्मशानेश्वरी। "माँ" के आठ हाथ थे। दाहिने ओर के चारो हाथ में क्रमशः खण्ड्ग, त्रिशूल, खप्पर और नरमुण्ड था। बायें ओर चारो हाथ में से पहला हाथ वरद मुद्रा में था। इसी प्रकार चौथा हाथ था, अभय मुद्रा में। बीच के दोनों हाथों में क्रमशः 'नागपाश' और कैंची थी। सब कुछ देखकर समझते देर न लगी मुझे। काली और तारा दस महाविद्याओं में श्रेष्ठ विद्याएँ है। उन्हीं दोनों विद्याओं का मिश्रित रूप था श्मशानेश्वरी का इसमें सन्देह नहीं।

सिर घुमाकर चारो ओर देखा, 'माँ' के आसन से टिकाकर एक काफी बड़ा खड्ग रखा था। जिस पर कभी का लगा किसी पशु का रक्त सूखकर काला पड़ गया था अब। ऊपर एक छोटा सा घंटा टंगा हुआ था जो काफी पुराना था और जिस पर काफी मैल जमा था न जाने कब का? जमीन पर आसन बिछा था शायद पुजारी बाबा का रहा होगा वह।

बाहर हवा तेज थी। बांस के पेड़ झूम रहे थे। बारिश भी अब तेज हो गयी थी। रात का पहला प्रहर समाप्त ही होने वाला था। अब क्या होगा ? बुरी तरह फंस गया था। सेन की ओर देखा। बार–बार सिर को चारो ओर घुमा घुमाकर न जाने क्या देख रहा था ?

क्या बात है बन्धु ?"

होठों पर उंगली रखकर धीरे से बोला सेन–शांत रहो, किशोरी बाबू आते ही होंगे ? समय हो गया है.........

इस समय ? इस अराजकता भरी रात में ? थोड़ा आश्चर्य हुआ मुझे।

सेन ने कोई उत्तर नहीं दिया।'' सिर घुमाना जारी रखा उसने।''

एकाएक तड़तड़ाकर बिजली चमकी और गरजने लगे बादल और कुछ ही क्षणों के बाद उस घोर निस्तब्ध जंगली वातावरण में सुनाई दिया–जै माँ तारा...........जै माँ काली.........।

किशोरी बाबू आ गये, सेन फुसफुसाकर बोला।' कुछ क्षण बाद अन्धेरे उजाले के बीच देखा एक प्रौढ़ सज्जन खड़े थे सामने। लम्बी चौड़ी कद काठी। शरीर पर धोती कुर्ता, गले में रूद्राक्ष की माला और पैर में चप्पल, आँखों पर काले फ्रेम का चश्मा, मस्तक पर सिन्दूर का गोल टीका और कन्धे तक झूलती केशराशि यही थे किशोरी बाबू।

अरे सेन! तुम इस समय यहाँ कैसे ? कैसे आना हुआ ? यह कौन है साथ में–मेरी ओर देखकर किशोरी बाबू ने प्रश्न किया। 'आश्चर्य का भाव था उनके प्रश्न में, सेन ने विनम्र भाव से सिर झुकाकर प्रणाम किया और फिर किया दोनों हाथों से चरणस्पर्श। मैंने भी दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया किशोरी बाबू को।''

शुभ शुभ........दोनों हाथ ऊपर उठाकर किशोरी बाबू ने आशीर्वाद दिया।

सेन ने मेरा परिचय दिया और अन्त में कहा–अध्यात्म में गहरी रूचि है। आपका दर्शन करना चाहते थे......अच्छा, अच्छा किशोरी बाबू बोले–मैं थोड़ा माँ का दर्शन कर लूँ फिर बातें होगी।

मन्दिर के भीतर जाकर दरवाजा बन्द कर लिया किशोरी बाबू ने। पन्द्रह बीस मिनट के बाद दरवाजा खुला, वे बाहर निकले। देखा, उस समय उनका चेहरा खूब लाल हो रहा था। आँखे भी भरभरा आयी थी। न जाने क्यों थोड़ा सहम गया मैं। बारिश होनी ही थी और हो भी रही थी खूब जोर–जोर से। रह–रहकर बादल भी गरज उठते थे। सेन थोड़ा पीछे हट गया और उसी के साथ मैं भी। किशोरी बाबू ने बाहर निकल कर एक बार चारो तरफ देखा और फिर बोले–पूरी रात ताण्डव करेगी प्रकृति। यहीं रूकना पड़ेगा अब। दूसरा कोई मार्ग नहीं था।''

दीवार से पीठ लगाकर किशोरी बाबू बैठ गये जमीन पर। हम दोनों भी बैठ गये। मेरे भीतर कौतूहल की सृष्टि हो गयी थी। तरह–तरह की जिज्ञासाओं की लहरें उठ रही थी मन के सागर में, अन्त

में प्रश्न कर ही बैठा–काफी पुराना लगता है यह मन्दिर आपका क्या ख्याल है?

लगभग चार सौ वर्ष और इतना ही पुराना है इस मन्दिर से मेरा संबंध भी।

चौंकना स्वाभाविक था। समझा नहीं– मैं बोला।

कैसे समझोगे ? बहुत गहरा रहस्य है। व्यग्र होने की आवश्यकता नहीं। बतलाऊँगा सब कुछ–इतना कहकर लम्बी सांस ली किशोरी बाबू ने। क्या यहाँ, बलि भी होती है? मेरा दूसरा प्रश्न था ?

हाँ लेकिन अब नहीं, पहले खूब होती थी। कभी–कभी नरबलि भी होती थी।

यह सुनकर कुछ क्षण चुप रहने के बाद मैं बोला बलि का अभिप्राय क्या है और फिर काली अथवा उनके किसी प्रतिरूप के सम्मुख ही क्यों दी जाती है बलि ?

कभी कोई ऐसा भी गूढ़ प्रश्न करेगा ? शायद कभी सोचे भी न रहे होंगे किशोरी बाबू। उस म्लान अंधियारे में कुछ देर तक मेरी ओर स्थिर भाव से देखते रहे और फिर बोले वह–वैसे तो तुम्हारी जिज्ञासा बहुत ही महत्वपूर्ण है और साथ ही गम्भीर भी। यदि उसका समाधान किया जाय तो विस्तार में जाना पड़ेगा। इसलिए मोटा मोटी बतला देता हूँ। सृष्टि के मूल में जो आदिशक्ति है–जिसे परमाशक्ति, महामाया आदि नामों से सम्बोधित किया गया है। वह आदिशक्ति 'परमा' सृष्टि की दृष्टि से गुणत्रय है, यानी सत्व रज और तम। वैदिक दृष्टि से शिव तो भूत तत्व है, लेकिन परमाशक्ति देव तत्व है। वैदिक साधना भूमि में वही देवतत्व मन, प्राण और वाक्, इन तीनों रूपों में विभक्त है। तांत्रिक दृष्टि में ये तीनों रूप क्रमशः इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति हैं। तांत्रिक साधना की सगुणोपासना भूमि में ये तीनों रूप क्रमशः महालक्ष्मी, महाकाली और महासरस्वती है। ये तीनों शक्ति विग्रह तंत्र साधना के मूलभित्ति हैं। ह्रीं, क्लीं और ऐं–इन तीनों विग्रहों का बीजाक्षर रूप है। इसी प्रकार इनके मंत्र रूप भी हैं।

परमा शक्ति की चर्चा की थी मैंने। किशोरी बाबू थोड़ा ठहर कर लम्बी सांस लेते हुए आगे बोले 'परमा' परब्रह्म परमेश्वर की निज शक्ति

परमेश्वरी है। वह उनकी योगमाया है। परमेश्वर की समस्त लीलाओं का आधार। इसी आधार को परा कहते हैं। पराशक्ति महामाया परमेश्वरी का साकार विग्रह महाकाली है। महाकाल का जो प्रवाह है वह 'प्राण है और उस प्राण के प्रवाह की जो गति है वह है प्राण शक्ति। प्राण शक्ति से एक विशेष प्रकार की ऊर्जा उत्पन्न होती है। उसे ब्रह्माण्डीय ऊर्जा कहते हैं जो सर्वत्र समान रूप से व्याप्त है। आज के वैज्ञानिक उसी ब्रह्माण्डीय ऊर्जा को ईथर कहते हैं। प्राण के प्रवाह में एक परम तत्व उत्पन्न होता है और वह परम तत्व है चेतन तत्व यानी चेतना इस दृष्टि से महाकाली चेतना स्वरूप भी है। मानव शरीर में चेतना का स्थान हृदय है। यहाँ काली का अगला उठा हुआ चरण शिव के हृदय पर स्थित है– चेतना हृदि संस्थितः महाकाली का आगे बढ़ा हुआ पैर 'गति' का सूचक है।

महाकाली ब्रह्माण्डीय ऊर्जा का केन्द्र है। तांत्रिक विधि से 'पंचमुण्डी' आसन का निर्माण करने के पश्चात् जब महाकाल की शक्ति महाकाली के विग्रह को उस महाआसन पर स्थापित किया जाता है और स्थापना के पश्चात् उस विग्रह में प्राण प्रतिष्ठा की जाती है तो उस अवस्था विशेष में उस विग्रह का अगोचर संबंध तत्काल ब्रह्माण्डीय ऊर्जा से स्थापित हो जाता है। जिसके फलस्वरूप चेतन तत्व और प्राण तत्व का भी आविर्भाव हो जाता है विग्रह में। यदि साधना की दृष्टि से विचार किया जाय तो काली के विग्रह में चेतन तत्व, प्राण तत्व, ब्रह्माण्डीय तत्व इन तीनों मूल परम तत्वों का समन्वय है। वह महापरमाशक्ति तीनों का प्रतिनिधित्व करती है। ऐसा अन्य किसी शक्ति विग्रह में उपलब्ध नहीं है और एकमात्र यही कारण है कि तांत्रिक साधना भूमि में जितनी भी देवियाँ हैं उनमें महाकाली का स्थान सर्वोपरि है। इनकी एक और महत्वपूर्ण विशेषता है और वह यह कि वैदिक पौराणिक एवं तांत्रिक इन तीनों मार्ग से इनकी पूजा, अर्चना, उपासना आदि की जा सकती है। महाकाली तमोगुणी शक्ति है। इसलिए तमोगुणी तांत्रिक विधि से इनकी साधना और उपासना आदि की जानी चाहिए। किन्तु राजसी और सात्विक विधि से ही इनकी साधना और उपासना का मार्ग खुला है। जबकि अन्य देवी देवताओं के लिए सम्भव नहीं। ऊपर सिर उठाकर

जम्हाई लेते हुए किशोरी बाबू आगे बोले–बलि क्यों दी जाती है यह प्रश्न था तुम्हारा।

हाँ! मैंने सिर हिलाकर उत्तर दिया।

कुछ लोग जम्हाई लेते समय चुटकी बजाते हैं। किशोरी बाबू ने भी बजाया और बोले महामाया परमाशक्ति महाकाली की पूजा, अर्चना अथवा उपासना आदि में अनाधिकार चेष्टा होती है या उनमें किसी भी प्रकार की त्रुटि होती है या फिर कोई शूद्र स्वपच या चाण्डाल विग्रह का स्पर्श करता है। ऐसी स्थिति में ब्रह्माण्डीय ऊर्जा से विग्रह का अगोचर संबंध भंग होने की भारी सम्भावना होती है। ब्रह्माण्ड में अनन्त दैवी शक्तियाँ क्रियाशील है। जिनका सम्पर्क ब्रह्माण्डीय ऊर्जा के द्वारा काली के विग्रह से बराबर बना रहता है।

ब्रह्माण्डीय ऊर्जा से बराबर विग्रह का संबंध बना रहे और ब्रह्माण्ड में क्रियाशील अनन्त शक्तियों का सम्पर्क भी बराबर बना रहे। इसके लिए माँ काली के विग्रह के सम्मुख पशुबलि दी जाती है। पशुओं में भैसे और बकरे में सर्वाधिक प्राण ऊर्जा होती है। इसलिए इन दोनों पशुओं की बलि सर्वाधिक दी जाती है। बलिदान होने पर पशु से विकीर्ण प्राण ऊर्जा विग्रह में धीरे–धीरे समा जाती है। जिसके परिणामस्वरूप ब्रह्माण्डीय ऊर्जा से संबंध भंग होने की सम्भावना समाप्त हो ही जाती है इसके अतिरिक्त प्राण शक्ति और चेतना शक्ति भी क्रियाशील हो उठती है एकबारगी काली के विग्रह में।

पंचमुण्डी आसन पर स्थापित महाकाली के विग्रह के सम्मुख उनके तीसरे नेत्र पर मन को एकाग्रकर जो उनका ध्यान अथवा उनके बीजाक्षर मंत्र का जप करता है उस पर माँ महामाया की तत्काल कृपा होती है। सचमुच कलियुग में महाकाली के अतिरिक्त और कहीं कुछ नहीं है। उनके आध्यात्मिक स्वरूप का रहस्य अत्यन्त गहन और अत्यन्त रहस्यमय है। उसे समझना सभी के वश की बात नहीं। माँ काली की कृपा जिस पर होती है वही जान समझ सकता है उसे। इतना बोलकर मौन साध गये किशोरी बाबू और न जाने किस लोक में विचरण करने लगे।

अब तक काले भूरे बादलों से अटकर काला पड़ गया था आकाश। हाहाकार करती हवा के जोर पर झूम रहे थे जंगली पेड़ पौधे। एकाएक कड़कड़ाती हुई बिजली चमकी और दूर दिगन्त तक प्रकाश में उद्भासित हो उठा सारा विस्तार।

दीवार से टेक लगाकर उंघने लगा था सेन। मैं तो सिर झुकाए सोच रहा था किशोरी बाबू के संबंध में। कितना ज्ञान और कितना पाण्डित्य भरा है किशोरी बाबू में। सचमुच अच्छे साधक हैं महाशय। देखे क्या–क्या उपलब्ध होता है उनसे। एकाएक मेरी दृष्टि घूम गयी सीढ़ी की ओर। एकबारगी चौक पड़ा। सारा शरीर रोमांचित हो उठा भय से। न जाने कहाँ और किधर से काफी मोटा लम्बा काला सर्प तीव्र गति से चलकर वहाँ आ गया बड़ा ही भयानक सर्प था वह। उसकी लाल हो रही आँखे अन्धेरे में भी चमक रही थी। जीभ लपलपाता हुआ मन्दिर के भीतर चला गया वह भयंकर विषधर। उस समय भय मिश्रित घोर आश्चर्य हुआ जब मन्दिर के भीतर देवी की स्तुति करने की आवाज सुनाई दी मुझे। स्वर बड़ा ही कोमल और करूण था इसमें सन्देह नहीं थोड़ी ही देर के बाद स्तुति बन्द हो गयी और उसके बाद किसी के हिलक–हिलक कर रोने की आवाज आयी भीतर से। फिर सन्नाटा छा गया मन्दिर के भीतर।

कौन था स्तुति गान करने वाला और कौन रो रहा था हिलक–हिलक कर? समझ में नहीं आ रहा था।

सेन का सिर एक ओर लटक गया था। नाक भी बोलने लगी थी–घर्र....घर्र। शायद गहरी नींद में चला गया था वह। काफी थक भी तो गया था।

कुछ देर बाद चैतन्य हुए किशोरी बाबू। सिर घुमाकर चारो ओर देखा और फिर बोले–क्या हुआ मैंने सारी बातें बतलायी–सर्प की, स्तुति की और किसी के विगलित कंठ से रोने की। सब कुछ सुनकर थोड़ा गम्भीर हुए किशोरी बाबू फिर मन्दिर के भीतर की ओर देखते हुए बोले–चक्रेश्वरी बाबा थे वह। यह सुनकर चिहुँक उठा एकबारगी मैं! इन्द्रजाल–सा लगा मुझे सब कुछ। जम्हाई लेते हुए किशोरी बाबू आगे

कहने लगे तुम बहुत भाग्यवान हो। एक उच्चकोटि के महान तंत्र साधक का सर्पयोनि में तुम्हे दर्शन लाभ हुआ और उनका स्तुतिगान भी सुनने को मिला। अपने आपको सार्थक समझो तुम।" जीवन कृतार्थ हो गया रे तेरा।

यह सुनकर आश्चर्य, कौतूहल और साथ ही भय से भर उठा मैं। क्या वास्तव में उस भयंकर विषधर के रूप में एक परम और महान साधक था कोई। बार–बार यही प्रश्न उभरने लगा मेरे मस्तिष्क में। किशोरी बाबू ने जो कुछ बतलाया वह क्या असत्य हो सकता है? नहीं, नहीं कभी नहीं।

आगे कहने लगे किशोरी बाबू–लगभग चार सौ वर्ष पूर्व आये थे न जाने कहाँ से इस स्थान पर चक्रेश्वरी बाबा। उस समय यह जंगल काफी लम्बा चौड़ा और घना था। सांप और जंगली जानवरों के भय से रात की बात छोड़ो दिन में भी इधर कभी कदा ही कोई चला आता था। जो आता था, वह लकड़ी काटने के लिए आता था। उस समय इसी स्थान पर रहकर चक्रेश्वरी बाबा ने साधना की थी महाकाली की। पूरे चालीस वर्ष समझे और जब उनके शरीर की सीमा समाप्त हो गयी तो उसे त्याग कर सर्प योनि ग्रहण कर लिया इसीलिए कि उनकी साधना पूर्ण नहीं हुई थी अभी। कहने की आवश्यकता नहीं, तब से लेकर आज तक सर्प शरीर में रहते हुए साधना कर रहे हैं महाशय। सर्प के रूप में इस जंगल में कहाँ और किस स्थान पर रहते हैं चक्रेश्वरी बाबा, यह बतलाना कठिन है। लेकिन माँ महामाया के प्रति उनके हृदय में गहरा मोह है और उसी मोह के कारण नित्य कालरात्रि के समय माँ का दर्शन करने चले आते हैं और उनका स्तुतिगान करते हैं। विगलित होने का कारण यही समझ में आता है कि उस परम साधक की साधना सम्भवतः अभी पूरी नहीं हुई है। हाँ एक बात तो बतलाना भूल ही गया था मैं, और वह यह कि चक्रेश्वरी बाबा की इच्छाशक्ति अत्यन्त प्रबल है इसमें सन्देह नहीं। कभी कदा अपनी उसी प्रबल इच्छाशक्ति के बल पर अपने पूर्व शरीर में प्रकट भी हो जाया करते हैं। कई लोगों को उन्होंने दर्शन दिया है अपने मानव शरीर द्वारा। इस प्रकार क्या आपको कभी दर्शन दिया है उस परम साधक ने?

मेरे प्रश्न का उत्तर तो नहीं दिया किशोरी बाबू ने लेकिन काफी देर तक सिर उठाकर आकाश की ओर शून्य में न जाने क्या देखते रहे वह। उनके चेहरे पर न जाने कैसा भाव उभर आया था उस समय जिसे देखकर फिर साहस नहीं हुआ दुबारा प्रश्न करने का।

थोड़ी देर बाद सहज हो गये किशोरी बाबू और फिर चल पड़ा सिलसिला बातचीत का। तो इसका मतलब यह हुआ कि इस काली मन्दिर को कम से कम एक हजार वर्ष प्राचीन होना ही चाहिए, सहज भाव से अपनी जिज्ञासा प्रकट की मैंने। ठीक अनुमान लगाया तुमने। इससे भी अधिक हो सकता है इतना कहकर चुप हो गये किशोरी बाबू। न जाने क्या सोचते रहे फिर थोड़ी देर बाद बोले—पच्चीस वर्ष पहले मुझे एक तांत्रिक सन्यासी आसाम में मिले थे। अत्यन्त वृद्ध थे। नाम था शायद पूर्णागिरी, प्रसंगवश उन्होंने मुझे बतलाया था कि एक महात्मा मुर्शीदाबाद से कलकत्ता होते हुए कामरूप कामाख्या आये और कामाख्यापीठ में रहकर पूरे तीस वर्ष तंत्र की कठोर साधना की। एक बार समाधि की अवस्था में भगवती कामाख्या ने महात्मा को दर्शन दिया और बोली कामदगिरी पर्वत की एक गुफा में अष्टभुजा काली की पाषाण मूर्ति है। उसे ले जाकर नवद्वीप के महाश्मशान के निकट जो घोर जंगल है, उसी जंगल में पंचमुण्डी आसन का निर्माण कर उस पर मूर्ति को प्राण प्रतिष्ठित करना और वहाँ ही रहकर साधना करना। फिर क्या हुआ? मैं थोड़ा व्यग्र हो उठा।

होगा क्या ? महात्मा ने माँ के आदेश का पालन किया। कामद गिरि गुफा में न जाने कब की पड़ी थी अष्टभुजा काली की मूर्ति। किसी प्रकार गुफा से निकाल कर ले गये महात्मा उस जंगल में और माँ के आदेशानुसार उसकी स्थापना कर दी और साधना करने लगे वह। महात्मा निश्चय कोई सिद्ध पुरुष थे। माँ महामाया महाकाली की अपूर्व कृपा थी उन पर अपरोक्ष रूप से, बराबर महात्मा की सहायता करती रहती थी। निश्चय ही माँ की प्रेरणा और सहयोग से इस मन्दिर का निर्माण हुआ होगा इसमें सन्देह नहीं। पूर्णागिरि ने तो यह भी बतलाया कि प्रत्येक अमावस्या की रात्रि में स्वयं बलि पशु आकर माँ काली के सामने सिर झुकाकर खड़ा हो जाता था। महात्मा उस बलि पशु की

विधिवत् पूजन करते और उसकी बलि देते। बहुत समय तक ऐसा चलता रहा। बाद में पशु का आना स्वयं बन्द हो गया। उसके बाद दस वर्ष तक प्रत्येक दीपावली की रात में एक नवयुवक आने लगा और महात्मा के हाथ में बलि खड्ग थमाकर याचना की मुद्रा में कहता मेरी दे दे माँ के चरणों में बलि। जगत से उद्धार हो जायेगा मेरी आत्मा का। दस वर्ष के बाद नरबलि भी बन्द हो गयी। लेकिन नररक्त पान करने वाला, शरीर से आत्मा को मुक्त करने वाला और नरबलि का मूक साक्षी वह विकराल खड्ग अभी भी माँ महामाया के साथ है। उसे कोई छूता तक नहीं। जो आता है सिर झुकाकर प्रणाम करता है। भय से नहीं श्रद्धा से।

सवेरा होने वाला था। बारिश बन्द हो चुकी थी। आकाश में बादलों के झुण्ड इधर-उधर बिखर गये थे। लेकिन हवा में तेजी थी पेड़ पौधे अभी भी झूम रहे थे। उनकी डालों पर पक्षी चहचहाने लगे थे। पूरा वन प्रान्त चैतन्य हो उठा था अब। सेन जाग चुका था। आखें मलकर चारों तरफ देखा और फिर थोड़ा लज्जित होकर किशोरी बाबू के चरणों का स्पर्श किया झुक कर उसने।

मेरे मस्तिष्क में न जाने कितने प्रश्न और न जाने कितनी जिज्ञासायें उमड़ घुमड़ रही थी, बतला नहीं सकता। निश्चय ही किशोरी बाबू एक प्रच्छन्न साधक और दिव्य आत्मा थे इसमें सन्देह नहीं। उनके आध्यात्मिक स्वरूप को समझने में देर नहीं लगी थी मुझे। नवद्वीप में अपना मकान था, किशोरीबाबू की पत्नी साथ छोड़कर परलोक वास कर रही थी। दो पुत्र थे और उन दोनों की पत्नियाँ थी सुशील विनम्र और मृदुभाषिणी। दोनों पुत्र मछली का व्यापार करते थे। पिता के प्रति उन दोनों का भाव देवतुल्य था। आग्रह कर किशोरी बाबू अपने घर ले गये सेन को और मुझे भी। मकान काफी लम्बा चौड़ा था। सामने हरा भरा बाग था। केले के कई पेड़ थे। किशोरीबाबू का कमरा ऊपर की मंजिल पर था, सबसे अलग थलग एकान्त में, कमरा काफी बड़ा था। दोनों ओर ऊँची-ऊँची खिड़कियां थी। जिनमें से बाग की ओर से ताजी हवा भीतर आ रही थी। कमरे में एक ओर पुराने जमाने का काफी बड़ा पलंग था जिस पर सफेद चादर बिछी थी। पलंग के बगल में पुराने जमाने का ही एक बड़ा सा गोल मेज और उसके

अगल–बगल तीन चार कुर्सियाँ पड़ी थी। कमरे का वातावरण स्वच्छ और शान्त था। पलंग के ठीक सामने दोनों खिड़कियों के बीच एक लम्बे चौड़े सुनहरे रंग के कीमती फ्रेम में किसी महापुरुष का तैलचित्र टंगा हुआ था। निश्चय ही असाधारण और प्रभावशाली चित्र था वह, इसमें सन्देह नहीं।

फिर आने को बोलकर सेन अपने घर चला गया था, किशोरी बाबू भी मुझे कमरे में अकेला छोड़कर किसी काम से नीचे चले गये थे। मैं अकेला था कमरे में और मेरे सामने था वह तैलचित्र। जिस महापुरुष का वह चित्र था उसमें गजब का आकर्षण था। मन प्राण अविभूत हो रहा था जैसे। मैं खड़ा–खड़ा अपलक निहारने लगा था अब चित्र के रूप में प्रतिष्ठित उक्त महापुरुष को चौड़ा ललाट धुनी हुई रूई की तरह सिर के बाल, लम्बी सफेद दाड़ी, लम्बी नाक तोते जैसी और आँखे ? हे भगवान! कैसी थी आँखे। बाघिन जैसी पीली और चमकदार। क्रूरता मिश्रित भय के साथ–साथ करुणा और अनुकम्पा का भी भाव था बाघिन जैसी उन आँखों में। किस व्यक्ति का था वह चित्र ? कौन था वह ?

न जाने कब पीछे आकर खड़े हो गये किशोरी बाबू पता ही न चला हंसकर बोले– ये मेरे गुरुदेव हैं। अच्छा बड़ा ही सजीव चित्र है गुरुदेव का– मैंने कहा।'' सिर घुमाकर किशोरी बाबू की ओर देखते हुए मैं सहज भाव से बोला–आप तांत्रिक जैसे लगते नहीं। धोती–कुर्ता पहनते हैं। बिल्कुल साधारण वेशभूषा और रहन–सहन, रूद्राक्ष की माला, नरमुण्ड, शराब की बोतल, रक्तवसन त्रिशूल कुछ भी तो नहीं है आपके पास।

मेरी बात सुनकर हो–हो कर हँसने लगे कि किशोरी बाबू फिर बोले–गृहस्थ जीवन में साधना नहीं हो सकती क्या, अपनी–अपनी समझ है। जहाँ तक मेरा विचार है, उसके अनुसार गृहस्थ जीवन में रहकर साधना करने वाला साधक सच्चा साधक होता है। वह परिपक्व होता है। नदी की धारा में बहना सरल है श्रम नहीं करना पड़ता, लेकिन विपरीत धारा में बहना बहुत कठिन और श्रम साध्य है। ऐसा ही समझो गृहस्थ रहकर साधना करना उल्टी धारा में बहने के समान है। भौतिक वातावरण में रहिए, भौतिक सुखों का आनन्द लीजिए। भौतिक वस्तुओं का उपयोग करिये। कौन भला मना करता है लेकिन निर्लिप्त रहिये

निर्विकार रहिये, निरपेक्ष रहिये। ऐसी स्थिति में जो साधना होगी वह अपने आप में महत्वपूर्ण होगी, लक्ष्य को प्राप्त करने में देर न लगेगी। साधक को तो ऐसा होना चाहिए कि किसी को पता ही ना चले कि वह साधक है। माता–पिता और पत्नी तक को नहीं। सच पूछा जाय तो सच्चा साधक होगा वह कभी भी अपने स्वरूप को व्यक्त नहीं करेगा और न तो कभी किसी को बतलायेगा अपने विषय में। किसी भी प्रकार का आडम्बर और पाखण्ड भी नहीं करेगा। सदैव उससे दूर ही रहेगा वह।

अब रही बात दण्ड, कमण्डल, माला, आसन, त्रिशूल, रक्त, वस्त्रधारण, श्मशान निवास, श्मशान साधना, चिता साधना, शवपूजन, मांस मदिरा, भक्षण, मुद्रा, मैथुन, भैरवी के रूप में नारी का भोग, भैरवी पूजा, चक्र पूजा, चक्रार्चन आदि की।

किशोरी बाबू पलंग पर बैठते हुए बोले—शर्माजी मैं स्वीकार करता हूँ कि ये सभी वस्तुएँ तंत्र की बहिरंग साधना के अतिमूल्यवान अति महत्वपूर्ण और विशिष्ट अंग हैं। किन्तु है अपने आप में गूढ़–गोपनीय और अत्यन्त रहस्यमय। जो लोग उनकी गूढ़ता को समझे बिना उनके रहस्यों से परिचित हुए और बिना यौगिक क्रियाओं का आश्रय लिए इनका उपयोग अथवा प्रयोग करते हैं उनका परिणाम अत्यन्त भयंकर होता है। उनकी दुर्गति भी कम नहीं होती है। जीवन नर्क बन जाता है। ऐसे ही लोगों के द्वारा तंत्र–मंत्र के नाम पर आडम्बर और पाखण्ड का जन्म होता है। जिसका परिणाम होता है तंत्र की बदनामी। आज कल चारो तरफ तंत्र–मंत्र की जो बदनामी हो रही है, इसका कारण एकमात्र यही है। तांत्रिक के साथ भय और हानिकारक तत्व जैसे शब्द जुड़ गये हैं। इतना कहकर किशोरी बाबू ने नौकर को आवाज दी। सेन भी उसी समय आ गया। दोपहर का समय था। नौकर तीन थाली में गरम–गरम पूड़ी, सब्जी, रसगुल्ला और दही का रायता ले आया।

पहले कुछ सेवा करो बातें फिर होगी। मैंने सेवा का अर्थ भोजन करना समझा। बंगाल में वैष्णव लोग भोजन की क्रिया को सेवा करना कहते है। भोजन का कार्य समाप्त होने पर एक जम्हाई लेते हुए पांच बार चुटकी बजाई और कहने लगे–तंत्र एक प्रकृष्ट विज्ञान है। प्रकृष्ट

विज्ञान उसे कहते है—जिसके सिद्धान्त कभी नहीं बदलते हर अवस्था में और काल में एक से ही रहते हैं। तंत्र विज्ञान के दो आधार स्तम्भ हैं— उपासना और योग। इन दोनों के आश्रय से साधना सम्पन्न होती है। तांत्रिक साधना का पहला उद्देश्य है—सामरस्य महामिलन यानी परमात्मा में आत्मा का विलीनीकरण। दूसरा उद्देश्य है—अपने इष्ट, अपने आराध्य से बराबर सम्पर्क स्थापित किये रहना। तीसरा उद्देश्य है— इष्ट के संकेत अथवा आदेश द्वारा ही किसी का कल्याण करना। चौथा उद्देश्य है—चोर, कपटी, असत्यवादी, हत्यारा और किसी भी प्रकार का और कृतघ्नों की सहायता न करना। इससे स्वयं साधक का पुण्य क्षीण होता है।

साधक के लिये मौन रहना अच्छा है। कब क्या मुंह से निकल जाय कहा नहीं जा सकता। मुंह से निकला शब्द सत्य भी हो सकता है। कम से कम बोलना चाहिए। एकान्त में रहना हितकर। क्रोध शोक—मोह आदि से बचना चाहिए। किशोरी बाबू ने बगल में रखे चांदी के पान डब्बे को खोला और एक बीड़ा पान निकालकर मुँह में डाला और काफी देर तक मुंह में इधर उधर पान चबाते रहे और फिर कहने लगे—तंत्र के कई सम्प्रदाय हैं किन्तु साधना के मुख्य दो ही मार्ग हैं सात्विक मार्ग और तामसिक मार्ग। सात्विक मार्ग की साधना में तंत्र के साथ ज्ञान योग, भक्ति योग का समन्वय है। तामसिक मार्ग एक अति जटिल प्रक्रिया है। तामसिक मार्ग पर चलना समझो तलवार की धार पर चलना है। जरा—सी भी चूक हुई कि गये नीचे। तामसिक मार्ग में भी योग की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसमें हठयोग, लययोग, मंत्रयोग ज्ञानयोग और क्रियायोग का समन्वय है। बिना इन पंच योगों का सहयोग लिए तामसिक मार्ग पर एक पग भी चला नहीं जा सकता। इनके बिना जो लोग पंचमकार का स्वच्छन्द प्रयोग करते हैं वे वैसे ही है जैसे बिना सुगन्ध का फूल। फूल कितना भी सुन्दर और आकर्षक हो यदि उसमें सुगन्ध नहीं है तो वह व्यर्थ है। आजकल जो अपने आप को तांत्रिक कहते हैं—वे बिना सुगन्ध के फूल हैं। उनके पास केवल आडम्बर है, पाखण्ड है। साधना उपासना नाम की कोई चीज नहीं है। ऐसे लोगों को दूर से ही प्रणाम करना चाहिये। सच पूछा जाय तो ऐसे

आडम्बरी और पाखण्डी तंत्र साधक वास्तव में साधक नहीं, साधक समाज के लिए कलंक के सिवाय और कुछ नहीं है। पान को जंगले के बाहर थूकते हुए काली बाबू ने कहा–'तंत्र का अर्थ ही है त्राण करना कल्याण करना, उद्धार करना और दैवी आपदा विपदा से बचाना। सच्चे सिद्ध तंत्र साधक कभी भी किसी का अमंगल नहीं करते। अमंगल करना चाहते भी नहीं। वे तो करते हैं सभी का किसी न किसी रूप में कल्याण ही।

पान थूकने के बाद खिड़की से बाहर आकाश की ओर देखते हुए किशोरी बाबू आगे कहने लगे–तंत्र साधना, साधक को भय, क्रोध, माया मोह वासना–कामना आदि से मुक्त कर देती है। वह समस्त बंधनों से मुक्त होता है। उसकी इन्द्रियाँ उसके वश में होती हैं। प्रायः ऐसे भी महाप्रभु इस संसार में हैं जो तंत्र को एक चमत्कारी विद्या अथवा काली विद्या समझते हैं लेकिन बात ऐसी नहीं है। सब भ्रम है। 'तंत्र तो मनुष्य के अन्तरात्मा में मनुष्यत्व का दीप जलाता है जिसके प्रकाश में वह उस परम अवस्था को उपलब्ध होता है जिसे योग की भाषा में परम पद अथवा परम निर्वाण कहते हैं।

उसी समय कमरे में एक युवती ने प्रवेश किया। उसके हाथ में चाय की ट्रे थी। गोरे रंग की वह युवती अति सुन्दर थी। लाल चौड़े पाढ़ की ताड़केश्वरी साड़ी पहने थी वह। साथ में दो बच्चे भी आ गये कमरे में। एक लड़की थी छः सात साल की और एक था लड़का जिसकी आयु चार साल से अधिक नहीं थी। दोनों शान्त और गम्भीर स्वभाव के लगे मुझे। किशोरी बाबू हंसकर बोले–अरे बहू चाय ले आयी? अच्छा–अच्छा कितना ख्याल रखती हो तुम मेरा किशोरी बाबू थोड़ा रूके और फिर बोले–शर्माजी यह मेरी बड़ी बहू है अनामिका और ये दोनों हैं मेरी पौत्री दीपिका और पौत्र दीपेश।

दोनों बच्चे बहुत सुन्दर थे। सभ्य और सुसंस्कृत भी लगे मुझे। तभी किशोरी बाबू के बड़े लड़के श्यामल बाबू आ गये। सुदर्शन युवक थे श्यामल बाबू! सहज सरल स्वभाव और विनम्र। पिता का चरण स्पर्श कर श्यामल बाबू ने उनसे कुछ व्यक्तिगत बातें की थी और फिर हम लोगों को प्रणाम कर पत्नी और बच्चों के साथ चले गये वह। अपनत्व

भरे घरेलू वातावरण के बीच मुझे लग ही नहीं रहा था कि एक परम तंत्र साधक के साथ सत्संग कर रहा हूँ मैं।

अपरान्ह का चार बजने वाला था। पूरे सात घण्टे का समय कैसे व्यतीत हो गया, पता ही नहीं चला। सत्संग के अन्तर्गत प्रसंग ऐसा था जिसने मेरे मन में नाना प्रकार की जिज्ञासाएँ उत्पन्न कर दी थी और कर दी थी कौतूहल की सृष्टि भी। सम्भवतः मेरे मन के भाव को समझ गये किशोरी बाबू। एक बार मेरी ओर देखा जम्हाई ली और फिर चुटकी बजाई। थोड़ा रूके फिर बोले केशव के पिता के अन्तिम कर्म तक तो रूकना ही होगा तुम्हें।

मैंने सिर हिलाकर कहा—हाँ रूकना तो पड़ेगा ही। केशव अकेला है। मेरे रहने से उसे थोड़ा बल मिलेगा। सारा बोझ है उस पर! ऐसी अवस्था में एक मित्र को कैसे अकेला छोड़ा जा सकता है। मेरी बात सुनकर किशोरी बाबू बोले तब तो तुम जब इच्छा हो आ सकते हो मेरे लिए भी अच्छा ही रहेगा। सोचूँगा, बहुत दिनों बाद कोई मिला समझने बूझने वाला। इतना कहकर हँसने लगे किशोरी बाबू। मैं उठा और किशोरी बाबू का चरण स्पर्श कर चला आया।

लगातार तीन चार दिनों तक केशवचन्द्र सेन के साथ काफी व्यस्त रहा मैं। लेकिन मस्तिष्क में बराबर गूँजते रहे उनके एक—एक शब्द। इस प्रकार के भी घर गृहस्थ साधक होते हैं? इसकी कल्पना भी नहीं की थी मैंने। सेन ने मुझे बतला दिया था कि हर समय चिन्तन मनन और ध्यान में डूबे रहते हैं किशोरी बाबू। इसके अलावा काम ही क्या है उनके पास। मैंने मन ही मन सोचा तब तो मेरी उनसे खूब पटेगी। ऐसा ही हुआ एक दिन समय निकालकर चला गया। मुझे देखते ही प्रसन्न हो उठे किशोरी बाबू। हंसते हुए बोले—आओ आओ शर्मा जी। बहुत अच्छे समय पर आये। तुम्हारी प्रतीक्षा ही कर रहा था मैं। फिर उन्होंने नौकर को चाय लाने के लिए आवाज दी। नौकर चाय ले आया। एक घूंट पीते ही मन हल्का हो गया। चाय का प्याला टेबल पर रखते हुए मैंने धीरे से पूछा—आपके उपास्य कौन हैं?

आदि शक्ति महाकाली उन्हीं का आश्रय लेकर मैं हर समय गुरु स्मरण तथा अग्नि स्मरण करता रहता हूँ। मानव शरीर में सर्वोच्च शक्ति

महाकाली कुण्डलिनी के रूप में विराजमान है। ऐसे ही एक और शक्ति है मानव शरीर में और वह है कामशक्ति। कामशक्ति दो अलग–अलग शब्दों से बना है। पहला है–काम शब्द और दूसरा है शक्ति शब्द। तंत्र में काम शिव रूप हैं और शक्ति है शिवा रूप यानि शिव–शिवा। शक्ति रूपा शिवा ही महाकाली है। महाकाली शिव पर आरूढ़ हैं। जिसका अर्थ हैं काम पर विजय। यह विजय इस बात का संकेत है कि कामवासना पर तन से, मन से, आत्मा से विजय प्राप्त करने वाला साधक ही कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर सकने में समर्थ है। कुण्डलिनी शक्ति 'ब्रह्म' रूपा है जिसमें सूर्य, चन्द्र, अग्नि के रूप में इच्छा, ज्ञान और क्रिया अथवा मन प्राण और वाक् में तीनों शक्तियाँ समाहित है। मैं अग्नि की उपासना अपनी साधना क्रिया में करता हूँ। प्रारम्भ में मेरा कोई गुरु नहीं था और न तो कोई था पथ प्रदर्शक ही। जो कुछ इस दिशा में करता था अपने मन से करता था। 26 वर्ष की आयु में मेरा विवाह हुआ। पत्नी का नाम था कात्यायनी। पत्नी सुशील विनम्र आज्ञाकारिणी और पतिपरायणा सिद्ध हुई। ऐसी पत्नी का मिलना आज के युग में दुर्लभ है। भाग्यवश मिल भी गयी तो अधिक समय तक साथ नहीं देती। ऐसा ही हुआ दो पुत्रों की माँ बनने के बाद एक मामूली बीमारी में वह मेरा साथ छोड़कर हमेशा के लिए चली गयी संसार से। उस समय मेरी अवस्था 30 वर्ष थी। परिवार में वृद्ध माता–पिता के अलावा और कोई नहीं था इसलिए अकेले दो बच्चों को संभालना कठिन था मेरे लिए। लोगों ने दूसरी शादी करने की सलाह दी। दो तीन लड़कियों को भी देखा मैंने। लेकिन आत्मा ने स्वीकार नहीं किया। आत्मा को तो चाहिए था कात्यायनी जैसी। वह कहाँ सम्भव था ? माँ महामाया को मेरा क्लेश देखा न गया। मेरी मौसेरी बहन आ गयी, विधवा थी वह। बाल बच्चे थे नहीं। मेरे बच्चे को अपना समझकर पोषण करने लगी वह। निश्चिन्त हो गया मैं। साधना में जो बाधा थी वह दूर हो गयी। मैं प्रायः सायंकाल गंगा तट पर चला जाता और वहाँ एकान्त में बैठकर घंटों ध्यान मग्न रहता। समय का खयाल ही नहीं रहता मुझे। संसार, समाज, परिवार आदि से विरक्त हो गया था मैं। मेरे जीवन में शून्य के सिवाय और कुछ नहीं रह गया था। उन्हीं दिनों नवद्वीप में मुझे

सन्यासी मिले। युवक थे, नाम था शिवचरण शाक्त। शायद तांत्रिक सन्यासी थे महाशय। बोले—बिना गुरु के कुछ नहीं होगा इसी प्रकार भटकते रहोगे तुम।

गुरु मिलेंगे कहाँ ?

खोज करो। खोज करने पर क्या नहीं मिलता। कहने की आवश्यकता नहीं, गुरु की खोज में निकल पड़ा। न जाने कैसे तारापीठ पहुँच गया मैं। तारापीठ का नाम तो सुना ही था कि अत्यधिक जागृत स्थान है वह। जहाँ साधक लोग साधना करते हैं। क्या कहूँ शर्माजी आपसे तारापीठ की सीमा में प्रवेश करते ही मेरा माथा हल्का हो गया, जहाँ सारा शरीर भी हो उठा रोमांचित। काफी लम्बा चौड़ा विशाल श्मशान था। दिन भर उसी श्मशान के चारो ओर घूमता रहा। लेकिन क्यों ? स्वयं समझ में नहीं आ रहा था। मंगला आरती के समय मन्दिर में गया। मन्दिर में तारा माँ की भव्य मूर्ति को देखकर थोड़ा भय का संचार हुआ फिर शान्त मन से दोनों हाथ जोड़कर माँ का ध्यान करने लगा मैं। न जाने कब और कहाँ से आकर मेरे बगल में एक तांत्रिक सन्यासी महाशय खड़े हो गये। लम्बी चौड़ी काठी का शरीर, गौर वर्ण लम्बी दाढ़ी, सिर पर जटाजूट शरीर पर लाल वस्त्र, गले में रूद्राक्ष की माला, हाथ में एक सोटा और पीतल का बड़ा सा कमण्डल सन्यासी के चेहरे पर तेज था। बड़ी—बड़ी आँखे जैसे जल रही थी। चौड़े ललाट पर भस्म का त्रिपुण्ड और लाल सिन्दूर का गोल टीका लगा रखा था उसने।

मैं कुछ बोला नहीं थोड़ा पीछे हट गया। सन्यासी महाशय अपने आप बोलने लगे—तारा का यह शक्तिपीठ एक शिला खण्ड है। जिस पर एक चित्र उत्कीर्ण है। जिसमें यह परिलक्षित होता है कि काली मातृभाव से शिव को अपना स्तनपान करा रही हैं। सूर्योदय के पहले उस शिला खण्ड के स्नान पूजन के बाद पुजारी उसके ऊपर तारा माँ के मुख की प्रतिमा रख देता है और फिर फूलों से ढंकी उस प्रतिमा का पूजन और उसकी आरती होती है।

क्या आपने मुझे यह सब कुछ बतलाया है—मैंने पीछे मुड़कर सन्यासी से पूछा। ठीक समझा आपने—सन्यासी बोला—आप यहां

नये–नये आये हैं इसलिए आपको माँ तारा के विग्रह का परिचय दिया है मैंने। सामने जो विस्तृत महाश्मशान देख रहे हो न! वह कठोर और रहस्यमयी तांत्रिक क्रियाओं और साधनाओं के लिए सिद्ध स्थान है। लेकिन तुझे यहाँ कुछ नहीं मिलेगा। जिस गुरु की खोज तुझे है वह नवद्वीप के जंगलों में मिलेगा। यहाँ क्यों भटक रहा है तू बेटे ?

सन्यासी की बात सुनकर अवाक् और हतप्रभ हो गया मैं। यह सन्यासी कैसे जान गया मेरे मन की बात। कुछ रहस्य है इसमें। अब तक वह रहस्यमय सन्यासी मन्दिर की सीमा के बाहर निकल चुका था और जल्दी–जल्दी पैर उठाता हुआ दामोदर नदी की ओर बढ़ रहा था। न जाने क्यों मैं भी दौड़ पड़ा सन्यासी की ओर। लेकिन क्या पकड़ सका मैं उस रहस्यमय सन्यासी को ? नहीं मेरे समीप पहुँचने के पहले ही अपने स्थान से गायब हो चुका था वह रहस्यमय ढंग से। नवद्वीप में गंगा किनारे साधु का मिलना और सम्मोहित सा मेरा तारापीठ आना और फिर इस रहस्यमय तांत्रिक सन्यासी से भेंट..........मेरी समझ में नहीं आ रहा था कुछ ? कौन सी लीला कर रही है माँ मेरे साथ ? क्या चाहती है वह ? हे भगवान! हे प्रभु! लम्बी सांस लेकर वहीं एक पेड़ के नीचे बैठ गया मैं सिर थामकर।

कैसी प्यास थी वह कैसी भूख थी वह समझ में नहीं आ रहा था। क्या चाहती थी मेरी भूखी प्यासी आत्मा? कई दिनों तक नवद्वीप के घने जंगलों में इधर–उधर भटकता रहा मैं। एक दिन अचानक मेरी दृष्टि पड़ी घने जगलों के बीच टूटे फूटे और जीर्णशीर्ण एक मंदिर पर। आश्चर्य हुआ मुझे। अब तक क्यों नहीं दिखलायी दिया था वह प्राचीन मन्दिर। चारों ओर से जंगली पेड़ पौधों और घासो से घिरा हुआ वह मन्दिर अत्यन्त रहस्यमय लगा मुझे। जिज्ञासा और कौतूहलवश निकट चला गया मैं। अत्यधिक पुराना लगा मन्दिर मुझे कम से कम एक हजार वर्ष का। कभी सोचा भी नही था किं नवद्वीप के घने जंगलों की गोद में कोई इतना पुराना मन्दिर भी होगा। अपने आप में इतिहास का रहस्य छिपाये हुए मन्दिर काफी न बड़ा था और न तो छोटा ही। पीतल के शिखर पर काई और धूल जमी हुई थी और उस पर लगा पीतल का मटमैला त्रिशूल टूटकर एक ओर झूल गया था। लाल पत्थरों से बने

मन्दिर की दीवारों पर काई जमी थी और कहीं–कहीं पत्थरों के चप्पड़ भी उखड़ गये थे। टूटी फूटी सीढ़ियों पर धूल की मोटी पर्ते जमी हुई थी। लगा जैसे लम्बे अर्से से वहाँ कोई न आया हो। मन्दिर में लोहे के छड़ों का दरवाजा था और वह भी टूटा हुआ। धीरे से उस जीर्ण शीर्ण दरवाजे को एक ओर हटाकर भीतर झांका मैंने। सारा शरीर रोमांचित हो उठा एकबारगी। भय की विचित्र अनुभूति हुई। मन्दिर के गर्भ गृह में पत्थर के एक चौकोर और ऊँचे चबूतरे पर अष्टभुजा काली की विकराल और भयंकर मूर्ति खड़ी थी। मूर्ति काले पत्थर की थी। जिस पर न जाने कब की धूल और मिट्टी जमी हुई थी। लेकिन फिर भी मूर्ति अत्यन्त सजीव लग रही थी। न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर माँ के चरणों पर रख दिया मैंने अपना सिर। लगा जैसे मैंने पा लिया अपना लक्ष्य।

यह सब सुनकर कौतूहल हुआ मुझे। बोला–क्या एक बात पूछ सकता हूँ मैं?

हाँ! पूछो–पूछो।

क्या आप उसी काली मंदिर की तो चर्चा नहीं कर रहे हैं, जहाँ मिले थे हम सब।"

बिल्कुल ठीक समझा तुमने–किशोरी बाबू बोले–अब आगे की कथा सुनो, लेकिन सुनने और सुनाने के पहले एक–एक कप चाय हो जानी चाहिए। यह कहकर नौकर को आवाज दी उन्होंने। सोचने लगा–कैसे साधक हैं किशोरी बाबू बिल्कुल निर्द्वन्द सरल और अपने आप में मग्न।

चाय पीने के बाद कथा आगे शुरू हुई। पान का एक बीड़ा मुंह में डालते हुए किशोरी बाबू कहने लगे–दूसरे ही दिन पूरा मंदिर साफ करवाया और पानी से धुलवाया मैंने। विधिवत माँ की पूजा आरती की। माँ की सेवा रोज होती रहे, इसके लिये हालधार पुजारी को नियुक्त किया। दोनों पुत्र बड़े हो गये थे। अब वे दोनों व्यापार संभालने लगे थे। मैं निश्चिन्त हो गया। सबसे बड़ा सुख तो मुझे यह था कि दोनों पुत्र मेरे प्रति अपूर्व श्रद्धा रखते थे विनम्र थे और आज्ञाकारी भी। मेरे किसी काम में बाधा नहीं बनते थे बल्कि सहयोग ही देते थे। मुझे कोई काम

नहीं था। पूरा दिन और कभी–कभी पूरी रात मन्दिर में गुजर जाती थी मेरी। कैसा पागलपन था स्वयं नहीं जानता। अरे हाँ! एक बात तो मैं बतलाना ही भूल गया था। जंगल की ओर से आधीरात के समय गूँजती हुई एक करुणाभरी आवाज आती थी कभी–कभी। लगता था जैसे आर्द्र होकर कोई करूण स्वर में 'माँ' को विह्वल भाव से पुकार रहा हो। आवाज सुनकर रोमांचित हो उठता था मेरा पूरा शरीर। कौन था वह? किसकी इतनी आर्द्रता भरी और करूणा रस में डूबी हुई पुकार थी वह ? मेरी समझ में नहीं आता था।

फिर............कौतूहलवश पूछा मैंने?

सिर झुकाये कुछ देर तक मौन साधे रहे किशोरी बाबू।

तभी सेन आ गया मुझे खोजते हुए। उसी दिन रात में बनारस के लिए ट्रेन पकड़नी थी। सेन के कान में धीरे से कहा–आज न जा सकूँगा शायद। प्रश्नवाचक भाव से सेन ने मेरी ओर देखा। मैंने फिर कान में ही कहा–अभी किशोरी बाबू की कथा पूरी नहीं हुई। पूरी सुनने के बाद.....

और तभी किशोरी बाबू का मौन भंग हुआ सिर उठाकर मेरी ओर देखा और फिर सेन की ओर। उस समय उनकी आँखे लाल हो रही थी और चेहरा भी भरा–भरा सा लग रहा था। कोई विशेष बात अवश्य थी। अपने आप बोलने लगे किशोरी बाबू। इस बार उनके बोलने की मुद्रा कुछ बदल सी गयी थी। हालधार पुजारी को जब मैंने यह बात बतलायी तो पहले वह चुप रहा थोड़ी देर तक। फिर बोला–वह चक्रेश्वरी बाबा है। वे ही रात में कभी–कभी माँ माँ पुकारते हैं।

यह सुनकर कौतूहल हुआ। पूछा–कौन हैं यह चक्रेश्वरी बाबा?

मेरे इस छोटे से प्रश्न के उत्तर में हालधार पुजारी ने जो लम्बी कथा मुझे सुनायी वह सब तुमको पहले बतला ही चुका हूँ मैं।

क्या आप चक्रेश्वरी बाबा से मिले? क्या उनसे आपकी बातें हुई? कैसे थे चक्रेश्वरी बाबा ? जिज्ञासावश एक साथ कई प्रश्न कर बैठा मैं। अब जो कुछ तुम्हे सुनाऊँगा। उससे तुम्हारे सारे प्रश्नों और सारी जिज्ञासाओं का हो जायेगा समाधान। यह कहकर किशोरी बाबू ने पान का एक बीड़ा निकालकर मुँह में रखा और फिर आगे कहना शुरू

किया। हालधार मुझसे बतला चुका था कि चक्रेश्वरी बाबा सर्प योनि में विचरण करते हैं और कभी कदा मानव शरीर में भी प्रकट होते हैं। यही नहीं इस मन्दिर में भी आते हैं प्रायः सर्प के रूप में।

इतनी जानकारी मेरे लिए बहुत थी। लगातार महीनों तक जंगलों में खोजता रहा चक्रेश्वरी बाबा को–सोचा दो में से किसी न किसी रूप में मिल ही जायेंगे वह। इसी सिलसिले में कई रात मंदिर में जागकर बिताई लेकिन असफल रहा मैं।

क्या दर्शन नहीं हुआ ? मैंने कौतूहलवश पूछा ? होगा क्यों नहीं। होना ही था– किशोरी बाबू खिड़की के बाहर पान थूकते हुए बोले–जहाँ लगन है वहाँ सफलता निश्चित है। मुझे सफलता मिली। एक रात बैठा था चुपचाप काली मन्दिर के चबूतरे पर और तभी विशालकाय काला भुजंग सर्प सामने से आता हुआ दिखलायी दिया मुझे। समझते देर न लगी। सर्प के रूप में चक्रेश्वरी बाबा थे, इसलिए डर भय नहीं लगा। चुपचाप अपने स्थान पर बैठा रहा मैं। सर्प अपनी गति से सन्–सन् करता हुआ मन्दिर के भीतर चला गया। मैं चुपचाप सब कुछ देखता रहा। थोड़ी देर बाद मन्दिर के भीतर से माँ के स्तुति गान की करूण आवाज आने लगी। मैं इसी अवसर की प्रतीक्षा में था। चटपट मन्दिर के भीतर चला गया। हालधार बहुत पहले ही तेल का दीपक जला गया था। जिसका पीला प्रकाश मन्दिर के भीतर फैल रहा था और उसी पीले प्रकाश में देखा– दोनों हाथ जोड़े आँखे बन्द किये और सिर झुकाये एक लम्बे चौड़े कदकाठी के व्यक्ति को। सिर पर लम्बी–लम्बी जटाएँ थीं। दाढ़ी भी काफी लम्बी थी। गले में बहुत सारी मालाएँ झूल रही थी। कमर में एक लाल रंग की लुंगी बंधी हुई थी। चेहरे पर इतना तेज था कि उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। चार पांच सौ वर्ष पहले के एक महामानव का अनोखा व्यक्तित्व देखकर चमत्कृत हो उठा मैं। स्तुतिगान समाप्त होते ही उस महान साधक के चरणों पर अपना सिर रख दिया मैंने। लगा जैसे सारे शरीर में बिजली का करेन्ट दौड़ गया हो। रोमांचित हो उठा मैं। फिर देखते ही देखते चक्रेश्वरी बाबा सर्प के रूप में बदल गये और मन्दिर के बाहर निकल गये। रहा न गया मुझसे। बाबा–बाबा पुकारता हुआ अन्धेरी रात में जंगल की ओर भागा

मैं सर्प के पीछे–पीछे। थोड़ा दूर जाने के बाद अचानक सर्प के रूप में चक्रेश्वरी बाबा जाने कहाँ गायब हो गये।

फिर क्या हुआ–मैंने पूछा।

होगा क्या ? खोज ही निकाला मैंने चक्रेश्वरी बाबा को अन्त में। कैसे?

तुम इतने जिज्ञासु क्यों हो रहे हो? बतलाता हूँ न जरा सब्र करो बन्धु! जम्हाई लेते हुए किशोरी बाबू बोले।

एक दिन दोपहर के समय मन्दिर में हालधार के साथ बैठकर बातें कर रहा था मैं इधर उधर की, उसी समय एक साधु न जाने किधर से आ गया वहाँ। देखने सुनने में कोई साधक लग रहा था वह। चेहरे पर चमक और आँखों में तेज था। साधु ने गम्भीर स्वर में पूछा–यहां इस जंगल में कोई सूखा कुआँ है? क्या आप लोग बतला सकते हैं कहाँ हैं वह?

यह सुनकर मैं सोच में पड़ गया और हालधार की ओर देखने लगा। हालधार भी आकाश की ओर देखते हुए कुछ सोचने लगा था। कुछ देर बाद हालधार के चेहरे पर हल्की सी चमक आ गयी। सिर घुमाकर साधु की ओर देखते हुए उसने कहा–हाँ! हाँ! उस सूखे कुएँ को जानता हूँ मैं। बीच जंगल में एक बड़ा सा बरगद का पेड़ है और उसी पेड़ के बगल में बहुत ही पुराना एक कच्चा कुआँ है।

क्या आप वहाँ तक मुझे ले चल सकते है? विनम्र भाव से साधु ने पूछा।''

हाँ! हाँ! क्यों नहीं–हालधार बोला और फिर साधु को साथ लेकर हम दोनों जंगल की ओर चल पड़े। रास्ते में हालधार से बोला, कोई रहस्य है इसमें।

सिर हिलाकर फुसफुसाते हुए हालधार ने उत्तर दिया–ऐसा ही मुझे भी लग रहा था। कोई बात तो है जिसके लिए यह साधु कुएँ की खोज में यहाँ आया है।

मैं मन ही मन सोचने लगा–इतना चक्कर लगाया जंगल का, लेकिन मुझे न कहीं बरगद का पेड़ नजर आया और न तो कोई पुराना कुँआ ही।

टेढ़े–मेढ़े जंगली रास्ते में चलकर लगभग एक घंटे बाद हम सब बरगद के पेड़ के पास पहुँचे थोड़ा सा हटकर कुँआ भी था। जिसे देखते ही चमक आ गयी साधु के चेहरे पर एकबारगी। कुछ देर सिर घुमा–घुमाकर चारो तरफ देखने के बाद साधु बोला–धन्यवाद। अब आप लोग जाइये। कष्ट के लिए क्षमा करेंगे ?

वह रहस्यमय साधु यहां क्यों और किसलिए आया है? क्या चाहता है वह ? यह सब जानने के लिए व्याकुल था मैं। हालधार के मन में भी शायद यही बात थी। हम दोनों वापस लौट पड़े। लेकिन थोड़ी दूर जाकर जंगल में छिप गये। वहाँ से साधु साफ दिखलायी दे रहा था। दोपहर हो चुकी थी। आकाश में बादल अवश्य थे लेकिन बारिश की सम्भावना कम थी इसीलिए हम दोनों निश्चिन्त थे। मैं चौकन्ना था और हालधार भी। लगता था जैसे कोई भारी रहस्य अनावृत होने वाला है। क्षण पर क्षण बीत रहा था। थोड़ी देर बाद मैंने देखा उस सूखे और पुराने कुएँ से एक दिव्य पुरुष बिल्कुल सीधे और तने हुए बाहर निकल रहे थे धीरे–धीरे। जब उनका पूरा शरीर बाहर निकल आया तो एकबारगी स्तब्ध और आश्चर्यचकित रह गया मैं। पहचानने में गलती नहीं हुई थी मुझसे। वह चक्रेश्वरी बाबा थे। उनका पूरा नग्न शरीर सोने की तरह चमक रहा था उस समय। समझ गया मैं वह रहस्यमय साधु चक्रेश्वरी बाबा का दर्शन करने के लिए आया था। सर्प के रूप में चक्रेश्वरी बाबा उसी कुएँ में निवास करते हैं। यह रहस्य अनावृत हो चुका था अब।

कुएँ से बाहर निकलकर चक्रेश्वरी बाबा बरगद के नीचे बैठ गये और उनके सामने बैठ गया वह साधु भी। बाबा का सोने जैसा शरीर और अधिक चमकने लगा था। लगभग पांच सौ वर्ष की आयु के उस दिव्य महात्मा को देखकर सम्मोहित हो उठी मेरी आत्मा। साधारण मानव को कहाँ मिलता है ऐसे दिव्य महापुरुषों का दर्शन। कई जन्मों का पुण्य चाहिये इसके लिए। मुग्ध भाव से अपलक देख रहा था कभी चक्रेश्वरी बाबा को और कभी उस रहस्यमय साधु को। दोनों हाथ जोड़े बैठा था बाबा के सामने वह साधु। बाबा नेत्र बन्द किए अपना दाहिना हाथ रखे हुए थे आशीर्वाद की मुद्रा में साधु के सिर पर। बड़ा ही

अलौकिक दृश्य था वह। ऐसा दृश्य जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती लेकिन इसके बाद जो कुछ मैंने देखा, उस पर तो विश्वास करना ही कठिन है लेकिन विश्वास करना पड़ा मुझे, इसलिए कि अपनी आँखों से देखा था, सब कुछ मैंने।

एकाएक वह साधु और चक्रेश्वरी बाबा एक साथ सुनहले प्रकाशपुंज में परिवर्तित हो गये। धीरे–धीरे वह दोनों प्रकाशपुंज आकाश की ओर उठने लगा और बहुत ऊपर जाकर गायब हो गया। हे भगवान कितना अलौकिक और आश्चर्यजनक दृश्य था वह। हालधार तो मुझसे लिपट कर कांपने लगा भय से। मैं भी रोमांचिंत हो उठा था। एकाएक मेरे मन में यह इच्छा जागृत हुई कि मैं कुएँ के भीतर जाकर देखूँ कि वहाँ क्या है? किस प्रेरणा से यह इच्छा जागृत हुई यह नहीं बतला सकता मैं। हालधार मेरे साथ जाने के लिए तैयार नहीं था बोला ना बाबा ना, हम नहीं जायेगा। हमको डर लगता है आप जाओ हम बाहर बैठा रहेगा।

मैंने कुएँ के भीतर झांक कर देखा। वहाँ अन्धेरा था और कुछ नहीं लेकिन एक विचित्र सी सुगन्ध अवश्य भर गयी मेरे नासापुट में। पुराने कुओं में भीतर नीचे जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई होती थी। उस सूखे कुएँ में भी सीढ़ियाँ थी भीतर अन्धेरा अवश्य था लेकिन साहस कर सीढ़ियाँ उतरने लगा मैं धीरे–धीरे। कुआँ काफी गहरा था। जहाँ सीढ़ी समाप्त होती थी, वहा एक छोटा सा पत्थर का दरवाजा था। न जाने क्यों मैं दरवाजे के भीतर घुस गया और घुसते ही सामने एक लम्बा चौड़ा आंगन मिला जहां प्रकाश था। वह प्रकाश कहाँ से आ रहा था? यह समझ में नहीं आया। सामने एक और पत्थर का दरवाजा था। वह एक छोटी सी कोठरी का दरवाजा था भीतर झांककर देखा। वहां भी प्रकाश हो रहा था। मेरी दृष्टि कोठरी के भीतर चारो ओर घूम रही थी। अचानक एक जगह स्थिर हो गयी, भय से रोमांचित हो उठा मेरा सारा शरीर। वहाँ एक ऊँचे चबूतरे पर एक काफी लम्बा और मोटा सर्प कुण्डली लगाये और उस पर अपना सिर रखे सो रहा था। शायद मेरी आहट लग गयी थी उसे। उसने धीरे से अपना सिर ऊपर उठाया और फन फैलाकर अपनी रक्त चक्षु से मेरी ओर देखा। उसकी आँखों में अजीब सा सम्मोहन था और था गहरा आकर्षण। मेरे हृदय की धड़कन

रूकती सी लगी मुझे और उसी के साथ कांपने लगा मेरा पूरा शरीर। मैं वहाँ से भागना चाहा लेकिन दोनों पैर जैसे जम से गये थे जमीन पर लेकिन फिर भी किसी प्रकार अपने आपको घसीटते हुए सीढ़ी तक आया मैं और किसी प्रकार अन्धेरे में डूबी हुई सीढ़ियाँ चढ़कर कुएँ के बाहर निकला। सांझ होने वाली थी। मेरी प्रतीक्षा में हालधार बैठा था पेड़ के नीचे। लेकिन भय और चिन्ता के कारण उसकी स्थिति दयनीय हो रही थी। किसी प्रकार चलकर काली मन्दिर पर आया। चक्रेश्वरी बाबा का थोड़ा बहुत जो रहस्य शेष था वह भी अब अनावृत हो चुका था मेरे सामने। निश्चय ही वे इच्छाधारी योगी थे इसमें सन्देह नहीं। वह सूखा और पुराना कुआँ उनका निवास स्थान था। सर्प शरीर में रहते हुए भी पंच तत्वों के परमाणुओं का संगठन कर अपने पूर्व पार्थिव शरीर का निर्माण कर लेते थे वह। आवश्यकता पड़ने पर उन्हीं परमाणुओं की ऊर्जा की सहायता से अपने आपको प्रकाशपुंज के रूप में परिवर्तित कर इच्छानुसार लोक लोकान्तरों का भ्रमण करते थे महाशय। वह रहस्यमय साधु उनका कोई परम शिष्य था। यह समझते देर न लगी मुझे।

कैसे इतना समय व्यतीत हो गया ? समझ में नहीं आया। सांझ घिर आयी थी। मुझे रात में बनारस के लिए गाड़ी पकड़नी थी। अपनी विवशता प्रकट करते हुए मैंने कहा—सेन के पिताजी की बरसी में आऊँगा तो शेष कथा सुनूँगा मैं आपसे।

यह सुनकर पहले किशोरी बाबू थोड़ा विचलित हुए फिर बोले—ठीक है, ठीक है और उनका चरण स्पर्श कर बाहर निकल आया मैं।

काफी व्यस्तता के कारण सेन के पिताजी की बरसी में न जा सका मैं। पूरे तीन वर्ष का समय व्यतीत हो गया, लेकिन किशोरी बाबू की याद बराबर बनी रही और स्मृति रूप में सुरक्षित रही मस्तिष्क में उनकी कथा। इस अवधि में कई बार सेन से पत्राचार हुआ लेकिन कभी न मैंने चर्चा की किशोरी बाबू की और न तो की सेन ने ही। नित्य की भांति उस दिन भी काशी के लाली घाट पर बैठा चिन्तन—मनन कर रहा था मैं। उसी समय सामने से सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर आते हुए एक व्यक्ति

पर मेरी दृष्टि पड़ी। धोती, कुर्ता पहने था वह व्यक्ति। चाल ढाल से बंगाली लग रहा था वह। जब बिल्कुल करीब आया तो एकबारगी चौक पड़ा मैं। वह व्यक्ति और कोई नहीं किशोरी बाबू थे। पहचानने में भूल नहीं हुई थी मुझसे। बोल पड़ा अरे! किशोरी बाबू.....आप यहां?

हाँ बन्धु, किशोरी बाबू ने मेरी पीठ थपथपाते हुए कहा—काफी दिनों से काशी आने की इच्छा हो रही थी और तुमसे भी तो मिलना था....तुमने भी तो मेरी सुध नहीं ली। यह सुनकर थोड़ा लज्जित हो जाना पड़ा मुझे। लेकिन बोला कुछ नहीं हंसकर रह गया मैं। बंगाली धर्मशाला में ठहरे थे किशोरी बाबू। घाट—घाट चलकर मेरे यहाँ आनेवाले में थे वह। मैं उनको अपने घर ले आया। मेरा रहन—सहन देखकर प्रसन्न हुंए महाशय। मेरे कमरे में आराम कुर्सी पर आराम से बैठते हुए किशोरी बाबू बोले—जो कथा तुमको मैंने सुनायी थी वह अधूरी ही रह गयी थी। सोचा तुम कभी नवद्वीप आओगे तो पूरी कर दूँगा उसे। प्रतीक्षा करता रहा। सेन से भी कई बार पूछा। उसने भी कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया तुम्हारे विषय में। अन्त में सोचा चलो, मैं स्वयं चला जाता हूँ काशी। इसी बहाने गंगा स्नान हो जायेगा और बाबा विश्वनाथ का दर्शन भी। थोड़ा ठहरकर आगे बोले किशोरी बाबू—बिना कोई पूर्व सूचना दिये और बिना बतलाए इस प्रकार अचानक आ जाने से तुमको अवश्य आश्चर्य हुआ होगा। क्यों ?.......

हाँ! थोड़ा आश्चर्य होना स्वाभाविक ही है—किशोरी बाबू को चाय का प्याला थमाते हुए मैंने उत्तर दिया।

मेरी बात सुनकर न जाने क्यों हो—हो कर हँसने लगे किशोरी बाबू। समझ में नहीं आया हंसने की कोई बात ही नहीं थी। आगे की कथा विचित्र तो है ही, इसके अलावा सहसा विश्वास करने योग्य भी नहीं है—किशोरी बाबू ने कहना शुरू किया—

हालधार की खराब तबीयत देखकर उसे घर लौटा दिया मैंने और स्वयं मंदिर पर ही रह गया पूरी रात। रात में क्यों रहना चाहा ? यह स्वयं नहीं बतला सकता मैं। रात में कोई विशेष घटना नहीं घटी। सवेरे घर आया और भोजन आदि कर दोपहर को बिना किसी को बतलाए

फिर चला गया मंदिर पर। थोड़ी देर बाद हालधार भी आ गया। मैंने उसे बुलाया नहीं था स्वयं आया था वह। पूछने पर बस इतना ही बोला, आपको यहाँ अकेला नहीं छोड़ना चाहता। यह सुनकर हंस पड़ा मैं फिर बोला—देखो हालधार मैं यहाँ अकेला रहना चाहता हूँ। तुम किसी बात की चिन्ता मत करो, वापस चले जाओ, काफी समझाने बुझाने के बाद हालधार गया वापस। दुपहरी ढल चुकी थी। अचानक ऐसा लगा कि कोई अदृश्य शक्ति मुझे खींच रही है उस सूखे कुएँ की ओर। पैर अपने आप उठ गये। चल पड़ा मैं कुएँ की ओर। सचमुच सम्मोहित—सा हो उठा था मैं। जब मैं कुएँ के पास पहुँचा तो बरगद के नीचे सर्प के रूप में चक्रेश्वरी बाबा बैठे हुए दिखलायी दिए। भय मिश्रित आश्चर्य से भर उठा मैं। कुछ क्षण बाद देखते ही देखते चक्रेश्वरी बाबा अपने पार्थिव शरीर में परिवर्तित हो गये। इस प्रकार अत्यधिक समीप से उन्हें देखने का अवसर मिला था। स्वर्णिम आभा से दमक रहा था चक्रेश्वरी बाबा का पूरा शरीर। सिर के लम्बे बाल और लम्बी दाढ़ी भी सुनहली थी, लम्बी चौड़ी काठी का शरीर, चौड़ा ललाट, बड़ी—बड़ी झील जैसी गहरी आँखे, लम्बी नाक, पतले गुलाबी होंठ, गले में कई प्रकार की मालाएँ और शरीर पूर्ण नग्न। सहमा हुआ खड़ा था मैं बरगद के नीचे। उस महान कालंजयी योगी ने सिर उठाकर मेरी ओर देखा। लगा जैसे उस योगी की जलती हुई आँखें मेरे शरीर को भेदती हुई आत्मा के अन्तराल में प्रवेश कर गयी हो।

थोड़ा सा पलक झपकाकर उँगली के इशारे से अपने निकट बुलाया बाबा ने। पूरा शरीर न जाने क्यों कांपने लगा मेरा। साहस कर धीरे—धीरे चलते हुए बाबा के सामने जाकर खड़ा हो गया मैं। बाबा ने बैठने का आदेश दिया। तुरन्त आदेश का पालन किया मैंने। बाबा धीरे से किन्तु गम्भीर स्वर में बोले—तू मेरे पीछे क्यों पड़ा है ? तू चाहता क्या है? हाथ जोड़कर मैंने लड़खड़ाते स्वर में कहा—बाबा स्वयं नहीं जानता कि मैं क्या चाहता हूँ? क्यों भटक रहा हूँ? क्या है मेरा लक्ष्य?

मैं सब कुछ जानता समझता हूँ। तू भटक गया है। थोड़ा सा नारी मोह में पड़कर तू भूल गया अपने आपको और अपने लक्ष्य को....।

बाबा के कहने का तात्पर्य समझ में नहीं आया मुंह बाये खड़ा रहा चुपचाप।

बाबा बोले–भोगी कभी भी योगी नहीं बन सकता और योगी कभी भी भोगी नहीं हो सकता। भोग में योग और योग में भोग अति दुर्लभ है–अत्यन्त कठिन है। सभी के वश की बात नहीं। भाग जा यहाँ से। भाग इधर कभी मत आना तुमसे कुछ भी नहीं होगा। नहीं बाबा! विनम्र भाव से सिर झुकाकर मैं बोला ऐसा मत कहिए। संसार में वापस मत भेजिए आपके चरणों में रहना चाहता हूँ।

ले लीजिए अपने शरण में........

आँखे बन्द किए और मौन साधे बैठे रहे बाबा। शायद मेरी याचना पर ध्यान नहीं दिया था उन्होंने। उसी समय मेरी आँखे झपकने लगी और न जाने मैं कब वहीं लुढ़ककर गहरी नींद में सो गया। क्या मैं सचमुच सो गया था, नहीं–नहीं मैं एक प्रकार से जाग ही रहा था। भले ही वह कोई अन्तरंग अवस्था हो किन्तु उसे जागना ही कहूँगा मैं। उसी रहस्यमयी अवस्था में मैंने देखा एक घनघोर जंगल, घनी अन्धेरी रात, नाना प्रकार के जीव जन्तुओं का क्रन्दन। प्रेत लोक सा लगा मुझे पूरा वातावरण। एकबारगी सिहर उठा मैं। एकाएक स्याह आकाश में बिजली जैसा कुछ चमका और जिसके प्रकाश से सारा जंगल कुछ क्षणों के लिए हो उठा उद्‌भासित। उसी क्षणिक प्रकाश में जंगल के बीच से होकर बहती हुई एक नदी को देखा मैंने। नदी का पाट तो संकरा था लेकिन उसकी धारा अति प्रखर थी। न जाने क्यों और कैसे नदी की ओर बढ़ने लगा मैं। मुझे बार–बार ऐसा लग रहा था उस जंगल से और उस नदी से भलीभांति परिचित हूँ मैं। आगे बढ़ता गया बढ़ता ही गया और अन्त में जाकर नदी के किनारे खड़ा हो गया मैं अपने आप। कुछ ही दूर–दूर एक चिता जल रही थी हा–हाकार करती हुई। उसकी लाल पीली लपटें जैसे आकाश को छूने के लिए पागल थी और उसी के कांपते प्रकाश में मैंने एक-लम्बे चौड़े और सुगठित शरीर के तांत्रिक सन्यासी को देखा। शरीर का रंग गोरा था। आयु अधिक नहीं थी, फिर भी 35, 40 के लगभग थी। तनकर खड़ा था वह तांत्रिक सन्यासी क्या बतलाऊँ शर्माजी उस समय की स्थिति घोर अन्धेरी रात, हा–हाकार

कर बहती हुई नदी की प्रखर धारा और उसके किनारे धूँ–धूँ कर जलती हुई चिता और उस चिता के सामने तनकर खड़ा वह रहस्यमय तांत्रिक सन्यासी और वातावरण में बिखरी हुई घोर निस्तब्धता। लगा जैसे किसी प्रेत पुरी में आ गया हूँ मैं।

सन्यासी की पीठ पर लम्बी जटायें झूल रही थीं। घनी लम्बी दाढ़ी और मूछें भी उसके व्यक्तित्व को और रहस्यमयी बना रही थीं। उसका मुखमण्डल साधना के तेज से चमक रहा था। माथे पर लाल टीका, लाल वस्त्र, गले में रुद्राक्ष की माला देखकर लगा कि निश्चय ही कोई महातंत्र साधक है वह और घोर तपश्चर्या की है उसने। उसका चेहरा शान्त और निर्विकार था। कुटिलता का कोई चिन्ह नहीं था। उसके हाथ में एक काफी लम्बा चमचमाता हुआ त्रिशूल था जिसे एक झटके से श्मशान भूमि में गाड़कर खड़ा कर दिया और बगल में लटकती हुई झोली से एक बड़ा सा नरमुण्ड निकालकर त्रिशूल की नोंक पर टांग दिया उसने। अब श्मशान का परिवेश और अधिक भयानक हो उठा।

उसी समय सामने से दो लोग आते हुए दिखलाई दिये। उसमें एक साधु था और एक नवयुवती थी। अब उसका चेहरा स्पष्ट दिखलायी दे रहा था मुझे। सचमुच काफी सुन्दर थी वह। उसके गोरे और सुगठित शरीर पर लाल रंग की लुंगी और चादर थी। गले में रूद्राक्ष की माला थी और चौड़े ललाट पर लाल सिन्दूर का था गोल टीका। सिर के बाल खुलकर पीठ पर लहरा रहे थे। निश्चय ही वह तांत्रिक सन्यासी की भैरवी थी–यह समझते देर न लगी मुझे। साधु ने यंत्र चालित हवन कुण्ड बनाया और उसमें अग्नि प्रज्ज्वलित की और हवन कुण्ड के सामने मनुष्य के हाथ पैर की लम्बी–लम्बी हड्डियाँ आड़े तिरछे करके रखा उसने और उसके दोनों तरफ दो नरमुण्ड रखा। दोनों को टीका लगाकर माला पहनाया और फिर उनके सामने तेल के दीप जलाये। अब तक हवन कुण्ड की अग्नि प्रज्ज्वलित होकर लाल पीली लपटों में बदल गयी थी। जिसके प्रकाश में उस नवयुवती का सौन्दर्य पूरी तरह खिल उठा था। लगा मानो कोई देवलोक की अप्सरा हो वह उसके कजरारे नेत्र बड़े–बड़े थे, जिनमें साधना के अनुभव झलक रहे थे। सुन्दर चेहरे पर भी साधना का तेज था। इतनी सुन्दर और आकर्षक

और इतनी लावण्यमयी युवती पहले कभी नहीं देखा था मैंने। उसके कमनीय रूप को अपलक निहारता मैं न जाने कब तक। अब वह साधु कोई अटपटा-सा मंत्र पढ़-पढ़ कर प्रज्ज्वलित हवनकुण्ड में आहुति देने लगा था। वह अपने आप में लीन था लेकिन वह तांत्रिक सन्यासी कहीं लीन नहीं था। वह तो एकटक निहार रहा था उस सुन्दरी को। सुन्दरी भी उसकी ओर देखकर मुस्करा रही थी। दोनों एक साथ चलकर हवनकुण्ड के सामने खड़े हो गये। फिर दोनों ने एक दूसरे के वस्त्र उतारे। अब दोनों दिगम्बर थे यानी पूर्ण नग्न। अग्नि के लोहित प्रकाश में उस तन्वंगी भैरवी की गौरवर्णीय काया और भी रक्तिम हो उठी। दिगम्बर नर-नारी को एक साथ देखकर सच कहता हूँ शर्माजी मेरे युवा मन में दुर्बल भावना का संचार होने लगा लेकिन कर भी क्या सकता था सिवाय देखने के। अब युवा तांत्रिक सन्यासी जलती हुई चिता में जोर-जोर से मंत्रों का उच्चारण करते हुए घी की आहुति देने लगा। अब वह भैरवी बगल से हटकर सन्यासी के सामने आयी और अपनी पीठ को उसकी चौड़ी छाती से सटाकर खड़ी हो गयी और वह भी चिता में घी की आहुति देने लगी। इस क्रम के चलते हुए बीच-बीच में वह सन्यासी कमण्डल को मुंह से लगाकर कोई तरल पदार्थ पी लेता था और वही तरल पदार्थ भैरवी भी पी लेती थी कमण्डल को मुंह से लगा कर। बड़ा ही विचित्र दृश्य था, शर्मा जी कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

चिताग्नि में हवन कार्य समाप्त होने के बाद नग्न युवा सन्यासी ने निर्वस्त्र भैरवी को अपनी गोद में बैठा लिया। गोद में बैठने की मुद्रा बड़ी विचित्र थी, जिसे मैं बतला नहीं सकता। दोनों एक साथ मंत्रोच्चारण करने लगे। साधु अभी भी अपने आप में लीन होकर हवनकुण्ड में आहुति बराबर देता जा रहा था। इस अद्‌भुत दृश्य को देखकर मेरे सारे शरीर में सिहरन होने लगी। मन बेकाबू होता जा रहा था लेकिन आश्चर्य की बात तो यह थी कि वह रहस्यमय तांत्रिक सन्यासी सभी अवस्थाओं में तटस्थ रहा। उसमें किसी प्रकार की कामोत्तेजना उत्पन्न नहीं हुई। भैरवी भी अपने आप में निर्विकार और निर्लिप्त रही। मेरे लिए आश्चर्य की बात थी यह।

साधक और साधिका दोनों अभी भी पूर्ववत् मंत्रोच्चारण कर रहे थे चिता की ओर देखते हुए। कुछ देर बाद मैंने स्पष्ट रूप से देखा कि उस अधजली चिता के बीच में धुएँ का एक गुबार निकला। रंग बिल्कुल धवल और पारदर्शक था। वह रहस्यमय धुएँ का गुबार धीरे–धीरे आकार लेने लगा और अन्त में मनुष्य के रूप में परिवर्तित हो गया वह आकार। वह एक जीवित मनुष्य का रूप था जो चिता से निकलकर बाहर आ गया। दूसरे क्षण मैं उसे देखकर न जाने क्यों स्तब्ध रह गया एकबारगी। अब मैं उस मनुष्य को साफ–साफ देख रहा था। युवक था वह। गोरा रंग, लम्बा कद और शरीर पर लाल वस्त्र आकर्षक व्यक्तित्व। युवक ने झुककर सन्यासी का चरण स्पर्श किया। सन्यासी ने तनकर अपना दाहिना हाथ आशीर्वाद की मुद्रा में उठाया और गम्भीर स्वर में बोला–शुभं भव।

सन्यासी की आवाज सुनकर एकबारगी चौंक पड़ा मैं। यह तो चक्रेश्वरी बाबा जैसी आवाज है। कहीं यह सन्यासी चक्रेश्वरी बाबा ही तो नहीं है सोचने लगा मैं। कुछ क्षणों के बाद फिर सन्यासी की आवाज सुनाई दी मुझे। वह कह रहा था–कालीचरण तंत्र की जितनी गुह्य गोपनीय और रहस्यमयी साधनाएँ हैं उनमें एक दिगम्बरी साधना भी है। इस साधना से आध्यात्मिक अभीष्ट की सिद्धि होती है। वासनात्मक प्रवृत्ति का सदैव के लिए नाश हो जाता है। साधक और साधिका के शरीर से जिस विशेष ऊर्जा की उत्पत्ति होती हैं वह विद्युतमयी होती है जो षट्चक्र का भेदन कर कपाल प्रदेश में स्थित सहस्त्रदल कमल में प्रवेश करती है। उस परम अवस्था में साधक को दिव्य आनन्द का अनुभव होता है जिसे योगीगण परमानन्द भी कहते हैं। सम्पूर्ण रूप से काम रहित हो जाने पर ही इस आनन्द की उपलब्धि साधक को होती है। साधक सदैव उस परमानन्द में निमग्न रहता है। इसी अवस्था को निर्विकल्प समाधि की संज्ञा दी गयी है। अब तक हवन करने वाला साधु अपना कार्य समाप्त कर सन्यासी के करीब आकर खड़ा हो गया था। उसका चेहरा जाना पहचाना सा लगा मुझे। अरे यह तो वही साधु है जिसने सूखे कुँए के संबंध में पूछा था और जिसे ज्योतिपुंज में बदलते हुए देखा था मैंने और आकाश की ओर जाते हुए भी। सारा

रहस्य अनावृत हो चुका था अब मेरे सामने, वह तांत्रिक सन्यासी चक्रेश्वरी बाबा ही थे। इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं रह गया था। लेकिन वह युवक कौन था जो चिता में से धुएँ के गुबार के रूप में निकला और बाद में मानव रूप में हो गया था परिवर्तित। कहने की आवश्यकता नहीं, यह रहस्य भी अनावृत हो गया मेरे सामने कुछ ही क्षणों के बाद।

अब मैं उस तांत्रिक सन्यासी को चक्रेश्वरी बाबा ही कहूँगा। चक्रेश्वरी बाबा अपनी भैरवी के साथ गंगा तट की ओर चले गये और उन्हीं के साथ वह युवक और साधु भी, मैं थोड़ा आगे बढ़कर श्मशान के निकट जा पहुँचा और पीपल के पीछे चुपचाप खड़ा हो गया। वहां से उन लोगों की बातें साफ–साफ सुनायी दे सकती थी। भोर का समय हो रहा था। पूरब के आकाश में यहाँ से लेकर वहाँ तक उषाकाल की सफेद लकीर खिच गयी थी। अब तक चिता की आग भी बुझ चुकी थी। वातावरण में बिखरी निस्तब्धता अब और गहरी हो गयी थी। मैंने देखा चक्रेश्वरी बाबा ने अपनी भैरवी के साथ पूर्ण नग्न अवस्था में स्नान किया नदी में। स्नान करने के बाद उस युवक की ओर स्थिर भाव से देखते हुए चक्रेश्वरी बाबा गम्भीर स्वर में बोले कालीचरण तुम्हारी मृत्यु का समय ज्ञात हो चुका था और यह भी मुझे ज्ञात हो चुका था कि तुम्हारी चिता कहाँ और किस स्थान पर जलेगी। तुम मेरे पट्ट शिष्य हो। तुम्हारी चिता को साक्षी देकर मैंने जो दिगम्बरी साधना की है। उससे मेरी अन्तिम आध्यात्मिक कामना पूर्ण हुई है। मैं अति प्रसन्न हूँ तुम्हारे जैसे योग्य शिष्य को प्राप्त कर।

कालीचरण निर्विकार भाव से चुपचाप हाथ जोड़े खड़ा था अपने गुरु के सामने और गुरु कह रहे थे– इस परम साधना से मेरा जागतिक भाव, जागतिक आशक्ति सदैव के लिए समाप्त हो चुकी थी किसी भी प्रकार की कामना और वासना अब नहीं रह गयी हैं मन में। आत्मा शुद्ध विशुद्ध और निर्मल हो चुकी है। मनुष्य की पूर्ण आयु भी भोग चुका हूँ मैं किन्तु निर्वाण माँ महामाया की कृपा पर निर्भर है। अभी मुझे तीन सौ वर्ष और रहना है संसार में। शरीर की अवधि तो समाप्त हो चुकी है, इसलिए तीन सौ वर्ष का समय सर्प योनि में व्यतीत करूँगा मैं।

थोड़ा रूककर भैरवी की ओर एक बार देखा उस परम साधक ने और फिर कहना शुरू किया तुम्हे कुण्डलिनी जागरण की दीक्षा देनी है मुझे। मैं ठीक दो सौ वर्ष बाद तुमको मिलूँगा सर्पयोनि में और यथा समय तुमको दूंगा मैं वह रहस्यमयी दीक्षा। तब तक तुम यक्षलोक में रहकर अपनी शेष साधना पूर्ण करो।

क्या साधना पूर्ण होने पर पुनः मनुष्य शरीर धारण करूँगा मैं—कालीचरण मन्द स्वर में बोला।'' हाँ! तभी तो दीक्षा उपलब्ध होगी तुम्हें। प्रकृति पर विजय प्राप्त कर लेने के कारण मैं पंचतत्वों को संगठित कर समयानुसार अपने पार्थिव शरीर का निर्माण कर लिया करूँगा आवश्यकता पड़ने पर। तुमको अब कुछ भी सोचने समझने की आवश्यकता नहीं। तुम्हारा पार्थिव शरीर जलकर चिता में भस्म हो चुका है। यह तुम्हारा सूक्ष्म शरीर है। इसी शरीर से तुमको गमन करना होगा यक्षलोक के लिए।

चक्रेश्वरी बाबा की बातें सुनने के बाद कालीचरण का मानव रूप धीरे—धीरे धूम्राकृति में परिवर्तित होने लगा और अन्त में उसका अस्तित्व भी समाप्त हो गया।

यह सब देख सुनकर मेरे मस्तिष्क की स्थिति विचित्र सी हो गयी। मैं यह समझ नहीं पा रहा था कि आखिर हो क्या गया है मुझे, संज्ञा शून्य सा हो गया था मैं।

धीरे—धीरे सूर्योदय हो रहा था मैंने चारो ओर सिर घुमाकर देखा कहीं न जली हुई चिता का चिन्ह था, न थे कहीं चक्रेश्वरी बाबा और न तो थी कहीं उनकी नवयौवना भैरवी ही। सूर्य के प्रकाश में जैसे सब कुछ खो गया था एकबारगी। इतनी कथा सुनाकर किशोरी बाबू ने चुटकी बजाकर लम्बी जम्हाई ली। रात का पहला प्रहर समाप्त हो रहा था। मेरा नौकर सरजू आ गया था। मैंने उसे कुछ खाने के लिए लाने को कहा।''

किशोरी बाबू बीच में ही बोल पड़े—सिर्फ चाय मंगा लो। हो सके तो चार पांच नमकीन बिस्कुट भी। चाय बिस्फुट लेने के बाद किशोरी बाबू खिड़की के बाहर देखने लगे। उस समय उनका चेहरा कुछ असहज हो गया था। कुछ थक गये हो, ऐसा लगा मुझे।

सहज भाव में मैंने कहा—दादा; आप थोड़ा आराम कर लें। थक गये होंगे। किशोरी बाबू पलटे और थोड़ा हंसकर बोले अब थकने का कोई प्रश्न ही नहीं बन्धु, जितना थकना था उतना थक चुका। थोड़ी कथा और रह गयी है उसे सुना ही डालूँ। फिर भविष्य में समय मिले या न मिले यह सुनकर मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। सचमुच किशोरी बाबू की कथा अपने आप में विचित्र और अविश्वसनीय थी इसमें सन्देह नहीं। अपनी डिब्बी से एक बीड़ा पान निकालकर मुँह में दबाया और किशोरी बाबू ने और आगे का वृत्तान्त शुरू कर दिया।

............शर्माजी क्या कहूँ उस अवस्था का वर्णन करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं है। अचानक मूलाधार स्थान में भयंकर जलन होने लगा लेकिन क्या वह जलन था? नहीं नहीं उस जलन में मुझे एक विशेष प्रकार का आनन्द का अनुभव भी हो रहा था। धीरे—धीरे उस जलन की दाह ऊपर की ओर उठने लगी। उसके उठने का अनुभव अपने मेरुदण्ड में कर रहा था मैं। अन्त में वह भ्रूमध्य में जाकर स्थिर हो गया और उसी के साथ दाह की अनुभूति भी। अब मैं पूरे कपाल प्रदेश में विचित्र—सी शीतलता का अनुभव कर रहा था। उस शीतलता का अपना आनन्द था। मैं उसी आनन्द में न जाने कब तक निमग्न था और उसी अवस्था में जौ के आकार की नीलवर्णा ज्योति का दर्शन हुआ मुझे। वह अवर्णनीय ज्योति भ्रूमध्य में थी। वह ज्योति तो अपने स्थान पर स्थिर थी लेकिन उसमें से विभिन्न रंगों के स्फुलिंग निकल रहे थे। बड़ा ही सुन्दर दृश्य था वह और तभी किसी की आवाज सुनाई दी मुझे। स्वर जाना पहचाना सा लगा। निश्चय ही वह स्वर चक्रेश्वरी बाबा का ही था पहचानने में भूल नहीं हुई थी मुझसे। चक्रेश्वरी बाबा गम्भीर स्वर में कह रहे थे—कालीचरण यक्षलोक में पूरे दो सौ वर्ष रहकर साधना पूरी करने के बाद तुमने किशोरीलाल के रूप में एक बंगाली ब्राह्मण कुल में जन्म लिया है तुम्हारी प्रतीक्षा में था और वह पूर्ण हुई अब मैंने तुमको कुण्डलिनी दीक्षा से सम्पन्न कर दिया है। समय—समय पर तुमसे मिलता रहूँगा किसी न किसी रूप में।''

एकाएक मेरी आँखें खुल गयी। चारो ओर सिर घुमाकर देखा और स्तब्ध रह गया एकबारगी। काली मन्दिर पर बैठा था मैं उस समय।

कैसे वहाँ पहुँच गया आश्चर्य हो रहा था मुझे। फिर एक के बाद एक सारी घटनाएँ चलचित्र की तरह मानसपटल पर उभरने लगी। लगा मैंने कोई लम्बा सपना देखा है लेकिन सपना जैसा कुछ नहीं था। सब कुछ था सत्य इसमें सन्देह नहीं। सारी घटनाएँ दो वर्ष पूर्व की थी। पूरे दो सौ वर्ष यक्षलोक में रहने के बाद किशोरीलाल के रूप में जन्म लिया मैंने और चक्रेश्वरी बाबा ने मुझे कुण्डलिनी शक्ति की दीक्षा दी। मैं सात्विक मार्ग से साधना करता हूँ। तंत्र की इस विधि में मैं प्राणायाम, आसन, नियम, स्तुति, मंत्र, जप तथा आन्तरिक शक्ति के विकास के लिए जागृत कुण्डलिनी शक्ति का सहयोग लेता हूँ।'' मैं श्मशान में जाकर साधना इसलिए करता हूँ कि वहाँ के वातावरण में पूर्ण शान्ति रहती है। अमावस्या को अन्धकार रहने के कारण मन कहीं भटकता नहीं। पूजन विधि में, मैं सौम्य खण्ड, स्वर्ण खण्ड, बेल पत्र की लकड़ी, शुद्ध घी, धूप दीप श्वेत तिल तथा अन्य सामग्रियों का उपयोग करता हूँ। गुरु प्रणाम के बाद अग्नि देवता को प्रतिष्ठित करता हूँ तथा होम से उठी आग की लौ को अपने वश में कर लेता हूँ। जब मैं किसी तत्व को प्राप्त करना चाहता हूँ तथा किसी अज्ञात तत्व को जानना चाहता हूँ तब मंत्रोच्चारण कर ज्योंही अपना मुंह पीछे की ओर करता हूँ तो होमाग्नि की लौ भी घूमकर मेरे सामने आ जाती है और जो तत्व मैं नहीं चाहता हूँ तो लौ की दिशा मेरे मुंह के विपरीत चली जाती है। लौ के कई रंग होते हैं। इसमें मैं अपनी उपासना–मनोकामना के विचार तथा फल प्राप्ति के संकेत की प्रतिष्ठा करता हूँ। गुरुदेव से दीक्षा प्राप्त करने के बाद उनकी कृपा से बारह वर्षों के अभ्यास और कठिन साधना के फलस्वरूप इस कठिन प्रक्रिया में पारंगत हुआ मैं।

किशोरी बाबू के इस लम्बे व्याख्यान के बाद भी मैंने उनमें थकान नहीं देखी। रात के दस बजने वाले थे। मेरी पत्नी दो थाली में भोजन परोसकर ले आयी लेकिन किशोरी बाबू ने मना कर दिया। बोले भोजन आदि से दूर हो चुका हूँ। मुझे सांसारिक वस्तुओं की अब कोई आवश्यकता नहीं। अब मैं चलूँगा।

मैंने अनुरोध भरे स्वर में कहा—दादा इतनी रात को आप कहाँ जायेंगे?

मेरी बात सुनकर किशोरी बाबू हंसे और फिर बोले–चिन्ता मत करो। मेरे लिए समय और स्थान बाधक नहीं है। इतना कहकर वह अपने स्थान से उठे और बाहर निकलने के लिए दरवाजे की ओर बढ़े। उनकी बातों में मुझे कुछ रहस्य की गन्ध लगी लेकिन कुछ समझ में मेरे नहीं आया। अब तक किशोरी बाबू बाहर निकलकर गली के अन्धेरे में गायब हो चुके थे। देखा मेरे कमरे में किशोरी बाबू के पान का डिब्बा मेज पर रखा था चाय के प्याले के पास। भूल से छूट गया था शायद। सोचा किशोरी बाबू ज्यादा दूर नहीं गये होंगे। डिब्बा लेकर उन्हें देने के लिए काफी दूर तक गया लेकिन किशोरी बाबू का अस्तित्व कहीं नहीं दिखलायी दिया मुझे। सिर झुकाये वापस लौट आया। किशोरी बाबू का अचानक घाट पर मिलना घर आकर अपनी अधूरी अविश्वसनीय और रोमांचकारी कथा सुनाना और सुनाने के बाद इस प्रकार रात में चले जाना मेरी समझ में नहीं आ रहा था कुछ। उस रात सो न सका मैं। बार–बार किशोरी बाबू का चेहरा घूम जाता था मेरे सामने। दूसरे दिन सेन को सम्पूर्ण वृत्तान्त सहित रजिस्टर्ड पत्र लिखा मैंने। एक सप्ताह बाद नवद्वीप से सेन का उत्तर आ गया। पत्र खोला पढ़ा और पढ़ते ही सिर चकराने लगा। सिर थामकर बैठ गया मैं बिस्तर पर। कहने की आवश्यकता नहीं कई बार पढ़ा मैंने सेन का पत्र और जब जब पढ़ता तब तब रहस्य और गहरा होता जाता मेरे लिए। यह सम्भव कैसे है ? ऐसा कैसे हो सकता हैं? एक मृत व्यक्ति सैकड़ों मील दूर सशरीर उपस्थित होकर पूरे चार घण्टे कैसे बातें कर सकता है? फिर उसने दो बार चाय पी और पान भी खाया। कैसे विश्वास किया जाय लेकिन विश्वास करना ही पड़ा। अन्त में बड़े ही मर्मस्पर्शी शब्दों में सेन ने अपने पत्र में लिखा था–"क़िशोरी बाबू पूर्ण स्वस्थ थे। कोई रोग शोक नहीं था उन्हें। सदैव की भांति प्रसन्नचित्त रहते थे महाशय। कभी–कभी मिलने पर तुम्हारी अवश्य बाते करते थे। एक मास पूर्व नित्य की भांति अमावस्या के दिन सायंकाल हाथ में छड़ी और झोले में पान का डब्बा लिये काली मंदिर गये थे किशोरी बाबू। लगभग दो घंटे में लौट आते थे दर्शन जप आदि कर लेकिन उस रात वापस लौटे नहीं। सवेरा हुआ उनकी चारों ओर खोज शुरू हुई। ऐसा पहले कभी नहीं

हुआ था। इसलिए सभी को आश्चर्य होना स्वाभाविक था। हालधार तो पागल हो गया था जैसे काफी देर तक गुमसुम खड़ा रहा। फिर लगभग दौड़ता हुआ काली मंदिर की ओर भागा वह।

लगभग दो घण्टे बाद हालधार लौटा और लौटकर हकलाते हुए उसने जो कुछ बतलाया। उसे सुनकर सभी लोग एकबारगी स्तब्ध और शोकाकुल हो उठे। सभी का चेहरा स्याह पड़ गया भय से। हतप्रभ थे सभी लोग यही कहते—ऐसा कैसे हो सकता है?

प्रसंग को बदलते हुए सेन ने पत्र में आगे लिखा था—पहले तो जंगल में हालधार ने इधर उधर खोजा और उसी सिलसिले में काली मन्दिर की ओर चला गया वह। पहले तो मंदिर के सामने चुपचाप खड़ा न जाने क्या सोचता रहा और फिर न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर मंदिर के भीतर चला गया वह और भीतर जाकर उसने जो दृश्य देखा वह अति भयानक, रोमांचकारी और अविश्वसनीय था। भय के कारण हालधार का सारा शरीर कांपने लगा था। किसी प्रकार अपने आपको संभाला उसने और जल्दी से निकल आया मंदिर के बाहर वह।

सचमुच बड़ा ही भयानक रोमांचक विचित्र और साथ ही अविश्वसनीय दृश्य था मंदिर के भीतर का इसमें सन्देह नहीं। रहस्य का धुंध छाया हुआ था मंदिर के वातावरण में प्रणाम की मुद्रा में पेट के बल लेटे हुए थे किशोरी बाबू माँ काली के सामने और उनके दोनों हाथ माँ महामाया के चरणों को पकड़े हुए था। गले में जवा पुष्प की माला पड़ी थी और मस्तक पर लाल सिन्दूर का लम्बा टीका लगा था और सिर धड़ से कटकर अलग हो गया था। लेकिन आश्चर्य की बात तो यह थी कि वहाँ खून का एक बूंद भी नहीं दिखलायी नहीं दिया। न जमीन पर और न तो काली बाबू के कपड़े पर। लेकिन हाँ। मंदिर के कोने में खड़े विशाल खड्ग के फाल पर अधिक मात्रा में रक्त लगा था जो अभी सूखा नहीं था ताजा था, बिल्कुल ताजा। प्रत्येक दृष्टि से नरबलि का दृश्य था वह, इसमें कोई सन्देह नहीं। लेकिन किशोरी बाबू की बलि किसने दी? क्यों दी? और किस उद्देश्य से दी? सारी स्थितियों को देखते हुए यह तो स्पष्ट था कि अपने हाथों से अपनी बलि नहीं दी थी किशोरी बाबू

ने।.........तो फिर.......और इस तो.........फिर का समाधान किसी के पास नहीं था। एक बात अवश्य थी और वह यह कि माँ का मुख प्रसन्न दिखलायी दे रहा था और आँखों में दिखलायी दे रहा था तृप्ति का भाव।

सेन ने अपने पत्र के अन्त में लिखा था कि किशोरी बाबू के पान का डब्बा वहाँ नहीं मिला। जबकि अपने पान का डब्बा वे हमेशा अपने साथ ही रखते थे। यह भी एक आश्चर्य की बात है। समझ में नहीं आता कुछ। चारो ओर रहस्य ही रहस्य है। कौन करेगा उन्हें अनावृत? मैं मन ही मन सोचने लगा–तमाम रहस्यों को तो परामनोविज्ञान अनावृतकर सकता है, इसमें सन्देह नहीं, लेकिन, नरबलि का रहस्य सदैव अपने आप में रहस्य ही बना रहेगा। उसे कोई अनावृत नहीं कर सकता। कथा समाप्त करते समय यह बतला देना आवश्यक है कि किशोरी बाबू के पान का डब्बा कई साल तक मेरे पास रहा और फिर अपने आप न जाने कहाँ गायब हो गया। काफी खोजने पर भी नहीं मिला। सम्भव है किशोरी बाबू की आत्मा आकर ले गयी हो उसे।

●

रहस्य दो

शव साधना

मेरे मित्र निशिकान्त मेरी ही तरह वे खोजी भी स्वभाव के थे। एक दिन अचानक गंगा घाट की सीढ़ियों पर मिल गए, देखते ही बोल पड़े–''भाई शर्मा सुना तुमने? एक अघोरी तांत्रिक का पता लगाया है मैंने। अभी देखा तो नहीं मगर सुना है बड़े ऊँचे साधक हैं। उनको शव सिद्धि है। हर अमावस्या की रात शव साधना करते है।''

''कहाँ रहते हैं वह?'' मैं ने उत्सुकता से प्रश्न किया। 'यह तो मैं नहीं जानता कि वे कहाँ रहते हैं, मगर इतना जरूर जानता हूँ रोजाना सांझ को श्मशानों का चक्कर लगाते नजर आ जाते हैं।'' थोड़ा रूक कर निशिकान्त कुछ सोचते हुए आगे बोले–''हाँ ! एक बुढ़िया है। शायद वह भी तांत्रिक है। मानसरोवर और देवनाथपुरा की गलियों में घूमती रहती है। वही जानती है कि वे महात्मा कहाँ रहते हैं।''

निशिकान्त की बातों ने मेरे भीतर जिज्ञासा जगा दी। उस शव साधक महापुरुष से मिलने के लिये मेरा चित्त आकुल हो उठा। लेकिन दो महीने बीत गये, मैंने इस दिशा में कोई प्रयास नहीं किया।

अगस्त सन् 1978 की बात है। सवेरे से ही मूसलाधार वर्षा हो रही थी। शाम को बूंदा–बांदी कुछ कम हुई तो टहलने के विचार से मैं घर से बाहर निकल पड़ा।

देवनाथपुरा मुहल्ले में नाटौर स्टेट का शिव–शिवा काली का मन्दिर है। बड़ी प्राचीन और सिद्ध प्रतिमा है भगवती महामाया की। मैं

उनके दर्शन के खयाल से उधर ही चल पड़ा और जैसे ही मानसरोवर की गली के मोड़ पर घूमा, एकाएक एक मकान के चबूतरे पर बैठी एक बुढ़िया पर मेरी नजर पड़ गई। सत्तर–अस्सी के लगभग उम्र, सिर मुड़ा हुआ, दुबले–पतले, सिकुड़े स्याह शरीर पर एक फटी पुरानी साड़ी लपेटे, सामने रखे टूटे–फूटे अल्युमिनियम के कटोरे से सूखा भात निकाल–निकाल कर ध्यान से बड़े ही विचित्र ढंग से खा रही थी। जरा रूककर मैंने उसकी ओर देखा–उसकी गड्ढे में धंसी आँखों में मुझे एक असाधारण चमक दिखलायी पड़ी। मन ने हौले से कहा–कहीं यह वही बुढ़िया तो नहीं है।

मैं बुढ़िया की गतिविधि को बड़े ध्यान से देखने लगा।

अचानक वह भात खाते–खाते चिल्ला पड़ी–''क्यों रे ! यहाँ क्यों खड़ा है? भाग यहाँ से भाग जा।''

''नहीं–नहीं ! ऐसा मत कहो। मैं तो तुम्हें कुछ खाने को देने के लिये खड़ा था।''–मैंने हँस कर कहा।

''मुझे क्या देगा ! चल भाग यहाँ से। बड़ा आया देने वाला मुझे, भिखारिन समझता है क्या।''

मैं न जाने क्या सोचकर आगे बढ़ गया। पानी भी बरसने लगा था। भगवती का दर्शन कर जब वापस उसी रास्ते लौटा तो बुढ़िया को चबूतरे पर नहीं पाया।

फिर एक दिन सांझ का समय था। लाली घाट की चिर–परिचित सीढ़ियों पर बैठा मैं बगल के हरिश्चन्द्र घाट पर जलती चिताओं को देख रहा था कि उसी बुढ़िया पर नजर पड़ गई। श्मशान घाट की सीढ़ियों पर चढ़ वह ऊपर जलती हुई चिताओं के नजदीक आ खड़ी हुई। वह लाशों को ऐसे घूर रही थी–मानो किसी लाश को उठा कर ले भागने का मौका देख रही हो।

थोड़ी देर बाद लायी गयी एक युवक की लाश के साथ लोगों ने भारी पत्थर बांधा और नाव पर लादकर उसे गंगा में बहाने के लिए चल पड़े। बुढ़िया इन सारी क्रियाओं को बड़े ध्यान से देख रही थी।

लाश प्रवाहित कर दी गयी।

बुढ़िया भी श्मशान से नीचे उतर आयी और जल्दी–जल्दी दशाश्वमेध

घाट की ओर बढ़ने लगी। मैं भी उसके पीछे चल पड़ा। चौकी घाट के आगे बिजली गायब थी। चारो ओर अंधेरा होने के बावजूद सब साफ दिखाई दे रहा था। अचानक बुढ़िया एक जगह रूक गयी। मैं भी कुछ दूर पर खड़ा हो गया।

सहसा 'आव ! आव !' का शब्द सुनाई दिया। शायद बुढ़िया किसी को पुकार रही थी। मेरा अनुमान सही निकला। बुढ़िया हवा में हाथ हिलाती हुई गंगा की ओर मुंह किये किसी को बुला रही थी।

सहसा गंगा की प्रखर धारा के ऊपर एक सफेद–सी चीज उभरी और धीरे–धीरे घाट की ओर बढ़ने लगी। थोड़ी देर बाद वह साफ दिखाई देने लगी। यह उसी युवक की लाश थी जिसे थोड़ी देर पूर्व गंगा में प्रवाहित किया गया था।

लाश के घाट पर लगते ही बुढ़िया उसकी ओर लपकी और जल्दी–जल्दी उसका कफन उतारने लगी। कफन उतार कर उसने अपनी कमर में लपेटा, फिर जल्दी–जल्दी नारद घाट की सीढ़ियाँ चढ़ने लगी।

लेकिन यह क्या?

आतंक से भरी आँखें फट–सी पड़ीं। मैं हतप्रभ ताकता ही रह गया–वह निर्जीव लाश भी बुढ़िया के पीछे–पीछे जीवित प्राणी की तरह चल रही थी।

ऐसा रोमांचित तथा अविस्मरणीय दृश्य जीवन में कभी देखने को मिलेगा–इसकी मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। किसी प्रकार साहस बटोरकर मैं भी बुढ़िया के पीछे–पीछे चलने लगा।

कई गलियों का चक्कर लगाने के बाद बुढ़िया एक टूटे–फूटे सुनसान मकान के सामने क्षण भर को रूकी, फिर भीतर घुस गयी। लाश भी उसी के साथ मकान में चली गयी।

मैं खड़ा–खड़ा सोचने लगा–निश्चय ही यह मकान किसी शव साधक का है और यह बुढ़िया भैरवी होगी, जो मंत्र। बल से शव को आकर्षित कर उस महापुरुष की साधना का इन्तजाम करती है।

जब मैंने तमाम घटनाओं की चर्चा अपने तांत्रिक मित्र तारानाथ भट्टाचार्य से की तो उन्होंने बताया कि यह बौद्ध तांत्रिक परम्परा है। इसके अनुसार मंत्र–बल से शव स्वयं जागृत होकर भैरवी के पीछे–पीछे

चला आता है और साधक के आसन के निकट गिर कर पुनः शव हो जाता है। इस प्रकार के शव साधकों के पास असीम तांत्रिक शक्ति होती है।

कापालिक परम्परा, शाक्त परम्परा और अघोर परम्परा की शव साधना की तमाम गुह्यता से मैं परिचित हूँ। उनकी सिद्धियों को भी जानता हूँ, मगर बौद्ध परम्परा की शव साधना का क्या सिद्धान्त है और उसकी रहस्यमय गोपनीयता तथा उपलब्धि क्या हैं—इन बातों से मैं अपरिचित हूँ। इसे जानने की जिज्ञासा जाग उठी और मैं एक दिन फिर उस महापुरुष साधक के यहाँ पहुँच गया और न जाने क्या सोच भीतर चला गया। छोटा—सा आंगन, चारो ओर संकरे दालान, झुके हुए बदरंग खम्भे, सीलन से भरी दीवारें, विचित्र—सी दुर्गन्ध। कुछ देर खड़ा मैं सोचता रहा—मकान में कोई नहीं है क्या? बुढ़िया कहाँ गयी? तभी ऊपर की मंजिल से खटर—पटर की आवाज आयी। आंगन के एक ओर पत्थर की छोटी—सी टंकी थी जिसके बगल से पतली—सी सीढ़ी ऊपर गयी थी। मैं धीरे—धीरे ऊपर चढ़ने लगा। कई बार सीढ़ी से फिसल कर गिरते—गिरते बचा। ऊपर दो—तीन कमरे थे। सामने एक दालान था। कमरों में मुझे कोई नहीं दिखलायी पड़ा। बस, चारो तरफ दुर्गन्ध फैली हुई थी।

मैं ज्यों ही लौटने लगा, बगल वाले अंधेरे कमरे से हल्की—सी चीख सुनाई दी। जैसे कोई धीरे—धीरे किसी का गला दबा रहा हो। कमरे के भीतर झांकने पर मैं स्तब्ध—सा रह गया। शरीर का सारा खून हिम हो गया।

कमरे के फर्श पर कल वाली नंगी लाश पड़ी हुई थी और उसके ऊपर पद्मासन लगाए एक नंगी औरत आँखें मूंदे चुपचाप बैठी थी। आबनूस जैसा रंग, यौवन से भरपूर सुगठित शरीर, देखने पर बिल्कुल अक्षत युवती लग रही थी। बिखरे बालों के साथ गले में रुद्राक्ष की माला नाभि तक झूल रही थी।

मैं उस विचित्र तांत्रिक दृश्य को भयभीत नजरों से देख ही रहा था कि सहसा लाश पर बैठी युवती के रूप—रंग में परिवर्तन होने लगा। हे भगवान! यह तो वही बुढ़िया थी जिसे मैंने कल रात लाश के साथ देखा था।

एकाएक मन में विचार उठा—यह युवती कैसे बन गयी थी? निश्चय ही बुढ़िया 'कंकाल कालिनी' विद्या जानती होगी। तांत्रिक साधना की यह कठिन अघोरमार्गी विद्या मानी जाती है। इसके जरिये कोई भी युवक या युवती बन सकता है। अस्थायी रूप से युवा रूप और यौवन से भरपूर शरीर पाने के लिये यह अति विलक्षण विद्या है, तो क्या इसी कंकाल कालिनी विद्या के जरिये वह बुढ़िया, युवती बनकर शव पर बैठी साधना कर रही है।

बुढ़िया को शायद मेरी उपस्थिति का आभास हो गया। उसने धीरे–धीरे अपनी बन्द आँखें खोलीं और तीखी नजरों से मुझे निहारने लगी।

मुझे देखते ही वह बुढ़िया एकबारगी चिल्ला उठी–"यहाँ भी आ गया तू ? चल भाग !" फिर लाश के ऊपर से उठकर मेरे करीब आ खड़ी हुई और मुझे ढकेलती हुई बोली–"स्साला ! जाता है या नहीं? बोल, क्या चाहता है तू ? क्या करने आया है यहाँ ?"

बुढ़िया का रौद्र रूप देखकर एक बार तो मैं सहम गया, मगर दूसरे क्षण अपने को संभाल कर बोला–"मैं कौन हूँ तथा यहाँ क्या करने आया हूँ, यह तो बाद में बताऊँगा किन्तु इसके पहले तुम यह जान लो कि तुम्हारी हर गतिविधि पर मेरी नजर है।" फिर स्वर को थोड़ा तेज करके बोला "किसी की लाश को इस तरह मकान में रखना जुर्म है, शायद तुमको यह मालूम नहीं। अगर मैं अभी जाकर पुलिस को खबर कर दूँ तो..."

अभी मेरा वाक्य पूरा भी नहीं हो पाया था कि बुढ़िया बीच में ही बोल पड़ी–"ना बाबा! पुलिस का नाम मत लो! बोलो, क्या चाहते हो तुम ?"

जब मैंने देखा कि बुढ़िया का रौद्र रूप पूरी तरह से नष्ट हो गया है तो मैंने पूछा–"तुम 'कंकाल कालिनी' विद्या जानती हो न?"

मेरा प्रश्न सुन एक बार वह चौंकी फिर हँसकर बोली–"तुम्हें कैसे मालूम?"

"मैं तांत्रिक तो नहीं हूँ मगर तंत्र–शास्त्र और साधना का काफी गहरा अध्ययन जरूर किया है मैंने। तुम बुढ़िया से युवती कैसे बन गयी–यह क्रिया मैं एक बार फिर देखना चाहता हूँ।"

"नहीं ! नहीं ! यह क्रिया मैं तुमको नहीं दिखा सकती। यह बड़ी गुप्त विद्या है।"

लेकिन जब उसने देखा कि मैं उसका पीछा किसी तरह छोड़ने वाला नहीं हूँ, तो मेरे बार–बार आग्रह करने पर वह तैयार हो गयी।

उसके मुँह से यह सुन मैं एकदम अवाक्–सा रह गया, जब उसने बताया कि मेरा नाम अरुण कुमार शर्मा है और मैं अवधगर्वी मोहल्ले का रहने वाला हूँ।

जब मैंने उससे पूछा कि तुम मुझे कैसे जानती हो, तो उसने बताया कि 'हाकिनी विद्या' सिद्ध होने के कारण वह सब कुछ जान जाती है। बुढ़िया 'हाकिनी विद्या' भी जानती है घोर आश्चर्य हुआ मुझे। मैंने सपने में भी नहीं सोचा था कि काशी में इन विद्याओं की सिद्ध साधिका भी मिलेगी और वह भी इस रूप में। सांझ की स्याह कालिमा रात्रि के गहन अन्धकार में बदल चुकी थी। मकान में प्रकाश की कोई व्यवस्था नहीं थी। मोमबत्ती लेने के लिये जब मैं बाहर जाने लगा तो बुढ़िया ने आदेश भरे स्वर में कहा–"शराब भी ले आना जरूरत पड़ेगी।"

जब मैं शराब और मोमबत्ती लेकर वापस लौटा तो रात के नौ बज चुके थे। आकाश में बादल छाये थे। हल्की–हल्की वर्षा भी हो रही थी चारों ओर घुप अंधेरा छाया हुआ था।

बुढ़िया काफी देर से मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। तीन बोतल शराब में से एक बोतल खोलकर वह गट–गट कर तुरन्त पी गयी। फिर मुझे उस कमरे में ले गयी जिसमें लाश रखी थी।

एक मोमबत्ती जलाकर मैंने कमरे में रोशनी कर दी। बुढ़िया ने तेल का एक दीया जलाकर लाश के सिरहाने रखा और शराब की दूसरी बोतल खोलकर न जाने किस ढंग से लाश के गले में उतार दी, फिर बाल खोल नंगी होकर वह उसके ऊपर बैठ गयी।

मोमबत्ती और दीये की मिली–जुली रोशनी में बुढ़िया का चेहरा क्रूर और वीभत्स–सा लगने लगा। गड्ढे में धंसी हुई बुझी–बुझी आँखें, चेहरे पर तमाम झुर्रियाँ, नीचे की ओर लटका हुआ जबड़ा और रूखे–सूखे सफेद बाल–सब मिलकर उसके चेहरे को अत्यन्त घृणित बना दिया था। उसका भाव देखकर मेरा मन आतंक से भर गया। बुढ़िया उस समय पद्मासन लगाये विशेष तांत्रिक मुद्रा में किसी मंत्र का जाप कर रही थी।

धीरे–धीरे समय गुजर रहा था। मैं चुपचाप मौन साधे कमरे में एक ओर बैठा कभी बुढ़िया की ओर तथा कभी लाश की ओर देखता रहा, लाश किसी अच्छे कुल के युवक की लग रही थी। काफी सुन्दर और गोरे रंग का था वह। ऐसा लगता था मानो वह मरा नहीं हो, बल्कि गहरी नींद में सो रहा हो।

मैं उसकी ओर देख ही रहा था कि अचानक कमरे के वातावरण में रहस्यमय धुआं छाने लगा। दीये की लौ एक बार कांपी फिर ऊँची और ऊँची उठने लगी। कुछ ही क्षणों में लौ लगभग तीन–चार फुट लम्बी हो गयी। लेकिन वह चमत्कार मुझे प्रभावित न कर सका। दूसरे क्षण लौ फिर पूर्व स्थिति में आ गयी। उसी समय एकाएक लाश ने चीखकर अपनी बन्द आँखें खोल दीं। पहले उसने फिर घुमाकर चारो ओर देखा और सिर वह दुबारा चीखकर बोली–"छोड़ दो मुझे ! छोड़ दो।"

"छोड़ दूंगी।" बुढ़िया कर्कश स्वर में गरज कर बोली–मगर यह बतलाओ तुम कहाँ थे अभी तक। तुम जिन्दा हो या मुर्दा ?"

"मैं अपने शरीर में सो रहा था। तुमने फिर जगा दिया मुझे ! मैं मरा कहाँ हूँ। कौन कहता है कि मैं मर गया। मैं तो जिन्दा हूँ। मेरी पत्नी कमला मेरा इन्तजार कर रही है। रो–रोकर उसने अपना बुरा हाल बना लिया है। मुझे कमला के पास जाने दो... छोड़ दो मुझे।"–लाश एक ही सांस में सब कुछ कह गयी।

शव साधना में जहर खाकर, फांसी लगाकर, पानी में डूबकर, तथा सांप के जहर से मरे हुए व्यक्ति का अत्यंत महत्व है। ऐसे लोग काफी समय तक अपने आपको जीवित अनुभव करते हैं तथा अपने परिवार वालों के बीच घूमते रहते हैं। वह युवक भी सांप के काटने से मरा था।

"तुम्हारा नाम क्या है ?" –बुढ़िया ने पूछा।

"रमाकान्त सिंह।"–लाश ने जवाब दिया।

"तुम्हारी आयु क्या है?"

"अट्ठाइस वर्ष।"

"मैं अपने को तुम्हारी आयु में बदल रही हूँ। क्या तुम इसके लिये सहमत हो ?"

"हाँ ! सहमत हूँ–पर...पर...फिर मुझे छोड़ देना।"

लाश के इतना कहते ही बुढ़िया के आकार–प्रकार और रूप में सहसा परिवर्तन होने लगा। कुछ ही क्षणों में वह मेरे सामने वैसी ही हो गयी जैसी कुछ घन्टे पूर्व युवती के रूप में दिखाई पड़ी थी। 'कंकाल कालिनी' विद्या के बारे में पढ़ा और सुना जरूर था, मगर उस भयंकर तांत्रिक विद्या की सिद्धि आज मैं प्रत्यक्ष देख रहा था।

कुछ समय तक ध्यानमग्न रहने के बाद वह बुढ़िया युवती के रूप में शव से अलग हो गयी और मेरे करीब आकर बोली–"एक बोतल बची है न ?"

"हाँ बची है।" मैंने उसे घूरते हुए कहा।

"लाओ, अपने हाथों से मुझे सुरा–पान कराओ।"

मैंने पास रखे पीतल के गिलास में शराब भरकर उसके सामने रख दी।

"नहीं, अपने हाथों से पिलाओ बड़ी प्यास लगी है। मेरे मन के उत्ताप को आज तुम शान्त कर दो। बड़ी विकल हूँ मैं...।"

मैंने सुरा से भरा गिलास उसके कोमल होठों से लगा दिया। दूसरे ही क्षण गट–गट कर उसने गिलास खाली कर दिया। फिर बोली–"और डालो।"

"मैंने फिर गिलास भरकर उसके होठों से लगा दिया। आधा पीने के बाद गिलास मेरी ओर बढ़ाती हुई कड़ककर बोली–"लो, इतना तुम पी जाओ।"

"नहीं, मैं शराब नहीं पीता है।

"नहीं ! मैं कुछ नहीं सुनना चाहती शराब पीनी ही पड़ेगी तुम्हें।" इतना कहकर वह मुझसे बिल्कुल सट गयी। उसके शरीर का मादक स्पर्श होते ही मेरा तन–मन एकबारगी सिहर उठा।

"मुझे विवश मत करो।"–विनय भरे स्वर में मैंने कहा।

"पी लो, घबराओ नहीं, सारा भय दूर हो जायेगा इस अमृत से।" फिर उसने जबर्दस्ती मेरे गले में शराब उड़ेल दी।

सारा शरीर झनझना उठा। फिर मैं एक पल भी रूका नहीं। लड़खड़ाते हुए सीढ़ी से उतरकर बाहर गली में निकल आया। उस समय काफी तेज पानी बरस रहा था।

किसी प्रकार भीगता–भीगता घर पहुँचा, मगर अपने कमरे का दरवाजा खोलते ही मैं स्तब्ध रह गया। दूसरे ही क्षण सारा नशा खत्म हो गया। शरीर पत्थर–सा हो गया। मेरे बिस्तर पर युवती के रूप में लेटी वही बुढ़िया मुस्करा रही थी।

कहीं कोई भ्रम नहीं था। न मैं सपना देख रहा था। न जाने कब तक मैं दरवाजे के पास पाषाणवत् खड़ा रहा। फिर किसी तरह अपने आपको संभाल कर हकलाते हुए मैंने पूछा–"तुम यहाँ कैसे आयी? क्या काम है ? इस तरह यदि किसी ने तुम्हें देख लिया तो क्या कहेगा, क्या समझेगा ?"

मेरी बात सुनकर वह खिल–खिलाकर हँस पड़ी। बोली, "बस, इतने से ही घबरा गये ? तंत्र–मंत्र और भूत–प्रेत की दुनिया में ही तुम्हारा अब तक सारा जीवन बीता है। न जाने कितनी भटकती हुई अतृप्त आत्माओं को तुमसे शान्ति मिली है तथा कितनी ही अतृप्त–आत्मायें अभी भी शान्ति पाने की लालसा में तुम्हारे इर्द–गिर्द मंडरा रही हैं। यह सब मैंने तुमको पहली बार देखते ही जान लिया था।"

इतना कहने के बाद युवती बिस्तर से उठकर मेरे करीब आ गयी और अपनी दोनों बांहों को मेरे गले में डालती हुई बोली–"उन्हीं तमाम आत्माओं की तरह मैं भी अशान्त हूँ। मैं अपनी शान्ति कब की खो बैठी हूँ। मुझे शान्ति चाहिये और मैं जानती हूँ यह मुझे तभी मिलेगी, जब मेरी सारी वासना और कामना खत्म हो जायेगी और इसे सिर्फ तुम खत्म कर सकते हो एक साधक की कामना और वासना एक साधक ही खत्म कर सकता है साधारण व्यक्ति नहीं।"

उस समय युवती के मुंह से शराब की तीव्र दुर्गन्ध निकल रही थी। मेरा सिर चकराने लगा। किसी तरह अपने को उसकी बांहों से मुक्त किया। वह फिर बिस्तर पर बैठ गयी। रात के बारह बजने वाले थे। उस समय मुझे अपने आप पर गुस्सा आ रहा था–क्यों झंझट मोल ले लिया मैंने ? क्यों जान–बूझकर फंसाया इस चक्कर में अपने आप को ?

मैंने सुन रखा था कि इस प्रकार की शव साधना के जरिये अघोर मार्गी भैरवियाँ कंकाल कालिनी विद्या से अपनी अतृप्त वासनाओं और कामनाओं की पूर्ति के लिये अपने रूप को अकालग्रस्त युवकों की आयु

में परिवर्तित कर लेती हैं और फिर कुछ समय तक उस आयु तथा रूप के माध्यम से वासना की पूर्ति करने के बाद फिर अपने आपको उस रूप से मुक्त कर लेती हैं।

वह बुढ़िया इसी प्रकार की भैरवी थी। उसे 'हाकिनी' की भी सिद्धि प्राप्त थी। पिशाच लोक की अदम्य शक्ति समझी जाती है हाकिनी। इसके जरिये हजारों मील दूर की बात भी जानी जा सकती है तथा हजारों मील पर बैठे व्यक्ति को अपने निकट बुलाया जा सकता है।

इस तामसिक विद्या की और उसके साधक की खोज में मैं काफी दिनों से था पर कभी सोचा नहीं था कि इस ढंग और इस रूप में उस विद्या की भैरवी मुझे मिल जाएगी।

जाने कैसे दूसरे ही क्षण मेरा मन आकर्षित हो गया उस युवती की ओर। मैं अपने आपको भूल गया। सारा शरीर शिथिल पड़ने लगा मेरा। ऐसा लगा मानो कोई अदृश्य शक्ति मेरे मन को, मेरी आत्मा को उस युवती की ओर खींच रही है।

एकाएक आसमान में बिजली कड़की, उसी के साथ मूसलाधार बारिश होने लगी और मेरे मकान की बिजली उसी समय गुल हो गयी। मैं अपना होश खो बैठा। फिर सारी रात किस स्थिति में उस युवती के साथ मैं रहा यह नहीं बतला सकता। बुढ़िया के चंगुल से उस लाश की आत्मा मुक्त हुई या नहीं यह तो मैं नहीं जानता, मगर मेरी आत्मा अभी तक उसके तांत्रिक बंधन में बंधी हुई है। मैं भी जान–बूझकर अपने आपको बांधे हूँ इसलिये कि मुझे लाभ है। उसने 'हाकिनी विद्या' देने का वादा किया है और उस महा शव साधक से भी मिलवाने का वादा किया है, जिसकी चर्चा निशिकान्त ने की थी मुझसे। निश्चय ही उस सिद्ध पुरुष से मिलने पर एक नयी कहानी जन्म लेगी।

●

रहस्य तीन

अभिशप्त दीप और वह रहस्यमयी मूर्ति

मैं पूरे दस वर्ष केन्द्रीय पुरातत्व विभाग में एक उच्च पद से सम्बद्ध रहा हूँ और उन दस वर्षों में मुझे जो चमत्कारपूर्ण, अलौकिक और रहस्यमय अनुभव हुए हैं, उन पर सहज ही विश्वास करना इस वैज्ञानिक युग में कठिन है। स्वयं मुझे भी सहसा विश्वास नहीं हुआ था उन पर मगर सत्य तो सत्य ही है। कहने की आवश्यकता नहीं कि समय–समय पर अविश्वसनीय अनुभवों को कथा के रूप में लिपिबद्ध कर विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से बराबर प्रस्तुत करता रहा हूँ मैं। प्रस्तुत रचना भी उन्हीं अनुभवों की एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

सन् 1953। दक्षिण भारत की नीलगिरि पर्वत श्रृंखलाओं की एक मनोरम और सुरम्य घाटी में विभाग की ओर से खुदाई का कार्य हो रहा था। वहां मध्य युग की अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होने की आशा थी विभाग को। उस विस्तृत घाटी के एक ओर पर्वतमाला थी और दूसरी ओर था घने जंगलों का लम्बा सिलसिला। घाटी में एक नदी भी थी जो पर्वत की गोद से बलखाती हुई निकल कर जंगली की ओर मुड़ गई थी। नदी का पाट तो कम ही चौड़ा था, मगर उसकी धारा बड़ी तीव्र थी।

फाल्गुन का महीना था और सांझ का समय। तन मन को प्रफुल्लित करने वाली हवा बह रही थी, फिर भी वातावरण में एक अजीब–सी

खिन्नता भरी उदासी बिखरी हुई थी। जंगली झींगुरों का अनवरत क्रंदन, मेढकों की टर्र–टर्र, वृक्षों पर पंख फड़फड़ाते जंगली–पक्षियों का कलरव और जंगल की गहराई से आती जानवरों की मिली–जुली आवाजें वातावरण को और बोझिल तथा रहस्यमया बना रही थी।

मैं कैम्पस सें निकलकर अपने सहयोगी डॉ. खन्ना के साथ धीरे–धीरे टहलता हुआ नदी के किनारे पहुँचा। मैंने इधर–उधर देखा तो उस मनोरम घाटी में यहां–वहां प्राचीन महलों और अन्य इमारतों के भग्नावशेष बिखरे हुए थे। डॉ. खन्ना ने कहा–"शर्माजी, इन खण्डहरों को देखकर लगता है कि कभी यहां अच्छी–खासी बस्ती रही होगी।"

हाँ! मुझे भी यही लगता है।" मैंने जवाब दिया। सांझ की स्याह कालिमा धीरे–धीरे गहरी होती जा रही थी। पूर्वी क्षितिज पर नक्षत्र भी झिलमिलाने लगे थे अब।

उस क्षेत्र के नक्शें में उन प्राचीन भग्नावशेषों के अलावा एक अति प्राचीन मंदिर का भी उल्लेख था। प्राप्त विवरण के अनुसार उस प्राचीन मंदिर का निर्माण मध्ययुग में एक कापालिक ने करवाया था। उस समय चारों ओर कठोर तमोगुणी तंत्र साधकों का लाल ध्वज फहराया करता था। उस कापालिक का नाम था भैरवानन्द। उसने उस तांत्रिक मंदिर में किसी तमोगुणी उग्रशक्ति की प्रतिमा स्थापित की थी और उसमें प्राण प्रतिष्ठा के समय कापालिक भैरवानन्द ने नरबलि भी दी थी। किंवदन्ती के अनुसार हर अमावस्या की रात वह तांत्रिक देवी अपने आप जागृत हो उठती थीं। जिसका मतलब था मानव रक्त पान और कापालिक भैरवानन्द अमावस्या की कालरात्रि में नरबलि देकर उसे तुष्ट करता था।

निश्चय ही बलि देते समय का दृश्य अत्यन्त रोमांचकारी, भयानक और कारुणिक होता होगा इसमें सन्देह नहीं। मेरे मानसपटल पर अनायास ही उस समय के वातावरण का एक काल्पनिक खाका खिंच गया और अनजाने में मेरा सारा शरीर रोमांचित हो उठा।

धीरे–धीरे रात गाढ़ी होती जा रही थी। अबतक आकाश में चांद भी निकल आया था। जंगली वृक्षों के पीछे से छनकर आती चांदनी हल्की पीली उजास नदी के पानी में झिलमिलाने लगी थी। मैं कुछ देर

मुग्ध भाव से वह मनोहारी दृश्य देखता रहा, फिर मेरे कदम अपने आप उस रहस्यमय मंदिर की ओर बढ़ने लगे।

मंदिर एक फर्लांग की दूरी पर था। रास्ता बड़ा ऊबड़–खाबड़ और पथरीला था। मैं किस भावना से प्रेरित होकर मंदिर की ओर चल पड़ा था, यह मेरी भी समझ में नहीं आया उस समय। न यही समझा में आया कि कौन–सा अनजान आकर्षण था उस रहस्यमय मंदिर में मेरे लिए जिसके वशीभूत हो गई थी मेरी आत्मा। बस ऐसा लगा–मानो कोई करुण और याचना भरे स्वर में पुकार रहा है वहां मुझे। वास्तव में मेरी मानसिक और शारीरिक स्थिति बड़ी विचित्र होती जा रही थी।

थोड़ी दूर बाद नदी बायीं ओर मुड़ गई थी। वहीं थोड़ा हटकर पहाड़ की तलहटी में था वह रहस्यमय मदिर। उस समय चांद काफी ऊपर आ गया था जिसकी पीली रोशनी में वह मंदिर अत्यन्त भयानक और रहस्यमय लग रहा था, जैसे मंदिर नहीं भूतों का डेरा हो। वातावरण में गहरी निस्तब्धता छाई हुई थी। चारो ओर सांय–सांय हो रहा था। मन्दिर के चारों तरफ काफी दूर तक लम्बी–लम्बी जंगली घास उगी हुई थी। उसी के बीच से एक पतली–सी पगडण्डी मंदिर की ओर चली गई थी। मन्दिर काफी जीर्ण–शीर्ण अवस्था में था। उसका निर्माण आठ–दस फुट ऊँचे चबूतरे पर कराया गया था, जिस पर चढ़ने के लिए लम्बी–लम्बी सीढ़ियाँ भी बनवाई गई थीं अब वे सीढ़ियाँ टूट–फूट चुकी थीं और उन पर धूल की मोटी पर्त जम गई थी।

सदियों पहले निर्मित उस मन्दिर को देखकर लगता था कि अपने समय का वह भव्य मन्दिर रहा होगा। मंदिर का ऊँचा द्वार बड़ा भव्य था। टीकम की लकड़ी के बने दरवाजे काफी भारी थे, जिन पर बेल बूटों के अलावा तांत्रिक देवी–देवताओं की भव्य मूर्तियाँ भी बनी थी। मैंने दरवाजे के पल्लों को धकेला तो वे इस तरह खुल गए जैसे किसी ने उसे खोलने में मेरी सहायता की हो। दरवाजा खुलते ही चीं–चीं करते जंगली चमगादड़ों का एक झुण्ड भीतर से निकल मेरे सिर के ऊपर से होता हुआ बाहर चला गया। मै दहशत से भर उठा, फिर भी हिम्मत करके मन्दिर के भीतर घुस गया और टॉर्च जलाकर चारों ओर देखने लगा।

काफी लम्बा–चौड़ा मन्दिर था। पत्थर के फर्श पर धूल और मिट्टी की काफी मोटी तह जमी थी और पूरा मन्दिर मकड़ी के जालो से भरा था। वातावरण में एक विचित्र सी दुर्गन्ध समायी हुई थी।

सहसा मेरे हाथ स्थिर हो गए। टॉर्च की रोशनी एक स्थान पर ठहर गई। वहां एक ऊँची वेदी बनी थी। पांच छः फुट लम्बी–चौड़ी उस चौकोर वेदी पर किसी तांत्रिक देवी की विचित्र और रहस्यमई मूर्ति स्थापित थी। काले पत्थर की बनी वह मूर्ति भी कम–से–कम पांच फुट ऊँची, अवश्य रही होगी। उस पर भी धूल की मोटी पर्त जमी थी। प्रतिमा निःसन्देह अपने आप में एक अनोखी और विलक्षण कलाकृति थी। उसे देखंकर आश्चर्य, कौतूहल और भय के मिले–जुले भाव से भर उठा मैं।

पद्मासन की मुद्रा में शवासीन उस भावमयी देवी के तीन मुख थे और चार हाथ थे। मूर्ति की गोद में किसी तांत्रिक देवी की ही एक और मूर्ति बैठी थी। उस मूर्ति के दो ही हाथ थे, जिनमें वह खड्ग और त्रिशूल धारण किए थी। आश्चर्य की बात तो यह थी कि बड़ी वाली देवी की मूर्ति के दो हाथों में तो नरमुण्ड और खप्पर था, मगर शेष दोनों हाथों से उसने अपनी गोद में बैठी देवी के दोनों नेत्रों को बन्द कर रखा था।

वे मूर्तियाँ किसी मूर्तिकार की कारीगरी का अद्वितीय नमूना थीं। पत्थर पर तराशी गई उन प्रतिमाओं को देखकर ऐसा लगता था मानो किसी भी क्षण वे सजीव हो उठेंगी।

मैंने देखा– प्रतिमा के सामने एक कतार में पांच नरमुण्ड रखे थे और उसी प्रकार उनके सामने भैसों की पांच मूर्तियाँ थी। वे मूर्तियाँ पीतल की थीं। उनके बाद लगभग एक फुट ऊँचा अष्टधातु का दीप था, जिसे एक हाथी ने अपनी सूंड पर उठा रखा था।

वेदी के नीचे एक छोटा सा हवन कुण्ड था और उसी से लगा बलि यूथ बना था। उसी बलि यूथ पर कापालिक भैरवानन्द अपनी इष्ट देवी की रक्त की प्यास बुझाने के लिए मानव बलि देता रहा होगा यह समझते देर न लगी मुझे।

कुछ देर बाद लौटने के लिए मुड़ा ही था मैं कि पैर किसी चीज से टकरा गया। टॉर्च की रोशनी में नीचे झुककर देखा तो रोमांचित हो उठा। जिस वस्तु से मेरा पैर टकराया था, वह एक नरमुण्ड था। एकटक

देखते–देखते लगा कि उसकी आँखों के बड़े–बड़े दायरों में अदृश्य लहरें सी उठ रही है। उसी समय मैंने अपनी बगल में किसी के लम्बी–लम्बी सांस लेने का अनुभव किया, इसके साथ ही किसी की फिसफिसाती आवाज भी सुनायी दी। भय के मारे सारा शरीर थरथरा उठा, फिर एक पल भी और रुके बिना मैं वहां से भाग निकला। हांफता हुआ मैं कैम्प में पहुँचा तो रात के दो बजे थे। इसके बाद पूरी रात मुझे नींद आई। रह–रहकर आँखों के सामने वही नरमुण्ड थिरक उठता और शरीर रोमांचित हो उठता डर के मारे।

खुदाई का काम शुरू होने के करीब एक सप्ताह बाद पुरातत्व विभाग के एक उच्चाधिकारी वहां निरीक्षण करने आए। उनका नाम था बृजभूषण बहल। साथ में उनकी पत्नी मनोरमा बहल भी थीं। मन्दिर के वीरान खण्डहर, नरमुण्ड और भूत–प्रेतों की अनुभूति से भरे उस भयावह वाता[illegible] तरह आतंकित कर दिया था कि मैं मन ही मन [illegible] अधिकारी महोदय और उनकी पत्नी के [illegible] इच्छा न पैदा हो।

[illegible]ुष्य जो नहीं चाहता वही हो जाता है। एक [illegible] ही बैठें, ''क्यों शर्मा जी, यहां एक प्राचीन मन्दिर भी तो[illegible]

''[illegible]ाँ है, स[illegible]'' [illegible]ैंने सहमकर जवाब दिया।

''क्या उ[illegible] भी देखा जा सकता है? सम्भव है, वह हमारे विभाग के काम का हो।''

जिस बात का डर था, वही हुआ। हकलाते हुए मैंने कहा–''क्यों नहीं, सर। मगर..... मगर.....''

''सर, बात यह है कि मन्दिर अत्यन्त प्राचीन अवश्य है, वहां पुरातात्विक सामग्री भी मिलने की सम्भावना है, मगर वह यहां से काफी दूर है कम से कम तीन फर्लांग तो होगा ही। रास्ता भी काफी खराब है आपको तकलीफ होगी........''

सोचा था कि यह सब सुनकर बहल साहब का विचार बदल जाएगा, मगर ऐसा कुछ नहीं हुआ बल्कि वह उसी समय चलने के लिए तैयार हो गए; वह भी अपनी पत्नी को साथ में लेकर।

काफी लम्बा–चौड़ा मन्दिर था। पत्थर के फर्श पर धूल और मिट्टी की काफी मोटी तह जमी थी और पूरा मन्दिर मकड़ी के जालो से भरा था। वातावरण में एक विचित्र सी दुर्गन्ध समायी हुई थी।

सहसा मेरे हाथ स्थिर हो गए। टॉर्च की रोशनी एक स्थान पर ठहर गई। वहां एक ऊँची वेदी बनी थी। पांच छः फुट लम्बी–चौड़ी उस चौकोर वेदी पर किसी तांत्रिक देवी की विचित्र और रहस्यमई मूर्ति स्थापित थी। काले पत्थर की बनी वह मूर्ति भी कम–से–कम पांच फुट ऊँची, अवश्य रही होगी। उस पर भी धूल की मोटी पर्त जमी थी। प्रतिमा निःसन्देह अपने आप में एक अनोखी और विलक्षण कलाकृति थी। उसे देखंकर आश्चर्य, कौतूहल और भय के मिले–जुले भाव से भर उठा मैं।

पद्मासन की मुद्रा में शवासीन उस [illegible] देवी के तीन मुख थे और चार हाथ थे। मूर्ति की गोद में [illegible] ड़ी एक और मूर्ति बैठी थी। उस मूर्ति के [illegible] और त्रिशूल धारण किए थी। आश्चर्य [illegible] वी की मूर्ति के दो हाथों में तो नरमुण्ड [illegible] दोनों हाथों से उसने अपनी गोद में बैठी दे[illegible] न्द कर रखा था।

वे मूर्तियाँ किसी मूर्तिकार की का[illegible] अद्वितीय नमूना थीं। पत्थर पर तराशी गई उन प्रतिमाओं को देखकर ऐसा लगता था मानो किसी भी क्षण वे सजीव हो उठेंगी।

मैंने देखा– प्रतिमा के सामने एक कतार में पांच नरमुण्ड रखे थे और उसी प्रकार उनके सामने भैसों की पांच मूर्तियाँ थी। वे मूर्तियाँ पीतल की थीं। उनके बाद लगभग एक फुट ऊँचा अष्टधातु का दीप था, जिसे एक हाथी ने अपनी सूंड पर उठा रखा था।

वेदी के नीचे एक छोटा सा हवन कुण्ड था और उसी से लगा बलि यूथ बना था। उसी बलि यूथ पर कापालिक भैरवानन्द अपनी इष्ट देवी की रक्त की प्यास बुझाने के लिए मानव बलि देता रहा होगा यह समझते देर न लगी मुझे।

कुछ देर बाद लौटने के लिए मुड़ा ही था मैं कि पैर किसी चीज से टकरा गया। टॉर्च की रोशनी में नीचे झुककर देखा तो रोमांचित हो उठा। जिस वस्तु से मेरा पैर टकराया था, वह एक नरमुण्ड था। एकटक

देखते–देखते लगा कि उसकी आँखों के बड़े–बड़े दायरों में अदृश्य लहरें सी उठ रही है। उसी समय मैंने अपनी बगल में किसी के लम्बी–लम्बी सांस लेने का अनुभव किया, इसके साथ ही किसी की फिसफिसाती आवाज भी सुनायी दी। भय के मारे सारा शरीर थरथरा उठा, फिर एक पल भी और रुके बिना मैं वहां से भाग निकला। हांफता हुआ मैं कैम्प में पहुँचा तो रात के दो बजे थे। इसके बाद पूरी रात मुझे नींद आई। रह–रहकर आँखों के सामने वही नरमुण्ड थिरक उठता और शरीर रोमांचित हो उठता डर के मारे।

खुदाई का काम शुरू होने के करीब एक सप्ताह बाद पुरातत्व विभाग के एक उच्चाधिकारी वहां निरीक्षण करने आए। उनका नाम था बृजभूषण बहल। साथ में उनकी पत्नी मनोरमा बहल भी थीं। मन्दिर के वीरान खण्डहर, नरमुण्ड और भूत–प्रेतों की अनुभूति से भरे उस भयावह वातावरण ने मुझे इस तरह आतंकित कर दिया था कि मैं मन ही मन ईश्वर से मना रहा था कि वह अधिकारी महोदय और उनकी पत्नी के मन में मन्दिर को देखने की इच्छा न पैदा हो।

लेकिन कभी–कभी मनुष्य जो नहीं चाहता वही हो जाता है। एक दिन बहल साहब पूछ ही बैठें, "क्यों शर्मा जी, यहां एक प्राचीन मन्दिर भी तो है?"

"हाँ है, सर!" मैंने सहमकर जवाब दिया।

"क्या उसे भी देखा जा सकता है? सम्भव है, वह हमारे विभाग के काम का हो।".

जिस बात का डर था, वही हुआ। हकलाते हुए मैंने कहा–"क्यों नहीं, सर। मगर..... मगर....."

"सर, बात यह है कि मन्दिर अत्यन्त प्राचीन अवश्य है, वहां पुरातात्विक सामग्री भी मिलने की सम्भावना है, मगर वह यहां से काफी दूर है कम से कम तीन फर्लांग तो होगा ही। रास्ता भी काफी खराब है आपको तकलीफ होगी........"

सोचा था कि यह सब सुनकर बहल साहब का विचार बदल जाएगा, मगर ऐसा कुछ नहीं हुआ बल्कि वह उसी समय चलने के लिए तैयार हो गए; वह भी अपनी पत्नी को साथ में लेकर।

जब हम लोग वहां पहुंचे तो सूरज पश्चिम की ओर झुक चला था। दिन के उजाले में मैंने देखा मन्दिर के दायरे से सटा हुआ एक बहुत बड़ी इमारत का खण्डहर था। वहां एक कुआं भी था, जो अब झाड़–झंखाड़ से भरकर पट गया था। खण्डहर के बीच में करीब तीन फुट ऊँचा पत्थर का एक खूंटा था, जिसके आस–पास मनुष्य की तमाम खोपड़ियाँ पड़ी थी। कुछ खोपड़ियाँ टूट गई थीं, पर कुछ अभी सही सलामत थीं। बहल साहब वह खण्डहर और वहां बिखरी मानव खोपड़ियाँ देखकर प्रसन्न हो गए।

खण्डहर में घूमते–घूमते एक जगह हमारा साथ छूट गया, मगर पांच मिनट बाद ही वह लगभग भागते हुए मेरे पास पहुँचे, तो देखा– आवेश और उत्साह से उमड़े पड़ रहे थे। मैंने उत्सुकता से पूछा "क्या बात है, सर?

"मिस्टर शर्मा!" बहल साहब चहक कर बोले– "जरा मेरे साथ आइए...... यह देखिए।

उन्होंने जिस ओर इशारा किया था, उधर देखते ही मैं विस्मय–विमुग्ध रह गया लेकिन अभी मेरी नजर उस चीज पर नहीं पड़ी थी, जो वह दिखाना चाहते थे। थोड़ा निकट जाकर देखा मैंने, वह काले पत्थर पर तराशी गई करीब एक फुट ऊँची एक युवती की अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक मूर्ति थी। एक अद्भुत चमक थी उस मूर्ति में। नृत्य की विशेष मुद्रा में हाथ जोड़कर थोड़ा सिर झुकाए हुए खड़ी सौन्दर्य की सजीव प्रतिमा लगती थी वह। मगर उसे देखते ही मिसेज बहल के चेहरे का रंग उड़ गया था।

"क्या खयाल है, तुम्हारा?" बहल साहब ने पत्नी की घबराहट की ओर ध्यान दिए बिना पूछा, "इस मूर्ति को ले चलें? पुरातत्व की दृष्टि से बहुत ही कीमती है, यह मूर्ति!"

उनकी पत्नी के मुंह से एक शब्द भी नहीं निकल सका। बेचारी के होंठ कांप रहे थे और वह यों डर रही थीं जैसे कोई भयानक बला देख ली हो।

बहल ने आगे बढ़कर मूर्ति को उठाना चाहा तो मैंने उन्हें रोकते हुए कहा– "सर इस मूर्ति को न छुएँ! वह जहां पड़ी है, वहीं रहने दें उसे।"

बहल साहब ने विस्मय से देखते हुए कुछ ऐसी मुद्रा बनाई, जिससे स्पष्ट आभास मिल गया कि उन्हें मेरी बात पसन्द नहीं आई है। पूछने

लगे, "लेकिन क्यों? यह मूर्ति यहां बेकार ही तो पड़ी है। अगर इसे ले जाकर विभाग को सौंप दूं तो किसी को क्या आपत्ति हो सकती है? हम लोग ऐसी प्राचीन और मूल्यवान वस्तुओं की ही खोज में तो आए हैं, यहां।"

"आपका कहना बिलकुल ठीक है सर!" मैंने नरमी से कहा, "निःसन्देह किसी की आपत्ति नहीं हो सकती, मगर मेरी आत्मा हिचकिचा रही है इसके लिए। कभी-कभी आत्मा की आवाज को भी सुन लेना चाहिए सर। सम्भव है, मूर्ति के पीछे कोई अनिष्ठ छिपा हो।"

मेरी बात सुनकर बहल साहब ने एक बार घूरकर मेरी ओर देखा, फिर बिना उसे लिए खण्डहर से बाहर निकल पड़े।

इसके बाद हम लोग मन्दिर में पहुंचे। वहां का दृश्य देखकर बहल साहब भावाविभोर हो उठे। आश्चर्य से मुंह बाए वह कभी विलक्षण देवी मूर्ति की ओर देखते तो कभी उसके सामने रखी तांत्रिक वस्तुओं को। बड़ी देर बाद उच्छ्वसित स्वर में उनके मुंह से निकला, "मध्य युग की बड़ी मूल्यवान वस्तुएँ हैं ये। ऐसी मूर्ति तो मैंने कभी देखी ही नहीं।" फिर उनकी नजर दीप पर पड़ी। कहने लगे, "उफ़, यह भी अपने आप में बेमिसाल चीज है। शर्माजी क्या इन सब पर भी पुरातत्व विभाग का अधिकार नहीं है? क्या इन्हें भी नहीं ले जाया जा सकता?"

बहल साहब का व्यंग समझ गया मैं। मन्दिर में हुए अपने अनुभवों को बतलाते हुए मैंने कहा-"सर, वास्तव में यह मंदिर और यहां की तमाम वस्तुएं बड़ी रहस्यमयी हैं। मुझे सब कुछ अभिशप्त सा लग रह रहा है। अगर मेरी बात मानें तो यहां की कोई भी चीज न ले जाना ही अच्छा रहेगा।"

बहल साहब पहले तो हो-हो कर हंसे, फिर गम्भीर स्वर में बोले, "मैं आपकी बातों पर विश्वास भी कर लूँ तो अपने कर्तव्य की दृष्टि से इन्हें छोड़ना उचित नहीं समझता। आखिर हम लोग इस घाटी में आये क्यों हैं? अगर हम इसी तरह भूतप्रेतों पर विश्वास करने लगे.... इसी तरह वहम पालने लगे तो एक दिन शायद पुरातत्व विभाग ही बन्द हो जाएगा और भारतीय संस्कृति की ये तमाम कला-कृतियाँ यों ही नष्ट हो जायेंगी।

बात पूरी करते-करते बहल साहब उस दीप को उठाकर गौर से देखने लगे, फिर उसे अपने बैग में रखते हुए बोले, "यही सबसे अधिक

मूल्यवान चीज लगी मुझे। इसका परीक्षण करके स्वयं इसकी रिपोर्ट तैयार करूँगा। आप एक सप्ताह के अन्दर यहां की जितनी भी चीजें हैं, उन सबकी लिस्ट बनाकर मुझें दें और उन्हें कैम्प में भेजने की व्यवस्था करें।"

पांचवें दिन मैं डॉ0 खरे के साथ बैठा बहल साहब के आदेशानुसार मन्दिर की मूर्तियों की सूची बनाने और उन्हें यथास्थान पहुंचाने के विषय में विचार–विमर्श कर रहा था, तभी एक टैक्सी आकर कैम्प के सामने रुकी। पिछली सीट पर पत्नी के सहारे टिके हुए बहल साहब बैठे थे। उन्होंने कम्बल ओढ़ रखा था और आँखें बन्द थीं और सारा शरीर कांप रहा था। उनकी पत्नी का भी चेहरा बदरंग था। कहने लगीं "इन्हें जाने क्या हो गया है? कई डॉक्टरों को दिखाया, पर रोग किसी की समझ में नहीं आ रहा है।"

बहल साहब होश में नहीं थे। एक बार उन्होंने आँखें खोलकर मुझे देखा जरूर था, पर पहचानने में असमर्थ रहे।

मैंने उन्हें कैम्प में ले जाकर पलंग पर लिटा दिया। उनकी पत्नी बतलाने लगीं, "उस दिन हम लोग यहां से लौटकर डाकबंगले में पहुँचे, बस उसी समय से इनकी तबीयत खराब है आधी रात में एक दम बुरी तरह चीखने–चिल्लाने लगे कि कोई आदमी इनकी छाती पर सवार होकर गला दबा रहा है। मैंने सोचा– शायद कोई डरावना सपना देख रहे हैं, पर वह जागने पर भी बराबर चीखते–चिल्लाते रहे। सुबह तक इन्हें तेज बुखार हो आया और बदन आग की तरह दहकने लगा। मैंने कस्बे के एक डॉक्टर को दिखाया तो उसने जांच करके बताया कि इन्हें लू लग गई है...."

श्रीमती मनोरमा बहल कुछ क्षण पति की ओर देखती रही, फिर कहने लगी, "उस डाक्टर की दवा से इनका बुखार तो उतर गया, फिर भी चीखना–चिल्लाना नहीं रुका और बराबर यही कहते थे कि कोई आदमी इनका गला घोंट रहा है। हम सबने उन्हें समझाने की बहुत कोशिश की कि यह महज वहम है लेकिन यह कोई बात सुनने को तैयार ही नहीं....."

रात को बहल साहब की हालत गम्भीर हो गई। बुखार दोबारा चढ़ गया और वह जाने क्या अनाप–शनाप बकने लगे। मुंह से झाग भी

निकलने लगी, फिर उनका सारा शरीर इस तरह ऐंठने लगा जैसे बड़ी यंत्रणा सहनी पड़ रही हो। दोबारा डॉक्टर बुलाया गया तो उसने चिन्ता प्रकट करते हुए सलाह दी कि रोगी को तुरन्त अस्पताल पहुंचाया जाय।

बहल साहब को उसी समय कस्बे के अस्पताल में भर्ती कर दिया गया। वहां डॉक्टरों ने उनका मुवायना करके कहा– "चिन्ता की बात नहीं है। यह जरा सख्त किस्म का मलेरिया है।"

मलेरिया का एकमात्र इलाज कुनैन था, इसलिए बहल साहब को कुनैन की अच्छी–खासी मात्रा दी जाती रही, लेकिन रत्तीभर फायदा नहीं हुआ, बल्कि मर्ज बढ़ता ही गया। बहल साहब हरदम वैसे ही चिल्लाने लगे...

तीसरे रोज रात को वह सोते–सोते उठकर बैठ गए। पत्नी को पास बुलाकर कहने लगे, "सुनो, वह आदमी कहता है कि अगर मैंने दीप वापस वहीं ले जाकर न रखा तो वह मुझे मार डालेगा.. सुनती हो, न..... वह क्या कहता है... वह आदमी इस समय भी मेरे सामने खड़ा है..... उसके हाथ में कटार है, आँखों से शोले निकल रहे हैं। उसका रंग एकदम काला है। मुझे इसकी शक्ल से भी डर लग रहा है.... यह निश्चय ही मेरा कत्ल कर देगा.....

बहल साहब की पत्नी ने बताया, "मैंने बार–बार उनके मुंह से यही बात सुनकर निश्चय किया कि उनको किसी तरह टैक्सी से मन्दिर तक ले जाए और दीपक को फिर वही रख दिया जाये।"

मैंने बहल साहब की ओर देखते हुए कहा, "जब साहब की हालत इतनी खराब थी तो उन्हें लाने की क्या आवश्यकता थी? कोई भी व्यक्ति दीपक को ले जाकर मन्दिर में रख सकता था।" बहल साहब की पत्नी ने कहा, "शुरू में मैंने भी बहल साहब से यही कहा था लेकिन यह माने ही नहीं कहते थे कि काला आदमी इनको ताकीद कर गया है कि दीपक इन्हीं को रखना होगा और किसी को नहीं। जब मैंने कहा, ठीक है, हम कल टैक्सी करके चलेंगे तो सुनते ही यह डर के मारे कांपते हुए कहने लगे.... नहीं–नहीं, ऐसा मत करो....दीपक आज ही वापस रखा जाना चाहिए, वरना कल तक मैं खत्म हो जाऊँगा और इतना बोलकर यह बेहोश हो गये।"

"इसके बाद क्या हुआ?" मैंने पूछा।

बहल साहब की पत्नी ने कहा, "ये सारी बातें मैंने अस्पताल के डॉक्टर को बतायी। वह मेरी बात सुनकर स्तब्ध रह गए, फिर कहने लगे कि यदि ऐसी बात है तो आप जाकर दीपक को मन्दिर में रखवा दें। हो सकता है कि मरीज ठीक ही हो जाए लेकिन डॉक्टर का कहना था कि अस्पताल से मुझे अपनी जिम्मेदारी पर इन्हें ले आना होगा। आखिर मैंने डॉक्टर की बात मान ली और अपनी जिम्मेदारी पर बहल साहब को अस्पताल से बाहर ले आयी। उस समय मेरी आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहा, जब मैंने देखा कि कहाँ तो यह बिस्तर से उठ नहीं सकते थे, लेकिन यहां आने के लिए खुद ही अस्पताल से बाहर निकलकर टैक्सी पर बैठ गए।

वहां से हम सीधे आपके पास चले आ रहे हैं। सौभाग्य से आप मिल भी गये। चलिये अब दीपक को मन्दिर में रखवा दें तो इस विपत्ति से मुक्ति मिले।" मैंने बहल साहब के पास जाकर देखा– वह बिस्तर पर पड़े एकटक छत की ओर देख रहे थे। उनकी हालत पहले से बेहतर थी। मेरे और अपनी पत्नी के कदमों की आहट पाकर वह उठने का प्रयास करने लगे, लेकिन मैंने उन्हें लेटे रहने का इशारा किया।

बहल साहब ने व्यग्रता से अपनी पत्नी से कहा "ईश्वर के लिए उस दीपक को जल्दी से मन्दिर में रखवा दो। वह आदमी अभी–अभी फिर आया था और कह रहा था कि अगर तूने आज सूरज ढलने तक वह दीपक मन्दिर में न पहुंचा दिया तो रात में मैं मर जाऊँगा....हे भगवान! बचालो मुझे। यह कहकर बहल साहब घबराकर दोनों हाथों से अपना चेहरा ढंक कर रोने लगे बच्चों की तरह।

मैंने उन्हें किसी तरह धैर्य बंधाया।

मन्दिर तक टैक्सी नहीं जा सकती थी, इसलिए हम सब पैदल ही रवाना हुए। ताज्जुब की बात थी कि बीमार होने के बावजूद बहल साहब को किसी प्रकार की तकलीफ नहीं हुई। पैदल चलने में वह अपने आप में उस समय पूरी ताकत महसूस कर रहे थे।

इस बार मुझे वहां पहले से भी अधिक भय का अनुभव हुआ। जब दीपक लेकर बहल साहब के साथ मन्दिर में प्रवेश किया तो भीतर काफी

अंधेरा था। सहसा मुझे ऐसा लगा जैसे किसी अदृश्य व्यक्ति की परछाई मेरे निकट आयी और गायब हो गयी। सारा शरीर रोमांचित हो उठा मेरा। मैंने जल्दी से उस रहस्यमय तांत्रिक दीपक को वहीं रखवा दिया जहां से बहल साहब उठाकर ले गए थे।

बाहर आया तो देखा कि बहल साहब पहले से ज्यादा स्वस्थ नजर आ रहे थे। फिर तीन–चार दिनों में तो वह एकदम पहले जैसे ही हो गये। यह चमत्कार देखकर सभी लोग आश्चर्यचकित थे।

मेरे पूछने पर बहल साहब बताने लगे, "जब मन्दिर से दीपक उठाकर मैं कस्बे में पहुंचा तो मुझे अपने अगल–बगल एक लम्बी–चौड़ी छाया हरकत करती हुई दिखाई दी। फिर रात को सोते समय भी अपने बिस्तर के निकट एक नंग–धड़ंग काले रंग के आदमी को देखा। उसके गले में ढ़ेर सारी मालायें पड़ी थीं। बदन पर केवल एक लाल लंगोटी थी। उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थी और चेहरा क्रोध से लाल हो रहा था।

हाथ से दीपक की ओर इशारा किया जिसका मतलब यह था कि उस मन्दिर से क्यों लाया गया? फिर कुछ ऐसा भाव दिखाया कि दीपक फौरन वहीं वापस पहुंचाया जाए वरना प्राणों की कुशलता नहीं। मुझ पर इतना भय और आतंक छा गया था कि मैं न हिल–डुल सका और न कुछ बोल ही पाया फिर अकस्मात पलक झपकते ही भयंकर रूप रंग वाला रहस्यमय व्यक्ति अदृश्य हो गया।

इस घटना के बाद उस रहस्यमय मन्दिर के खण्डहर से किसी मूर्ति या अन्य वस्तु को उठाकर लाने का प्रश्न ही नहीं रहा। बहल साहब कुछ आवश्यक निर्देश देकर अपनी पत्नी सहित वापस चले गये। गर्मी पड़ने लगी थी पर ख़ुदाई के सिलसिले में मुझे अभी कम से कम तीन चार महीने वही रहना था इसलिए अपने ठहरने की व्यवस्था डाक बंगले में कर ली। डाक बंगला बिल्कुल सुनसान निर्जन स्थान पर था। कस्बे का शोर–गुल भी वहां तक नहीं पहुंचा पाता था। उसके एक ओर चीड़ और सागवान के घने जंगल थे, जिससे सन्नाटा और बढ़ जाता था।

डाक बंगले में कुल तीन कमरे थे। एक बड़ा–सा हॉल था और दो छोटे–छोटे कमरे। किचन और बाथरूम बाहर की ओर थे। मैंने बड़े हॉल

में अपना कार्यालय खोल लिया और एक कमरे में अपने सोने का इन्तजाम कर लिया। दूसरे कमरे पर खरे साहब ने अपना अधिकार जमा लिया। हमारे साथ एक चपरासी भी था। नाम था रामलोचन तिवारी। वह आफिस के काम के अलावा मेरा और खरे साहब का खाना भी बना देता था। रहता भी साथ ही था, अतः उसके सोने की व्यवस्था दालान में हो गयी। वातावरण में बड़ी अजीब–सी शान्ति थी। सांझ होते ही ऐसा लगता मानो हम किसी कब्रिस्तान में रहने पहुँच गए हों। उस समय सियारों और कुत्तों की मिली–जुली आवाजों, झींगरों की रीं–रीं और चीड़ एवं सागवान के पेड़ों पर ऊँघते पक्षियों के परों की फड़फड़ाहट से वह कब्रिस्तानी वातावरण और अधिक भयानक हो उठता था।

मैं दिनभर खुदाई स्थल पर रहता, फिर डाकबंगले लौटने पर आफिस में बैठकर लिखा–पढ़ी का काम निपटाता। तबतक रात के नौ बज जाते और रामलोचन खाना लाकर मेज पर रख देता। वह जानता था कि मैं नौ बजे तक खाना खा लेता हूँ। इसके बाद मैं कोई 'उपन्यास या पत्रिका लेकर तबतक पड़ता रहता, जबतक मुझे नींद न आ जाती। वहां मेरी यही दिनचर्या थी। दो–तीन हफ्ते में कार्यों में इतना व्यस्त रहा कि उस रहस्यमय मन्दिर और वहां की रोमांचित करने वाली अनुभूतियों को भूल ही गया, लेकिन उसी समय अचानक फिर एक अविश्यसनीय–सी घटना हो गई।

रोज की अपेक्षा उस दिन खुदाई स्थल से लौटने में थोड़ी देर हो गयी थी मुझे। आकाश में काले–भुरे बादल छाए हुए थे। मैं जैसे ही कस्बे के करीब पहुंचा, छरछराकर तेज बारिश भी शुरू हो गई। डाक बंगले तक पहुंचते–पहुंचते मैं भीगकर बुरी तरह लथपथ हो गया था।

खरे साहब और रामलोचन तिवारी रिपोर्ट लेकर दो दिन पहले दिल्ली गए थे। डाक बंगले में मैं अकेला ही था। बाजार से खाने के लिए कुछ नमकीन भी लेता आया था। रामलोचन के दिल्ली चले जाने के बाद में चाय और नमकीन पर ही जीवन यापन कर रहा था। खाना बनाने का झंझट कौन मोल लेता इसीलिए दो दिन से चाय पर ही गुजारा हो रहा था। खासतौर से उस समय भीग जाने के कारण सोचा था कि कपड़े बदलकर सबसे पहले चाय ही बनाऊँगा.......

मगर जब अपने कमरे में पहुंचा तो एकबारगी स्तब्ध रह गया मैं। मेरे कमरे में टेबल पर चाय–नाश्ता और भोजन की थाली रखी हुई थी, जिसकी सुगन्ध से ही उसके स्वाद का आभास मिल गया।

इसके साथ ही वह सब देखकर मेरा सर चकरा गया। कौन रखा गया है चाय–नाश्ता? किसने रखी है भोजन की यह थाली? कमरे में तो ताला बन्द था। डाक बंगले का गेट भी बन्द था और वहां भी ताला लगा हुआ था। फिर.... फिर... कौन कैसे भीतर आकर रख गया यह सब? वहां कोई ऐसा व्यक्ति था भी नहीं जिससे मैं कुछ पूछता।

मैं बड़ी देर तक विस्मय से वह सब देखता रहा, फिर रहा नहीं गया। भूख लगी ही थी। आखिर ज्यादा सोच–बिचारे बिना मैं कपड़े बदलकर बैठ गया........ फिर जमकर खाया मैंने। सब कुछ गरम था... एकदम ताजा..... और बेहद स्वादिष्ट खाना खाने के बाद शरद बाबू का एक उपन्यास लेकर मैं पड़ने बैठ गया।

इस बीच पानी थम गया था। बाद छोटे–छोटे टुकड़ों में बिखर गये थे और आकाश में बिखरे हुये बादलों के उन टुकड़ों के पीछे से चतुर्थी का चांद झांकने लगा था। अब मेरे सोने का समय हो गया था। किताब बन्द करके जैसे ही उठने को हुआ, अचानक मेरी नजर घूम गयी। मगर क्यों घूम गयी– यह नहीं बतला सकता मैं। हाँ जहाँ–जहाँ नजर टिकी थी वहां चांद की पीली रोशनी में एक छाया को गेट से होकर अन्दर आते देखकर विस्मय हुआ मुझे। छाया कुहरे जैसी अस्पष्ट लगी, फिर भी पहचान गया मैं। वह किसी नारी की आकृति थी, जो उस समय मानो हवा में लहरा रही थी। बड़ा विचित्र–सा लगा था ही भय की भी अनुभूति हुआ मुझे। फिर सोचा–शायद दृष्टिभ्रम रहा हो।

मगर वह भ्रम नहीं वास्तविकता थी।

जब मैं अपने कमरे गें सोने के लिये गया तो वहां भी मुझे वही नारी छाया दिखाई पड़ी। इस बार वह पहले से अधिक स्पष्ट थी। थोड़ी देर बाद धीरे–धीरे उसका रूप पूरी तरह स्पष्ट हो गया मेरे सामने।

वह एक नवयुवती थी। उम्र बीस वर्ष से अधिक नहीं थी। घने काले बाल। पतली नाक। गुलाब की कोमल पंखुड़ियां जैसे पतले–पतले रसीले होंठ। झील जैसी गहरी रसीले होंठ। झील जैसी गहरी स्वाप्निल

आँखें। कमरे के दरवाजे के पास चुपचाप खड़ी अपनी कल्पनामयी स्निग्ध आँखों से अपलक मेरी ओर निहार रही थी वह नवयुवती।

भय विस्मय और संशय के मिले–जुले भावो से मर गया मेरा दिल। उस निविड़ बरसाती स्याह रात में निर्जल सुनसान डाक बंगले में उस छोटे से कमरे में उस नवयुवती की उपस्थिति बड़ी ही विचित्र और रहस्यमयी लगी मुझे।

न जाने कबतक मैं भी स्वप्नवत निहारत रहा उस रहस्यमयी युवती की ओर– बतला नहीं सकता। पर थोड़ी देर बाद ही स्वप्न का वह रहस्यमय धुंध अचानक हट गया मेरे सामने से। लगभग चीख कर मैंने पूछा, "कौन हो तुम? बतलाओं..... तुम कौन हो?"

युवती कुछ बोली नहीं, केवल फिस–फिस हंसती रही कुछ देर तक, फिर अचानक ही गायब हो गयी। ऐसा लगा मानो उसका सम्पूर्ण अस्तित्व हवा में विलीन हो गया हो एकबारगी।

इसके बाद मैं पूरी रात सो नहीं सका और बेचैनी से करवट बदलता रहा। बार–बार मस्तिष्क में सिर्फ एक ही प्रश्न उभर पाता था– आखिर वह नवयुवती कौन थी? कहां से आई थी वह? क्यों आई थी मेरे पास? क्या काम था उसका मुझसे? हो सकता है फिर आये वह।

मगर उस वह फिर नहीं दिखाई दी।

बहल साहब ने लम्बी· छुट्टी ले ली थी उनके मन में जो भय व्याप्त हो गया था उसके कारण उधर आना उनका सम्भव नहीं था अब। इसलिए उनके कार्य का भी भार मुझ पर आ गया था। काम पूरा होने में अभी काफी देर थी। कम से कम दो महीना तो लग ही सकता था। डॉ0 खरे और रामलोचन सरकारी कागज लेकर दिल्ली चले गये थे। दस–पन्द्रह दिनों के बाद ही उन लोगों की लौटने की सम्भावना थी। अकेला ही रह गया था मैं अब।

कस्बा को न छोटा कहना चाहिए और न तो बड़ा ही आबादी बस, यही बीस–पच्चीस हजार के लगभग। थाना, अस्पताल और अन्य सरकारी, गैर सरकारी कार्यालय कस्बे के बाहर थे। डाकघर तो उन सबसे अलग–थलग था। जिसके चारो ओर हमेशा गहरा सन्नाटा पसरा रहता था और उसी के साथ चिपकी रहती थी श्मशान जैसी उदासी भी। कैसे रहूँगा

मैं डाकबंगले में अकेले ? फिर मन में न जाने कैसा अज्ञात भय भी समाया हुआ था। बार–बार ऐसा लगता था कि कोई अदृश्य शक्ति मेरे चारो ओर चक्कर काट रही है।

बहल साहब की स्थिति देखकर बहुत कुछ सोचने के लिए बाध्य कर दिया था मुझे। सतर्क था मैं। काम करने वालों में दर्जनों आदिवासी मजदूर और मजदूरीनी थी और उन्हीं में था एक रामखिलावन भी। काफी मेहनती हट्टाकट्टा शरीर सरल स्वभाव, मृदुभाषी और हाद से ज्यादा सीधा–साधा और यही कारण था कि मैं उसे अधिक मानता था और वह भी मुझे अधिक से अधिक सम्मान देने की कोशिश करता था। बहल साहब से कह मैंने उसे मजदूरों का मुखिया बनवा दिया था। अब उसका प्रभाव था मजदूरों पर। लोग उसके आदेश का पालन करते थे।

बगल के गांव में रहता था रामखिलावन। बूढ़े माँ–बाप के के अलावा उसकी एक छोटी बहन भी थी जिरिया। मैंने एक बार जिरिया को देखा था। राम खिलावन के लिए रोटी लेकर आयी थी तब वह। उम्र अधिक नहीं, बस यही बीस–बाइस वर्ष गठीला शरीर, काला स्याह रंग और मझोला कद फिर भी बहुत सुन्दर। साफ सफाई रखने वाली चाय नाश्ता और खाना भी अच्छा ही बना लेती थी।

अबतक मैं रामलोचन पर निर्भर था। उसके चले जाने के बाद चाय, नमकीन पर जीवनयापन कर रहा था मैं। खाना बनाने का झंझट कौन मोल लेता। फिर खाना बनाना भी तो ठीक से नहीं आता था मुझे।

शायद मेरा कष्ट देखा न गया रामखिलावन से और बिना मुझसे कुछ पूछे मेरे यहां काम पर रख दिया जिरिया को। संकोची स्वभाव के कारण मना भी न कर सका मैं। फिर आवश्यकता भी तो थी। कबतक रहता इस प्रकार भूखा प्यासा। जिरिया के आते ही कायापलट हो गया मेरे कमरे का। रसोईघर भी चमचमाने लगा था। चारो ओर सफाई ही सफाई। सवेरे का नाश्ता और दोनों समय का खाना मिलने लगा मुझे। जिरिया सवेरे आती, दिन भर रहती थी और जब मैं काम पर से वापस सायंकाल लौटता तो मुझे खाना खिलाकर वापस लौट जाती घर। तीन–चार दिनों में ही मेरे मनोभावो और आवश्यकताओं को समझ गयी थी जिरिया। न जाने क्यों मुझे अच्छी लगने लगी थी वह? बतला नहीं

सकता उसका। उसका सौम्य शीतल स्वभाव, सरल, कोमल स्वर निष्कपट व्यवहार और गहरा अपनत्व। इसी सब से मुग्ध हो गया था मैं एकबारगी जिरिया पर। सच पूछा जाय तो किस कारण एक लगाव सा हो गया था मुझे जिरिया से—वासनारहित, कामनारहित और स्वार्थ रहित।

एक दिन मैं पूछ बैठा— जिरिया, तुमको इस बियावान जगह पर डर नहीं लगता अकेले में? जिरिया हंसने लगी मुंह पर आंचल रखकर बोली— डर कैसा साब, मुझे डर—वर नहीं लगता। आपके चले जाने के बाद साफ—सफाई करती हूँ और फिर सो जाती हूँ। इतना कह कर वह भाग गयी कमरे के बाहर और मैं न जाने क्यों देखता रहा उसे जाते हुए और फिर एक अविश्वसनीय घटना घटी।

उस दिन सवेरे से ही रिमझिम बारिश हो रही थी। पुरुवा हवा के लय पर आम पाक और महुए के पेड़ झूम रहे थे। पानी थमने का नाम ही नहीं ले रहा था। रोज की अपेक्षा उस दिन थोड़ी देर हो गयी मुझे वापस लौटने में।

सांझ की स्याह कालिमा चारों ओर पसर चुकी थी। अभी भी आकाश में काले भूरे बादल छाए हुए थे। डाक बंगले तक पहुंचते—पहुंचते काफी भींग गया मैं। कपड़ा बदला भूख लगी थी। बड़ा ही अच्छा किया था जिरिया ने। खाना बनाकर चली गयी थी बारिश के कारण। खाना गरम था। पहले जमकर खाना खाया और फिर शरद बाबू का एक उपन्यास लेकर बैठ गया मैं बिस्तर पर। इस बीच पानी थम गया था। बादलों के छोटे—बड़े टुकड़े बिखरे हुए थे आकाश में और उन टुकड़ों के पीछे से चतुर्दशी का रूपहला चांद झांकने लगा था। मेरे सोने का समय हो गया था।

किताब बन्द कर जम्भाई ली और बिस्तर पर लेट गया मैं। नींद के कारण आँखे अब बोझिल—सी होने लगी थी लेकिन क्यों और कैसे अचानक मेरी दृष्टि घूम गयी। मगर क्यों घूमी यह नहीं बतला सकता मैं। हाँ! जहां दृष्टि टिकी थी वहां चांद की पीली रोशनी में बरामदे में एक छाया खड़ी दिखलायी दी मुझे। वह छाया कुहरे जैसी थी और अस्पष्ट थी। फिर भी पहचान गया मैं। वह किसी नारी की छाया थी। उसका आकार—प्रकार और रूप—रंग काफी स्पष्ट हो चुका था अबतक मेरे सामने। वह जैसे हवा में लहरा रही थी। बड़ा विचित्र लगा मुझे और

साथ ही भय की भी अनुभूति हुई मुझे। सोचा, हो सकता है दृष्टि भ्रम हो। मगर वह भ्रम नहीं वास्तविकता थी। वह नारी छाया धीरे–धीरे चलकर कमरे में आ गयी और मेरी चारपायी के निकट खड़ी हो गयी। तुरन्त उठकर बैठ गया और उसको देखने लगा। वह एक नवयुवती थी। बीस वर्ष से अधिक नहीं थी उम्र।

उस रहस्यमयी युवती के। घने काले बाल, पतली नाक, गुलाब की कोमल पंखुड़ियों जैसे पतले रसीले होंठ। झील जैसी गहरी स्वप्निल आँखें। चुपचाप पाषाणवत् खड़ी अपनी कल्पनामयी स्निग्ध आंखों से अपलक मेरी ओर निहार रही थी वह नवयुवती। भय विस्मय और संशय के मिले–जुले भाव से भर गया मेरा मन। उस निविड़ बरसाती स्याह रात में निर्जन सुनसान डाक बंगले के उस छोटे से कमरे में उस नवयुवती की उपस्थिति बड़ी ही विचित्र और रहस्यमयी लगी मुझे।

न जाने कबतक स्वप्नवत् निहारता रहा उस रहस्यमयी युवती की ओर, बतला नहीं सकता मैं। पर थोड़ी देर बाद ही सपने का वह रहस्यमय धुन्ध एकाएक छन्न् से टूट गया और मानसिक चेतना जागृत हो उठी और लगभग चीख कर मैंने पूछा– कौन हो तुम बतलाओ कौन हो तुम........ मेरी बात सुनकर नवयुवती पहले फिस्–फिस् कर हँसी और कोमल स्वर में बोली– पहचाना नहीं आपने मुझे? अरे! इतनी जल्दी इस अभागिन को भूल गये आप?

असमंजस में पड़ गया मैं। बोला न गया मुझसे कुछ नवयुवती ही आगे बोली– मन्दिर के खण्डहर में अस्थिपंजरो और नरमुण्डों के बीच धूल से अटी जिस काले पत्थर की तराशी हुई युवती की मूर्ति आपने देखी थी और जिसे आपने प्रशंसा की दृष्टि से भी देखा था, वहीं मैं हूँ।

यह कैसे हो सकता है भला.... चिहुंक कर बोला मैं। मैं सत्य कह रही हूँ बन्धु! वह पाषाण मूर्ति मेरी अपनी ही है।

समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर वह रहस्यमयी कहना क्या चाहती है? क्या संबंध है मुझसे उसका? शायद मेरे मन के भाव को समझ गयी नवयुवती मैं आपकी मनोदशा से परिचित हो गयी हूँ– नवयुवती ने हल्के से हँसते हुए कहा– मेरा नाम आपने नहीं पूछा। पूछना भी नहीं चाहिए। एक विवश अभागिन का नाम भला कौन जानना चाहेगा?

मेरा हृदय न जाने क्यों द्रवित हो उठा। बोला– ऐसा मत कहिए। बतलाइये क्या नाम है आपका।

शिवांगी ?

शिवांगी! बहुत सुन्दर नाम है आपका। कहां रहती है आप और यहां कैसे और क्यों आयी?

आपने एक साथ कई प्रश्न कर दिया। ठीक है कोई बात नहीं, उत्तर तो देना ही पड़े मुझे। थोड़ा उदास हो गया था युवती का स्वर और उसी उदास स्वर में कहने लगी वह–मन्दिर के खण्डहर में रहती हूँ। सैकड़ों साल बीत गये उसी श्मशान जैसे खण्डहर में रहते हुए। वहां पड़ी काले पत्थर की बनी जो नारी मूर्ति थी, वह मेरी ही है। जिसकी मन ही मन प्रशंसा की थी आपने। ऐ! क्या कहा ? वह मूर्ति....आपकी है? थोड़ा हकलाते हुए पूछा मैंने। भय और आश्चर्य के मिले–जुले भाव से भर गया एकाएक मेरा मन। हाँ! आपको आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं भयभीत भी नहीं होना चाहिए आपको।

विश्वास करे वह मूर्ति मेरी ही हैं और न जाने कब से वहां आने–जाने वालों की ठोकरे खा रही है बतला नहीं सकती। उस मूर्ति की कलाकृति और भावभंगिमा देख कर मन ही मन आकर्षित ही नहीं, मोहित भी हो गये थे आप। बस, इसीलिए चलकर आना पड़ा मुझे इस समय आपके पास।

हिम्मत कर पूछा– क्या आप मनुष्य शरीर में नहीं है।

नहीं लेकिन कभी थी–विषण्ण भाव से उत्तर दिया शिवांगी ने। लगता है आप काफी दुःखी, सन्तप्त और व्यक्ति है। क्या कष्ट है और कौन सा दुख है और क़ौन सी है पीड़ा? मुझे अपना समझ कर बतलाइय न?

कोई उत्तर नहीं मिला। हाँ! सिसकने की आवाज अवश्य सुनाई दी मुझे। अब वहां कुछ भी नहीं था। एकाएक कमरे का वातावरण हल्का हो गया। बिना और कुछ बतलाये चली गयी थी शिवांगी की भटकती हुई आत्मा। उसके बाद सो न सका। करवटे ही बदलता रहा और सोचता रहा शिवांगी के संबंध में।

सवेरे उठा और न जाने किस भावावेश में मूर्ति को उठा लाया और रगड़ रगड़कर खूब साफ किया। चमकने लगी मूर्ति। अब उसका आकार–

प्रकार और रूप अधिक स्पष्ट हो गया था। सचमुच कल्पना से अधिक सुन्दर और आकर्षक मूर्ति थी वह। निश्चय ही कलाकार ने बड़े ही मनोयोग से बनाया होगा उस मूर्ति को इसमें सन्देह नहीं।

उस दिन मैं नहीं गया काम पर। दोपहर का खाना लेकर जब जिरिया मेरे कमरे में आयी तो उस समय रहस्यमयी विलक्षण मूर्ति हाथ में लिये हुए था और गौर से देख रहा था उसे।

जिरिया एकबारगी चौक पड़ी। टेबल पर थाली रखते हुए बोली– साब! यह मूर्ति जानते हैं। आप, किसकी है?

जिरिया ने ऐसे ढंग से मुझसे प्रश्न किया था कि रात की सारी बातें बतलानी पड़ी एक–एक कर। सब सुनकर जिरिया धीमें से बोली– राजकुमारी शिवांगी को मैं जानती हूँ साब! मेरे सिवा भला और कौन जानेगा।

मैं अवाक् रह गया एकबारगी। मुंह बाये देखने लगा उसकी ओर। कैसे जानती है वह शिवांगी को ?

अबतक जिरिया का स्याह चेहरा लाल हो चुका था। आँखे भी सुर्ख हो गयी थी उसकी। साब! राजकुमारी शिवांगी बहुत सुन्दर थी जिरिया कहने लगी भावावेश में– आपने क्या देखा साब! अनिंद्य सुन्दरी थी वह। आलता मिले कच्चे दूध जैसा ही रंग था उनके सुगठित शरीर का। सुकोमल अंग–प्रत्यंग, पतली कमर, मझोला कद जैतून की पतली कोमल टहनियों जैसी पतली उंगलियाँ, भरे–भरे गाल, चांद जैसा मुखड़ा, बड़ी–बड़ी भौंराली कजरारी आँखे, नुकीली नाक और जवा पुष्प जैसे पतले होंठ। सजीव रति ही लगती थी, राजकुमार शिवांगी।

किसी अनुभवी और रस पगे कवि की भाषा में जिरिया ऐसे वर्णन कर रही थी, मानो उसके सामने खड़ी हो राजकुमारी शिवांगी उस समय।

हत्वाक् सा मुँह बायें अभी भी देख रहा था जिरिया के बदले हुए रूप को मैं।

क्या बतलाऊँ साब! सोलह वर्ष की उमर में ही विधवा हो गयी बेचारी! सावन भादो के काले मेघ जैसे काले घने बालों के बीच सफेद रेखा जैसी सूनी मांग और गोरी काया पर सफेद साड़ी देखी नहीं जाती थी किसी से। उजड़ा सुहाग, मन की उदासी और आत्मा की रिक्तता

राजकुमारी शिवांगी के रूप–लावण्य और सौन्दर्य को प्रभावित न कर सकी थी और न तो उनके दपदपाते चमकते चेहरे को कलान्त और श्रीहत कर सकते थे वैराग्य वैधव्य के कलेश, दुःख और कष्टज्ञान वैराग्य और भक्ति का भाव जैसे कूटकूट कर भरा था उनकी आत्मा में। उनकी नजर में न कौमार्य का महत्व था, न महत्व था सौभाग्य का और न तो महत्व था वैधव्य का ही। अपने आपको स्वच्छ निष्कलंक और पूर्ण पवित्र समझती थी। थी ही ऐसी बात।

विवाह के चौथे दिन ही बिना पति का मुख देखे ही हो गयी विधवा वह। एक क्षण में ही उजड़ गया बसने के पहले ही उसका वैवाहिक जीवन। सोने जैसा भविष्य श्मशान की राख में बदल गया। हे भगवान! कितना विद्रूप मजाक किया था राजकुमारी शिवांगी के साथ नियति ने। क्या अपराध था उस कोमलांगी का? कुछ भी तो नहीं। उसकी आत्मा एक कलाकार की आत्मा थी साब। जब रात के दूसरे पहर बुर्जी पर बैठकर सितार बजाती थी वह पूरी तरह तन्मय और लीन होकर साब उस समय जंगल के पशु–पक्षी भी लीन हो जाते सितारे के निकलने वाले स्वर को सुनकर।

अभी तक मेरी समझ में नहीं आया था कि जिरिया यह सब कैसे बतला रही थी। उसकी भाव भंगिमा बोलने का ढंग और चेहरे पर आते जाते भाव को देखकर लगता था जैसे राजकुमारी शिवांगी के साथ उसने भी जीया है। मैं अवाक् था, स्तब्ध था और कुछ सोचने में भी था असमर्थ। बस सुन रहा था जड़वत् जिरिया जो कुछ बतला रही थी उसे साब! सुनिए, अब मैं आपको बतलाती हूँ। जिरिया आगे कहने लगी पहले जैसे भावावेश में– आज से चार सौ वर्ष पहले यहां एक राजा का राज्य था और राजा का नाम था वीरभद्र नारायण सिंह। वे काफी धार्मिक प्रवृत्ति के थे। माँ काली के उपासक थे। दोनों नवरात्रों में काफी धूमधाम से यज्ञ हवन पूजन ब्राह्मण भोजन गरीबों को अन्न, वस्त्र, दान किया करते थे। उनके जैसा उस समय दान–दक्षिणा देने वाला कोई था ही नहीं। इतना सब करने के बाद भी वे सन्तान का मुख न देख सके थे अभी तक। साठ वर्ष की अवस्था भी तो हो गयी थी अब। एक प्रकार से निराश और हताश हो चुके थे वीरभद्र नारायण सिंह। पहली पत्नी

विवाह के एक वर्ष बाद ही गोलोकवासी हो गयी थी। फिर उन्होंने दूसरा विवाह किया। दूसरी पत्नी भी बारह–चौदह साल रही फिर वह भी उसने भी संसार छोड़ दिया। दोनों से कोई सन्तान नहीं हुई थी। पत्नी का शोक, सन्तान न होने का दुख महाराज को एक प्रकार से तोड़कर रख दिया था उस शोक और दुख ने।

बाद में स्वजनों और परिजनों के काफी समझाने बुझाने पर तीसरा विवाह किया महाराज वीरभद्र नारायण सिंह ने। उस समय उनकी अवस्था पचपन के आसपास थी और तीसरी पत्नी की तो बस यही बीस–पच्चीस वर्ष। नाम था कोमलांगी। बहुत सुन्दर आकर्षक और पढ़ी–लिखी थी रानी कोमलांगी। पति–पत्नी के बीच गहरी विषमता होते हुए भी पतिपरायणा सिद्ध हुई वह, इसमें सन्देह नहीं। महाराज के मन की बात तो मैं नहीं बतला सकती, लेकिन राज्य के सभी छोटे–बड़े लोगों का विश्वास था कि सन्तान अवश्य होगी महाराज को।

वंश परम्परा टूटेगी नहीं और तभी नेपाल के एक महातंत्र साधक से भेंट हुई महाराज की। उसका नाम था दिव्यपाणी, वह कापालिक सम्प्रदाय का युवा साधक था। उसका व्यक्तित्व आकर्षक और सुन्दर था। आयु अधिक नहीं बस यही चालीस के लगभग। बड़ी–बड़ी आँखों में साधना का तेज और दप दप् करता हुआ मुखमण्डल, गौरवर्ण, स्वस्थ देहयष्टि कन्धे तक झूलती हुई घनी, काली केश राशि। गले में रूद्राक्ष की मालाएँ, चेहरे पर साधना का गाम्भीर्य।

नेपाल से पैदल चलकर आया था किसी एकान्त स्थान की खोज में साधना के लिए दिव्यपाणी। यह स्थान उसे अनुकूल और रमणीय लगा। विशेष कर नदी के किनारे काफी दूर तक फैले हुए श्मशान ने काफी प्रभावित किया उस रहस्यमय तंत्र साधक को। वह कुशल शिल्पि भी था। साधना से जो समय बचता उसका उपयोग वह पत्थर की छोटी–छोटी मूर्तियों को गढ़ने में करता। गांव वाले अब तक काफी प्रभावित हो गये थे उस तंत्र साधक से। उसका सौम्य रूप किसी को भी आकर्षित करने में सक्षम था। श्मशान में पीपल के नीचे उसके लिए अच्छी सी झोपड़ी बना दी गयी थी।

झोपड़ी में ही पड़ा रहता था वह। दिन में बाहर बहुत ही कम निकलता। कम मिलता और कम बोलता लोगों से। महाराज वीरभद्र सिंह की जमीन्दारी में उस समय इक्कीस गांव थे। अब तक उन गांवों के सभी लोग प्रायः परिचित हो चुके थे उस रहस्यमय साधक से। झोपड़ी के भीतर किसी के भी जाने की हिम्मत न पड़ती। बाहर से हाथ जोड़कर लोग चले जाते। रात हो या दिन, किसी भी समय कोई लाश श्मशान में जलाने के लिए आती। उस समय साधक सतर्क हो जाता था। उसकी गतिविधि असाधारण और असामान्य हो उठती।

जब तक लाश चिता में जलकर पूरी तरह राख में बदल न जाती तब तक पीपल के नीचे आसन जमा कर बैठा रहता और नरमुण्ड में भरे हुए शराब को बराबर पीता रहता और अपलक देखता रहता जलती हुई चिता की ओर। कोई रोका–टोकी नहीं करता और न तो कोई कुछ कहता। जो भी देखता, वह उस समय के उसके रूप और भाव को देख कर सहम जाता एकबारगी।

सावन का महीना था साब! जिरिया थोड़ा रूक कर आगे कहने लगी– नदी उफनी हुई थी। पाट काफी चौड़ा हो गया था। कई गांवों में पानी घुस चुका था। धारा में न जाने कितने जानवर बह गये और न जाने कितने आदमी। एक तरह से त्राहि–त्राहि मच गया था चारो ओर। श्मशान में भी पानी भर आया था लेकिन पीपल और उसके नीचे बनी तांत्रिक की झोपड़ी बची रही। उसी समय की बात है साब। बारह–चौदह साल का एक किशोर बालक न जाने कहा से बहता हुआ आया और श्मशान से अड़ गया।

कई लोगों ने बांस से ढकेल कर धारा में डालने की कोशिश की, लेकिन बेकार। किशोर बालक की लाश हटी नहीं वहां से, बराबर जमी रही अपनी जगह। ताज्जुब हुआ क्या बात है। पास के गांव के चार–पांच आदमी खड़े थे। गांव के चौधरी जसपाल भी थे वहां। बड़ा दबदबा था जसपाल चौधरी का। यहाँ तक कि महाराज भी उनकी बातों को अनसुनी नहीं करते थे। मुझसे भी रहा न गया। मैंने भी जाकर देखा लाश को। ऐसा लगता था मानो कुछ देर पहले ही चोला छोड़ा हो उस किशोर ने। चेहरे पर ताजगी थी, आँखे तो बन्द थी लेकिन मुंह थोड़ा

खुला था। लगता था– अभी–अभी कुछ बोलेगा वह। मगर साब! मुर्दा तो मुर्दा, वह कहां बोलने वाला था। साब तभी एक चमत्कार हुआ। तंत्र–मंत्र का चमत्कार था वह साहब। पहली बार लोगों ने जाना और समझा उस युवा तंत्र साधक को।

क्या हुआ? सम्मोहित सा पूछा मैंने जिरिया से। वह तांत्रिक झोपड़ी के बाहर निकला और धीरे–धीरे चलकर गम्भीर मुद्रा में मुर्दे के पास आकर खड़ा हो गया वह। उसके हाथ में खोपड़ी थी और उस खोपड़ी में शराब भरी थी। मुर्दे के शरीर का आधा हिस्सा पानी में था और आधा बाहर। तन पर कोई कपड़ा नहीं था। तांत्रिक काफी देर तक मुर्दे को घूरता रहा और बीच–बीच में खोपड़ी की शराब भी पी लेता था। करीब एक घंटे तक ऐसा ही सब चला। अब तक काफी भीड़ लग गयी थी श्मशान में साब। मैं भी उसी भीड़ में थी। फिर मैंने ऐसा सच देखा, जिस पर कोई विश्वास नहीं करेगा साब कोई नहीं। इतना बोल कर चुप हो गयी जिरिया। उस समय उसके चेहरे पर घबराहट और बेचैनी साफ झलक रही थी। कभी मेरी ओर देखती सिर उठा कर तो कभी खिड़की के बाहर।

आकाश में बादल गरज रहे थे। बारिश हो रही थी पुरुवा हवा के लय पर। गेस्ट हाउस और उसके बाहर चारों ओर गहरा सन्नाटा पसरा हुआ था। डालों पर बैठे पक्षियों के बार–बार पंख फड़फड़ाने की आवाज और झाड़ियों में चिपके झीगुरों के झीं... झीं का अनवरत स्वर और वह रहस्यमयी कथा– बोझिल बना रही थी वातावरण को।

एकाएक आकाश में वज्र रौरव सा बादल गरजा तड़तड़ कर बिजली चमकी। जिरिया चिहुंक उठी, लगा कहीं वह खोयी हुई थी अभी तक। हाँ! तो फिर क्या हुआ जिरिया बतलाओ। एक सिगरेट सुलगाते हुए पूछा मैंने। तन्द्रा से जगी जिरिया। भावाविष्ट तो थी ही पहले से। उसी भाव में आगे कहने लगी बहुत बड़ा चमत्कार हो गया साब। बहुत बड़ी घटना घट गयी श्मशान में। नरमुण्ड में बची शराब को मुर्दे के अधखुले मुंह में उड़ेल दिया तांत्रिक ने और चौधरी से कड़क कर बोला– उठाओं इस बालक को। मरा वरा कहा हैं स्साला। नाटक करता है माँ, बाप को रूलाने के लिए।

चौधरी ने पानी में से लाश उठाई। नहीं, नहीं अब वह लाश कहां थी। वह तो जीवित हो गयी थी और ऑखे खोलकर देख रही थी अपने चारो तरफ सिर घुमा–घुमाकर। अब तक अपनी झोपडी के भीतर समा गया था तांत्रिक और अपनी झोपडी में उस किशोर को ले आने का आदेश भी दे गया था।

अब तक जगल के आग की तरह फैल चुकी थी तांत्रिक के चमत्कार की बात। जो सुनता वह अवाक् और स्तब्ध हो जाता। इस चमत्कारिक घटना को महाराज ने भी सुनी। चौधरी ने ही सारी बाते बतलायी महाराज को। व्याकुल हो उठे महाराज तांत्रिक से मिलने के लिए आग्रहपूर्ण उस तंत्र साधक को महल में आने का निमंत्रण भेजा अपने मंत्री द्वारा महाराज ने लेकिन स्वीकार नहीं किया उस महातंत्र साध ाक ने महाराज के अनुरोधपूर्ण निमन्त्रण को। उसका कहना था कि साध ाक का स्थान महाश्मशान यानी परम शून्य स्थान है। इस संसार में महाश्मशान से बढ़कर परम शून्य स्थान भला कहां मिलेगा। राजा को मेरी आवश्यकता है मुझे राजा की नहीं। कोई पहुंचा हुआ परम सिद्ध साध ाक है– यह समझते देर न लगी महाराज को। उसी समय महाश्मशान में पहुंच गये महाराज अपनी पत्नी को लेकर। पिछली अमावस्या की रात में एक सौ आठ बार श्मशान का चक्कर लगवा कर दीक्षा दी थी तंत्र साध ाक दिव्यपाणी ने उस किशोर को और नाम रखा था श्मशानेश्वर। अब वह उनका तांत्रिक शिष्य बन चुका था।

दीक्षा के कारण उसका सुन्दर चेहरा चमकने लगा था सोने की तरह। जब महाराज झोपड़ी में गये, उस समय श्मशानेश्वर भी ध्यानस्थ बैठा था महातंत्र साधक के निकट। महाराज के साथ आये फल, मिठाई विभिन्न प्रकार के रेशमी वस्त्रों से भर गयी थी झोपड़ी। महाराज और महारानी हाथ जोड़े खड़े थे। किसी मृतक को जीवित कर देना क्या साध ारण बात थी? दोनों प्राणियों के लिए साक्षात् भगवान शिव के रूप ही थे दिव्य पाणी।

आज्ञा की प्रतीक्षा में थे शायद महाराज और महारानी। कुछ देर के बाद उस महासाधक ने सामने रखी फलों की टोकरी में से एक फल उठाकर गम्भीर स्वर में आदेश देते हुए कहा– महाराज! यह फल आप

अपने हाथ से महारानी को दे दें। रात्रि में सोने के पूर्व फल खा लेंगी। पिछले जन्म में आपने एक युवा ब्राह्मण की हत्या की है, इसलिए पुत्र की आशा मत करिये। हाँ पुत्री अवश्य होगी और वह भी महारानी द्वारा पिछले जन्म में किए गये एक घोर अपराध के कारण बिना पति का मुख देखे विधवा हो जायेगी वह।

फल तो ले लिया महाराज ने लेकिन एक परम साधक के मुंह से निकले शब्दों ने नीचे से ऊपर तक उनको झकझोर दिया था एकबारगी। सन्न हो गये दोनों प्राणी लेकिन किया क्या जा सकता था नियति को जो स्वीकार था– वह शब्दों के रूप में बाहर निकल चुका था उस महासाधक के मुख से विवशता थी; सिर झुकाएँ लौट गये महाराज और महारानी। संकेत पाकर श्मशानेश्वर ने कुछ दूर पर जलती हुई चिता में महाराज द्वारा लायी गयी सारी सामग्री डाल दी।

जो होना था वही हुआ। फल खाने के बाद महारानी गर्भवती हुई। यथासमय एक सुन्दर पुत्री को जन्म दिया उन्होंने। नाम रखा गया शिवांगी लेकिन पति–पत्नी अधिक प्रसन्न नहीं हुए। दोनों के चेहरे पर भविष्य की स्याही स्पष्ट दिखलायी दे रही थी। तांत्रिक की भविष्यवाणी कदापि असत्य सिद्ध नहीं हो सकती। कन्या को जन्म देने के एक महीने बाद महारानी स्वर्गवासी हो गयी। अकेले हो गये महाराज। उनका अपना भविष्य अन्धकार में डूबता हुआ प्रतीत होने लगा था। धीरे–धीरे समय बीतता गया। शिवांगी अब सोलह साल की हो चुकी थी। भावगढ़ के राजकुमार शिवशंकर सिंह के साथ एक दिन विवाह कर दिया गया शिवांगी का खूब धूमधाम से।

शिवांगी और शिवशंकर की जोड़ी सचमुच शिव–पार्वती जैसी थी। पूरी जमींदारी में कई दिनों तक लगातार दीवाली मनायी गयी। ब्राह्मणों को भोजन, वस्त्र और दक्षिणा आदि दिया गया। दरिद्रो और गरीबों को भी अन्न–वस्त्र और दान–दक्षिणा दिया गया। महाराज ने दहेज भी अपनी ओर से खूब दिया था। राजकुमार शिवशंकर सिंह अति प्रसन्न थे। राजकुमारी शिवांगी के रूप यौवन और सौन्दर्य पर मुग्ध थे वह। एक महीने बाद गौना था। मन ही मन पत्नी को लेकर कई योजनाएं बना रखी थी राजकुमार शिवशंकर ने।

एक दिन मित्रों के आग्रह पर वे भावगढ़ के जंगल में शिकार खेलने गये। मित्र मण्डली भी साथ थी। राजकुमार हाथी पर सवार थे। एक कुशल शिकारी माने जाते थे वह। कई बीहड़ जानवरों का अदम्य साहस के साथ शिकार किया था उन्होंने। लेकिन इस बार नियति कुछ और ही चाहंती थी। जो घटने वाला था घट गया वह। शेर का शिकार करने गये राजकुमार स्वयं शेर का शिकार बन गये। खून से सराबोर और लथपथ राजकुमार का शव जब राजमहल में लाया गया तो हा–हाकार मच गया।

राजमहल ही नहीं पूरा भावगढ़ शोक सन्तप्त हो गया एकबारगी। प्रबल आघात लगा महाराज वीरभद्र सिंह को। शोक से विह्वल हो उठी उनकी आत्मा। कैस देखेंगे एकमात्र पुत्री के वैधव्य रूप को वह? नहीं, नहीं, कभी भी देखा न जायेगा उनसे पुत्री की सूनी मांग। सिर थामकर गिर पड़े जमीन पर। फिर नहीं उठे वह। राजवैद्य ने नाड़ी टटोली, हृदय को भी देखा, लेकिन सब व्यर्थ। हृदयाघात से हुई थी मृत्यु महाराज की।

राजकुमारी शिवांगी की मानसिक स्थिति अति शोचनीय हो गयी थी। एक ही दिन में विधवा भी हो गयी थी और अनाथ भी। अब उनके जीवन में भला रह ही क्या गया था? शून्य के सिवाय और कुछ नहीं। उस विशाल राजमहल में अकेला जीवन कैसे बीतेगा। कौन संभालेगा असीम बोझ, असीम पीड़ा, असीम कष्ट के सागर में डूबी हुई आत्मा को? एक बस बचपन की सहेली थी राधा।

वही एकमात्र संबल थी राजकुमारी के शून्य से भरे एकांकी जीवन का। लेकिन ऐसा कब तक चलता। कुछ तो करना ही था। महाराज के मंत्री थे अभय सिंह। महाराज के पूर्ण निष्ठावान और पूर्ण विश्वसनीय थे वह। एक दिन राजकुमारी ने अभय सिंह को सम्मानपूर्वक बुलाया और राज्य का पूरा कार्यभार सौंप दिया उन्हें और पूर्ण स्वतंत्र हो गयी वह। किसी भी वस्तु से अब मोह नहीं रह गया था उनके मन में। एक परम संन्यासी जैसी हो गयी थी उनकी आत्मा। वैराग्य कूट–कूट कर भर गया था उनके जीवन के कण–कण में। शून्य से भरे सपाट जीवन में कोई अपना था तो वह थी एकमात्र राधा।

समय जाते देर नहीं लगती साब। धीरे–धीरे दस वर्ष का समय बीत गया। देखते ही देखते राजकुमारी की उमर पच्चीस पार कर चुकी थी और राधा की उमर हो गयी थी अठाइस–तीस के लगभग। राधा अकेली थी। माता–पिता बचपन में ही परलोक सिधार गये थे। बहन, भाई थे नहीं मौसी, महल में काम करती थी। उसी के साथ राधा भी महल में रहने लगी थी।

मौसी के मरने के बाद पूरी तरह अनाथ हो गयी राधा। उस समय राधा चार साल की थी। शिवांगी का जन्म उस समय नहीं हुआ था। कहां जाती चार वर्ष की अबोध बालिका और वह भी अनाथ। महारानी ने उसे अपने सीने से लगा लिया। मातृत्व की भूखी महारानी का वात्सल्य उमड़ पड़ा जैसे राधा पर। फिर राजमहल की एक अंग ही बन गयी राधा पर। फिर राज महल की एक अंग ही बन गयी राधा और अब आज का दिन मैं तो विधवा का जीवन बिता रही हूँ राधा। तू मेरे साथ क्यों धूं–धूं कर जल रही हैं। विवाह कर ले। मंत्री जी ने एक लड़का पसन्द भी कर लिया है तेरे लिए। योग्य है, सुन्दर है पूरी तरह तुम्हारे अनुकूल है वह युवक। राजकुमारी ने एक दिन राधा को समझाया। लेकिन राधा ने यह कहकर टाल दिया कि आपका साथ कभी नहीं छोड़ूंगी।

आप जैसे वैधव्य जीवन बितायेंगी वैसे ही मैं बिताऊँगी कौमार्य जीवन। आप की तरह मेरे भी सारे सपने टूटकर बिखर गये हैं। आपके सिवाय रह ही क्या गया है मेरे भविष्य में।

यह सुनकर राजकुमारी चुप हो गयी। फिर कभी कुछ नहीं बोली राधा से।

राजकुमारी शिवांगी के जन्म के पूर्व ही महातंत्र साधक दिव्यपाणी, अपने शिष्य श्मशानेश्वर को साथ लेकर हिमालय की ओर चले गये। शायद अपनी भविष्यवाणी को साकार होते हुए नहीं देखना चाहते थे वह। अब तो जो होना था वह सब हो चुका था। उस अन्तर्यामी तंत्र साधक को निश्चय ही सारी घटना ज्ञात हो चुकी थी इसमें सन्देह नहीं। दीर्घ अन्तराल के बाद जब दिव्यवाणी अपने शिष्य श्मशानेश्वर के साथ वापस लौटे तो लोगों को घोर आश्चर्य के साथ आनन्द भी हुआ। चौद

ारी ने उसकी आगवानी ही नहीं की बल्कि श्मशान के निकट एक छोटा सा आश्रम भी बनवा दिया उन्होंने। महासाधक के शरीर पर वृद्धावस्था का प्रभाव पड़ने लगा था अब धीरे–धीरे। पहले ही की तरह अपने आश्रम के कमरे में प्रायः साधनारत रहते। आवश्यकता पड़ने पर ही निकलते बाहर। वे क्यों वापस उसी श्मशान में इतने वर्षों के बाद आये थे, यह एक रहस्य था अपने आपमें।

श्मशानेश्वर के व्यक्तित्व को देखकर लोग दंग रह गये एकबारगी। इतने वर्ष हिमालय में गुरु के सान्निध्य में रहकर निश्चय ही कठोर तंत्र साधना की होगी उसने, इसमें सन्देह नहीं और तभी तो 38–40 की अवस्था में भी सोने की तरह दमक रहा था उसका चेहरा। गोरा रंग, लम्बी चौड़ी काठी का शरीर, घुघंराले काले बाल, तेजस्वी आंखे, कानों में झूलते हुए सोने के रत्नजडित कुण्डल, गले में रूद्राक्ष की मालाएँ, वस्त्र के नाम पर लाल रंग की लुंगी और चादर।

राजकुमारी शिवांगी को सारी कथा मालूम थी। जब उन्होंने सुना कि महातंत्र साधक अपने शिष्य श्मशानेश्वर के साथ आये हुए हैं तो प्रसन्न हो उठी वह। दर्शन के लिए लालायित हो उठी उनकी आत्मा। एक दिन सायंकाल राधा को साथ लेकर पहुँच गयी श्मशान में। साधक दिव्यपाणी तो आश्रम के भीतर थे। लेकिन श्मशानेश्वर श्मशान में खड़ा आकाश की ओर शून्य में न जाने क्या निहार रहा था। उस समय वहां एक चिता भी जल रही थी धूँ–धूँ कर।

अपने आपमें मग्न और अपने आपमें लीन एक सुदर्शन युवा तंत्र साधक को देखकर राजकुमारी शिवांगी दंग रह गयी एकबारगी। ऐसा भी कोई पुरुष कभी जीवन में देखने को मिलेगा इसकी कल्पना भी नहीं की थी उन्होंने। देखा तो देखती ही रह गयी अपलक वह। राधा की भी स्थिति विचित्र हो रही थी। वह कभी युवा साधक को देखती तो कभी राजकुमारी की ओर और फिर अपने आपसे पूछती–क्या होगा अब?

थोड़ी देर रूककर राजकुमारी आश्रम के भीतर चली गयी। महासाधक अर्धमिलित समाधि की अवस्था में थे। राजकुमारी ने उनके चरण का स्पर्श किया और जमीन पर बिछी चटाई पर बैठ गयी चुपचाप। महासाधक की समाधि भंग हुई। नेत्र खोले, कुछ देर तक राजकुमारी की

ओर स्थिर दृष्टि से देखते रहे और फिर धीरे से बोले— मैं सब कुछ जानता हूँ। तुम एक दिव्य आत्मा हो। मन को शान्त रखो। मां महामाया के चरणों में अपने को अर्पित कर दो, कल्याण होगा।

दुःख, सुख तो मन का भ्रम है। कर्ता भाव का त्याग करो। कर्ताभाव ही 'अहंकार' है और अहंकार ही 'माया है'। माया से मुक्त होने पर अपनेआप सारी चिन्ताएँ दूर हो जायेंगी। फिर एक ऐसी अवस्था प्राप्त होगी— जिसे जीवन मुक्त अवस्था कहते हैं। तुमको इसी अवस्था को उपलब्ध होना चाहिए। यह सुनकर राजकुमारी की आँखों से आँसू ढुलक ने लगे। किसी अन्तर्वेदना से व्याकुल हो उठी वह लेकिन बोली कुछ नहीं।

थोड़ा रूक कर महासाधक ने आगे कहा— मेरी इच्छा हैं कि तुम्हारे सहयोग से यहां श्मशान भैरव के मन्दिर का निर्माण होना चाहिए। इसी कार्य के लिए हिमालय से चलकर मैं आया हूँ यहाँ।

दोनों हाथ जोड़कर और सिर झुकाकर महासाधक की आज्ञा को स्वीकार कर लिया राजकुमारी ने और देखते ही देखते एक वर्ष के अन्दर विशाल और भव्य मन्दिर का निर्माण हो गया। दीपावली की महानिशा बेला में उस विशाल भव्य मन्दिर में पाषाण मूर्ति राज कुमारी शिवांगी के द्वारा भैसे और बकरे की बलि दे कर।

मूर्ति अत्यन्त सुन्दर, भव्य और आकर्षक थी। स्वयं महातंत्र साधक दिव्य प्राणी ने गढ़ी थी कमी किसी समय। श्वान पर असीम श्मशान भैरव की गोद में पद्मासन की मुद्रा में बैठी हुई थीं श्मशान भैरवी उनके दोनों नेत्रों को अपने दोनों हाथों से बन्द रखे हुए थे श्मशान भैरव।

बलि के बाद पुष्पाजंलि अर्जित की राजकुमारी ने किन्तु श्मशानेश्वर आपत्ति की। राजकुमारी विधवा हैं। उनको कैसे अधिकार प्राप्त हो गया पुष्पाञ्जलि अर्पित करने का?

महासाधक ने उस समय कोई उत्तर नहीं दिया। खड़े होकर दोनों हाथ ऊपर उठाया उन्होंने और श्मशानसिद्ध भैरवमंत्र का उच्चस्वर में उच्चारण करते हुए आवाह्न किया पाषाण प्रतिमा में भैरव और भैरवी का। आवाहन करते ही जैसे सजीव हो उठी पाषाण प्रतिमा और प्रदीप्त हो उठा प्रतिमा का मुखमण्डल।

महासाधक के दोनों चरणों को गहकर हिलक–हिलक कर रोने लगी राजकुमारी शिवांगी। मन्दिर का वातावरण कुछ समय के लिए कारुणिक हो उठा एकबारगी।

राजकुमारी के सिर पर अपना दाहिना हाथ फेरते हुए महासाधक ने गम्भीर स्वर में कहा– तुम विधवा नहीं, तन, मन और आत्मा से पवित्र एक विदुषी नारी हो। साधना संस्कार है तुम्हारी आत्मा में। इतना कहकर महासाधक ने एक काले पत्थर की नारी मूर्ति राजकुमारी को देते हुए कहा– यह तुम्हारी मूर्ति हैं। तुम्हारें जन्म के पहले ही इसको गढ़ा था मैंने। मंत्र भूत हैं यह मूर्ति, सदैव अपने पास रखना, कल्याण होगा। कुछ अमोच तांत्रिक सिद्धियाँ जो तुम्हारी आत्मा में सुप्त पड़ी है, वह जागृत हो कर इस मूर्ति में समाधित हो जायेंगी। यह सब जब श्मशानेश्वर ने सुना तो अवाक् रह गया।

उसने एक बार तीक्ष्ण दृष्टि से राजकुमारी की ओर देखा और फिर मन्दिर के बाहर निकल गया तीव्र गति से। निश्चय ही उस साधक की आत्मा को चोट पहुंची होगी। हीन भावना से भी पीड़ित हो गया होगा वह इसमें सन्देह नहीं।

उसी दिन से नित्य प्रातः और सायं राजकुमारी मन्दिर में आती और पूजा–अर्चना करती और चली जाती। श्मशानेश्वर सब कुछ देखता पर बोलता कुछ नहीं। अत्यधिक मौन ही रहने लगा था अब वह। उसकी मनःस्थिति को समझते देर न लगी थी महासाधक को। एक दिन उन्होंने अपने निकट बुलाया और समझाते हुए कहने लगे श्मशानेश्वर से– तुम्हारी पीड़ा को समा रहा हूँ मैं। इतने समय तक तुमने मेरी सेवा करते हुए साधना की।

मेरी कई कठिन परीक्षाओं में भी उत्तीर्ण हुए तुम लेकिन सिद्धि प्राप्त करने की इच्छा पूर्ण नहीं हुई तुम्हारी इसका क्या रहस्य हैं, यह तुम नहीं जानते। तुम्हारा शरीर शूद्र का है। तुम्हारी हत्या कर नदी में फेंक दिया गया था और तुम्हारा सब नदी की धारा में बदले हुए मुझे इस स्थान पर प्राप्त हुआ। धन और भूमि के लोभ में तुम्हारे बड़े भाई ने स्वयं तुम्हारी हत्या की थी। उस समय उसकी पत्नी गर्भवती थी। बदला लेने की भावना से तुम्हारी आत्मा ने भाई के पुत्र के रूप में जन्म ले लिया। आज

भी तुम्हारे भाई का पुत्र है लेकिन उसका पिता नहीं। लोभ के वशीभूत होकर उसके पुत्र ने ही उसकी हत्या कर दी।

इस प्रकार तुम्हारी आत्मा ने अपना बदला ले लिया। यह कथा अब यहीं समाप्त हो जाती है। इसके बाद एक और रहस्य है और वह यह कि योग की साधना चौदह जन्मों में और तंत्र की साधना सोलह जन्मों में पूर्ण होती है, एक ही जन्म में नहीं। साधनाक्रम के अनुसार मेरा यह सोलहवां जन्म है।

अब मेरी आत्मा पुनर्जन्म ग्रहण नहीं करेगी यानि मुक्त हो जायेगी जन्म और मृत्यु के चक्र से। मुझ जैसे साधक इस अवस्था को प्राप्त होने पर एक ऐसे शिष्य को अपनी समस्त सिद्धियों को प्रदान करना चाहता है जिसकी आत्मा ने कभी मानव शरीर धारण न किया हो, मृत शरीर में मैंने जिस विशुद्ध आत्मा का आवाहन किया वह आत्मधारी तुम हो। (इस विषय के लिए विस्तार से पढ़े– आवाहन) तुम्हारी आत्मा के गर्भ में प्रवेश नहीं करना पड़ा, इसलिए तुम विशुद्धात्मा हो। मुझे अब पूर्ण समाधि लेना है। संसार और शरीर की आवश्यकता नहीं है मुझे। मुझ जैसे पूर्ण अवस्था प्राप्त साधक को सदैव के लिए भवमुक्त होने के निमित्त अपनी समस्त सिद्धियों का भी त्याग करना पड़ता है जिनको उसका योग्य शिष्य ही ग्रहण कर सकने में समर्थ होता है। साधना की दृष्टि से परम योग्य शिष्य वही होता है जिसकी आत्मा ने प्रथम बार शरीर धारण किया हो संसार में।

वही गुरुजी के सिद्धियों का होना हैं अधिकारी। एक उच्चकोटि के साधक के लिए इस प्रकार के योग्य शिष्य की खोज अत्यन्त कठिन कार्य है। जब तक सिद्धियों को त्याग नहीं देता और उन सिद्धियों को योग्य शिष्य ग्रहण नहीं कर लेता तब तक मुक्ति कहां? इस जटिल समस्या के निदान का एक और मार्ग है जिसके अनुसार मैंने कार्य किया।

मौन साधे गुरु की ओर अपलक निहारते हुए सुन रहा था उनकी बातें। उसके सामने जो रहस्य खुला था। शायद उस पर अभी पूरी तरह विश्वास नहीं कर पा रहा था वह।

उस परम महासाधक को यह बात समझते देर न लगी थी। उन्होंने मुस्कराकर श्मशानेश्वर को बस, एक बार देखा। इतना सुना कर

मौन हो गयी जिरिया। ऐसा लगा उसके चेहरे के भाव को देखकर कि कुछ खोज रही है अतीत में।

मैंने सिगरेट जलाते हुए पूछा– फिर क्या हुआ जिरिया?

क्या होगा साब, सिर को एक ओर झटककर बोली जिरिया– कार्तिक पूर्णिमा को महासाधक ने मन्दिर के सामने समाधि ले ली। बड़ा ही करुण वातावरण था साब। राजकुमारी और राधा के अलावा पूरा राजपरिवार उपस्थित था उस अवसर पर। राजमंत्री भी अपने पूरे परिवार और राजकर्मचारियों के साथ आये हुए थे। सभी लोगों के चेहरे लटके हुए थे और सभी की आंखे छलछलायी हुई थी। कोई किसी से बोल नहीं रहा था। सभी एक प्रकार से मौन थे।

राजकुमार की मानसिक स्थिति तो अत्यन्त दयनीय थी। उनका चेहरा उदास था और उस उदास चेहरे पर दुःख पीड़ा और वेदना के मिले जुले भाव साफ झलक रहे थे। कभी सजल आंखों से महासाधक के निर्जीव काया की ओर देखती तो कभी आकाश की ओर शून्य में। निश्चय ही एक सिद्ध, दिव्य और सर्वोच्च अवस्था प्राप्त महातंत्र साधक की महासमाधि ने राजकुमारी की आत्मा को मर्माहत कर दिया था एकबारगी इसमें सन्देह नहीं।

पिछले कई दिनों से महासाधक अस्वस्थ थे। श्वास लेने में कष्ट हो रहा था। भोजन और शयन लगभग दो महीने से ही बन्द हो चुका था। बिस्तर पर बराबर बैठे ही रहते थे सिर झुकाये। उस दिन भोर में महा समाधि लेने की इच्छा प्रकट की। फिर तो आश्रम के बाहर श्रद्धालुओं की भीड़ लगते देर न लगी।

महासाधक को पंचामृत और जल से स्नान कराया गया। मस्तक पर श्मशान भष्म का ले करने के बाद नवीन वस्त्र धारण कराया गया। राजकुमारी ने उनके गले में पुष्पमाला पहनायीं और चरणस्पर्श करने के लिए नीचे झुकी लेकिन संभाल न सकी अपने आपको फफक–फफक कर रोने लगी राजकुमारी अपने गुरु और मार्गदर्शक के चरणों को थाम कर। बड़ा ही रोमाञ्चकारी और करुणामय दृश्य था वह।

महासाधक मौन रहे। उनकी आँखें झपकने लगी थी। शरीर तन गया था और श्वास ऊपर की ओर चलने लगा था, उसी परम अवस्था

में महासाधक ने अपना दाहिना हाथ उठाया और राजकुमारी के सिर पर रख दिया। श्मशानेश्वर मौन गम्भीर बैठा था महासाधक के निकट। उसका चेहरा सपाट था न कोई भाव और न तो कोई भावना। महासाधक की गोद में अब अपना सिर रख दिया था उसने। दूसरे ही क्षण हिलक–हिलक कर रोने लगा था वह विरक्त साधक। उसी क्षण महासाधक ने स्पर्श दीक्षा दी अपने शिष्य को।

सारा शरीर झंकृत हो उठा उसका और रोमाञ्चित हो गया वह। निश्चय ही उन्होंने योग तंत्र की रहस्यमय और साथ ही अति महत्वपूर्ण शक्तिपात दीक्षा थी उसे। गुरु ने अपनी शेष बची सिद्धियाँ अपने शिष्य को अर्पित कर दी थी उस परम दीक्षा के द्वारा और दीक्षा देते ही उस महासाधक का ब्रह्माण्ड फट गया और उस फटे हुए स्थान से एक छोटी सी ज्योति बाहर निकली और न जाने कहां समा गयी वातावरण में।

काफी देर तक समाधि स्थल पर खड़ा रहा तटस्थ भाव से श्मशानेश्वर। अब पहले जैसा ही सपाट और भावहीन हो गया था उसका चेहरा।

एक बार उसने छलछला आयी आँखों से राजकुमारी की ओर देखा और फिर सामने खड़ी राधा की ओर और फिर उसके बाद धीरे–धीरे चलकर नदी की प्रचण्ड धारा के निकट पहुचा और क्षण भर रूक कर आकाश की ओर देखा और धारा में फिर प्रवेश करने लगा। अब गले तक पानी में पहुँच गया था वह। लोग कुछ समझ पाते कि उसके पहले ही महा जलसमाधि ले ली थी उस महासाधक ने।

निश्चय ही गुरु के अभाव में अपने आपको निरर्थक समझने लगा होगा वह महान आत्मा इसमें सन्देह नहीं और तभी एक विचित्र और आश्चर्यजनक घटना घट गयी वहां जिसके संबंध में किसी ने सपने में भी कभी सोचा न होगा।

श्मशानेश्वर के जल समाधि लेते ही एकबारगी चीरवती चिल्लाती दौड़ पड़ी राधा नदी की ओर। कहाँ जा रहे हो संन्यासी मुझे अकेला छोड़कर। तुमको.... इस तरह नहीं जाने दूँगी साधक प्रेम करती हूँ मैं तुमसे। मुझे इस तरह ठुकरा कर मत जाओ– मत जाओ। मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी। प्रेम करती हूँ प्रेम....... लोग कुछ समझ सके कि उसके पहले ही नदी की प्रखर धारा में कूद पड़ी राधा पागलों की तरह।

और लोगों की बात छोड़िए साब, स्वयं राजकुमारी शिवांगी भी नहीं जानती थी कि प्रेम करती है राधा श्मशानेश्वर से। दो मील बाद नही जहां मुड़ती है और मुड़कर जंगल की ओर जाती है— उसी जगह राधा और श्मशानेश्वर की एक दूसरे से लिपटी हुई मिली लाश। लोग स्तब्ध थे, अवाक थे और आश्चर्यचकित भी थे स्वयं राजकुमारी शिवांगी भी। इतना बतलाकर सिर झुकाकर चुप हो गयी जिरिया। आगे कुछ बोला न गया उससे।

निढाल सी एक ओर ढुलक गयी जमीन पर वह शायद उसे नींद आ गयी थी। मेरे मस्तिष्क में भयानक हलचल मचा था विचारों का और तमाम जिज्ञासाओं का उस समय यह तो मैं पहले ही समझ गया था कि पिछले जन्म की स्मृति जागृत हो गयी थी राधा की। निश्चय ही इस रहस्यमयी कथा का कोई महत्वपूर्ण पात्र रही होगी जिरिया इसमें सन्देह नहीं। बाद में स्पष्ट हो गया। जिरिया ने ही बतलाया— राधा ही थी वह। न जाने क्यों और कैसे प्रेम हो गया था उसे तंत्र साधक से। स्वयं नहीं जानती थी वह।

अब तक सांझ घिर आयी थी। दोपहर का खाना रखा ही रह गया था। मेरा मन न जाने कैसा हो रहा था यह सब सुनकर। थकी—थकी सी लग रही थी जिरिया। घर भेज दिया मैंने उसे। उस दिन से गम्भीर रहने लगी थी वह। पहले जैसा कुछ नहीं रह गया था उसमें। मुझसे भी कम ही बोलने का प्रयास करती। कभी—कभी सोचता कि राधा के मरने के बाद भी तो कोई न कोई घटना घटी होगी और भी कथा होगी उसके बाद की, लेकिन कौन बतलायेगा अतीत के अन्धकार में डूबे उन घटनाओं को और उनसे संबंधित कथाओं को।

सचमुच इसके लिए अत्यधिक जिज्ञासु और आकुल था मैं लगातार कई दिनों तक। जिरिया पहले ही की तरह आती। दोनों समय का खाना बनाती। मेरे काम पर चले जाने के बाद पहले की तरह गेस्ट हाउस में रहती नहीं। मेरी समझ में नहीं आता था कि आखिर जिरिया को हो क्या गया है। पत्थर की बुत बनकर रह गयी थी वह एक प्रकार से।

लगातार कई दिन ऐसे ही निकल गये। कोई उल्लेखनीय बात नहीं हुई। उस दिन काम पर से शीघ्र आ गया था मैं। मेरी तबीयत कुछ ठीक

नहीं थी। दोपहर से ही बारिश हो रही थी। सांझ होते ही बादल और घने हो गये और तेज हो गया बारिश का जोर भी। हवा की गति भी बढ़ गयी। अजीब समा थी।

सांय सांय करता हुआ वातावरण। घोर अट्टहास करती हुई बिजली और उसी के साथ गरजे बादल भी। गेस्ट हाउस के उस लम्बे–चौड़े कमरे में बिखरी हुई गहरी खामोशी। टेबल पर जलती हुई मोमबत्ती। जिसकी पीली लौ एक ओर से दीवार पर चिपक सी गयी थी। उठकर जंगल की तरफ वाली खिड़की खोल दी मैंने। हवा का एक तेज झोंका आया और पानी के बौछार से भींग गया सब कुछ और उसी समय और उसी विकट स्थिति में शिवांगी की धूम्राकृति कमरे के भीतर धीरे–धीरे आती हुई दिखलायी दी मुझे।

मोमबत्ती की पीली लौ एकबार कापी और फिर देखते ही देखते पार्थिव शरीर में आ गयी शिवांगी की आत्मा। रूप और सौन्दर्य देख कर मुग्ध हो गयी एकबारगी मेरी आत्मा। देखा तो देखता ही रह गया मैं उस रूपशिखा को। सामने सोफे पर बैठकर काली नागिन की तरह चेहरे पर झूल आये काले बालों को हटाते हुए एकबार मुस्कराकर मेरी ओर देखा राजकुमारी शिवांगी ने। गहरी झील जैसी स्याह आँखों में क्या था? कौन सी पुकार थी? कौन–सा था आवाहन ? समझ न सका मैं। बस मुंह बाये, देख रहा था मैं उस रूपांगी को उस समय। पलके झपका कर धीरे से बोली राजकुमारी आगे की कथा जानने की लिए व्याकुल हैं न आप! मैं भी यही चाहती थी।

बड़ी शान्ति मिलेगी मुझे सब कुछ सुनाकर। इतना ही नहीं मेरी भटकती हुई आत्मा को मुक्ति भी मिल जायेगी। राजकुमारी की बातें सुनकर थोड़ा आश्चर्य हुआ मुझे। कैसी मुक्ति......।

सिर थोड़ा उठाकर देखा राजकुमारी की ओर न जाने क्यों?

कलान्त चेहरा, राख जैसा रंग और अजीब सा सम्मोहन! सूनी–सूनी आँखों में दुख की छाया और फिर विचित्र–सी हँसी। लगा जैसे कोई वेदना, पीड़ा और कष्ट के अथाह सागर में डूबी हुई मन को व्यथित करने वाली ही कथा सुनाने वाली है राजकुमारी। मेरा अनुमान गलत नहीं निकला। आत्मा को झकझोर देने वाली थी वह कथा। विगलित और

साथ ही विषण्ण हो उठा एकबारगी मन। कथा काफी लम्बी थी। स्थानाभाव के कारण संक्षिप्त में ही लिखूंगा मैं उस दारुण कथा को। दीपावली के पहले न जाने कहाँ से एक कापालिक आकर महल के सिंहद्वार पर खड़ा हो गया तन कर।

एक हाथ में लम्बा सा भयानक त्रिशूल और दूसरे हाथ में बहुत बड़ा डमरू। त्रिशूल वहीं जमीन में गाड़कर हाथ ऊपर उठाकर जोर–जोर से बजाने लगा डमरू वह कापालिक।

लम्बी–चौड़ी कद–काठी के उस कापालिक का व्यक्तित्व काफी भयानक था। उसके शरीर का रंग काला था, सिर पर जटाजूट, पेट तक झूलती हुई काली दाढ़ी, गले में रूद्राक्ष के अलावा और न जाने कितनी मालाएँ, कमर में लिपटा हुआ काफी लम्बा–चौड़ा व्याघ्र चर्म। मस्तक पर भस्म का प्रलेप और सिन्दूर का लाल गोल टीका, कानो में रत्नकुण्डल और पैरो में खड़ाऊँ।

चेहरा तमतमाया हुआ था कापालिक का। आँखे खूब लाल थी। शायद अधिक कर लिया था मदिरापान।

डमरू की भयंकर आवाज सुनकर राजमहल के सभी लोग बाहर निकल आये। राजकुमारी शिवांगी भी अपने कमरे से निकल आयी बाहर और जब सिंहद्वार पर खड़े भयानक कापालिक को देखा तो एकबारगी सकपका सी गयी वह। कौन है यह ? यहाँ क्यों आया है– राजकुमारी मन ही मन सोचने लगी। उसी समय कापालिक ने वक्रदृष्टि से देखा बरामदे में खड़ी राजकुमारी की ओर।

क्या था उस रहस्यमय कापालिक की दृष्टि में एकाएक अविभूत हो उठी वह। ऐसा ही पूरे राजपरिवार के साथ हुआ। महामंत्री अपने परिवार के साथ चरणों में झुक गये कापालिक के। फिर क्या था महातंत्र साधक दिव्यपाणी के मन्दिर पर अपना पूरा अधिकार जमा लिया और उसके संकेत पर राजकुमारी ही नहीं पूरा शजवंश नाचने लगा सम्मोहित सा। पूजा–अर्चन, ध्यान–धारणा में लीन रहने लगी कापालिक के सान्निध्य में रहकर। पूरा दिन उनका मन्दिर में ही व्यतीत हो जाता। अब कभी–कभी रात में भी रहने लगी वह मन्दिर में। कापालिक का प्रत्येक आदेश शिरोधार्य था उनके लिए।

दीपावली की रात्रि में कापालिक ने अपने तंत्र, बल से एक सोने के दीप का निर्माण किया और मन्दिर में स्थापित कर दिया उसे भैरव की मूर्ति के सम्मुख।

अपने आपमें वह स्वर्णदीप अत्यन्त रहस्यमय था। पूर्ण रूप से मंत्रपूरित था वह दीप। उसके भीतर कोई अज्ञात द्रव भरा हुआ रहता था हमेशा। सर्प केंचुल की लम्बी बत्ती बराबर हर समय जलती रहती थी। न द्रव द्रव समाप्त होता था और न तो वह बत्ती ही होती थी समाप्त। निश्चय ही वह दीप अखण्ड था और उसके सुनहले प्रकाश से बराबर आलोकित होता रहता था, पूरा मन्दिर।

उस अक्षय दीप से लोग काफी प्रभावित थे। काफी दूर–दूर से उसे देखने के लिए लोग आते रहते थे। दीपक के कारण ही कापालिक के साथ–साथ मन्दिर को भी प्रसिद्ध होते देर न लगी। राजकुमारी तो एक प्रकार से अपना तन–मन–धन अर्पित कर एक प्रकार से चरणबासी ही बन गयी थी कापालिक की। अवस्था थोड़ी अधिक हो जाने पर भी राजकुमारी के सौन्दर्य और रूपयौवन एक प्रकार से पहले जैसा ही था। आयु का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा था उनके शरीर पर। कापालिक का नाम था शिवानन्द।

राजकुमारी ने बतलाया कि सचमुच उस कापालिक ने विशेषकर मुझ पर कोई ऐसा तांत्रिक प्रयोग कर दिया था कि जिसके कारण पूर्ण रूप से विवश हो गयी थी। अपनी भैरवी बनाकर मेरे शरीर को तो उसने पहले ही अपवित्र कर दिया था। भला उस समय क्या जानती थी कि इस प्रकार उस महान तंत्रसाधक की दी हुई तांत्रिक शक्तियों को छीन लेगा वह एक–एक कर मुझसे।

एकबार मैं गर्भवती ही गयी होना ही था, कापालिक ने गम्भीर स्वर में कहा यह भैरव का प्रसाद है। स्वीकार करना चाहिए मैं मौन रह गयी। कर ही क्या सकती थी। उसके विरूद्ध कोई बोलने वाला था ही नहीं। समय पर एक सुन्दर शिशु को जन्म दिया मैंने। गयी क्यों गोपनीय रखा गया था। यह मेरी समझ में नहीं आ रहा था। लेकिन दिन एक गोपनीयता का रहस्य खुल ही गया। वह रात अमावस्या की काली अन्धेरी रात थी। अपने इष्ट को प्रसन्न करने के लिए उस नराधम कापालिक

ने मेरी आँखों के सामने मेरे जन्मजात बेटे की बलि दे दी मन्दिर में। मेरी आँखें फटी की फटी रह गयी थी उस समय। न कुछ बोल सकी और न तो चीख ही सकी।

दो महीने का वह नन्हा सा शिशु—जिसने पूरी तरह आँखे भी नहीं खोली थी अभी— उसकी बलि दे दी गयी निर्ममतापूर्वक। उसका छोटा सा सिर कट कर एक ओर लुढ़क गया और धड़ एक बार जोर से कांया और फिर शान्त हो गया हमेशा के लिए। हवन कुण्ड के सामने वाली भूमि पर फैल गया था रक्त। मैं कभी कटे हुए बालक को देखती तो कभी उस फैले हुए रक्त को।

निश्चय ही किं कर्तव्यविभूढ़—सी ही गयी थी मैं इसमें सन्देह नहीं। माँ कैसी भी हो! अपने पुत्र की हत्या अपनी आँखों के सामने होते हुए देख कर कभी भी शान्त नहीं रह सकती। मेरी स्थिति एक पागल जैसी हो गयी थी। अब वह कापालिक मुझे राक्षस जैसा लगने लगा था और उस राक्षस का वध होना आवश्यक था और एक रात हो ही गया वध मेरे हाथों से उस नराधम का। उसी का त्रिशूल और उसी की छाती के आर—पार हो गया। एक भयंकर आर्तनांद गूंज उठा निविड़ रात्रि के सांय—सांय करते अन्धकार में। रक्त से लाल हो उठी मन्दिर की जमीन। एक अति वीभत्स दृश्य था मेरे सामने।

फिर क्या हुआ ?

होगा क्या ? शान्त भाव से बोली राजकुमारी— उसी त्रिशूल से मैंने भी कर ली अपनी आत्महत्या।

ऐं! क्या कहा ? आत्महत्या..........

हाँ! इसके अलावा मेरे लिए कोई और मार्ग नहीं था उस समय।

हे भगवान! चार सौ वर्ष में कितना कुछ बदल गया। राजमहल और मन्दिर दोनों खण्डहर के रूप में बदल गये। श्मशान भी अपना अस्तित्व गंवा बैठा। लेकिन उस कापालिक की अतृप्त आत्मा आज भी भटक रही है मन्दिर के खण्डहरों में अपने दीप का मोह लिए। रही मेरी बात। क्या कहूँ मैं आपसे थोड़ी रूआंसी हो उठी राजकुमारी। गला भर आया था उनका शायद........ मेरी भी स्थिति वैसी ही है। राजमहल के खण्डहरों में तब से भटक रही हूँ मैं भी। शान्ति नहीं है अशान्त हूँ मैं.... ।

मैं भी थोड़ा भावुक हो उठा था उस समय न जाने क्यों ? बारिश अभी थमी नहीं थी। बादल बुरी तरह गरज रहे थे रह–रहकर एकाएक हवा के वेग के साथ पानी का एक झोंका खिड़की से भीतर आया और बिखर गया चारों ओर और उसी के साथ बुझ गयी मोमबत्ती भी। अन्धकार में डूब गया पूरा कमरा एकबारगी और तभी मुझे अपने निकट किसी की लम्बी–लम्बी सांस लेने की आवाज सुनाई दी। फिर किसी के कोमल स्पर्श का अनुभव कुछ क्षण बीते। अबतक रोमाञ्चक हो आया था मुझे। समझ में नहीं आ रहा था कुछ। अचानक कानों में किसी का कोमल स्वर सुनाई दिया– मैं मुक्ति चाहती हूँ......मुक्ति......। मुक्त होना चाहती हूँ मैं..... इस नरक से? समझते देर न लगी। राजकुमारी की ही सांस थी वह। राजकुमारी की ही थी वह कोमल स्निग्ध स्पर्श और राजकुमारी की ही थी वह याचना भरी पुकार और भावुक हो उठा मैं। भावावेश में धीरे से बोला क्या करूँ मैं आपके लिए। कैसे मिलेगी आपकी भटकती हुई आत्मा को मुक्ति? बोलिए कुछ कहिए! जो भी होगा, वह करूँगा मैं आपके लिए और तभी लगा कोई रुंधे हुए कण्ठ से कोई रहा है– काशी ले जाकर मूर्ति को विसर्जित कर दो...... मुक्त हो जाऊँगी मैं.....।

निश्चय ही राजकुमारी शिवांगी का था वह स्वर समझने में भूल नहीं हुई थी मुझसे। आज पूरे चालीस वर्ष हो गये। मूर्ति तो विसर्जित हो गयी काशी की गंगा में। निश्चय ही मुक्ति मिल गयी होगी राजकुमारी शिवांगी की आत्मा को। कापालिक की आत्मा का बना हुआ? यह बतलाया नहीं जा सकता।

•

For an aghori, a sadhak if it is serious
about anything that is sadhana.
No rules, no plan.
Rest everything is fun.
If he lives; only for sadhana, otherwise
death is better.
Everything else is fun.

रहस्य चार

फाँसी

आपने भूत–प्रेत से संबंधित मेरी बहुत सारी रचनायें, कथा और कहानियाँ पढ़ी होगी और बराबर पढ़ते भी रहते हैं। मगर यह आपको नहीं मालूम होगा कि मैंने भूत–प्रेत की अनोखी और रहस्यमयी दुनिया में कदम कैसे रखा।

इस प्रश्न के उत्तर में जो कथा सामने आती है, उसंका शीर्षक है 'फांसी'। मैं राजनीति से उतना ही दूर हूँ जितनी जमीन आसमान से। मगर एक बार मुझे भी सात–आठ महीने जेल की हवा खानी पड़ी थी।

वह महाशय अपने जमाने के बहुत बड़े क्रान्तिकारी जीव थे। बस एक रात अपने घर में उन्हें आश्रय दे दिया मैंने। यही अपराध था मेरा। और इसी अपराध में मुझे पहले थाने लाया गया। मार तो नहीं पड़ी, मगर दूसरे ही दिन मेरा चालान कर दिया गया और उसी दिन अदालत ने मुझे सजा सुना दी।

मगर वह जेल यात्रा मेरे लिये वरदान ही सिद्ध हुई। आज मैं जो कुछ भी हूँ अपने क्षेत्र में, वह उसी वरदान का एकमात्र फल है।

जेल प्रवास में मेरे कई मित्र बन गये और उन मित्रों से एक मुसलमान मित्र भी था। जिसका नाम था–अब्दुल कादिर। अब्दुल कादिर ने हत्या की थी। मुकदमा चला. हर तारीख पर कादिर पाषाण का मुख लिये पश्चातापहीन–सा कठघरे में खड़ा होता था और सैकड़ों नजरें

उसको बींधने लगती। बीच–बीच में कोलाहल उठता था फिर जज के हथौड़े की ठक–ठक और आर्डर–आर्डर की आवाज उस कोलाहल को एकबारगी खामोश कर देती थी।

सारी कार्यवाही यंत्रवत् चलती रही। गवाहियाँ हुई। बहसें हुई और अन्त में मुकदमें का फैसला हो गया। कादिर को सजा मिली प्राण दण्ड की यानि फांसी की। सजा सुनकर कादिर की आँखों में एक लपट सी कौंधी और फिर बुझ गयी। उसका चेहरा म्लान हो गया और उसने अपना सिर 'सीकचों पर टेक दिया।

संयोगवश मुझे जिस बैरक में रखा गया था, उस बैरक में केवल फांसी की ही कोठरियाँ थी। उन कोठरियों में वे ही लोग थे–जिनकी जिन्दगी के चन्द दिन ही शेष रह गये थे। कादिर को मेरी बगल वाली कोठरी मिली। वह उसमें बन्द कर दिया गया। कोठरी में जाने के पहले उसने मेरी ओर देखकर जोर का ठहाका लगाया और कहा "कहिये पण्डितजी। आप यहाँ पहले से ही आबाद हैं, मेरी पड़ोस में ? फिर वह भीतर चला गया और अपने हाथ से दरवाजा बन्द कर दिया उसने।

फांसी वाली रात को सब कार्य जैसे किसी अदृश्य इंगित से हुआ। निर्मिनेष सा देखता रहा मैं सब कुछ। कादिर को सीढ़ियों के जरिये ऊपर चबूतरे पर ले जाया गया। काले टोपे से उसका सिर और चेहरा ढूक दिया गया। रस्सी उसके गले में डाल दी गयी। क्लिक की हल्की सी आवाज हुई और निमिष मात्र में रस्सी पर झूल गयी कादिर की निर्जीव देह।

सात माह के अपने जेल जीवन में कादिर से मेरी सिर्फ रू पांच–छः बार रूबरू मुलाकात हुई थी। बाकी मुलाकाते एक दूसरे को देखे बिना केवल आवाजों के सहारे ही हुई थी।

उस भयानक रात को, जब कादिर के सब दोस्त मित्र और सारे सगे संबंधी उससे आखिरी मुलाकात कर जा चुके थे और वह अपनी जिन्दगी की आखिरी रात गुजार रहा था इस संसार में, मेरी और उसकी बातचीत उसी तरह जारी थी।

कादिर को सवेरे छः बजे फांसी पर लटकना था। पता नहीं, वह मानसिक रूप से इसके लिये तैयार था भी या नहीं। कम–से–कम मैं

इसके लिये अपने आपको तैयार नहीं पाता था। मेरे मन ने उस समय तक इस सत्य को स्वीकार नहीं किया था कि कादिर को सवेरे फांसी दी जायेगी और वह हमेशा के लिये इस संसार से कूच कर जायेगा इसी कारण मैं उस अंधेरी रात के सन्नाटे में अपनी संगीन कोठरी के पक्के फर्श पर लेटा देर तक मृत्यु और जीवन की फिलॉस्फी पर गौर करता रहा और यह सोचता रहा कि मुझे भी आज की रात इसी कष्टप्रद अवस्था में काटनी पड़ेगी। कादिर का छः बजे शारीरिक रूप से फांसी के तख्ते पर लटकना मुझे भी रात भर मानसिक रूप से फांसी के तख्ते पर लटकना होगा। जिस तरह इससे पहले कई बार हो चुका है, इस सात मास के जेल जीवन में भी मेरे सामने कई जीते जागते इन्सान फांसी के पुल पर से गुजरकर मौत की भयानक घाटियों में जा चुके थे। ऐसी ही रातें–ऐसी ही आखिरी मुलाकातें इससे पहले भी कई बार मैं देख चुका था। इसी तरह शाम को मरने वाले से मिलने के लिये आये हुए लोगों का सिलसिला। संबंधी आते, रोते, चिल्लाते और फिर यह आखिरी कयामत की रात आती और सुबह–सवेरे एक और इन्सान खत्म हो जाता था। मुझे पिछले महीने से फांसी पाने वालों की कोठरियों के बीच रखा गया था। मैं रात भर मानसिक रूप से फांसी के तख्ते पर फांसी का फंदा गले में डाल कर लटकता रहता था। रात भर मानसिक रूप से मैं मृत्यु से आलिंगन करता रहता था। मरने वाले एक ही रात का कष्ट सहते थे, पर मैं दर्जनों बार उस भयानक कष्ट को सहन कर चुका था। रात भर मैं मृत्यु और जीवन, हत्या और फिर एक और हत्या की फिलॉसफी पर गौर करता रहता था। यह कैसी दुनिया है जहाँ एक इन्सान दूसरे को मार देता है और फिर उस हत्या का दण्ड देने के लिये एक और हत्या कर दी जाती है। हत्या के कारणों पर विचार ही नहीं किया जाता, हत्यारे से कोई हमदर्दी नहीं करता।

फरवरी की उस रात को भी मैं अपनी कोठरी के पथरीले फर्श पर लेटा काफी देर तक यही सब सोचता रहा। रात किसी भी तरह कट नहीं रही थी।

नौ बज गये। जेल की रहस्यपूर्ण खामोशी में बुर्ज का घंटा नौ बार बजा। पहरा बदलने वाले नये वार्डर लम्बे–लम्बे काले लबादा पहने

हमारी कोठरियों के सामने आकर खड़े हो गये। उन्होंने आते ही कोठरियों के ताले खटखटाये। नया नम्बरदार लालटेन लेकर घूमता, गिनती पूरी करता और ताले देखता हुआ गुजर मया। बुर्ज का नम्बरदार बराबर चीख रहा था और जेल के विभिन्न भागों से अन्य नम्बरदार बुर्ज के नम्बरदार की आवाज के जवाब में सब अच्छा की रट लगा रहे थे।

"फांसी की कोठरियाँ"। बुर्ज वाले नम्बरदार ने जेल के बीच में पुकारा।

"सब अच्छा" हमारे इलाके के नम्बरदार ने चीख कर जवाब दिया। यह आवाज सुनकर बुर्ज वाला नम्बरदार खामोश हो गया। उस रात भी इस नियम का पालन हो गया। जेल में बन्द कैदी और नौकर सब यह सुनकर सन्तुष्ट हो गये कि "सब अच्छा है।"

लेकिन उधर सब अच्छा नहीं था, क्योंकि अब्दुल कादिर अपनी संगीन कोठरी के फर्श पर लेटा हुआ जिन्दगी की आखिरी घड़ियाँ गिन रहा था। कल की मुस्कराती हुई सुबह उसके निर्जीव शरीर को देखेगी। कल जो हवा चलेगी–उसकी शीतलता और उसके मस्त नृत्य से कादिर की जिन्दगी में कोई लहर पैदा न होगी। वह छः बजे शाम से, जब उसके संबंधी उससे आखिरी मुलाकात करके गये थे, बिल्कुल खामोश था। कभी–कभी जब वह करवट बदलता तो उसके पैर की बेड़ियाँ बज उठती थीं। एक हफ्ता पहले उसने फांसी के फन्दे से बचने के लिये आत्महत्या करने का प्रयास किया था। पहरेदार सिपाही की नजर बचाकर और कम्बल ओढ़कर उसने अपने पाजामें और कुर्ते फाड़कर एक मामूली रस्सी तैयार कर ली। उसी को गले में डालकर वह उससे लटकने के लिये उसे जंगले में बांधने ही जा रहा था कि सिपाही की नजर उस पर पड़ गयी। उसने सीटी बजा दी। फिर पूरे जेल में बहुत सी सीटियाँ बजी। बुर्ज का घण्टा लगातार चीखने लगा। डॉक्टर, वार्डर, जमादार, असिस्टेन्ट, डिप्टी और सुपरिन्टेण्डेण्ट सब मौके पर पहुँच गये। कादिर की कोठरी का ताला खोलकर उसे घेरे में ले लिया गया।

वह सिर झुकाये चुपचाप बैठा रहा।

"बेड़ियाँ पहना दो–जेलर की आवाज गूँजी।

"यह मरना कहाँ चाहता है। हरामजादा दूध लगवाने के लिये पाखण्ड कर रहा है।" –डाक्टर ने अपनी मनहूस आवाज में तमाम लोगों को सम्बोधित करके निर्णयात्मक स्वर में कहा।

उसके पांव में बेड़ी डालकर उसे फिर पथरीले फर्श पर कोठरी में फेंक दिया गया।

वह बेड़ी आज भी उसकी टांगों में थी। इसके बाद कादिर के गिर्द पच्चीस वर्ग फुट कोठरी की एक और बेड़ी थी। उसके बाद जंगले और ताले की बेड़िया थीं और फिर जिन्दगी की वह बेड़ी–जिसे वह आज खत्म करके अपने सारे बंधनों और सारी बेड़ियों से मुक्ति प्राप्त करने जा रहा था–उसकी जिन्दगी की अन्तिम घड़ियों पर पहरेदार सिपाही नियुक्त थे। जिनकी सबसे बड़ी कोशिश यही थी कि कादिर को कानून के अनुसार निश्चित तिथि और समय पर खत्म किया जाये। ऐसा न हो कि वह इससे पहले ही खुद मर जाय। उसे अपने आप कैसे मरने दिया जा सकता था।

एक बार उसकी बेड़ी की आवाज रात के सन्नाटे में फिर गूंजी। शाम से इस वक्त तक न तो उसने मुझे बुलाया और न मुझे ही उसे बुलाने का साहस हुआ। पहले जब भी उसे मेरे साथ की कोठरी में रात भर के लिये रख दिया जाता, तो हम दोनों रात गये तक गला फाड़–फाड़ कर बातें करते थे। वह मुझसे मेरा हाल पूछता और मैं उससे महिये की कली सुनाने की प्रार्थना करता। वह अपने महिये के कारण पूरे जेल में बड़ा लोकप्रिय था। एक तो उसकी आवाज में भी काफी साज था, फिर इन्सान जब मौत की कोठरी में होता है तो उसकी आवाज में और भी दर्द और साज आ जाता है।

शाम के छः बजे से साढ़े नौ बजे तक कई बार मैंने अपना साहस बटोरकर उसे बुलाने का प्रयास किया, पर हर बार असफल रहा। पहले तो वह यों कभी खामोश न हुआ था–आज यह खामोशी कैसी है। मैंने अपने फर्श पर आराम से लेटे–लेटे जेल में अपनी सात–मास की जिन्दगी पर कई बार गौर किया। कादिर मरना नहीं चाहता था। देश की आजादी के नाम पर शहीद नहीं होना चाहता था। वह तो पूरी जिन्दगी सेवा करना चाहता था। अपनी आँखों से आजादी देखना चाहता था। लालकिले पर तिरंगा झण्डा लहराता हुआ देखना चाहता था,

इसलिए उसने हाईकोर्ट में अपील की। हाईकोर्ट में मुकदमा चलता रहा। इसलिए कि हाईकोर्ट वालों को क्या पता कि फांसी की कोठरी में जिन्दगी मुश्किल से कटती है। उन्हें यह कैसे मालूम हो सकता है कि इस सियाह और भयानक कोठरी में बन्द रहने वाले लोग किस तरह लगातार मरते रहते है। हाईकोर्ट से उसकी अपील खारिज हुई, तो पेव्रल कोर्ट ने उसके दिल में आशादीप को एक बार फिर जगमगा दिया। हाईकोर्ट की भी अपील खारिज हुई तो, उसने दया की अपील का सहारा लिया। वह कभी निराश नहीं दिखलायी दिया था। शाम को जब कभी उसे मेरी कोठरी के साथ वाली कोठरी में बन्द कर दिया जाता तो वह काफी प्रसन्न होता और आते ही उच्च स्वर में मुझे पुकार कर कहता—"शर्माजी! आज मैं फिर आपके पास आ गया हूँ।"

मेरा जवाब हमेशा एक सा ही होता।—"कादिर! आज रात भर तुम्हें मुझको महिया सुनाना पड़ेगा।"

वह मेरी बात सुनकर जोर से हँस देता—"रात भर तो नहीं पर बारह का पहरा बदलने तक महिया सुनाता रहूँगा।"

और वह सचमुच महिया सुनाना शुरू कर देता। महिये की कली पर उसकी आवाज दर्द से भर जाती थी। वह रात भर गाता रहता था और कभी गाने से न थकता था। गाते—गाते कभी उसकी आँख लग भी जाती तो करवट बदलने के साथ ही महिये का अन्तिम वाक्य जरूर गाता था।

कभी—कभी गाते—गाते वह रूककर अक्सर मुझसे पूछता—"शर्माजी! हाईकोर्ट की अपील में बहुत से लोग बच जाते हैं न।"

"हाँ कादिर! अल्लाह रहम करेगा। फैसला तुम्हारे हक में होगा और तुम बच जाओगे।"

मेरी इतनी बात सुनकर वह बच्चों की तरह खुश होकर गाना शुरू कर देता।

हाईकोर्ट से उसकी अपील खारिज हुई, तो मैंने उसे फिर तसल्ली दी—कोई बात नहीं, कादिर! पेव्रल कोर्ट का फैसला जरूर तुम्हारे हक में होगा।"

मेरी बात में कोई तर्क न होता था, पर कादिर उसे झट मान लेता था। दरअसल आशा के उस टिमटिमाते दीप को वह कभी अपने हाथ से नहीं छोड़ता था। तस्वीर का दूसरा रूख देखने की वह कभी कोशिश न करता था। उस अंधेरी छोटी तस्वीर का दूसरा रूख देखने की वह कभी कोशिश न करता था। उस अंधेरी छोटी और संगीन कोठरी में दिन रात, सात मास तक बन्द रहकर भी उसका जीवित रहना इसी आशा के सहारे था। नहीं तो इस कोठरी में लगातार सात मास तक मौत का शिकार रहकर कौन जीवित रह सकता है। हाईकोर्ट से निराश होकर वह रहम की अपील मंजूर होने के सपने देखता रहा, लेकिन आज सारे सपने सारी आशायें खत्म हो गयी थीं। अब जीवित रहने की कोई आशा बाकी नहीं थी। सिर्फ मौत के साये, खामोशी और सन्नाटा था।

जीवन और मृत्यु के बीच केवल छः घण्टे बाकी थे। छः घण्टों की यह यात्रा भी कादिर आजादी से नहीं कर सकता था। उस कालकोठरी में सीमेन्ट के ठण्डे और पक्के फर्श पर बेड़ी पहने लेटा वह उस सफर को पूरा कर रहा था। कई बार मैंने उसे बुलाने का प्रयास किया, पर उसे सुनाने के लिये मेरे पास, अब कुछ भी तो नहीं था। अब मैं उसे क्या कह कर तसल्ली दूँ। उसके लिये कौन–सी दुआ पढ़ूँ। मेरी समझ में नहीं आ रहा था। एक बार तो वाक्य मेरे कण्ठ तक आकर रूक गया। मैं कहना चाहता था, कादिर महिये की वह कली तो सुनाओ पर फांसी की यह कोठरी तो जिन्दगी के आखिरी कदम तक उसके साथ जा रही थी। इसलिए मेरी आवाज भीतर ही घुटकर रह गयी।

फांसी की कोठरियों के पहरेदार भी खामोश थे। आज रात उन्होंने न तो कोई गजल गाने की कोशिश की, न ही किसी के होठों से कोई फिल्मी गीत निकला। उन्होंने गर्मागरम खबरों और ताजा अखबार तक के बारे में भी कोई बातचीत नहीं की। बस चुपचाप अपने पहरे की कोठरियों के सामने टहलते रहे। पूरे वातावरण में ऐसी खामोशी छायी थी, जिसमें एक गहरे षड्यंत्र का भाव रहता था। जेल में फांसी की सुबह से पहले की रात हमेशा ऐसी ही आती है। हर तरफ रहस्यपूर्ण षड्यंत्र और मौत की वीरानी का दृश्य होता है। जेल के अफसर, कैदी और वार्डर सब एक दूसरे से कानाफूसी में बातें करते हैं। इस सावधानी से

वातावरण और भी रहस्यपूर्ण हो जाता है और हर तरफ मौत के पांव की चाप सुनाई देने लगती है।

रात के कोई दस बजे असिस्टेन्ट सुपरिण्टेन्डेट और डिप्टी सुपरिन्टेण्डेन्ट राउण्ड पर आये और पहरेदारों को चौकस रहने की ताकीद करके चले गये। सबके सब मृत्यु के स्वागत की तैयारी में व्यस्त थे जैसे कोई बड़ा मेहमान आनेवाला हो। मैं देर तक फर्श पर लेटा सोचता रहा कि इस पूरी व्यवस्था की मशीनें जिन्दगी के खात्में के लिये कितनी मुस्तैदी दिखा रही हैं। ग्यारह बजे रात को कादिर ने करवट बदली। उसके पांव में पड़ी बेड़ियाँ बज उठीं। साथ ही उसने मुझे पुकार कर कहा–"शर्मा जी! जाग रहे हो। अब मैं घड़ी दो घड़ी का मेहमान हूँ शर्मा जी। मेरी बख्शिश की दुआ करना।

कुछ देर तक मैं उसे कोई जबाव न दे सका। पर जी कड़ा करके आखिर मैंने कह ही दिया–"अच्छा कादिर तुम्हें....." पर नहीं, मैं उस जीते–जागते और जानदान इंसान से यह कैसे कह सकता हूँ कि खुदा उसे जन्नत में जगह दें। उसने जिन्दगी की किसी एक घड़ी में न जाने किस भावना के अन्तर्गत, न जाने किस आवेश में एक इन्सान की हत्या कर दी थी। इस आवेशपूर्ण भावना या क्रिया के पीछे उसकी सदियों की जहालत हैं, इस बर्बर व्यवस्था की सदियों पुरानी परम्पराएँ हैं। फिर उस एक क्षण के एक कार्य के लिए वह कल मारा जा रहा है। उसे भी कत्ल किया जा रहा है। उसे मैं क्या कह सकता था।"

"कादिर दुआ से क्या होता है। मेरी दुआ कबूल हो सकती तो मैं खुद यहाँ पड़ा क्यों सड़ता रहता। मुझ पर तो कोई जुर्म, कोई मुकदमा भी नहीं है।" आखिर मैंने कह ही दिया।

"नहीं शर्माजी अल्लाह बड़ा कारसाज है। तुम तो कयामत के दिन सरदार बन कर उठोगे। मुझे भी बख्शवा देना।"

"अच्छा भाई अल्लाह अपना रहम करे। मगर एक बात बताओ। क्या तुमने सचमुच कत्ल किया था।"

मेरे सवाल का उसने थोड़ी देर तक कोई जबाव नहीं दिया। बाहर से खामोशी और सन्नाटे की बड़ी रहस्यपूर्ण आहट अन्दर तक पहुँच रही

थी। हवा की एक नर्म लहर मुझें छूती चली गयी। दरख्तों के पत्ते सांय–सांय करने लगे।

''मैंने कत्ल तो किया था शर्माजी।'' कादिर ने जबाब दिया।

''तुमने कत्ल क्यों किया।''

कादिर की आवाज फिर थोड़ी देर तक सुनाई नहीं दी। खामोशी के सन्नाटे में केवल बुर्ज वाले नम्बरदार की पुकार और अन्य नम्बरदारों की ''सब अच्छा'' की आवाजें सुनाई दे रही थी। कादिर ने थोड़ी देर चुप रहने के बाद कहा–''शर्माजी! मैं गुनाहगार जरूर हूँ। मैंने अपने यार का कत्ल किया है। मगर इससे कम उसकी कोई सजा नहीं थी। वह मेरा बहुत प्यारा यार था। ''फिर वह इस तरह बोलने लगा, जैसे अपने आप ही से बातें कर रहा हो''– हमने बचपन में हरी चरागाहों में एक साथ दिन भर मवेशी चराये थे और महिये गाये थे। एक साथ हम दोनों नदी में गोते लगाकर सीप निकाल लाते थे। पर उसकी तकदीर खराब थी। आदमी बुरा नहीं था। बस इस मामले में गोता लगाकर दामन न बचा सका, क्योंकि उसने''..........उसने क्या? ....कादिर रूक क्यों गये?

''उसने मेरी औरत से ....वह मेरे पास आता था और महीनों रहता था। एक रात मैं खेत से लौटा तो मैंने उन दोनों को इकट्ठे चारपायी पर लेटे हुए देख लिया। बस मेरी आँखों के सामने अन्धेरा छा गया और मैंने कुल्हाड़ी उठाकर उसे मार डाला।''

''कादिर यह तो बताओ कि तुम्हारी बीबी को उसने जबरदस्ती अपने साथ लिटाया था या वह अपनी मर्जी से लेटी थी।''

''अपनी मर्जी से ही लेटी होगी हरामजादी।

''अपनी औरत के बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है।''

''वह मुझ पर मरती थी। वह तो मुझ पर जान देती थी और अब भी देती है। आज शाम आखिरी मुलाकात पर रोते–रोते उसकी मोटी आंखे उबल कर बाहर आ पड़ी थी। मुझे अब भी वे आँखे नहीं भूलती। ऐसा लगता है जैसे मैं उन आँखों को अपने इर्द–गिर्द फैला हुआ देख रहा हूँ। पर औरत को तो अक्ल होती नहीं। मेरे यार ने उसे बहका लिया और कुछ नहीं।

इसके बाद थोड़ी देर खामोशी रही, फिर उसने दीवार पर हाथ फेरना शुरू किया। मुझे अपनी और उसकी कोठरी के बीच की दीवार सरसराती हुई और कुछ बोलती मालूम हुई। कादिर अपनी जिन्दगी के अन्तिम क्षणों में जैसे उस दीवार में अपनी जिन्दगी, अपनी आत्मा और अपनी इच्छाओं का सारा रस घोल रहा थी। थोड़ी देर बाद वह "ला" इलाहा—इल्लल्लाह" का जाप करने लगा जिससे वातावरण की संगीनी और गाढ़ी हो गयी। कोठरी के पक्के फर्श पर लेटे यकायक मुझे अपने गले के गिर्द फांसी का फन्दा पड़ा महसूस होने लगा। चारो तरफ भीषण सन्नाटा था। मैंने उठकर दरवाजे के जंगले की सलाखों को पकड़कर बाहर झांकना शुरू कर दिया। वही खामोशी थी, वही सियाही थी, वही सितारों की टिमटिमाती हुई बस्तियाँ थी, जिन्हें मैं रोजाना उस दरार में से झांककर देखा करता था। पर आज की रात जैसे मेरे जिस्म के हर हिस्से को डस रही थी। इतना जहर, इतनी तकलीफ मुझसे बर्दाश्त न हो सकती थी। लेकिन उसे सहन करने के अलावा कोई उपाय भी तो नहीं था।

कादिर की बेड़ियाँ एक बार फिर बजीं। वह फर्श पर से उठकर अपने जंगले के साथ आ लगा था। मेरे मन में उसे एक बार फिर देखने की बड़ी तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई। मैं उसे आगे कभी न देख सकूँगा। उसकी आवाज आगे कभी न सुन सकूँगा और वह उसके गीत और महिये और दर्द भरी सदायें कल सुबह हमेशा के लिये खत्म हो जायेंगे। यह सीधा—साधा आदमी, जिसे उसकी जहालत ने जो उसकी अपनी थी मार दिया। वह कहाँ जा रहा है। उसकी मंजिल कौन सी है। वह कौन से सफर पर रवाना हो रहा है। क्या आज वह महिये की कलिया न गायेगा। मेरा दिमाग इन सवालों और तीव्र भावनाओं से परेशान हो गया।

"शर्माजी ! सो गये" कादिर ने कानाफूसी जैसे अन्दाज में अपनी आवाज मेरी तरफ उछाल दी।

"नहीं!" मैंने जवाब दिया।

बड़े आराम से उसने कुछ सोचकर कुछ—कुछ रूकते हुए कहा— "शर्माजी! मुझे मरने का गम नहीं है, क्योंकि मरना तो सबको है। मरना

एक सच्चाई है। अल्लाह की मौत हर आदमी की तकदीर में लिख दी है, पर मुझे अपनी औरत की फिक्र है। उसकी उम्र बहुत कम है। वह तो अभी बच्ची है। बिलकुल बच्ची शर्माजी। अभी उसने दुनिया में देखा ही क्या है। फिर उसका सारा जेवर और हमारी पूरी जमीन मेरे मुकदमें में खर्च हो गयी। अब वह क्या करेगी।

"अल्लाह मालिक है कादिर। तुम फिक्र करके क्या कर लोगे।" अल्लाह तो सभी का मालिक है। मैंने तो आज उसे कह दिया है कि वह आजाद है। जहाँ उसका जी चाहे बैठे जाये। उसकी उम्र बहुत ही कम है। पर वह मुझे बहुत चाहती है। उसकी आँखे बुरी तरह सूज गयीं थी। मुझे तो अब भी यह महसूस हो रहा है–जैसे वह मुझे देख रही है। मैंने उससे साल भर मुहब्बत की है। जब हमारी शादी नहीं हुई थी–उस वक्त मैं रात–रात भर उसके गांव के पास खेतों में जाकर बांसुरी बजाता रहता था। आह!...........अब क्या होगा"

उसकी इस "आह" ने मुझे सिर से लेकर पांव तक हिला दिया। मैं उसे क्या जवाब दूँ? उसे कैसे तसल्ली दूँ? क्या मेरी जुबान में इतना रस है कि उसे उसकी अन्तिम यात्रा के लिये तैयार कर सकूँ। क्या कोई ऐसी सूरत है कि उसका यह दुःख उसका यह मानसिक क्लेश, अपने आप खत्म हो जाये और वह खामोशी से मर जाये। वह इन इच्छाओं और लालसाओं से किस तरह मुक्त हो मर सकता है। जिन्हें वह अपने साथ लिये जा रहा है। ये सवाल मुझे परेशान कर रहे थे। मेरी जुबान काम नहीं कर रही थी। मुझे मौत अपने इर्द–गिर्द, चारो ओर फैली हुई नजर आती थी। मौत की वीरानी मेरे चारो ओर बिखरी पड़ी थी और रात बीतती जा रही थी। सितारों का काफिला अपनी मंजिल की तरफ बढ़ रहा था। पहरे के सिपाही बदल रहे थे। नम्बरदार बदल रहे थे। हर चीज अपना–अपना काम कर रही थी। बाहर गति भी थी, जिन्दगी भी थी। लेकिन मेरे और कादिर के गिर्द जड़ता थी, खामोशी थी, सन्नाटा था। उसकी जिन्दगी का चिराग बुझने ही वाला था और आखिरी वक्त करीब आ रहा था, जिसके लिये, वह पता नहीं तैयार था या नहीं। पर मैं कम से कम मानसिक रूप से तैयार नहीं था।

आधी रात बीत चुकी थी। कादिर थोड़े–थोड़े अन्तर के बाद 'ला इलाहा इल्लाल्लाह'' का पाठ बड़े जोर से शुरू कर देता। उसकी आवाज सुनकर साफ मालूम होता था कि वह अपने अन्दर उठने वाले तूफानों को इस आवाज के बांध से रोकना चाहता था।

आधी रात के बाद उसने मेरी खांसी की आवाज सुनकर कानाफूसी के अन्दाज से मुझे फिर बुलाया।

मैंने उसे कोई जवाब नहीं दिया। मुझे उससे उसकी आवाज से और उसके साथ बातें करने से डर मालूम हो रहा था। मैं चाहता था कि कादिर मुझे अब न बुलाये। वह लगातार मर रहा है, तो मैं भी तो बराबर मर रहा हूँ। वह एक ही दिन में मार दिया जायेगा, पर मैं तो हर फांसी पाने वाले के साथ रात भर फांसी के तख्ते पर लटकता रहा हूँ। मुझे मानसिक रूप से दर्जनों बार मारा जा चुका है और जब तक इन फांसी की कोठरियों के बीच हूँ, न जाने कितनी बार और फांसी पाऊँगा।

सोचते–सोचते मैंने बेख्याली में उसकी दूसरी आवाज का जवाब दे दिया। उसने मेरा जवाब सुनकर ऊँची आवाज में कहा–''शर्माजी! आपकी औरत भी है।''

''हाँ कादिर मेरी औरत भी है।''

''कहाँ है?''

''अपने आदमी के घर।''

''अपने आदमी के घर।'' मैं तो आपकी अपनी औरत के बारे में पूछ रहा हूँ।

''वह मेरी ही औरत थी। वह मुझसे मुहब्बत करती थी। पर उसे लाचार होकर किसी और से शादी करनी पड़ी। वह वहाँ रहती है। पर आखिर मेरी ही औरत तो है।

कादिर मेरी बात सुनकर जोर से हँसा। मासूम और प्यारी सी हंसी, बिल्कुल बच्चों की तरह। उसके गले से घंटियाँ सी बजने की आवाज आ रही थी–''वाह शर्मा जी! सच कहते हो या झूठ बोल रहे हो।''

मैंने चीखकर कहा–''कादिर मैं सच कह रहा हूँ। इसमें झूठ बिल्कुल नहीं है। वह मेरी ही औरत है। वह मेरी बीबी, मेरी जिन्दगी और मेरी शमा है।

वह जहाँ भी रहे, जैसी भी रहे, इससे क्या होता है।''

कादिर ने एक बार फिर आश्चर्यपूर्ण ठहाका लगाया और कहा'' उसने तुमसे वादा किया था। फिर भी वह अपनी बात से फिर गयी।''

''यही समझ लो।''

''और तुमने उसे कुछ नहीं कहा। तुमने उसका कत्ल क्यों नहीं कर दिया।''

''इन बातों को छेड़ने से कोई फायदा न होगा कादिर तुम्हारी और मेरी दुनिया अलग–अलग है। मैंने इल्म और सभ्यता की पनाह लेकर कई बहाने ढूंढ लिये और अपने आपको समझा बुझाकर चुप करा लिया नहीं तो भावनायें तो हमारी तुम्हारी एक सी ही थी। मैंने उसे माफ कर दिया। मैं उसे कत्ल कैसे कर सकता था। मेरे हाथ में बांसुरी नहीं थी। मेरे सामने उस सभ्यता की गन्दगी थी, जिससे इन्सान समझौता कर लेता है और तुम उन शुरू के इन्सानों में हो। तुमने अभी सभ्यता और ज्ञान के.......

''मैं ये बातें कुछ नहीं समझता। पर मुझे आज पता लगा कि तुम्हारें में मर्दानगी नहीं है। भला इस तरह कोई इन्सान अपनी प्रेमिका को छोड़ सकता है। अब तो शर्माजी यह मानना पड़ेगा कि तुम बुजदिल हो डरपोक हो।''

वह मुझसे बातें करते हुये उठकर जंगले के साथ लगकर खड़ा हो गया था। उसके मुंह से निकले हुये उस अन्तिम वाक्य के स्वर में ऐसा व्यंग था कि जैसे कोई चीज सन्न से मेरे बदन में छूती हुई निकल गयी। मैंने उसे जवाब देने का बहुत प्रयास किया पर, कोई जवाब बन न सका। कादिर को मैं अपनी बात कैसे समझाऊँ। यह मेरी समझ में नहीं आ रहा था। वह तो हर बात को सीधे या उल्टे रूख से जांचने का आदी था। बीच का रास्ता तो उसे मालूम ही नहीं था और यहाँ सारी उम्र बीच के रास्तों को ही खोजने में बीती थी। इसलिये इस विषय पर मेरे लिये बात करना कठिन था।

''क्या वक्त होगा शर्मा जी।'' थोड़ी देर बाद उसने पूछा।

मेरा खयाल है कि ढाई बजे होंगे।

"शर्मा जी!"

"हाँ!"

तुम्हें अपनी औरत से सच्चा प्यार न होगा।"

"नहीं कादिर ऐसा मत कहो। वह बड़ी खूबसूरत लड़की थी बिल्कुल गुड़िया जैसी। ऐसी मासूम जैसे इन्सान पैदा होते वक्त होता है। पर मजबूरियों ने उसे मुझसे जुदा कर दिया।"

"मजबूरियां तो जुदा कर ही देती है लेकिन मैं फिर भी यही कहूँगा कि आपने अच्छा नहीं किया।"

"मैंने जो कुछ किया, उसके अलावा और कुछ हो ही नहीं सकता था।"

कादिर कुछ देर तक खामोश रहा। फिर उसने एक बार एक मासूम पर दर्द भरा ठहाका लगाया और बहुत धीरे से कहा–"मैंने जो कुछ किया उसके बारे में मेरा भी यही ख्याल है कि उसके सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता था। तुमने जो कुछ किया, तुम भी कहते हो कि उसके सिवा कुछ हो ही नहीं सकता था। खुदा जाने हम दोनों में कौन सच्चा है। हाँ, पर मुझे इतना मालूम है कि मर्द की मौत मर रहा हूँ और........

इसके आगे जो कुछ वह कहना चाहता था, वह मैं अपनी तरह समझता था। लेकिन मैंने उससे कुछ नहीं कहा। वह भी खामोश रहा।

फिर खामोशी थी और अपने विचारों की भीड़ थी और पत्थर का ठण्डा, कठोर और निर्दय फर्श था। मैं चुपचाप उस फर्श पर लेटा जिन्दगी, मौत और मुहब्बत की फिलॉसफी पर गौर करता रहा। इन्सान के मन में कौन–कौन सी भावनायें किस–किस समय काम करती है और परतंत्रता तथा स्वतंत्रता की फिलॉसफी क्या है। यह सब कुछ मैं सोचता रहा। पर कोई निर्णय न कर सका। कादिर जो अभी–अभी इस जिन्दगी की सीमाओं को पार कर रहा है और जिस पर मैं अब तक तरस खाता आया था–अधिक भाग्यशाली और सन्तुष्ट आदमी है–या मैं जो अब तक एड़ियाँ रगड़ता आया हूँ और आगे भी उम्र भर इसी तरह एड़ियाँ रगड़ूंगा। अभी अभी मैं कादिर के दिल में उठने वाली लहरों के तूफान के बारे में सोच रहा था। अब खुद मेरे अन्दर एक तूफान उठ रहा

था। एक लहर थी, जो मुझे बहाये जा रही थी। यह मुझे कहाँ तक ले जायेगी। कादिर ने फिर "ला इलाहा इल्लल्लाह का जाप शुरू कर दिया था। पर अब उसकी आवाज में सिर्फ उदासी और इत्मीनान था। पर एक ऐसी उदासी की झलक थी, जिसे आत्मा का सन्तोष ही जन्म दे सकता है। उसकी आवाज से उसके मन की भावनाओं का अनुमान करने का ढंग मैंने पिछले सात महीनों में सीख लिया था। इन सात महीनों में मेरी और उसकी आवाजों की मुलाकात होती रही थी। थोड़ी देर के बाद वह चुप हो गया और कोई आधे घण्टे तक वह बिल्कुल खामोश रहा। आधे घण्टे तक उसने "या अली" का नारा लगाया और फिर लगातार 'अली, अली" पुकारता रहा। धीरे–धीरे उसकी आवाज से उदासी और इत्मीनान के सारे भाव जैसे झड़ गये। अब वह स्वर बिल्कुल शुद्ध और बिल्कुल अलग था। उसमें किसी भाव का सम्मिश्रण न था।

हमारी कोठरियों के बाहर अब थोड़ी–थोड़ी चहलपहल पैदा हो रही थी। नम्बरदार, जमादार, सिपाही और अफसर जमा होने लगे थे। सुबह की पवित्रता की झलक में उनकी पदचाप में मौत का भयानक स्वर गूंज रहा था मगर कादिर सबसे बेपरवाह था। वह "ला इलाहा इल्लाल्लाह" और "या अली" के जाप में लीन था। मेरे मन में कई बार इच्छा हुई कि वह मुझे फिर उसी प्यार से शर्मा जी! कह कर बुलाये। पर वह जैसे भूल गया था। पौने चार बजे करीब उसे पानी की एक बड़ी सी बाल्टी भर कर दी गयी। वह बड़े इत्मीनान से नहाया ऐसा लगता था कि उसे अब दुनिया की, अपनी औरत की, अपनी जिन्दगी की, किसी की भी कोई चिन्ता नहीं है। वह जैसे अपनी मंजिल पर जाने के लिए तैयार हो गया था।

नहाने के बीच भी वह नारे लगाता रहा। उसकी आवाज पतली और तेज हो गयी। उसमें जिन्दगी की झलक न थी। पर मौत का सन्नाटा भी न था। बस वह शुद्ध अलग और अकेली आवाज थी। इस बीच बाहर जेल के सारे अफसर, डॉक्टर, जमादार, सिपाही, नम्बरदार अपनी–अपनी ड्यूटी पर आ चुके थे। हवा सीटियाँ बजाती हुई गुजर रही थी। वातावरण पहले से भी अधिक रहस्यपूर्ण हो गया। हवा की सीटियों ने वायुमण्डल के सन्नाटे को कुछ और भी गहरा कर दिया। मैं

अपने फर्श पर लेटा लम्बी, गहरी सांसे भरता रहा। ठीक चार बजे कादिर की कालकोठरी का ताला खुला। उसे बाहर निकालकर घेरे में लिया गया। कोठरी से निकलकर उसने दूसरी तरफ की कोठरी वाले से हाथ मिलाया और कहा–"अच्छा भाई रूखसत।" फिर उसकी आवाज आयी। वह जेलर से कह रहा था, "शर्मा जी से मिलने का सवाल है।"

किसी जमादार ने कहा–"उधर वाले राजनैतिक कैदी हैं। उसे शायद इजाजत मिल गयी थी। मैं जंगले के साथ लगकर खड़ा हो गया था। कादिर मेरे सामने आकर खड़ा हो गया था। एक बार उसने मेरी ओर गहरी नजरों से देखा और फिर अपने दोनों हाथ जंगले के अन्दर बढ़ा दिये। मैंने उससे हाथ मिलाया। उसके हाथ बर्फ की तरह सर्द थे। उसने पतली, मगर गहरी आवाज में कहा–"अच्छा भाई पण्डित जी अब मैं चला। मुझे माफ करना। मेरी गलतियों को भी माफ करना।"

और जब वह चला गया, तो मैं उसके व्यवहार के बारे में सोचता रहा। उसने मुझसे कुछ और बातें क्यों नहीं की। उसने मेरी तरफ इस तरह क्यों देखा था। उसने जाते वक्त मुझसे बख्शीश की दुआ करने के लिये क्यों नहीं कहा। इन बातों को सोचने का मौका न था। कादिर की जिन्दगी की अन्तिम घड़ियों में भी उसकी आवाज लगातार गूंज रही थी। फांसी की कोठरी से लेकर फांसीघर जाने वाले रास्ते तक "या अली" या अली के नारे गूंजते रहे। पहले यह आवाज तेज थी और नजदीक से आ रही थी फिर दूर और मद्धिम होती गयी–और मद्धिम और मद्धिम यहाँ तक की बिल्कुल दब गयी और खामोश हो गयी।

उसे शायद टोपी पहना दी गयी।

पौने घंटे बाद जब उसकी लाश उसके वारिसों को सौपने के लिये ले जायी जा रही थी, तो मैंने ऊँचे स्वर में चीखते हुए जेलर से प्रार्थना की–"मुझे कादिर को आखिरी बार देख लेने दीजिए। वह मेरा दोस्त बन गया था।

मेरी कोठरी के सामने लाकर जब उसकी लाश पर से गाढ़े की चादर हटाई गयी, तो मैंने मुंह फेर लिया। उसकी जीभ बाहर निकल आयी थी और आंखे खुली थी और जैसे मुझसे कह रही थी–"मैं मुहब्बत करना और मरना जानता हूँ। मगर तुम..........

घण्टे भर बाद डॉ. वर्मा के पास पोस्टमार्टम के लिये कादिर की लाश आयी। रस्से के कसाव से कण्ठ नलिका टूट गयी थी और बिना किसी अवरोध के अथवा कष्ट के कादिर की मौत हुई थी। मर्माहत से डॉ0 वर्मा पोस्टमार्टम करते रहे। यंत्रवत् चलते रहे औजार निष्प्राण देह पर।

सहसा कमरे को कंपाता, दरवाजे और खिड़कियों को खटखटाता और पर्दो को झकझोरता ठण्डी, बर्फीली हवा का एक झोका डॉ0 वर्मा के शरीर में सिहरन पैदा कर गया। उन्हें ऐसा लगा कि वे कमरे में अकेले नहीं है। किसी के पैरों की हल्की सी आवाज उन्होंने सुनी और उनके नासापुटों के समीप कोई दीर्घ निश्वास छोड़ गया है, अभी–अभी। वे चौंक उठे।

और उन्होंने स्तब्ध होकर ऊपर निगाह उठाई। कोई नहीं था कमरे में। सिर्फ हवा की सांय–सांय थी और पर्दे जोर से कांप रहे थे। तभी जेल का एक वार्डर भीतर घुसा। वह काफी घबराया हुआ था। भीतर आते ही उसने सहमते हुए कहा–"रस्सी भी लाश के साथ भीतर आ गयी है क्या डॉक्टर साहब।"

"कौन सी रस्सी" डॉक्टर ने पूछा।

"जिससे कादिर को फांसी दी गयी, साब "वार्डर बोला" –फांसी घर में नहीं हैं वह।"

डॉ0 वर्मा क्षण भर वार्डर की ओर देखते रहे। फिर बोले–"लाश के साथ कोई रस्सी नहीं आयी।"

बाद में पता चला कि रस्सी नहीं मिली। तमाम फांसी घर की खोज कर डाली गयी, मगर पता न चला रस्सी का। पोस्टमार्टम की रिपोर्ट देखकर चले गये डॉ. वर्मा। दिन भर अन्यमनस्क रहे वह। एक आंधी सी घुमड़ती रही, उनके मन में।

सांझ घिर आयी। माघ की प्रखरता से बंधी, बर्फीली वर्षो से भींगती सांझ। आसमान स्याह था और गहरा अन्धेरा उतर आया था कमरे में। डॉ0 वर्मा अंगीठी के सामने बैठे सिगरेट पी रहे थे। एक हलचल सी मची हुई थी उनके मन में। सवेरे अन्तिम यात्रा के लिये जाते समय कादिर

का कातर और म्लान चेहरा याद आ रहा था। जीवन का भंगुरत्व याद आ रहा था और याद आ रहा था सवेरे का ही वह किसी अदृश्य का दीर्घ निश्वास और पैरों की हल्की आहट। क्या भ्रम था वह मगर वह भ्रम कैसे हो सकता था। सांस की गर्मी तो उन्होंने अपने नासापुटों के नजदीक ही महसूस की थी। पैरों की हल्की पदचाप सुनी थी, तो फिर कौन था वह?

डॉ0 वर्मा ने वेदान्त पढ़ा था, उपनिषदों का अध्ययन किया था और गीता द्वारा उन्हें आत्मा की अमरता का बोध हुआ था। भौतिकवाद, यद्यपि आत्मा की रहस्य लीला, उसके विस्तार उसके विराट माया–मोह को स्वीकार नहीं करता मगर डॉ0 वर्मा जानते थे कि चिरवांछित की खोज में निकली आत्मा जन्म–जन्मान्तर के घाट–घाट पार करती हुई कितनी अतृप्त और कितनी प्यासी रहती है। सोचते सोचते डॉ0 वर्मा व्यग्र हो उठे। तो क्या कादिर भी अतृप्तियों और असन्तुष्टिओं की अन्धकाराच्छन्न वक्रवीथियों में भटक रहा है। देह का मोह क्या अभी भी उससे नहीं छोड़ा गया है अथवा मन की कोई गांठ है जो खुलते–खुलते रह गयी।

उठकर धीरे–धीरे चलते हुए डॉ0 वर्मा खिड़की के पास खड़े हो गये। बाहर का अंधियारा और भी अधिक गहरा हो गया था पट्भूमि में खमोशी गिरते पानी को लपेटे, समस्त वातावरण प्रेत भूमि सा नजर आ रहा था।

डॉ0 वर्मा अचानक चौंक पड़े। लगा जैसे समीप ही कुछ बजा हो। वे पीछे मुड़े। मेज पर रखे टेलीफोन की घंटी धीमी आवाज में बज रही थी। डाक्टर टेलीफोन के निकट गये। बड़ी मद्धिम आवाज थी घंटी की, बेजान सी। जैसे धुनी हुई रूई के ढेर के बीच से उठ रही हो उसकी आवाज। डॉक्टर ने रिसीवर उठाया। बोले–"हैलो।"

प्रत्युत्तर में दूसरी ओर से अत्यन्त धीमी, अस्पष्ट–सी फुसफुसाहट आयी।

"हैलो, आप कौन बोल रहे है–डॉक्टर ने पूछा।

पुनः वही मद्धिम, अस्पष्ट सी फुसफुसाहट भरी आवाज उभरी। जैसे कोई हजारों मील दूर बैठा बोल रहा हो कुछ।

"मैं आपकी आवाज सुन नहीं पा रहा हूँ। —"डॉक्टर ने व्यग्रता से कहा—"जोर से बोलिए।"

इस बार खट की आवाज हुई दूसरे छोर पर। जैसे किसी ने फोन रख दिया हो उस ओर। फिर सन्नाटा छा गया।

डॉ० वर्मा एक क्षण झिझके। फिर उन्होंने टेलीफोन, एक्सचेंज मिलाया बोले—"अभी किसी नम्बर से फोन आया था।"

"नाइन सेवेन से।" जवाब आया—"यह सेन्ट्रल जेल का नम्बर है जनाब।"

डॉक्टर वर्मा ने सेन्ट्रल जेल का नम्बर मांगा। वहां से जवाब आया—हेलो।"

"मैं डाक्टर वर्मा बोल रहा हूँ।" डॉक्टर ने कहा—"अभी किसने फोन किया था मुझे।"

"आपको किसी ने फोन नहीं किया डॉक्टर साहब—" जेल के दूसरे छोर पर किसी ने कहा।

मगर अभी करीब दस मिनट पहले मेरे टेलीफोन की घंटी बजी थी, कुछ साफ सुनाई नहीं दिया । एक्सचेंज से दरयाफ्त करने पर पता चला कि फोन जेल से किया गया था।

"मैं तो हुजूर तीन बजे से ड्यूटी पर हूँ और मैंने आपको टेलीफोन किया नहीं।"

"डॉक्टर एक क्षण स्तब्ध खड़े रहे। फिर बोले—"तुम कौन बोल रहे हो। ....गंगाराम।"

"जी, हुजूर।

"तुम्हें अच्छी तरह याद है न कि तुमने या किसी और ने मुझे फोन नहीं किया था।"

"जी हुजूर।"

डॉक्टर ने रिसीवर रख दिया।

किसने किया था फोन डॉक्टर वर्मा जान नहीं पाये। मगर घण्टी स्पष्ट सुनी थी उन्होंने। केवल स्वर भर नहीं सुन पाये थे वे उस छोर से। कौन था वह ? वह क्या कहना चाहता था उनसे ?

''डॉक्टर वर्मा अंगीठी में चटकती लकड़ियों और नीली लाल रोशनी को बैठे देखते रहे चुपचाप।''

दूसरे दिन जब डॉक्टर जेल गये, तो उन्हें पुनः वही अनुभूति हुई। पैरों की वही हल्की आहट, वही दीर्घ निःश्वास और पर्दों की सरसराहट के साथ हवा का वही चीत्कार। किन्तु आज वह अनुभूति अधिक तीव्र थी। जैसे उस कमरे में उनके समीप ही कोई मेज से सटा खड़ा हो और जैसे वह उनकी प्रत्येक गतिविधि को गौर से देख रहा हो।

''व्यग्र होकर उन्होंने टेबिल पर रखी घण्टी बजाई। वार्डर गंगाराम हाजिर हुआ। डॉक्टर ने सामने रखी हुई कुर्सी की ओर संकेत करते हुए कहा–''बैठो''।

गंगाराम झिझकते हुए बैठ गया।

डॉक्टर बोले–'' तो तुमको भली–भांति याद है कि रात को जेल से मुझे फोन नहीं किया गया था।''

''जी हाँ, साहब।''

''और अपनी ड्यूटी के दौरान तुमने उस कमरे में और किसी को नहीं देखा।''

गंगाराम विचलित हो उठा। कोई जवाब देते न बना उससे।

डॉक्टर उत्साहित होकर बोले–''हाँ–हाँ, क्या कहना चाहते हो तुम कहो।''

गंगाराम का चेहरा फक पड़ गया था। जैसे सफेदी पोत दी हो किसी ने उस पर। लार निगलकर बोला–''हुजूर! अगर मैं कुछ अर्ज करूं तो आप समझेंगे कि या तो मैंने कल रात नशा किया था या सोते–जागते की दशा में देखा वह सब। मगर हुजूर! जो कुछ भी इन आँखों से देखा, उस पर भला अविश्वास कैसे करूँ।''

डॉक्टर बोले– ''जो कुछ भी तुमने देखा हो, साफ–साफ बता दो। मैं अविश्वास न करूँगा उस पर।''

गंगाराम, डॉक्टर के समीप आ गया। बोला–''हुजूर। जो कुछ कल रात मैंने देखा, वह बड़ा विचित्र था। जेलर साहब के कमरे में मेरी ड्यूटी थी। पांच बजे से जो पानी बरसना शुरू हुआ था, उसने सात–साढ़े सात बजे के करीब जोर पकड़ा। पानी कमरे में न आने पाये,

इसलिये उठकर मैंने तमाम खिड़कियाँ बन्द कर दी थी। अचानक ही न जाने क्या हुआ हुजूर कि एक खिड़की की सिटकिनी खुल गयी और खिड़की के रास्ते पानी की बौछार कमरे के भीतर आ गयी।

डॉक्टर वर्मा स्तब्ध से सुनते रहे।

गंगाराम कहता गया–"खिड़की बंद करके मैं जैसे ही मुड़ा तो लगा जैसे कमरे में अन्धेरा भरता जा रहा हो। सौ–सौ पावर के दो बल्ब जल रहे थे कमरे में मगर उनकी रोशनी साफ–साफ नजर नहीं आ रही थी। फिर उस धुंधले अन्धेरे में जहाँ तक नजर आ सका देखा कि टेबल पर रखी टेलीफोन डायरेक्टरी अचानक खुल गयी और उसके पन्ने हवा में फड़फड़ाने लगे और फिर टेलीफोन का रिसीवर अचानक हवा में टंग गया।"

डॉक्टर स्तम्भित होकर बोले–"हवा में टंग गया टेलीफोन रिसीवर क्या कह रहे हो।"

"जी हाँ"– वैसे ही आतंकित स्वर में गंगाराम ने कहा–"टेलीफोन डायरेक्टरी के पन्ने वैसे ही खुले रहे और फोन का रिसीवर वैसे ही टंगा रहा हवा में। ऐसी हालत एक डेढ़ मिनट तक रही, डॉक्टर साब।"

डॉक्टर वर्मा के दोनों कानों में अस्पष्ट कोलाहल सा भरता जा रहा था हत् वाक् से बैठे सुनते रहे वे गंगाराम का बयान। फिर बोले–"तुमने किसी को देखा गंगाराम।"

"नहीं हुजूर।"

डॉक्टर वर्मा क्षणभर मौन रहे। फिर बोले–"कल सुबह जेल में क्या हुआ था गंगाराम।

गंगाराम का स्वर विषण्ण हो गया–"अब्दुल कादिर को फांसी हुई थी, सरकार।"

कई क्षण तक कमरे में सन्नाटा छाया रहा। फिर डॉक्टर वर्मा ने मौन तोड़ा। बोले–"आज रात को तो तुम्हारी ड्यूटी फिर है न, जेल में।" गंगाराम ने सिर हिलाकर कहा–"जी"।

डॉक्टर वर्मा के मन में कुछ उठ रहा था। धीमें, किन्तु दृढ़ स्वर में बोले–"देखो गंगाराम, कल रात को जिसने मुझे फोन करने की कोशिश

की थी, सम्भव है कि वह आज मुझे फिर फोन करने की कोशिश करे। मैं नहीं जानता कि क्यों, पर ऐसा हो सकता है। सुन रहे हो न, गंगाराम।"

गंगाराम ने कहा—"जी"।

"जेलर के कमरे में जहाँ फोन रहता है आज तुम्हें नहीं रहना है—"डॉक्टर वर्मा बोले—"तुम्हें किसी मुनासिब जगह पर खड़े होकर जेलर साहब के कमरे में होने वाली वारदातों पर निगाह रखना है। इतना कर सकोगे न।"

गंगाराम ने सिर हिलाकर हामी भरी—"जरूर करूँगा, हुजूर।"

डरोगे तो नहीं।"

जैसे ताव आ गया हो गंगाराम को, दृढ़ स्वर में बोला—"प्रतापगढ़ का ठाकुर हूँ हुजूर।................

अन्धेरी शाम फिर आ गयी कयामत का शोर करती हुई। मूसलाधार वर्षा। डॉक्टर वर्मा अंगीठी के सामने बैठे, किसी का इन्तजार कर रहे थे। टेबल लैम्प का प्रकाश उनके चेहरे पर तिरछा पड़ रहा था।

प्रतीक्षा समाप्त हुई। फोन की घण्टी बजी। वही निष्प्राण सी री–री। जैसे दूर गिरजाघर की घण्टियाँ एक लय में बज रही हों। डॉक्टर टेबल के समीप आ गये। हाथ कांप रहे थे उनके फिर भी स्वर को दृढ़ बनाकर वे बोले—"हेलो।"

"उत्तर में दूसरी ओर से सिसकने की आवाज आयी।"

"हेलो मैं डॉक्टर चन्द्रप्रकाश वर्मा बोल रहा हूँ।" —डॉक्टर ने कहा—"आप कौन बोल रहे है।"

इस बार 'सिसकने की आवाज और भी तेज हो गयी। जैसे विकट वेदना और अतुल संताप से बिद्ध हो किसी का प्राण पंक्षी।

डॉक्टर वर्मा का हाथ बुरी तरह कांप रहा था। फिर भी अपने को संयत करके बोले—"यस, वॉट कैन आई डू फार यू एण्ड आर यू......."

धीरे–धीरे सिसकने की आवाज मद्धिम हुई और दूसरे छोर पर फुसफसाहट उभरी—"मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूँ डॉक्टर साहब। मैं आपसे जरूर कहूँगा, वर्ना मुझे और मेरी रूह को राहत नहीं मिलेगी।"

''हाँ–हाँ कहिये।''

''नहीं, मैं आपसे नहीं कहूँगा यह बात।–''फुसफुसाहट तेज हुई–''मैं उन्हीं से कहना चाहता हूँ यह बात, जो मेरे पड़ोसी थे और थे मेरे हमदर्द। क्या आप उन्हें बुला सकते हैं।''

''मगर आप हैं कौन–''डॉक्टर ने प्रश्न किया।

''अब्दुल कादिर।''

डॉक्टर के दोनों कान झन–झन करने लगे। लगा जैसे उनके सामने कमरा घूम रहा हो, अथवा वे आपा खो बैठे हों। रिसीवर गिरता–सा प्रतीत हुआ। फिर भी वे अपने को संभाल कर बोले–''तुम अब्दुल कादिर हो।'' जी हाँ''–वह स्वर कातर हो गया।'' मुझे निजात नहीं मिल पायी, डॉक्टर साहब। मैं यही फांसी की कोठरी में भटक रहा हूँ। यहाँ गहरा अन्धेरा और सर्दी है। मैं रोशनी चाहता हूँ डॉक्टर साहब। क्या आप मेरी मदद कर सकेंगे?

डॉक्टर की आवाज लड़खड़ाई–''तुम्हारा मतलब मि0 शर्मा से तो नहीं है कादिर, जिनसे तुम्हारी रात–रात भर बातें होती थी।''

''जी हाँ–''व्यथा से डूब गया अब्दुल कादिर का स्वर। मैं आपका एहसान कभी न भूल सकूँगा डॉक्टर साहब, अगर आप उन्हें बुला सकें। मैं तड़प रहा हूँ। मैं अपना चैन खो बैठा हूँ। क्या आप मुझे मुक्ति न दिलायेंगे, मेरी मदद न करेंगे।''

''करीब दो घण्टे बाद मुझे फोन करो अब्दुल कादिर। ''डॉक्टर ने कहा–''इस समय साढ़े नौ बज रहे हैं। मेरा मतलब है कि करीब साढ़े ग्यारह बजे तुम मुझे फोन करो कादिर। हो सकता है कि तब तक मैं तुम्हारे लिये कुछ कर सकूँ।''

''खुदा आपको जन्नत बख्शे डॉक्टर साहब। –''दूसरे छोर पर आवाज उभरी और फिर फोन रख दिया गया।

विचित्र था यह अनुभव भी। अब्दुल कादिर मौत की वीरान अन्धेरी घाटी में सुला दिया गया था, कब्र में दफना दिया गया था उसका शव, लेकिन फांसीघर की अन्धेरी, डरावनी चहारदीवारी में भटक रही थी

उसकी कातर, अशान्त आत्मा और जो गांठ थी उसके मन में उसे खुलवाने के लिए उसने डॉक्टर से निवेदन किया था।

डॉक्टर ने जेल का नम्बर मिलाया। वहाँ से वार्डर गंगाराम की आवाज आयी–"हलो।"

"तुमने क्या क्या देखा गंगाराम। "डॉक्टर का स्वर लड़खड़ा रहा था–"सच–सच बतलाना क्या–क्या हुआ।"

दूसरे छोर पर गंगाराम की आवाज में आतंक की छाया उतर आयी। बोला–"भगवान की कसम खाकर कहता हूँ सच–सच ही बताऊँगा। वह अभी कमरे में आया था डॉक्टर साहब।"

"कौन"

"अब्दुल कादिर।" गंगाराम का स्वर लड़खड़ा गया–"वही जिसे कल सवेरे फांसी दी गयी थी। कल की तरह फिर रोशनी धीमी हुई और हुजूर, मैंने अपनी आँखों से देखा कि बन्द दरवाजों के बीच से निकलकर कादिर की धुएँ जैसी आकृति हाथ में फोन लिये किसी से बातें कर रही थी।"

"अच्छा ? –डॉक्टर बोले–" और तुम क्या करते रहे इस बीच?"

मैं तो पसीने पसीने हो गया था हुजूर। –"गंगाराम ने कहा–"हनुमान चालीसा तक ठीक से नहीं पढ़ पाया।"

डॉक्टर को हंसी आ गयी। बोले–"अच्छा गंगाराम अब कुछ नहीं होगा। मगर एक काम करो। मेरी ओर से जेलर साहब से बोल दो कि कैदी नं0 92 मि0 शर्मा को लेकर आ जायें और तुम भी कमरे में रात बारह बजे के बाद आना।"

और जब मैं जेलर साहब के साथ डॉक्टर वर्मा के यहाँ पहुँचा तो वे काफी घबराये हुये मिले मुझे।

मैंने विस्मित होकर पूछा–"इस बरसाती रात में आपको मुझसे कौन सा काम है मि0 वर्मा।

डॉक्टर ने व्यग्र होकर कहा–"आप बैठिये। मैं आपसे विस्तार से बातें करना चाहता हूँ। मैं बड़ा परेशान हूँ।"

वर्षा का कोलाहल तीव्र हो गया था और परदे की परछाईयाँ दीवारों पर नाच रही थी। डॉक्टर वर्मा निर्मिनेष दृष्टि से अंगीठी में सुलगते

अंगारों को देखते रहे फिर बोले–"जो कुछ आपसे कहना चाहता हूँ मि० शर्मा हो सकता है कि उसे सुनकर आप मुझे पागल समझें।"

"मैं हँस पड़ा"

ठण्डी हवा का एक झोंका डॉक्टर के बदन में सिहरन पैदा कर गया स्तब्ध स्वर में उन्होंने कहा–"इसमें हँसने की कोई बात नहीं है। कल रात से अपने फोन पर मैं एक ऐसे व्यक्ति का रूदन चीत्कार एवं फुसफुसहट सुन रहा हूँ, जिसे कल सवेरे फांसी पर लटका दिया गया था। मेरा मतलब अब्दुल कादिर से है मि० शर्मा।"

इस बार हँस न सका मैं। आतंक से विवर्ण हो गया मेरा चेहरा और आँखे फैल गयी। अस्फुट स्वर में बोला–"यह क्या कह रहे हैं? यह तो बिल्कुल बेकार की बात है।

"नहीं यह बेकार की बात नहीं है।–"डॉक्टर ने कहा–"आपके आने के एक घण्टा पूर्व मैंने कादिर से फोन पर बातें की। उसने आपसे बात करने की इच्छा व्यक्त की है।"

"मुझसे–"मेरे कानों में जैसे कुछ बज रहा था–"आप कहना क्या चाहते हैं मि० वर्मा। ....कादिर तो मर गया। ....द डेड डू नॉट रिटर्न...."

अंगीठी की लकड़ियाँ चटखी। डॉक्टर ने अपना पाइप जलाया बोले–"कब्र में उसका शरीर ही दफन हुआ है मि० शर्मा। कादिर की प्यासी, अतृप्त आत्मा अभी भी फांसीघर की डरावनी दीवारों से टक्कर मार रही है बाहर आने के लिए कादिर मुक्ति चाहता है मि० शर्मा।"

बिजली चमकी और मेघ गर्जन का दुर्दान्त स्वर गूंज गया वातावरण में। विजड़ित–सा बैठा रहा मैं कुर्सी पर। पसीने की बूंदे मेरे माथे पर चुहचुहा आयी थी। लार निगलते हुए बोला–"यह आपका भ्रम है मि० वर्मा! लीव इट फार एवर और हाँ! वह फोन कहाँ से करेगा।"

उसने दोनों बार जेल से फोन किया था मि० शर्मा। –"डॉक्टर ने कहा–"वार्डर गंगाराम गवाह है इन वारदातों का।"

भय से कातर हो गया मैं। संशय और दहशत की मिली–जुली अनुभूति ने मुझे कुण्ठित सा कर दिया था। फिर भी बोला–"हो सकता है किसी ने मजाक किया हो, शरारत भरा मजाक।"

डॉक्टर मेरी बात का जवाब दें कि उसके पहले बादलों के गर्जन का शोर पुनः गूंजा और बिजली कौंध गयी खिड़कियों के शीशों पर और तभी फोन की घंटी बजी, निष्प्राण और कमजोर सी।

डॉक्टर व्यग्र हो उठे। बोले—"सुन रहे हैं आप।"

"क्या"

टेलीफोन की घण्टी—"डॉक्टर ने कहा—"यह कादिर का फोन है। साढ़े ग्यारह हो गये हैं न। मैंने उसे यही वक्त दिया था। —"और वे सोफे से उठ खड़े हुये।

निश्चय ही एक विचित्र इन्द्रजाल सा घटित होने जा रहा था उस समय और उस निविड़ रात्रि में उस कौतुक के दर्शक एक ओर बन रहे थे वार्डर गंगाराम के साथ जेलर मि0 श्रीवास्तव और दूसरी ओर बन रहा था—मैं डॉ0 वर्मा के साथ।

अजीब था वह समा। अन्धकाराच्छन्न रात्रि में बरसात के हा—हाकार परवेष्ठित स्याही से पागल हवा का चीत्कार, दरख्तों की सायं—सायं, अतुल रहस्यमय अंधियारा और ऐसे वातावरण में मुक्ति हेतु एक प्रेत की कातर संतप्त पुकार ने आवाहन किया था मेरा।

मैं असहाय सा उठ खड़ा हुआ। भयातुर स्वर में बोला—"पूछिये क्या चाहता है मुझसे, कादिर।"

टेबिल के पास पहुँचकर रिसीवर उठाया। बोले——"मैं डॉक्टर वर्मा बोल रहा हूँ कादिर मि0 शर्मा इस वक्त मेरे पास हैं। लो उनसे बात करो "और रिसीवर उन्होंने मेरी ओर बढ़ा दिया। कांप रहा था। यह सर्वथा निराला अनुभव था मेरे लिये। रिसीवर अपने मुंह के करीब ले जाकर बोला"—मैं शर्मा बोल रहा हूँ.........आप कौन हैं।"

डॉक्टर की आतुर दृष्टि मेरे चेहरे पर जमी रही। सहसा मेरी आँखे विस्फारित हो गयी। माउथपीस पर हाथ रख कर मैं बोला—"दूसरे छोर पर कोई फुसफुसा रहा है मि0 वर्मा0। कुछ कहना चाहता है वह।"

डॉक्टर व्यग्रता से बोले—"उसे सुनने की कोशिश कीजिये प्लीज! मैंने माउथपीस पर से हाथ हटा दिया। अचानक रिसीवर कांप गया मेरे हाथ में। निश्चय ही कोई उस ओर से अस्फुट स्वर में बोल रहा था, मगर

मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। मैंने डॉक्टर की तरफ अविश्वास के भाव से देखा। उन्होंने मेरे हाथ से रिसीवर छीन लिया और उसे मुँह के पास ले जाकर बोले–"मैं डॉक्टर वर्मा बोल रहा हूँ। तुम अपने अस्तित्व का और उपस्थिति का प्रमाण दो कादिर। फिर वे दो–तीन मिनट तक कुछ सुनते रहे और उसके बाद उन्होंने रिसीवर मुझे थमा दिया। इस बार अस्फुट स्वर नहीं था। साफ–साफ आवाज थी, जिसे सुनकर एकबारगी चौंक पड़ा मैं। भय, आतंक और आश्चर्य के मिले–जुले भाव से भर गया मेरा मन। वह कादिर ही था। कादिर की ही आवाज थी, बिल्कुल स्पष्ट और साफ। पहचानने में देर न हुई उसकी आवाज को। वह भरे गले से अवरूद्ध कण्ठ से कह रहा था–"पण्डित जी। मैं अभी भी फांसी की गन्दी और अन्धेरी कोठरी के सीलन भरे फर्श पर बैठा हूँ। मुझे शान्ति नहीं, पण्डितजी! मेरी रूह को राहत नहीं है। मैं बहुत बेचैन हूँ। आपकी मदद चाहिये। अगर आप मेरी मदद करेंगे, तो मैं भी जिन्दगी भर आपकी मदद करूँगा।"

"कैसी मदद कादिर, साफ–साफ कहो। अगर मुझसे हो सकेगा और मेरे लायक होगा, तो जरूर मैं तुम्हारी मदद करूँगा।"

मेरी बात सुनकर कादिर का गला भर आया। फिर उसे साफ कर बोला–पण्डित जी! मैं अपनी कब्र पक्की चाहता हूँ। क्या आप पक्की बनवा देंगे ?

"हाँ, बनवा दूँगा कादिर।" आगे बोलो।

मेरी बीबी बिल्कुल अनाथ और लावारिस हो गयी है। उसका अब इस दुनिया में कोई नहीं है। पण्डित जी! वह जो भी मदद चाहे अपनी छोटी बहन समझ कर उसकी मदद कीजियेगा। करोगे न मदद पण्डित जी ?"

"हाँ करूँगा कादिर! तुम बेफ्रिक रहो।"

थोड़ा रूककर सांय–सांय की आवाज में आगे बोला कादिर–"मेरे गले में फांसी का फन्दा अभी भी पड़ा है पण्डितजी। उसका टुकड़ा अभी भी झूल रहा है मेरे गले में। जब वह मेरे गले से निकलेगा, तभी मुझे फांसीघर से मुक्ति मिलेगी, पण्डितजी।"

"कैसे निकलेगा वह फन्दा कोई उपाय है ?"

"हाँ, है।–"कादिर अस्फुट स्वर में बोला–" इसके लिये मैं आपके सामने आना चाहता हूँ। मगर ऐसे में नहीं आ सकूँगा। आपको एक वजीफा (मंत्र) बतला रहा हूँ और उसे मन ही मन में पढ़े। आपके पढ़ने के तुरन्त बाद ही मैं आपके सामने हाजिर हो जाऊँगा।"

इतना कहकर कादिर की आत्मा ने मुझे अरबी में एक वजीफा बतलाया जिसे मुझे बराबर इक्कीस बार पढ़ना था। कादिर की आत्मा ने मुझे यह भी बतलाया कि जिस बृहस्पतिवार की रात में मैं वह वजीफा पढूँगा, वह तुरन्त हाजिर हो जायेगा और मेरी मदद करेगा। मगर ये सब बाते मैंने डॉक्टर वर्मा को नहीं बतलायी। खैर बात खत्म हो गयी और मैंने फोन रख दिया। डॉक्टर वर्मा से जब मैंने कहा कि कादिर की आत्मा प्रत्यक्ष में मुझसे मिलना चाहती है तो वे एकबारगी घबरा उठे। बोले–"सचमुच मिलना चाहती है वह।"

हाँ कुछ ही देर बाद इसी कमरे में प्रकट होगी उसकी रूह आप चाहे तो किसी को बुला सकते हैं। –"मैंने कहा।

डॉक्टर वर्मा कुछ बोले नहीं–"सिर्फ एक बार मेरी ओर देखा और फिर सिर नीचे कर लिया उन्होंने।

कमरे में सन्नाटा छा गया। ऐसा लगा कि बाहर बारिश कुछ धीमी हो चली है। कीड़े–मकोड़े की अजीब किस्म की रीं–रीं और दरख्तो के साये से गुंजित अंधियारा। उत्तेजना से उद्भ्रान्त दृष्टि से अंगीठी में दहकते अंगारे की रोशनी की ओर देख रहा था मैं। मेरे चित्त में एक विकट आलोड़न मचा हुआ था और दहशत ने जैसे ढक लिया था मेरे चैतन्यता को। अब तक मेरी दृष्टि में अशरीरी तत्वों और इस प्रकार की प्रेतात्माओं से संबंधित किसी भी प्रकार के तथ्यों का कोई मूल्य नहीं था। मैं इन सब बातों को न कोई महत्व देता था और न तो उनको सत्य ही समझता था। मेरे लिये यह सब कुछ सिवाय भ्रम के और कुछ भी न था। आत्मा के अस्तित्व को तो अवश्य स्वीकार करता था, मगर भूत–प्रेत आदि के अस्तित्व को बिल्कुल असत्य मानता था मैं। लेकिन इस घटना ने मेरी सारी मान्यताओं को और मेरी सारी धाराओं को एकबारगी धूल

में मिला दिया था। मैं स्तब्ध था, हतप्रभ था, तर्क शून्य था कुछ सोचने समझने की क्षमता भी नष्ट हो चुकी थी।

अचानक हा—हाकार करता हुआ हवा का एक झोंका बारिश की फुहार के साथ खिड़की के रास्ते भीतर घुस आया और फर्श पर बिछे कालीन को तर कर गया। पागल हवा की सांय—सांय पुनः तेज हो गयी और उसी के साथ तीव्र हो गया वर्षा का शोर। पर्दे बुरी तरह कांप रहे थे और दरवाजों खिड़कियों को खटखटाती हवा दरख्तों में सिर पटक रही थी।

तभी लगा जैसे कमरे की रोशनी धीमी हो रही है और भीतर उतरता आ रहा है हल्दी के रंग का धूमिल अंधियारा। जैसे दमकते बल्बों को लकवा मार गया हो। मेरा सारा शरीर कांप रहा था। आत्मा सहम गयी थी। बदलते हुए तमाम दृश्यों ने मेरे अन्दर तुरन्त कुण्ठायें भर दी थी, जिससे मेरा शरीर मेरा मन शिथिल होता जा रहा था।

डॉक्टर वर्मा की आंखों में एक विचित्र प्रकार की चमक उतर आयी थी। स्थिर दृष्टि से वे दरवाजे की ओर देख रहे थे और उनके कान किसी के पदचाप की आहट ले रहे थे। सहसा वे अस्फुट स्वर में बोले—"मि0 शर्मा, ...ही इज कमिंग।

और भयानक स्वर में चीत्कार करते हुए मेघ गर्जन के मध्य आया अब्दुल कादिर। काजल जैसे बादलों को चीरकर जो विद्युत रेखा कौंधी थी, उसी की चमक में वह कमरे के बीचों—बीच खड़ा दिखा। लम्बा, छरहरा और चौड़े कंधो वाला शरीर पारदर्शक और वायवीय—सा, जिसके आर—पार दिख रहा था सब कुछ।

मैं स्तब्ध खड़ा था मगर डॉक्टर वर्मा तो होश ही खो बैठे थे। जूड़ी के रोगी जैसा कांप रहा था उनका सारा शरीर। पहले तो लगा, जैसे केवल धड़ ही कादिर का दिख रहा है, सिर नहीं, किन्तु पुनः बिजली चमकी तो सब कुछ स्पष्ट हो गया। विषण्ण, रक्तहीन सा मुख और निष्प्राण आंखे और गले में लटकती हुई रस्सी। यही रस्सी तो गायब हुई थी फांसी देने के बाद।

निमिषमात्र में ही घटित हुई यह रहस्यमयी लीला, किन्तु लगा जैसे एक युग गुजर गया हो। धीरे—धीरे हवा का चीत्कार रूक गया। बारिश

का शोर भी थम गया और जलते हुए बल्बों की आभा पुनः वापस आ गयी। डॉक्टर भी जैसे वर्तमान में लौटे। उन्होंने मेरी ओर निगाह फेरी। शिथिल और टूटे से दोनों हाथों में अपना सिर थामें बैठा रह गया था मैं। मेरे गले के नीचे, कंठ में कुछ धधक सा रहा था। जैसे किसी ने आग लगा दी हो वहां और उसी शारीरिक मानसिक स्थिति में न जाने कब तक अपलक निहारता रहा मैं सामने फर्श पर पड़ी फांसी की रस्सी के फन्दे को और तभी डॉक्टर वर्मा मेरे करीब आये। बोले–"अब्दुल कादिर मुक्ति चाहता है मि० शर्मा। मैं सोचता हूँ कि अब आपको विश्वास हो गया होगा।"

हाँ, विश्वास हो गया था मुझे भारतीय पराविद्या के उस तिमिराच्छन्न गम्भीर और रहस्यमय सत्य पर। मैंने उस परम शाश्वत सत्य का प्रत्यक्ष दर्शन और प्रत्यक्ष अनुभव किया था।

आत्मा विभिन्न रूप धारण करती है, मगर उसके अस्तित्व में कोई परिवर्तन नहीं होता। मृत्यु शरीर की होती है, जीवन की नहीं। मृत्यु के बाद भी जीवन की धारा सतत् प्रवाहित रहती है। आत्मा पर मृत्यु का किसी भी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ता। आत्मा शाश्वत है, अजर है, अमर है। भूत–प्रेत का भी अपना अस्तित्व है। अपना जीवन है। अपना लोक है और अपनी मति–गति।

और मुझे इन तमाम सनातन धारणाओं पर पूर्ण रूप से विश्वास करना पड़ा उस घटना के बाद और उसी विश्वास के आधार पर उसी समय से शुरू कर किया परलोक विद्या से संबंधित गूढ़ गोपनीय और रहस्यमय विषयों पर शोध और अन्वेषण कार्य मैंने।

कहने की आवश्यकता नहीं, उसी दीर्घकालीन शोध .एवं अन्वेषण का परिणाम है मेरी पुस्तक "मरणोत्तर जीवन का रहस्य।" यह लिखना अतिशयोक्ति न होगी कि इस महत्वपूर्ण पुस्तक की रचना में अब्दुल कादिर की आत्मा का समय–समय पर पूरा सहयोग मिलता रहा मुझे। इस दीर्घ अन्तराल में न जाने कितने बृहस्पतिवार को मैंने वजीफा पढ़ा न जाने कितनी बार अब्दुल कादिर की रूह मेरे सामने आयी और न जाने कितनी बार उसने परलोक के रहस्यों को बतलाया मुझे। सचमुच

उसने मेरी पूरी मदद की। ईश्वर, खुदा, गॉड उसे मुक्ति दे मोह और अतृप्ति के बंधन से, असन्तुष्टि के अन्धकार से सन्तुष्टि और तृप्ति के प्रकाश में परमात्मा अब्दुल कादिर की आत्मा को मुक्ति का पथ दिखलाये। बस मेरी यही कामना है।

हवा का शोर बिल्कुल धीमा हो गया था और लगा कि जैसे जीने की सीढ़ियों पर धप्–धप् की हल्की ध्वनि करता हुआ नीचे उतर गया हो अब्दुल कादिर।

दूसरे ही दिन मुझे भी जेल से मुक्त कर दिया सन्देह का लाभ देकर।

●

रहस्य पाँच

एक अविश्वसनीय रहस्य

स्वतंत्रता संग्राम के समय की एक अछूती अविश्वसनीय क्रूर कथा

फ्रान्टियर मेल........प्रथम श्रेणी का कम्पार्टमेन्ट..........

घने कुहरे में डूबी हुई जाड़े की सिहरन भरी अंधेरी रात और उस अंधेरी रात को चीरती हुई मेल तीव्रगति से भागी जा रही थी। अपने बर्थ पर कम्बल ओढ़े लेटे हुए कोई पत्रिका पढ़ रहा था मैं। एकाएक मेल की गति धीमी होने लगी। शायद कोई स्टेशन आने वाला था। रेडियम टच कलाई घड़ी की ओर देखा, नौ पैंतीस।

रतलाम। चीं चीं की आवाज करती हुई लम्बे चौड़े प्लेटफार्म पर मेल रुकी और थोड़ी देर के बाद कम्पार्टमेन्ट का भारी भरकम दरवाजा खुला और हाथ में पुराने जमाने की अटैची लटकाए एक वृद्ध सज्जन भीतर घुसे और उनके पीछे–पीछे चला आया सिर पर लादे होल्डाल एक कुली भी। खखार कर गला साफ करते हुए वृद्ध सज्जन बोले–ठीक से देखकर बतलाओ यही कम्पार्टमेन्ट है न?

मेरे सामने वाले बर्थ पर होल्डाल पटककर कुली बोला–हाँ, साब! यही है नम्बर मिला लें। कुली को पैसा थमाकर मेरी ओर चश्मे के मोटे लेन्स के भीतर से घूरते हुए देखा एक बार और फिर अटैची रखकर होल्डाल खोलने लगे महाशय।

होल्डाल भी पुराने जमाने का था और था मैला कुचैला जिसके खुलते ही तम्बाकू जैसी सड़ी–गली दुर्गन्ध फैल गयी कम्पार्टमेन्ट में। अब तक ट्रेन ने स्टेशन छोड़कर अपनी गति पकड़ ली थी। मैंने अपने सिरहाने वाली खिड़की खोली और चार–पांच बार लम्बी लम्बी सांसें ली। वृद्ध सज्जन बिस्तर बिछाकर इत्मीनान से बैठ चुके थे और देख रहे थे खिड़की के बाहर फैले हुए घोर अन्धकार की ओर। कम्पार्टमेंट में फैला मौन सन्नाटा। मेरी आँखे वृद्ध सज्जन के व्यक्तित्व को नापतौल रही थी इत्मीनान से?

सफेद खादी का कुर्ता पाजामा और खादी की ही बदरंग बण्डी। कलाई में एक प्रकार से झूलती हुई पुरानी सेण्डो घड़ी। गले से थोड़ा बाहर निकला जनेऊ शायद भूल गये थे पेशाब के बाद उसे भीतर करना। आपस में उलझे हुए सन जैसे सिर के सफेद बाल। छोटी–छोटी दाढ़ी। मोटे लेन्स के भीतर से चिपचिपाती छोटी–छोटी आंखे। उम्र यही करीब अस्सी वर्ष लेकिन शरीर की कदकाठी से उम्र का इतना अन्दाज लगाना कठिन था। एक ही स्थान पर दो व्यक्ति और वह भी एक दूसरे से अपरिचित–कब तक मौन रहकर एक दूसरे को देखते रह सकते हैं, आखिर बातचीत का सिलसिला शुरू हुआ। वृद्ध सज्जन का नाम था गणेश पाल। पश्चिम बंगाल के निवासी थे और आई0जी0 पुलिस पद से पन्द्रह वर्ष पूर्व रिटायर हुए थे महाशय लेकिन पुलिस का रोब अभी भी चेहरे पर चिपका हुआ था।

और जब गणेश पाल को मेरे विषय में ज्ञात हुआ तो उनकी आँखों में चमक आ गयी और हाथ मिलाते हुए रोबदार आवाज में बोले मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि आपसे इस प्रकार अचानक भेंट होगी। कालीमठ में हुए मर्डर केस की जांच के सिलसिले में जब आप बंगाल के डी.आई.जी. मि0 घोष के साथ पत्रकार के रूप में आसाम गये थे। उसी समय से आपके नाम से परिचित हूँ मैं। हे मां! कैसा था वह मामला भी।

मैंने भी कभी यह नहीं सोचा था, बंगाल के भू.पू. आई.जी. मि. गणेश पाल से इस प्रकार ट्रेन में मुलाकात होगी। हाथ छुड़ाते हुए विनम्र स्वर में मैंने कहा– उस मर्डर केस के संबंध में जब मि0 घोष ने मेरी राय

जाननी चाही तो मैंने स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि मानव कल्पना के परे है यह मामला। केस फाइल कर दिया जाय।

जरा आप ही गहरायी से सोचें। काली गह्वर का छोटा सा और मजबूत दरवाजा भीतर से बन्द था और बाहर से भी पुलिस ने बन्दकर सील मोहर लगा दिया था और इसके अलावा पहरे पर चार सिपाही भी थे। ऐसी स्थिति में माँ काली के सामने युवा सन्यासी का कटा हुआ सिर और धड़ कैसे मिला। किस रास्ते से मन्दिर के भीतर गया युवा सन्यासी और अपनी बलि भी दे दी सोचने की बात है।

मैं थोड़ा रूका और सिगरेट जला कर दो तीन कश लिया। रात के ग्यारह बज चुके थे। फ्रान्टियरमेल अस्सी मील की गति से भागती जा रही थी गन्तव्य की ओर।

सिगरेट खत्म कर मैंने आगे बोलना शुरू किया– पाल बाबू! आप इस तथ्य पर विचार करिए। कालीमठ से सैकड़ों मील दूर हावड़ा के एक थाने के हवालात में कई सिपाहियों की निगरानी में बन्द और दस दिन तक बिना अन्न, जल ग्रहण किये स्वामी श्रद्धानन्द एक रात कैसे दिखलायी दिये मठ में पहरे पर तैनात इन्स्पैक्टर को मठ में जबकि हवालात का ताला बन्द था और पहरे पर सिपाही भी थे। इसे आप क्या कहेंगे?

मेरी बात सुनकर सहमें पाल बाबू और थोड़ा चिहुंक कर बोले–भाई शर्मा जी इस सबको तो दैवी चमत्कार ही कहा जायेगा।

नहीं–नहीं पाल बाबू! दैवी चमत्कार नहीं योग का चमत्कार कहिए–मैंने कहा।''

यह सुनकर दंग रह गये पाल बाबू! अपनी पुलिसिया बुद्धि व्यर्थ प्रतीत होने लगी थी शायद उन्हें।

कुछ सोचते हुए बोले–शर्मा जी पुलिस लाइफ में मेरे साथ भी कुछ ऐसी ही एक अविश्वसनीय और विचित्र घटना घटी थी। क्या उसका रहस्य सुलझा पायेगे आप? कहिए! मैं सिगरेट का कश लेते हुए बोला। शान्त भाव से पाल बाबू ने कहना शुरू किया। सन् 1939 ई0 में ट्रेनिंग के बाद पुलिस में इन्स्पैक्टर पद पर मेरी नियुक्ति हुई और वह भी बंगाल क्राइम ब्रांच में। उस समय बंगाल में स्वाधीनता आन्दोलन अपना उग्ररूप

धारण कर रहा था। उस समय शान्तिपुर में था मैं। एक बार पुलिस बैरक में पुलिस फोर्स में असन्तोष फैलने के कारण काफी खलबली मच गयी। दो रायफल चुरा ली गयी। सार्जेन्ट मेजन टॉम ने जांच का आदेश दिया। उस दिन रात में मैंने बैरक की स्थिति फोर्स में असन्तोष के कारण एक रिपोर्ट तैयार की और दूसरे दिन पूछताछ के दौरान मैंने अपनी रिपोर्ट हिम्मत कर के थमा दी मि० टॉम को। अपने जमाने के बड़े ही बिगड़ैल और गरम मिजाज पुलिस अफसर थे टॉम साहब।

तीसरे ही दिन मुझे हेडक्वार्टर जाने का आदेश मिला। मैं तो शर्मा जी घबरा गया था कि कहीं मेरी नौकरी तो नहीं चली जायेगी? वहां सुपर साहब दयानन्द मुखोपाध्याय ने मुझसे मेरी पारिवारिक स्थिति के बारे में पूछताछ की। टॉम साहब भी वहां मौजूद थे। अन्त में मुझसे कहा गया कि मेरी पदोन्नति कर मुझे इन्टेलिजेंस विभाग में प्रशिक्षण के लिए भेजा जायेगा। एक साल तक मैंने ब्रिटिश पुलिस के खुफिया कार्य का प्रशिक्षण लिया। बाद में मुझे मिदनापुर भेज दिया गया। क्रान्तिकारी दल में सोर्स यानि मुखवीर बनाना मेरा मुख्य कार्य बन गया। मैंने दक्षता के साथ इस मिशन में अपूर्व सफलता प्राप्त की।

सन् 1942 का "भारत छोड़ो आन्दोलन" बंगाल में जोर पकड़ता जा रहा था। खासकर मिदनापुर जिले का ताल्लुक अंचल इस आन्दोलन से पूरी तरह प्रभावित था। सतीशचन्द्र सामन्त के नेतृत्व में वहां ताम्रलिप्त राष्ट्रीय सरकार का गठन हुआ। जिसकी एक भूमिगत सेना बनी। जिसका नाम रखा गया "विद्युत वाहिनी"।

एक और क्रान्तिकारी संगठन "अनुशीलन समिति" पहले से ही सक्रिय थी। जिसके कुछ सदस्यों ने "विद्युत वाहिनी" से मिलकर क्रान्ति कारवाई करना शुरू कर दिया था। उनमें श्यामल वेरा और रामाशीष बनर्जी ने तो पुलिस के नाकों में दम कर रखा था। 18 फरवरी 1943 को एक अंग्रेज पुलिस अधिकारी और दो बंगाली पुलिस की हत्या हो गयी। मुखवीर से मुझे खबर मिली कि यह काम श्यामल वेरा का था। संगठन और जनता में श्यामल वेरा श्रद्धा के पात्र थे। परन्तु कलकत्ता से निर्देश आ गया कि जैसे भी हो श्यामल वेरा को ज़िन्दा पकड़ना चाहिए। खुफिया विभाग की एक गुप्त मिटिंग हुई। एक अंग्रेज पुलिस ऑफिसर

ने जिनको मैं नहीं पहचानता था, मुझसे जाते समय कहा–'पाल, किल वेरा, आई विल रिवार्ड यू''

शर्मा जी! आप बोर तो नहीं हो रहे हैं–गणेश पाल ने कहा।'

'नाट, एट आल, पाल बाबू! देश के स्वाधीनता आन्दोलन के इस अलिखित इतिहास को भला कौन नहीं सुनना चाहेगा। प्लीज, आप कहिए। मैं एक नया सिगरेट सुलगाने लगा।

बात करते–करते शायद पाल बाबू को प्यास लगी थी। उन्होंने बोतल से लेकर एक गिलास पानी पिया। आपबीती सुनाते समय मनुष्य प्रायः जज्बाती हो जाता है और यही कारण था कि पाल बाबू खिड़की के पास खिसक आये और उसे खोलकर मुक्त हवा को सांस में भरकर वे पुनः अपने स्थान पर बैठ गये।

हाँ शर्मा जी! उन दिनों मेरा मस्तिष्क और हृदय पूरी तरह ब्रिटिश राज्य के प्रति समर्पित था। मैंने भी मन में प्रतिज्ञा की कि श्यामल वेरा पुलिस के हाथ से तुम बच नहीं सकते। काश उस समय मैं मुजरिम और देशभक्त में फर्क महसूस कर सकता। मुखवीरों से मुझे सूचना मिली कि श्यामल वेरा तमलुक छोड़कर भाग गया है। मगर कहाँ उन दिनों फोटोग्राफी का चलन आज जैसा नहीं था। अमीर और शौकीन लोग ही फोटो खिचवातें थे। इसलिए श्यामल दा की फोटो उपलब्ध नहीं हो सकी। परन्तु श्यामल दा की आकृति और शारीरिक गठन की जानकारी मुझे मिल गयी थी।

उन दिनों अनुशीलन समिति का एक क्रान्तिकारी कृष्णनगर जेल में बन्द था। वह सजा काट रहा था। बढ़ती उम्र की बोझ से वह जैसे जीवन से त्रस्त होकर अपना अस्तित्व पूरी तरह खो चुका था। मैं उसे अच्छी तरह जानता था। इसलिए जेल में उससे मिला। मुझे देखते ही वह भय से चौक उठा। जेलर ने मुझसे पहले ही कहा था कि दो सप्ताह बाद उसकी रिहाई हो जायेगी। इसलिए मैंने उससे कहा कि यदि उसने श्यामल दा के बारे में मुझे नहीं बतलाया तो उसे फिर से जेल भेज दिया जायेगा। डर गया बेचारा। केवल एक ही स्थान का पता बतलाया उसने। जहाँ श्यामल दा गोला, बारूद, बन्दूक का संग्रह करते थे। वह

वर्द्धमान जिले में मेमारी नामक गांव में सत्येन्द्र बागची का घर था। पेशे से वे शिक्षक थे। रात में छापा मारा गया। शिक्षक महोदय तो नहीं मिले लेकिन श्यामल दा सो रहे थे। घर से भारी मात्रा में गोला बारूद और अस्त्र–शस्त्र बरामद हुए। श्यामल दा को गिरफ्तार कर लिया गया। मैं अपनी सफलता पर फूला नहीं समा रहा था। वायरलेस से कलकत्ता मुख्यालय को सूचना भेजी गयी। वर्द्धमान थाने में उस दिन श्यामल दा को आराम करने दिया गया।

दूसरे दिन श्यामल दा से उनके गुप्त ठिकानों और साथी क्रान्तिकारियों के नाम उजागर करने के लिए सवेरे से पूछताछ की जाने लगी। उन्हें क्रूर तरीकों से यातनाएँ दी जाने लगी। थर्ड डिग्री के उस अत्याचार को मैं भी सह नहीं पा रहा था। पर धन्य थे श्यामल दा भी। उनकी एक आंख नष्ट हो गयी थी। हाथ पैर के जोड़ टूट गये थे। अन्त में कम्बल धुलाई की गयी। सारा शरीर कम्बल से बांध दिया गया और फिर तीन चार सिपाही उन पर लाठियाँ बरसाने लगे। श्यामल दा की आयु 40 के लगभग थी। वे अविवाहित थे। शिक्षित भी थे। परिवार में अकेले थे। 16 वर्ष की आयु में ही वे अनुशीलन समिति के सदस्य बने थे। अचानक मैंने देखा कि उनका सारा शरीर शिथिल हो गया। प्रहार रोक दिया गया। श्यामल दा की सांस रूक गयी थी। उनको तुरन्त अस्पताल ले जाया गया। जहां डाक्टरों ने उन्हें मृत घोषित कर दिया। थानेदार ने रपट लिखवायी कि मृतक के घायल शरीर को किसी निर्जन स्थान पर पाया गया था। अंग्रेजों की हुकूमत थी। पोस्टमार्टम दिखावे का हुआ और उनकी लाश को मुर्दाघर भेज दिया गया।

मैंने थाने जाकर एक टेलीग्राफिक मैसेज बनाया और तुरन्त कलकत्ता भेज दिया उसे। जिसका जवाब उसी दिन शाम को मेरे नाम आ गया। खुफिया मुख्यालय के सुपर ने लिखा था—श्यामल वेरा की लाश पर तब तक पहरा रखो, जब तक कि हमारे प्रधान सेमुअल साहब स्वयं मुआयना न कर लें। मुख्यालय का आदेश था पालन तो करना ही था। थानेदार ने मेरे साथ एक सिपाही को पहरे पर रहने का आदेश दिया।

हम दोनों खाना खाकर अस्पताल की ओर चल पड़े। चीफ मेडिकल ऑफिसर से पहले ही अनुमति ले ली गयी थी। चार बड़े–बड़े कमरों वाले मुर्दाघर के प्रवेशद्वार के बायें वाले कमरे में चीरफाड़ की जाती थी। बीच वाला कमरा काफी लम्बा–चौड़ा था जो कांच की दीवार से घिरा हुआ था। बीच में चैनल जड़े थे लकड़ी के और एक ओर खुलने वाला दरवाजा था। वह भी कांच का था। अन्दर तीन लाशें रखी हुई थी जिसमें एक श्यामल दा की भी थी। उसी के साथ इलियस कम्पनी ने शहर के गिने चुने घरों तथा सरकारी कार्यालयों में बिजली सप्लाई की व्यवस्था की थी। मुर्दाघर में एक पच्चीस पावर का बल्व जल रहा था। जिसका हल्का पीला प्रकाश मुर्दाघर के मटमैली दीवार पर चिपका हुआ था। हमने दो कुर्सियाँ मंगवायी और उस कांच के दरवाजे के बाहर पहरे पर बैठ गये।

अचानक स्याह आकाश में काले भूरे बादल घिरने लगे और थोड़ी ही देर में झम–झम कर होने लगी बारिश। बादलों की गरज और चमकती हुई बार–बार बिजली और उसी के साथ हवा का तूफानी सिलसिला। थोड़ी देर बाद कड़कड़ाती हुई बिजली चमकी और उसी के साथ जोर पकड़ ली बारिश ने भी।

अब क्या होगा? मैं उठकर खड़ा हो गया और जेब से सिगरेट निकालकर सुलगाया। मेरा साथी पहरेदार अपनी कुर्सी पर ही लुढ़क गया था। मुर्दाघर का रखवाला भी शराब पीकर खर्राटे भर रहा था। मैं अपना सिर झुकाये सोच रहा था कि कलकत्ते से साहब लोग कल दस बजे से पहले तक तो पहुँच ही न सकेंगे। बारह बजे के बाद ही छुट्टी मिल पायेगी। कुछ देर बाद झुकी हुई कमर को सीधा किया, अंगड़ाई ली। अचानक मेरा सिर घूम गया मुर्दाखाने के भीतर की ओर। हे! भगवान यह क्या? चौंक कर खड़ा हो गया मैं। मेरा सारा शरीर भय से कांपने लगा था। भय–विस्मय और आश्चर्य के मिले–जुले भाव से विजड़ित सा हो गया मेरा मन।

श्यामल वेरा चादर हटाकर अपने स्थान से धीरे–धीरे उठ रहा था। उसके काले पड़े शरीर पर कपड़े का एक टुकड़ा भी नहीं था। पूरी तरह नंगा था वह।

श्यामल वेरा का स्याह शरीर सिर झुकाये दरवाजे की ओर धीरे–धीरे चलकर आ रहा था। अपनी जगह पर विमूढ़ सा खड़ा था मैं। मेरी पुलिसिया बुद्धि बेकार हो चुकी थी। शीशे का लम्बा चौड़ा बन्द दरवाजा भी बाधक न बना। श्यामल वेरा का पूरा का पूरा शरीर दरवाजा लांघकर बाहर निकल आया, उसी तरह सिर झुकाये हुए।

बड़ा ही अद्भुत रोमांचकारी और अविश्वसनीय दृश्य था वह, इसमें सन्देह नहीं। क्या कहेंगे उसे आप? कुछ क्षणों के लिए मैं अपने आप में नहीं रहा। पाषाणवत् जड़वत् कह सकते हैं आप। यह कैसे सम्भव है मुर्दा व्यक्ति जीवित होकर चल रहा हो?

सब सम्भव है–मैंने कम्बल ठीक करते हुए धीरे से कहा।''

मेरी बात सुनकर पाल बाबू चौंक पडे, लेकिन बोले कुछ नहीं। हाँ अपनी कथा जारी रखी–अब तक श्यामल वेरा का मुर्दा मेनगेट के बाहर निकलाकर पानी में भींगता हुआ आगे बढ़ रहा था। लगा जैसे अंधेरे में खो जायेगा और तभी बिजली चमकी और मैंने अपनी मानसिक स्थिति ठीक की और रिवाल्वर निकालकर फायर कर दिया। निशाना ठीक था। गोली लगते ही श्यामल वेरा का मुर्दा शरीर छाती के बल गीली जमीन पर गिर पड़ा। गोली की आवाज सुनकर पहरेदार सिपाही जाग उठा था। कभी मेरी ओर तो कभी श्यामल वेरा के मुर्दे की ओर मुंह बाये देखने लगा वह। उसका सारा शरीर भय से कांप रहा था उस समय।

दूसरे दिन सैमुअल साहब दो खुफिया अधिकारियों को लेकर वहां पहुँचे। पानी बन्द हो चुका था। आकाश साफ था। श्यामल वेरा की लाश थोड़ी दूर पर कीचड़ में पड़ी थी। जहाँ गोली लगी थी उस जगह से पानी रिस रहा था खून की एक बूंद भी नहीं।

थानेदार ने जैसे ही मेरा परिचय कराया सैमुअल साहब ने मेरी पीठ ठोंकी और शाबाशी दी और लाश जाकर देखी तथा जांच पड़ताल किया। अचानक सैमुअल साहब ने थानेदार से पूछा–इसे तो गोली मारी गयी है।

थानेदार ने कहा–नो सर।

इस पर आश्चर्य की मुद्रा में उन्होंने पूछा–यह लाश बाहर कैसे आयी और गोली किसने मारी?

अब मेरी बारी थी। मैंने ठंडे दिमाग से रात की पूरी घटना का वर्णन किया।

उन्होंने सब कुछ ध्यान से सुना और अन्त में कहा–असम्भव।

मेरे साथी ने मेरी बात का समर्थन किया। मैंने उन्हें अपने रिवाल्वर की मैग्जीन भी दिखायी। श्यामल दा की पीठ पर गोली लगने के कारण छेद भी पाया गया। सैमुअल साहब और उनके साथी मौन होकर सोचते रहे।

सैमुअल साहब ने फिर मुझसे पूछा कि जो मैं कुछ बोल रहा हूँ। क्या वह सच हैं? मैंने उत्तर दिया–मुझे झूठ बोलने की आदत नहीं है। यह सुनकर झटके से सिर हिलाकर उन्होंने कहा–मैं विश्वास नहीं करता हूँ। फिर घूमकर उन्होंने थानेदार से कहा पाल से एक रिपोर्ट लिखवा लो कि विद्रोहियों के साथ मुठभेड़ में अपने को बचाने के लिए उसे गोली मारनी पड़ी। बैलेस्टिक रिपोर्ट भी उसी तरह बन जानी चाहिए। मुझे पांच सौ रुपये नगद इनाम के रूप में मिले और पदोन्नति भी हुई।

शर्मा जी! पाल महाशय थोड़ा रूककर आगे बोले–मेरी यह कथा यहीं समाप्त होती है। सच पूछा जाय तो यह कहानी नहीं हकीकत है। आज मैं लगभग अस्सी वर्ष का वृद्ध हूँ। फिर भी इस घटना को भूल नहीं सका हूँ। आप पहले व्यक्ति हैं जिन्हें मैंने अपनी यह अविश्वसनीय कथा सुनायी है। हाँ, हाँ, मैं भूल ही गया था कि इसके पहले इस कथा का कुछ महत्वपूर्ण अंश एक महात्मा को अवश्य सुनाया था। वह महात्मा एक सिद्ध पुरुष थे। उन्होंने कहा सब कुछ भूल जाओ। मन को शांत रखो। ईश्वर भक्ति में लीन हो जाओ। लेकिन कैसे भूलूँ मैं। काफी कोशिश करता हूँ, फिर भी भुलाये नहीं भूलता श्यामल दा का विवर्ण चेहरा। लगता है, श्यामल दा की आत्मा किसी न किसी रूप में और कभी न कभी जरूर बदला लेगी मुझसे। मेरी बड़ी बेटी के दामाद परिमल बाबू मनोचिकित्सक हैं। उनका कहना है कि यह केस फोबिया या अतिभय का है। जिसका कारण मेरा समस्याग्रस्त अचेतन मन है। उन्होंने यह भी कहा कि जब मैंने श्यामल वेरा पर कर्तव्य पालन के लिए गोली चलाई तब तक तो सब ठीक था। परन्तु जैसे ही मुझे यह विश्वास हो गया कि श्यामल वेरा देशभक्त थे। वे कोई चोर बदमाश नहीं थे मुझमें पाप बोध जागृत हो गया। मुझसे बहुत बड़ी भूल हो गयी। मुझसे घोर अपराध ा हो गया। इसलिए मेरे अचेतन मन में यह भय बैठ गया है कि श्यामल वेरा मुझसे बदला लेंगे। उनकी अतृप्त आत्मा किसी न किसी रूप में

बदला अवश्य लेगी क्योंकि उनके मृत शरीर को चलते हुए देखा था मैंने जो कि मतिभ्रम था।

शर्मा जी! मुझ पर परिमलबाबू की बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। आज भी मेरे मन में भय पूर्ववत् बना हुआ है। आपने तो विदेही आत्माओं तथा भूत–प्रेत पर गहरा शोध कार्य किया है। इस दिशा में आपका अपना अनुभव भी है। इस संबंध में आपका क्या विचार है?

मैंने एक सिगरेट सुलगाकर कहा–पाल बाबू! मुझे आपकी कथा पर पूर्ण विश्वास है। मनोचिकित्सक परिमल बाबू ने जो कुछ बतलाया वह भी अपने स्थान पर उचित है। जहाँ तक श्यामल दा के मृत शरीर का अपने स्थान से उठकर चलने और गोली खाकर उसके गिरने का प्रश्न है। उसका समाधान कर देता हूँ मैं अपने अनुभव के आधार पर।

मेरी बात सुनकर पाल बाबू की चिपचिपाती आँखों में चमक आ गयी। मैं सिगरेट का एक लम्बा कश लेकर कहने लगा–आपको मालूम होना चाहिए कि यह जो हमारा स्थूल शरीर है यही सब कुछ नहीं है। इसके अलावा तीन शरीर और है, जो स्थूल शरीर के साथ जुड़ा हुआ है और वह तीन शरीर है–छायाशरीर, वासनाशरीर और सूक्ष्मशरीर। ये तीनों शरीर एक साथ इस प्रकार आपस में जुड़े हुए हैं कि स्थूल शरीर से अलग उनकी कल्पना ही नहीं की जा सकती। कहने की आवश्यकता नहीं तीनों शरीर के रूप रंग और आकार प्रकार स्थूल शरीर के जैसे ही होते हैं। जरा सा भी अन्तर नहीं होता। स्थूल शरीर के साथ–साथ उन पर भी आयु का प्रभाव पड़ता है। जहाँ तक आत्मा का संबंध है वह चारो शरीर में रहती है। वास्तव में चारो शरीर आत्मा के वाहन है। आत्म चेतना बराबर समान रूप से चारो शरीर में विद्यमान रहती है। मृत्यु काल में आत्मा शेष तीनों शरीर के साथ स्थूल शरीर से अलग हो जाती है। इसी का नाम मृत्यु है। स्थूल शरीर मृत हो जाता है, लेकिन शेष तीनों शरीर आत्मा के वाहन रूप में क्रियाशील और चैतन्य रहते हैं।

स्थूल शरीर के सर्वाधिक निकट छायाशरीर है। इसलिए सर्वाधिक गहरायी से वह स्थूलशरीर से अलग नहीं होता। स्थूलशरीर का आकर्षण उसे अपनी ओर खीचता है और आत्मचेतना अपनी ओर। यही खीचातानी मृत्यु समय का कष्ट है। यदि आत्मचेतना असफल हो गयी तो वह शेष शरीर को लेकर अपनी यात्रा पर निकल पड़ती है। दूसरी ओर

जब तक थोड़ा बहुत प्राण का अंश छायाशरीर में रहता है तब तक छायाशरीर स्थूल शरीर के साथ बराबर बना रहता है। ऐसी अवस्था में वह अपने आपको जीवित समझता है। इसीलिए उसके प्रभाव से मृत व्यक्ति का शरीर जीवित शरीर की तरह अपने स्थान से कुछ समय के लिए उठ सकता है खड़ा हो सकता है और चल फिर भी सकता है। ऐसा लगता है कि मृत व्यक्ति जीवित हो उठा है मगर यह सत्य नहीं है। जो मर गया सो मर गया लेकिन उपरोक्त स्थिति काफी देर तक बनी रहती है। प्राण का क्षय होते ही छायाशरीर मृत शरीर से अपने आप हमेशा के लिए अलग हो जाता है और उसकी वही स्थिति होती है जो मृत शरीर की होती है। जैसे वह जीवित नहीं हो सकता वैसे ही छायाशरीर भी जीवित नहीं हो सकता। उसका भी आत्मचेतना से सदैव के लिए नाता–रिश्ता टूट जाता है। अन्तर यही होता है मृत शरीर तो दिखलायी देता है, लेकिन वह नहीं। वह कहीं न कहीं फटे पुराने कपड़े की तरह फेका पड़ा रहता है। **(छाया शरीर के विषय में अधिक जानकारी के लिए पढ़े वह रहस्यमय सन्यासी–ले0 अरुण कुमार शर्मा)** मेरी व्याख्या बड़े ध्यान से सुन रहे थे पाल महाशय। निःसन्देह उन्हें यथार्थ का बोध हो गया था और उनके चेहरे पर चमक आ गयी थी। चिन्ता का भाव वहां नहीं था अब। आखिर उनके मुख से निकल ही पड़ा–अच्छा यह बात थी।"

गाड़ी की गति धीमी पड़ती जा रही थी गन्तव्य स्थान आ गया था पाल बाबू का। सामान समेटने लगे थे अब वह। सवेरा होने वाला था। गाड़ी प्लेटफार्म पर आकर रूक चुकी थी। दरवाजा खोलकर पाल बाबू ने कुली को आवाज दी और फिर पलटकर मेरी ओर देखते हुए थोड़ा मुस्कराये और बोले–शर्माजी मैं आपकी व्याख्या सुनकर सन्तुष्ट हूँ। अब मैं अपना एक रहस्य खोलना चाहता हूँ। अब मुझे किसी बात का डर भय नहीं है। मैंने अपने पाप का प्रायश्चित कर लिया था शर्मा जी।

श्यामल दा की मृत्यु के बाद मैं ब्रिटिश पुलिस प्रशासन को बराबर गुमराह करता रहा। उनकी हर गुप्त योजना की सूचना क्रान्तिकारियों तक पहुँचाता रहा और हाँ 22 जुलाई 1944 को सैमुअल साहब की हत्या कर दी गयी। हत्यारा और कोई नहीं मैं यानी गणेश पाल था। इतना कहकर पाल बाबू बाहर उतर गये और गाड़ी चल पड़ी।

●

रहस्य छः

काली का रहस्यमय रक्षा कवच
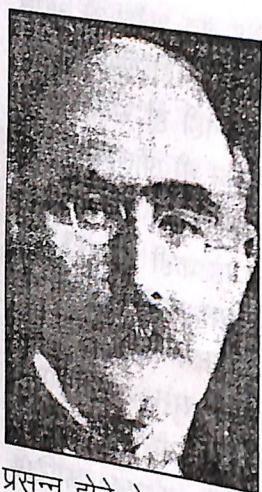
मैं पूरे तीस साल तक रहा कलकत्ता में कभी कदा दो चार दिनों के लिए वाराणसी आना हो जाता था। महाकाली का दर्शन करना मेरा नित्य का कार्य था। मन्दिर के मुख्य पुजारी से मेरा संबंध धीरे–धीरे घनिष्ट हो गया था। पुजारी शाक्तमार्गीय बंगाली थे और उनका नाम का तरणीकान्त भट्टाचार्य। मैं उन्हें तरणी बाबू कहकर सम्बोधित करता था। अपना इस प्रकार नाम सुनकर अति प्रसन्न होते थे तरणीकान्त महाशय। सुन्दर बंग देशीय शरीर आकर्षक व्यक्तित्व बड़ी–बड़ी गहरी आँखे, चौड़े ललाट पर लाल सिन्दूर का गोल बड़ा सा टीका, गले में रूद्राक्ष की कई छोटी बड़ी मालाएँ, चौड़े किनारे की ताड़केश्वरी धोती और गैरिक चादर। दोनों हाथ की उंगलियों में विभिन्न रत्नों से जड़ी सोने की अंगूठियाँ। आयु बस यही साठ के आसपास। लेकिन कौन कह सकता था–भला तरणी बाबू को साठ वर्ष का बूढ़ा। न न वे तो बस देखने में लगते थे चालीस से अधिक नहीं। पूरा बाल काला होने के कारण प्रौढ़ युवक ही लगते थे महाशय।

कलकत्ता विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम0ए0 किया था तरणी बाबू ने। इसके अलावा बंगला, संस्कृत और तंत्र का भी अच्छा ज्ञान था उन्हें। तंत्र के कई महत्वपूर्ण ग्रन्थों का अंग्रेजी और बंगला में अनुवाद भी किया था उन्होंने। एक प्रकार से कर्मठ विद्वान और साधक थे तरणीबाबू इसमें सन्देह नहीं।

कलकत्ता की काली के परम्परागत पुजारी थे तरणी बाबू। उनके दादा, परदादा और पिता सभी का समय–समय पर अधिकार रहा काली मन्दिर पर। वैसे तो तरणी बाबू का पैतृक मकान हाजरा रोड में था, लेकिन तरणी बाबू काली गह्वर के बगल में बने एक छोटे से कमरे में ही अपना समय अधिक बिताया करते थे। उनसे मिलने–जुलने वालों की संख्या नगण्य ही थी। अपनी गुफानुमा कोठरी से बाहर भी कम ही निकलते थे तरणी बाबू। प्रायः कुछ न कुछ पढ़ते रहते थे या फिर मौन साधे किसी साधना में डूबे रहते। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि कलकत्ता के प्रसिद्ध उद्योगपति स्व0 रतनलालजी सुरेखा से मेरा परिचय तरणीबाबू ने ही करवाया था। बाद में रतनलाल सुरेखा मेरे अन्तरंग मित्र बन गये थे। जब सुरेखाजी ने वाराणसी में प्रसिद्ध मानस मन्दिर बनवाने का संकल्प किया तो उस परमसंकल्प को आदि से अन्त तक साकार करने में पूर्ण सहयोग दिया था मैंने। आज भी वाराणसी का गौरव है तुलसी मानस मन्दिर इसमें सन्देह नहीं।

सन् 1960 में अचानक भयंकर रूप से बीमार पड़ गया मैं। रात दिन हर समय बुखार से तप्त रहने लगा शरीर। उन दिनों शिवपुर (हावड़ा) में रहता था मैं। विशेष रूप से देखभाल करने वाला कोई नहीं था। बगल में सहस्त्रभुजा काली का मन्दिर था। मन्दिर के पुजारी कालिन्दी मुखोपाध्याय सपरिवार मन्दिर में ही रहते थे। उनकी एक लड़की थी श्यामला। किसी स्कूल में पढ़ाती थी। वही कभी कदा आकर मेरा आवश्यक कार्य कर दिया करती थी। धीरे–धीरे पन्द्रह बीस दिन का समय व्यतीत हो गया रोग शैय्या पर पड़े–पड़े। सुरेखाजी वाराणसी में थे। यदि वे रहते तो फिर कोई समस्या ही नहीं थी। न जाने कैसे तरणी बाबू को मेरी बीमारी का समाचार मिल गया। तुरन्त उन्होंने एक व्यक्ति को भेजा कोई ताबीज देकर। ताबीज को मुझे पहनना था और मैंने उसे पहन लिया गले में। हे भगवान! कैसा चमत्कार था वह? ताबीज पहनते ही मेरा ज्वर उतर गया और अपने आपमें स्फूर्ति और शक्ति का करने लगा अनुभव मैं। तरणी बाबू का दर्शन करने के लिए व्याकुल हो उठी मेरी आत्मा। रहा न गया सवेरा होते ही पहुँच गया मैं काली मन्दिर तरणीबाबू मुझे देखकर हल्के से मुस्कराये। बोले ठीक हो न?

हाँ! बिल्कुल ठीक हूँ आपके ताबीज ने तो चमत्कार ही कर दिया— मैंने प्रणाम करते हुए कहा।

वह ताबीज नहीं था।

ऐ! क्या कहा आपने ताबीज नहीं तो और क्या था? आश्चर्य के भाव से मैंने प्रश्न किया ?

काली का रक्षा कवच था वह।

रक्षा कवच........

हाँ रक्षा कवच।"

मेरे दादा रजनीकान्त मुखोपाध्याय ने माँ काली की आज्ञा से इस रक्षा कवच का निर्माण और उसकी सिद्धि की थी। एक प्रकार से यह रक्षा कवच मां का कल्याणमय आशीर्वाद है। सभी प्रकार के संकट का निवारण करता है वह। विशेष तांत्रिक क्रिया पद्धति से उसका निर्माण किया जाता है। लेकिन वही कर सकता है जिसे उसकी सिद्धि प्राप्त है और वह सिद्धि परम्परागत है।

तरणी बाबू की बात सुनकर कौतूहल भी हुआ और आश्चर्य भी। मैंने ध्यान से देखा रक्षा कवच चांदी के सिक्के के बराबर गोलाकार रूप में था और उसके दोनों ओर बंगला भाषा में कुछ लिखा था। उसके दोनों ओर कोढ़े बने थे जिसमें काला धागा फंसकर गले में पहनने योग्य बना दिया गया था। रक्षा कवच में एक अनजाना सा आकर्षण था। वह सोने की तरह चमक रहा था। मेरी आँखे काफी देर तक उस रहस्यमयी वस्तु पर टिकी रही। हटने का नाम ही नहीं ले रही थी और जब उसे गले से निकालकर तरणी बाबू को देने लगा तो हंसकर वह बोले अभी रहने दीजिये। अभी पूर्णरूपेण स्वस्थ होना है आपको।

रक्षा कवच को लगभग पन्द्रह दिन और गले में लटकाए रहा मैं। इस अवधि में स्वप्न में नित्य माँ काली का दर्शन होता रहा मुझे। एक दिन अचानक गायब हो गया काली का रक्षा कवच। घबड़ा गया मैं काफी खोजने पर भी नहीं मिला। चिन्तित हो उठा मैं। तरणी बाबू माँगेंगे तो कहाँ से लाकर दूँगा रक्षा कवच। भय और संकोच के कारण चार—पांच दिन गया नहीं मैं काली मन्दिर। श्यामला भी जाती थी दर्शन

करने काली मन्दिर रोज नहीं, केवल शनिवार को। उसने बतलाया कि तरणी बाबू ने मुझे याद किया है।

हे भगवान अब क्या होगा? रक्षा कवच वापस लेने के लिए ही तरुणी बाबू ने मुझे बुलाया है। क्या करूँ कहाँ से लाऊँ रक्षा कवच कहाँ से लाकर दूँ उसे? मतिभ्रष्ट हो गयी थी मेरी उस समय।

संकोच और लज्जा में डूबा हुआ भयभीत सा किसी प्रकार तरणी बाबू के सामने गया। कुछ बोलूँ, कुछ कहूँ कि उसके पहले ही तरणी बाबू बोल पड़े—कहां थे बन्धुवर! इधर आना नहीं हुआ तुम्हारा।

मैं मौन साधे रहा। शायद मेरी मानसिक स्थिति को समझ गये थे तरणी बाबू। हँसते हुए बोले—अच्छा, अच्छा, रक्षा कवच के लिए परेशान हो। वह तो मेरे पास है। कार्य पूर्ण होने पर स्वयं चला आता हैं वह मेरे पास।

यह सुनकर मैं दंग रह गया एकबारगी। हे भगवान! कैसा चमत्कार है यह। तंत्र—मंत्र के विषय में बहुत कुछ पढ़ा और सुना था, कभी उसका प्रत्यक्ष भी अनुभव होगा, इसकी कल्पना भी नहीं की थी मैंने। आँख उठाकर देखा—तरणी बाबू की हथेली पर चमक रहा था रक्षा कवच।

अब यहीं से शुरू होती है काली के रहस्यमय रक्षा कवच की अविश्वसनीय और चमत्कारपूर्ण कथा जिसे सुनाया स्वयं तरणी बाबू ने ही।

सन् 1888 ई0। पूरे मध्य भारत, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में फैले ठगों के मायाजाल को आमूलचूल नष्ट करने वाले विलियम स्लीमैन की ठगीदमन की कथा का अद्‌भुत और नशीला सम्मोहन चन्दन गन्ध की तरह सम्पूर्ण यूरोप पर छा गया था। उस सम्मोहन का प्रभाव प्राच्य विद्या के महान खोजकर्ता रूडयार्ड क्रिपलिंग पर भी पड़ा था। स्लीमैन की आत्मकथा 'पेपर्स ऑन ठगी' पूरी तरह पढ़ चुके थे क्रिपलिंग साहब बहुत प्रभावित हुए थे महाशय।

क्रिपलिंग साहब ने अपनी खोज पुस्तक में एक स्थान पर लिखा है कि प्रत्येक हत्यारा का अपना एक चेहरा होता है और उसी चेहरे के कारण अन्त में पकड़ में आ ही जाता है लेकिन साधना के गहन अन्धकार में आकण्ठ डूबी हुई रक्तरंजित भक्ति की कोई पहचान नहीं होती। जब कोई दुर्दान्त ठग हाथ में लिए हुए पीले रूमाल को 'जय

भवानी' का उद्घोष कर किसी निरीह के गर्दन में फंसा कर पूरी ताकत से खींचता है, तब निगूढ़ता के आवेश में कोई 'टिटहरी' मृत्युमय सन्नाटों को तोड़ती हुई किसी बीहड़ के सूखे पेड़ की सूखी डाल पर चीखने लगती है—चीं, चीं, चीं,। सात सौ वर्ष और करोड़ों निर्मम हत्यायें और जिनके पीछे छिपा महाकाली का विनाशक आह्वान।

1879 ई0 के बाद कोई काली भक्त हत्यारा नहीं बचा था। पीले रुमाल से निर्मम हत्या करने वालों का इतिहास समाप्त हो चुका था लेकिन लोगों की स्मृतियों में वह काला इतिहास अवश्य विद्यमान था। लेकिन क्रिपलिंग की दिलचस्पी ठगों और ठगों के काले इतिहास में नहीं थी। उनकी थी भारत की गुप्त रहस्यमयी दैवीय विद्याओं, विलुप्त सभ्यताओं, आदिम अन्धविश्वासों, इन्द्रजालों, अशरीरी तत्वों और प्रेतात्माओं तथा पिशाचों में। अपने अतृप्त मन की इसी आकांक्षा से प्रेरित होकर क्रिपलिंग सुदूर 'कटरवरी' से कलकत्ता पहुँचे थे। उस समय उनकी उम्र तीस वर्ष के लगभग थी। क्यों आये थे कलकत्ता क्रिपलिंग साहब इतनी दूर से?

अपने अतृप्त मन की आकांक्षा को पूरी करने के लिए मन्द स्वर में उत्तर दिया तरणी बाबू ने फिर आगे की कथा......

सीधे पहुँचे क्रिपलिंग साहब कालीघाट। काले चमकीले पत्थर की बनी गले में मुण्डमाल पहने कालीघाट की महाकाली की विशाल मूर्ति को जी भर के देखा उस अंग्रेज जिज्ञासु ने। बड़ी—बड़ी आँखें, पैरों के पास पड़ा बलिपशु, हाथ में बड़ा सा भयंकर खड्ग, गले में नीचे तक लटकती हुई नरमुण्ड माला, एक हाथ में झूलता हुआ नरमुण्ड, चन्दन और अगरू के सुवासित गन्ध से भर रहा था मन्दिर का आध्यात्मिक वातावरण। चारो ओर नशीला सा सम्मोहन भी छाया हुआ था वहां। सांझ घिर आयी थी। मन्दिर में शंख ध्वनि के साथ ही साथ नगाड़ा और झांझ—मंजीरे भी बज रहे थे।

वातावरण का प्रभाव तत्काल पड़ा क्रिपलिंग साहब पर। मुग्ध भाव से निर्मिनेष निहारते रहे वह महाकाली की अद्भुत और विलक्षण मूर्ति की ओर न जाने कब तक और तभी मिले काली मन्दिर के मुख्य पुजारी रजनी कान्त मुखोपाध्याय। वे मेरे पितामह थे। अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्तित्व था उनका। छः फुट से कुछ अधिक ऊँचा कद। भरा हुआ शरीर गौर वर्ण

सामने वाले को सम्मोहित कर दे– ऐसी अद्‌भुत आँखें। उनके चेहरे पर ओज था। वाणी में मिठास सिर पर सफेद केशराशि थी जो कन्धें तक झूल आयी थी। घनी दाढ़ी थी उनकी। रूडयार्ड क्रिपलिंग के बारे में रजनीकान्त मुखोपाध्याय ने काफी कुछ सुन रखा था। उन्हें इस बात की भारी प्रसन्नता थी कि क्रिपलिंग साहब भारतीय धार्मिक आस्थाओं के प्रति पूर्वाग्रही नहीं थे अपितु वे भारतीय देवी–देवताओं का आदर सम्मान भी करते थे। आपकी लिखी "दी टैम्पल ऑफ देवी" मैंने पढ़ी है–रजनीकान्त मुखोपाध्याय ने कहा। यह सुनकर आश्चर्य के भाव से क्रिपलिंग महाशय बोले–लेकिन उसकी भाषा तो बहुत ही कठिन है। उसमें अंग्रेजी के कठिन मुहावरों का व्यापक प्रयोग हुआ है।

यह सुनकर एक बार रूके मुखोपाध्याय महोदय और फिर बोले–मैं कलकता विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. करने के बाद वहां प्रोफेसर भी रह चुका हूँ मि0 क्रिपलिंग। फिर उन्होंने अंग्रेजी में कहा– शेक्सपीयर और वायरन मेरे प्रिय रचनाकार थे, जैसे कि आप हैं। आश्चर्यचकित होकर स्तब्ध भाव से देखने लगे मि0 क्रिपलिंग रजनीकान्त मुखोपाध्याय की ओर। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि आपने महाकाली के नाम पर बेगुनाहों की हत्या करने वाले ठगों की भर्त्सना अपनी कृतियों में की है। रजनीकान्त मुखोपाध्याय महाशय बोले– हमारा हिन्दुत्व और उसके विचित्र अवतार घृणा, कत्ल तथा हिंसा नहीं, प्रेम, दया, कृपा, करुणा की व्याख्या करते है। भाईचारे का उपदेश देते हैं। मैं सन्तुष्ट हूँ कि आपने हिन्दुत्व की आत्मा को भलीभांति समझा है। यह सुनकर क्रिपलिंग होठों पर उँगली रखकर कुछ देर तक न जाने क्या सोचते रहे और फिर बोले–फिर यह रक्तरंजित भक्ति कैसी है? अभी–अभी मन्दिर में तीन चार बकरों की बलि दी गयी है।....... थोड़ा गम्भीर होकर रजनीकान्त महाशय बोले इसके रहस्यों से अपरिचित होने के कारण ही आपने इसे "रक्तरंजित भक्ति" की संज्ञा दी हैं।

लेकिन बात कुछ और ही है मि0 क्रिपलिंग। वह क्या? क्रिपलिंग जिज्ञासु हो उठे। हिन्दुत्व के अनुसार जिस जीव में चाहे वह मनुष्य हो या कोई हो मनुष्योत्तर प्राणी यदि उसमें अज्ञानता अपनी चरम सीमा पर है तो उसे पशु की संज्ञा दी जाती है। पशुओं में महापशु छाग यानी

बकरा है। बकरे जैसा कोई अन्य पशु नहीं है संसार में। इसी कारण उसका कोई उपयोग नहीं है। उसकी पशुता की चरम सीमा आप इसी से समझ लें कि वह मातृगामी भी है। इससे अधिक क्या हो सकता है पशुता का लक्षण ? अन्य पशु मातृगामी नहीं होते लेकिन बकरा होता है। यह पशुता का चरमोत्कर्ष है। बकरे की बलि वास्तव में अज्ञानता की बलि है। वह हत्या नहीं वध है। श्रीकृष्ण ने कंस की अज्ञानता का वध किया था उसकी हत्या नहीं। हत्या और वध की परिभाषा में अन्तर है। रावण भी अज्ञान और मूर्खता का साकार रूप था। राम को इसीलिए वध करना पड़ा। भगवान श्रीकृष्ण और भगवान राम का एकमात्र उद्देश्य था कंस को रावण को परमगति प्राप्त हो। इसी उद्देश्य से दोनों का वध किया गया। यहां भी यही बात है। पशु का अर्थ जीवभाव भी है। बकरे में जो जीवभाव है उसकी प्रगति नहीं है। बकरा मरेगा तो उसका अगला जन्म बकरे का ही होगा। बार–बार बकरे के रूप में जन्म लेगा और बार–बार उसी रूप में मरेगा भी क्योंकि किसी अन्य प्राणी के रूप में उसका चरमपशुता के कारण जन्म होना असम्भव होता है। उसकी बलि इसलिए 'मां' को साक्षी मानकर दी जाती है कि वह अज्ञान से मुक्त होकर अगले जन्म में कोई अन्य प्राणी के रूप में जन्म ले सके या फिर अपने निजलोक यक्षलोक चला जाय क्योंकि वह यक्षलोक का प्राणी माना जाता है। यह तो है एक पक्ष। इसका दूसरा पक्ष है आध्यात्मिक। उसे तभी आप को समझाया जा सकता है जब आप सात्विक भाव और सात्विक वृत्ति से भारतीय अध्यात्म की गहरायी में प्रवेश करेंगे। अचानक बोलते–बोलते एकबारगी चिहुंक उठे रजनीकान्त मुखोपाध्याय। आप रूक क्यों गये मुखोपाध्याय महोदय– क्रिपलिंग विस्मय से बोले।

लेकिन वह महासाधक मौन रहा। कुछ देर तक मौन भाव से देखता रहा स्थिर दृष्टि से क्रिपलिंग के चौड़े ललाट की ओर। उस समय उसके चेहरे पर अचानक चिन्ता का भाव उभर आया था।

क्यों क्या हुआ ? क्रिपलिंग ने उनसे प्रश्न किया अपनी उंगली से इशारा कर चुप रहने का आदेश दिया मुखोपाध्याय महोदय ने।

क्रिपलिंग असमंजस में थे।

मुखोपाध्याय महोदय की बड़ी–बड़ी गहरी आँखे उस अंग्रेज युवक के गोरे चेहरे का मुआयना कर रही थी उन क्षणों। सायंकाल का समय हो गया था। मन्दिर में महाकाली की मंगला आरती शुरू हो गयी थी। नगाड़े की गम्भीर ध्वनि गूँजने लगी थी प्रांगण में एक क्षण, दो क्षण। फिर मौन भंग किया मुखोपाध्याय महाशय ने। उनका स्वर गम्भीर था। वे बोले–मैं आप जैसे विद्वान और चिन्तक के जीवन पर एक भयंकर अनिष्ट की छाया देख रहा हूँ मि० क्रिपलिंग।

यह सुनकर रूडयार्ड क्रिपलिंग ने उनकी ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा–मैं आपका आशय समझा नहीं मुखोपाध्याय महाशय। इस बार उनका भी स्वर सशक्त हो आया था।

आप पर निकट भविष्य में घातक प्रहार होगा।'' मुखोपाध्याय महाशय बोले–आपकी हत्या की कोशिश की जायेगी।

यह सुनकर क्रिपलिंग को आघात लगा। उनका चेहरा निस्तेज हो गया।

लेकिन आप चिन्ता न करे।'' मुखोपाध्याय महोदय ने उन्हें सांत्वना दी। महाकाली आपकी रक्षा करेंगी। आप मेरे साथ आइये।

काली गह्वर के पीछे एक छोटा सा कक्ष था सदियों पुराना। उसकी दीवारे और फर्श पत्थरों की थी। फर्श पर चटाई और कम्बल बिछा था। एक ओर कोने में घी का दीप जल रहा यक्षाधार पर। निश्चित ही रजनीकान्त मुखोपाध्याय का साधना कक्ष था वह। एक ओर रखे एक लकड़ी के सन्दूक को खोलकर मुखोपाध्याय महोदय ने उसमें से एक बाजूबन्द निकाला। महाकाली का यह रक्षा कवच है। यह कवच आपको हर कष्ट से बचायेगा। हर संकट का निवारण करेगा और एक बार मृत्यु से भी आपको बचायेगा।

क्रिपलिंग ने उस अद्‌भुत और विचित्र रक्षा कवच को बड़े ध्यान से देखा।

रक्षा कवच के रुप में कौन–सी थी वह तंत्र मुद्रा। दुष्ट ग्रह और पैशाचिक शक्तियों को दूर रखने वाले उस 'यंत्र' में एक विशेष प्रकार का सम्मोहन था। उसके मध्य से प्रकाश की एक रहस्यमयी रेखा निकल रही थी। उस आलोक के बिल्कुल शिखर पर एक कांटेदार गुच्छा था। संभवतः ऐसा ही कोई शक्तिशाली दिव्य यंत्र ठगी साहब स्लीमैन ने सात

सौ उनसठ हत्यायें करने वाले दुर्दान्त हत्यारा जवेरा के ठग उम्मेद अली के पास देखा था। मुखोपाध्याय महोदय जी बोले–उसने स्लीमैन साहब से कहा था यह देवी का जलाल है, साहब जो हमें हर किस्म की आफत से बचाता है।

फिर रजनीकान्त मुखोपाध्याय ने महाकाली के उस विलक्षण यंत्र को अपने मस्तक से लगाया। क्रिपलिंग ने देखा–उनकी आँखे बन्द थी और वे अस्फुट स्वर में कोई मंत्र बुदबुदा रहे थे शायद काली का जप।

उसके बाद मुखोपाध्याय महोदय ने अपनी बन्द आँखे खोलीं और बोले– अपनी दाहिनी कलाई आगे बढ़ाओ।

उस महाशक्तिशाली यंत्र को क्रिपलिंग के दाहिने हाथ में बांधकर महातंत्र साधक बोले अब आप पूर्णरूप से सुरक्षित हैं।

अबूझ सी थी वह यंत्र मुद्रा। फिर पूरे जीवन क्रिपलिंग से अलग नहीं हुई वह। हर क्षण और हर समय वे अपने पास रखते थे वह। सच तो यह है कि वह क्रिपलिंग के व्यक्तित्व और कृतित्व का प्रतीत ही बन गयी। क्रिपलिंग की समस्त कृतियों के मुख पृष्ठ पर, बाद के संस्करणों में महाकाली का वह रहस्यमय रक्षा कवच बराबर प्रतीक रूप में अंकित रहा। केवल पुस्तकों में ही नहीं, फ्रेंच रिवेरा स्थित क्रिपलिंग के आवास विला 'म्यूरेक्स' के प्रवेश द्वार पर, उनकी मेजों पर रखी खाक दानियों पर, स्टेशनरी, सिगरेट केशों, आतिश दानों, कमरा गर्म करने वाले रेडियेटर के ग्रिलों, टेबल लैम्पों और चाँदी के बर्तनों और चाय दानियों प्यालों तथा बर्तनों पर भी वह रहस्यमयी छाप सदा अंकित रही। सूखे उड़ते पत्तों की खड़खड़ाहट में, बारिशों में, गहन सन्नाटों में, सूने समुद्र तटों और वियावानों में या चुप–चुप गिरते बर्फ के सन्नाटों के बीच क्रिपलिंग जब जब भी जहां जहां जाते कालीघाट का वह चिन्ह उनके साथ हमेशा मौजूद रहता।

और तो और रूडयार्ड जब दफनाये गये तो उनकी कब्र में उनके शव के साथ कालीघाट का वह यंत्र भी मिट्टी में दफना दिया गया था। लम्बी बीमारी के बाद क्रिपलिंग की मृत्यु हुई थी किसी दुर्घटना के कारण नहीं। लेकिन आश्चर्य की बात तो यह है कि शव के साथ दफन महाकाली का

वह अद्‌भुत और चमत्कारी यंत्र कब्र की सीमा लांघकर न जाने कब और कैसे अपने आप पहुँच गया था रजनीकान्त मुखोपाध्याय की सन्दूक में।

यह कथा अभी समाप्त नहीं हुई है–तरणीबाबू बोले–लेकिन अपनी मृत्यु के पहले क्रिपलिंग एक बार और लगभग मर ही चुके थे।

वह कैसे ? आश्चर्य से पूछा मैंने।''

रूडयार्ड क्रिपलिंग सन् 1906 की सर्दियों में वीरगंज में थे। हिमलाय की उपत्यका में बसे वीरगंज की प्राकृतिक सुषमा अद्‌भुत और आत्ममोहक तो है ही। उसका पुरातात्विक महत्व भी है। क्रिपलिंग उन दिनों अपनी यात्रा वृत्तात्मक पुस्तक 'द हैरीटेज टू एशिया' लिख रहे थे। उनको जानकारी मिली थी कि वीरगंज का प्रख्यात शिवमन्दिर काठमाण्डु के पशुपतिनाथ मन्दिर से अधिक प्राचीन है और वहां स्थापित शिवलिंग में भगवान शंकर का तीसरा नेत्र असाधारण रूप से जुड़ा हुआ है। आप अपनी पुस्तक में उस असाधारण और विलक्षण मूर्ति का उल्लेख अवश्य करें। मि0 क्रिपलिंग नेपाल में वायसराय के तत्कालीन प्रतिनिधि विलियम सोल ने क्रिपलिंग से कहा था। बतलाया जाता है कि शिवरात्रि के मौके पर वह शिवलिंग जाग्रत हो जाता है।

क्रिपलिंग जब काठमाण्डु से वीरगंज पहुँचे। दुपहरी ढल चुकी थी। रेस्ट हाऊस से लगभग छः मील दूर था शिवमन्दिर जहाँ क्रिपलिंग ठहरे हुए थे। लगभग तीन बजे क्रिपलिंग पहुँचे उस ऐतिहासिक शिव मन्दिर में। अपराह्न का समय था। मन्दिर के चारों ओर घना जंगल छितरा हुआ था। गहरा सन्नाटा, जनहीन और अराजक वातावरण। क्रिपलिंग थोड़ी ऊँचाई तक पहुँचने पर थोड़ा सा उतर गये और सामने की वीरान सुनसान घाटी का प्राकृतिक दृश्य देखने लगे। दूर–दूर तक भांय–भांय करता हुआ बियावान के बीच नौवीं शताब्दी में बना वीरगंज का विलक्षण शिवमन्दिर वहां से अच्छी तरह नजर आ रहा था। मन्दिर चारों ओर से घने वृक्षों से घिरा हुआ था जो पांत दर पांत पहाड़ी पर चढ़ते चले गये थे। मन्दिर तक पहुँचने के लिए संकरा रास्ता था। बस वही दिखलायी देता था और शेष सारी घाटी वीरान सुनसान निस्तब्ध और बीहड़।

मन्दिर निर्जन था। नितान्त सुनसान और खाली, एक रहस्यमयी खामोशी बिखरी हुई थी भीतर लेकिन न जाने क्यों क्रिपलिंग को लग

रहा था कि वे वहां अकेले नहीं है। एक अजीब, धुंधली—सी बेचैनी हावी हो गयी थी उन पर। समय देखने के लिए बांयी कलाई पर नजर डाली उन्होंने, सायंकाल के चार बज रहे थे और तभी वे सहसा एकबारगी चिहुंक उठे। उनकी दाहिनी कलाई खाली थी। महाकाली का रक्षा कवच वहां नहीं था। अचकचा से गये क्रिपलिंग। फिर उन्हें याद आया कि रक्षाकवच वह अपने कमरे में ही छोड़ आये हैं। उन्हें यह भी याद था कि तरोताजा होने के लिए नहाते समय अपना वह यंत्र उन्होंने कमरे की मेज पर ही रख दिया था।

लेकिन मन्दिर के दहलीज पर क्रिपलिंग जैसे थमक कर रह गये थे। उनके पैरों ने जैसे उन्हें भीतर ले जाने से इन्कार कर दिया था। मानों वे कोई अवांछित व्यक्ति थे। कोई अशरीरी शक्ति यह एहसास दिलाती हुई उन्हें वापस लौटने और मन्दिर से बाहर निकल जाने का संकेत कर रही थी। अज्ञात आतंक से भरपूर वह पागल सा संकेत किसका था या भ्रम था क्रिपलिंग का—जो विरान मन्दिर के निस्तब्ध परिवेश में स्वयं उन पर हावी हो गया था। अपने डरावने नाखूनों से उनके तमाम व्यक्तित्व को खरोंचता हुआ सा एक बनैले पशु जैसा हिंसक और क्रूर और तभी नीचे ढलान पर रजनीकान्त मुखोपाध्याय नजर आये क्रिपलिंग को। वे ऊपर आने की चेष्टा कर रहे थे। अपनी बड़ी—बड़ी आँखों से क्रिपलिंग की ओर देख रहे थे। उनके चेहरे पर गम्भीरता थी।

वीरगंज के उस बियावान जंगली इलाके में कलकत्ता से हजारो मील दूर आये मुखोपाध्याय महोदय को देखकर गहरा विस्मय हुआ क्रिपलिंग को। वे यहाँ इस वीराने में किस उद्देश्य से आये थे? क्या क्रिपलिंग से मिलने के लिये? सम्भव है उनका यही उद्देश्य हो।

मुखोपाध्याय की ओर देखकर क्रिपलिंग ने हाथ हिलाया और जोर से चिल्लाये—मि0 मुखोपाध्याय.........मि0 मुखोपाध्याय......... ।'

किन्तु क्रिपलिंग की आवाज उस सन्नाटे में गूंजकर रह गयी। वहां कहां थे मुखोपाध्याय महाशय। क्रिपलिंग को उनकी उपस्थिति का भ्रम हुआ था।

क्रिपलिंग असमंजस में थे। इसके पहले ऐसा दृष्टि भ्रम उन्हें कभी नहीं हुआ था और न ही ऐसा वहम। फिर नीचे ढलान पर कैसे

दिखायी दे गये थे मुखोपाध्याय महोदय उन्हें। वे वहां कब और क्यों आये थे?

पास की झाड़ियों में खड़खड़ाहट हो रही थी। हवा तेज हो चली थी। लम्बे–लम्बे घने पेड़ों की शाखाएँ–प्रशाखायें हवा के झोकों से हिल–हिल जा रही थी। पत्ते भी मरमर की आवाज कर रहे थे। घने गहरे झुरमुटो में फिर से हलचल हुआ। ऐसा लगा मानों कोई अपने हाथों से उन झुरमुट झाड़ियों को चीरता हुआ मन्दिर की ओर आ रहा है। अवश्य कोई व्यक्ति उनका पीछा चुपके–चुपके कर रहा था।

लेकिन कौन ? क्या मुखोपाध्याय महोदय। उत्कर्ण हो उठे क्रिपलिंग। वे स्थिर रह गये थे अपने स्थान पर हत्वाक्। कोई इन्द्रजाल सा मानो घट रहा हो उस जगह। ऐसे व्याकुल इन्तजार से वे झुरमुटों की ओर देख रहे थे। अब झाड़ियाँ हिल रही थीं। वहाँ खामोशी छायी हुई थी लेकिन तब भी पसीने से तर–बतर क्रिपलिंग को लग रहा था, वहाँ से अवश्य कोई न कोई बाहर निकलेगा। फिर गहरे झुरमुटों को चीरते हुए बाहर आये दो नेपाली युवक। उनके चेहरे तमतमाये हुए थे। आँखे जल रही थीं। उनके हाथों में तेज धारदार लम्बे छूरे थे। डूबते सूरज की म्लान रोशनी में वे चमचमा रहे थे। 'तुम..... फिरंगी।' उनमें से एक युवक चिल्लाया तुमने हमारे मन्दिर में आने की हिम्मत कैसे की म्लेक्ष......।'

बुरी तरह आतंकित क्रिपलिंग पीछे हटे। उन्हें ऐसे अद्भुत और अप्रत्याशित घटनाक्रम की आशा बिल्कुल नहीं थी।

तब तक दूसरा नेपाली भी करीब आ गया क्रिपलिंग के।

क्रिपलिंग के दोनों कान झन–झन करने लगे। सुषुम्ना अवश जान पड़ी उन्हें। खून जैसे पानी हो जायेगा, ऐसी ठण्डी दहशत उनकी शिराओं–उपशिराओं में दौड़ गयी। वे किञ्चित कांपे भी। तभी एक नेपाली युवक छुरा लहराता हुआ उन पर टूट पड़ा।

इसके पहले छुरा क्रिपलिंग के शरीर के पार होता, अचानक ही कोई उस हमलावर पर कूद पड़ा। अचकचाये क्रिपलिंग ने देखा वह काफी लम्बी चौड़ी काले रंग की औरत थी। जिसके लम्बे घने बाल हवा में लहरा रहे थे। उसके हाथ में काफी भयानक खड्ग था। वैसा ही

खड्ग जिसे कलकत्ता के कालीघाट में मुण्डमाला पहने महाकाली के हाथ में क्रिपलिंग ने देखा था। जमीन पर गिरते–गिरते क्रिपलिंग ने देखा–अपने खड्ग से उस भयानक रूप रंग वाली औरत ने आक्रमणकारी पर वार किया और उसका कटा हुआ मुण्ड छिटक कर लुढ़कता हुआ नीचे घाटी में जा गिरा। चारों ओर खून ही खून फैल गया। क्रिपलिंग के कोट पर भी खून के छींटे पड़े।

दूसरा आक्रमणकारी अपने साथी की हालत देखकर जान बचाकर भागा। सिर विहीन आक्रमणकारी नेपाली युवक का धड़ जोर–जोर से कांपने के बाद शांत हो गया। जिसे उठाकर उस कालरात्रि जैसी औरत ने गहरी घाटी में फेंक दिया और अदृश्य हो गयी। गुंगुआते हुए क्रिपलिंग चिल्लाते रहे–काली माँ.....काली माँ..... लेकिन उनकी आवाज सुनने वाला भला कौन था वहां और तभी खट् की आवाज हुई और कुछ क्रिपलिंग के पास गिरा। क्रिपलिंग ने देखा–वह महाकाली का रक्षा कवच था, जिसे वे पिछली दोपहर को अपने कमरे में भूल आये थे।

●

रहस्य सात

आदमी जब शेर बन गया

सन् 1965 ई0।

मेरे एक साहित्यकार मित्र थे। नाम था अनिल कुमार। अब वह स्वर्गीय हो चुके हैं किन्तु उनकी स्मृति अभी भी जीवित है मानस में। उन दिनों मैं मध्य प्रदेश की यात्रा पर था। अनिल जी की एक कविता संग्रह जिसका नाम था "गारुड़मंत्र" की काफी लम्बी समीक्षा लिखी थी मैंने जो म.प्र. के साप्ताहिक पत्र 'बादल' में प्रकाशित हुई थी। लेखक और साहित्यकार श्री कमलेश्वर जी ने उस समीक्षा की खूब प्रशंसा की थी। श्री अनिल जी तो प्रसन्न थे ही, उन्होंने मेरे स्वागत में एक साहित्यिक गोष्ठी का आयोजन कर डाला भोपाल में। जिसके स्वागताध्यक्ष थे, नव भारत के सम्पादक मृदुल जी। कहने की आवश्यकता नहीं मध्यप्रदेश और राजस्थान के अखबारों के सम्पादक, सह सम्पादक और पत्रकारों का जमघट लग गया उस गोष्ठी में और जब यह ज्ञात हुआ कि साहित्यिक गोष्ठी का अध्यक्ष मुझे बनाया गया है तो घबड़ा गया मैं एकबारगी। कैसे बोलूँगा क्या बोलूँगा? कहीं कोई गलती न हो जाय। असमंजस में पड़ गया मैं। मैं लेखक था वक्ता नहीं। कभी कहीं बोलने का अवसर ही नहीं मिला था मुझे। लेकिन अनिल जी ने तो मेरे गले में फसरी डाल ही दी थी। बोलना ही पड़ा मंच पर खड़े होकर। बोलता ही चला गया और वह भी न जाने कब तक। तंत्र मंत्र, योग, ज्योतिष कौन ऐसा विषय था? जिस पर जमकर न बोला मैंने! मेरे भाषण से सर्वाधिक प्रभावित हुए रीवा

विश्वविद्यालय के कुलपति स्व0 शम्भूनाथ जी शुक्ल। स्व0 शम्भूनाथ जी शुक्ल के एक घनिष्ठ परिचित थे। नाम था राजा रामशास्त्री। आकर्षक व्यक्तित्व, हंसमुख चेहरा और मिलनसार। किसी अखबार के सहायक सम्पादक थे शास्त्री जी। भूत–प्रेत और तंत्र–मंत्र में गहरी रूचि थी उनकी। रहने वाले सनावद (म.प्र.) के थे वह और जब इनको स्व0 अनिल कुमार जी से यह ज्ञात हुआ कि मैं विदेही आत्माओं के अतिरिक्त तंत्र शास्त्र में भी गहरी रूचि रखता हूँ तो प्रसन्नता से खिल उठा शास्त्री जी का चेहरा। मेरे करीब आकर बोले–क्या आप मंत्र शक्ति और तांत्रिक क्रियाओं पर विश्वास करते हैं?

अजीब था प्रश्न। लेकिन मैंने सिर हिलाकर कहा– हाँ! करता हूँ। इसलिए कि इस गुह्य और रहस्यमयी तांत्रिक विद्या का गहरायी से अनुभव किया है मैंने। उसके प्रत्येक पक्ष से भलीभांति परिचित हूँ मैं।

तब शर्मा जी! आप मेरे एक विकट प्रश्न का उत्तर अच्छी तरह से दे सकते हैं इसमें सन्देह नहीं।

आपका प्रश्न क्या है?

क्या मंत्रों में इतनी शक्ति है कि कोई व्यक्ति शेर बन सकता है उसके प्रभाव से।

होठों पर उंगली रखकर सोचने लगा मैं। फिर बोला–तंत्र में एक धूमावती विद्या है जिसके द्वारा किसी भी मनुष्य की अनुकृति बना जा सकता है इसी प्रकार तंत्र में एक और विद्या है जो अपने आप में अत्यन्त रहस्यमयी और कठिन है। वह सबके लिए सुलभ नहीं है। उसकी साधना में सिद्धि लाभ विरला ही कोई प्राप्त कर सकता है

क्या नाम है उस विद्या का ?

कंकालिनी विद्या। इस परम गोपनीय विद्या के शक्ति से साधक किसी भी प्राणी के रूप में अपने आप को परिवर्तित कर सकता है और इच्छानुसार अपने निज स्वरूप में भी आ सकता है। मैंने कहा– आपने यह प्रश्न क्यों किया ? आपका तात्पर्य क्या है? आप कहना क्या चाहते हैं?

मेरी बात सुनकर कुछ देर तक शास्त्री जी मौन रहे और फिर बोले–शर्मा जी ऐसी ही एक घटना घटी थी सत्तर–अस्सी वर्ष पहले

सनावद में। कैसी थी वह घटना–जिज्ञासु हो उठा मैं। एक व्यक्ति शेर बन गया और आज भी सनावद के जंगली इलाके में रात के समय उसकी गर्जना सुनायी पड़ती है लोगों को।

दंग रह गया मैं एकबारगी। बोला–क्या आप पूरी कथा सुना सकते हैं उस घटना के संबंधित। मैं तो आज सनावद लौट रहा हूँ–शास्त्रीजी बोले– यदि आप सनावद चलना चाहें तो चलें, मुझे काफी प्रसन्नता होगी। आप भी शेर की गर्जना सुन लेंगे और पूरी कथा भी।

तुरन्त तैयार हो गया मैं और जब सनावद बस से पहुँचा तो उस समय सांझ की स्याह कालिमा वातावरण में बिखर चुकी थी। चारो ओर पसरा हुआ था सन्नाटा। चारो ओर से घनघोर जगलों से घिरा हुआ सनावद। कच्चे पक्के खपरैले मकान। पच्चीस तीस दुकानों का छोटा–सा बाजार। शास्त्री का मकान था तो छोटा ही लेकिन साफ सुथरा था। भोजन आदि के बाद शास्त्री जी बोले आज आप आराम कर लें थके हैं। कल विस्तार से बातें होगी। सम्भव है आज रात में शेर की आवाज सुनायी पड़ जाय। वास्तव में सत्य सिद्ध हुई शास्त्री जी की बात। आधी रात का समय। गहरी नींद में सोया था मैं, एकाएक चौंककर उठ बैठा बिस्तर पर। जंगल की ओर से शेर के गरजने की भयंकर आवाज बराबर आ रही थी उस समय। आवाज कुछ विचित्र लगी मुझे। शेरों की गर्जना कई बार सुनी है मैंने, लेकिन जो आवाज उस समय सुन रहा था, वह कुछ और ही थी। यदि उसकी व्याख्या की जाय तो उसमें एक प्रकार का करुण रस भी था।

सवेरा हुआ। चाय पीते समय राजाराम शास्त्री ने पूछा–शेर की आवाज अवश्य सुनी होगी आपने? हाँ! बन्धु सुनी, मैंने कहा–शेर के गर्जन में विलक्षणता थी। अन्य शेरों के गर्जन से थोड़ी अलग लगी मुझे उसके गरजने की आवाज।

हाँ! ऐसा ही है कुछ, शास्त्री जी बोले–सबसे बड़ी बात तो यह है कि शुरू से लेकर अब तक वह शेर किसी को भी दिखलायी नहीं दिया। आश्चर्य यह है कि वह मांसखोर नहीं है। कभी किसी पशु को हानि नहीं पहुँचाया उसने। वह क्या खाता है क्या पीता है और जंगल में कहाँ रहता है यह किसी को मालूम नहीं। सौ सवा सौ वर्ष पहले बुन्देलखण्ड

में भीषण अकाल पड़ा था। तीन वर्षों तक नहीं बरसा था पानी। कुएँ, नाले सब सूख गये थे। खेतों में दरारें पड़ गयीं थीं। जंगल के पेड़ कभी हरे भरे थे। वे भी सूख गये थे। उनकी पत्तियाँ झड़ गयी थीं पीली पड़कर। सर्वत्र त्राहि–त्राहि मचा हुआ था। कहीं पशुओं के अस्थि पंजर दिखलायी पड़ते तो कहीं दिखलायी पड़ते थे नर कंकाल। गांव छोड़कर भाग रहे थे लोग जिनमें रामगोपाल भी था। एक दिन अपनी पत्नी गायत्री और एक साल के मासूम बेटे श्यामू को निराधार छोड़कर कहाँ चला गया। सनावद के किसी व्यक्ति को पता तक नहीं चला। कहाँ गया वह अभागा कौन न जाने ? पूरे तीन साल हो गये। इस अवधि में प्रकृति का प्रकोप शान्त हो चुका था। प्राकृतिक वातावरण में भी परिवर्तन आ गया था। सूखे जंगलों में हरियाली फैल गयी थी। उजाड़ खेतों में अनाज के पौधे लहराने लगे थे। कहने का मतलब यह कि सनावद और उसके आसपास के इलाकों के भाग्य उदय हो चुके थे। फिर भी गायत्री सुबह शाम रामगोपाल की राह देखती निरीह बेटे श्यामू को गोद में लिए दरवाजे पर खड़ी–खड़ी। फिर आँसू पोंछकर भीतर चली जाती वह।

इस प्रकार सात साल का समय गुजर गया देखते ही देखते। एक दिन अचानक रामगोपाल घर आ गया। लेकिन उसका हुलिया बदल गया था। सिर के घने बाल जटा बनकर पीठ पर लटक रहे थे। दाढ़ी के बाल भी लम्बे होकर पेट तक झूल रहे थे। शरीर का रंग भी काला पड़ गया था। पहचानना कठिन था उसे। विस्मित और चकित गायत्री से उसने कहा–"मैं आसाम चला गया था। वहाँ मुझे एक तांत्रिक मिला। उसने तंत्र साधना की दीक्षा दी और मैंने पूरे पांच साल कामाख्या देवी की साधना की और सिद्धि प्राप्त किया।

इतने सालों बाद पति को सामने पाकर गायत्री की आँखे आँसुओं से भर गयी थी। गला भी रूंध आया था।

अब मैं तंत्र मंत्र की सिद्धि प्राप्त कर चुका हूँ। हमारे दुर्दिन दूर हो जायेंगे। तू किसी बात की चिन्ता मत कर–रामगोपाल ने गायत्री को आश्वस्त किया। आदमी भला चंगा घर लौट आया है– यही पर्याप्त था गायत्री के लिए। गांव के शिव मन्दिर में जाकर उसने पूजा की। श्यामू तब तक आठ नौ साल का हो गया था। वह भी अपने माता–पिता के

साथ मन्दिर गया। प्यार से हमेशा अपने साथ रखता था, रामगोपाल अपने बेटे को।

धीरे–धीरे सनावद और उसके चारो तरफ के इलाकों में एक तांत्रिक के रूप में रामगोपाल की चर्चा होने लगी। सभी के मुंह से एक ही बात निकलती 'पूरे आठ साल तपस्या कर आसाम से कामरूप विद्या सीख कर लौटा है रामगोपाल। वह चाहे जो कर सकता है। उसके लिए असम्भव कुछ भी नहीं। जो सुनता वह दंग रह जाता। फिर भीड़ लगते देर न लगी रामगोपाल के घर के सामने। सभी के अपने–अपने दुख, कष्ट और यातनाएँ थीं। सभी की अपनी–अपनी समस्यायें थीं। कोई नौकरी के लिए परेशान था, कोई कर्ज से परेशान था, कोई बीमारी से परेशान था, कोई पुत्री की शादी के लिए परेशान था तो कोई था परेशान अपनी ही शादी के लिए और सभी परेशानियों को दूर करने का इलाज था रामगोपाल के पास। वह किसी को राख देता, किसी को भभूत देता तो किसी को देता कुएँ का पानी फूँककर। किसी को निराश न करता वह। सभी से प्रेम और अपनत्व से मिलता और बातें करता। राख, भभूत और पानी बांटता रहा। लोगों की परेशानी दूर होती गयी। समस्यायें हल होती गयी। रामगोपाल का नाम होता गया। प्रसिद्धि बढ़ती गयी। धन सम्पत्ति बढ़ती गयी। अब उसका अपना पक्का मकान था। गाय, भैसें थीं। श्यामू गाँव के पाठशाला में पढ़ने लगा था। गायत्री के शरीर पर गहने चमकने लगे थे। नित नयी साड़ी दिखलायी देने लगी थी। रामगोपाल ने भी अपनी गद्दी बना ली थी अपने लम्बे–चौड़े बैठक में। झक–झक करता हुआ सफेद कुर्ता, धोती पहनकर और सिर पर गुलाबी पगड़ी बांधकर सुबह से शाम तक गद्दी पर बैठने लगा था और लोगों की भीड़ से घिरा रहने लगा था। सनावद के दूरदराज गाँव पान सेमल सेधवां कुशी और खेतिया तक के लोग आने लगे थे रामगोपाल के पास। गायत्री का सम्मान होने लगा था। अपने वैभव और शोहरत से प्रसन्न थी वह। तंत्र मंत्र की शक्तियों के कारण रामगोपाल को जो यश, सम्मान और सम्पदा मिली थी उससे गौरवान्वित हो उठी थी गायत्री।

शर्मा जी मैं जानता हूँ कि तांत्रिक शक्तियाँ अधिक समय तक किसी भी साधक के पास नहीं रहती। उन्हें किसी के बन्धन में रहना स्वीकार नहीं, राजाराम शास्त्री ने कहा, बराबर उन्हें अपने अधिकार में रखने की अपनी एक कला है। जो उस कला से परिचित होता है वही संभाल सकता है शक्तियों के भार को। ऐसा ही हुआ रामगोपाल के साथ भी। रामगोपाल के अधिकार से मुक्त होने के लिए तांत्रिक शक्तियों ने रास्ता निकाल ही लिया एक दिन।

वह कैसे? मैंने प्रश्न किया ?

जाड़े की रात थी। दिन भर की थकान के बाद रामगोपाल पत्नी के साथ लेटा हुआ था बिस्तर पर। उसके नंगे बदन को सहलाती हुई प्रेम से गायत्री बोली—क्योंजी! सुना है, लोगों का कहना है कि तुम 'मंत्र' से शेर भी बन सकते हो। क्या यह बात सच है शेर बन सकते हो तुम? पत्नी के कोमल स्पर्श से मानो नशा हो आया था और उसी नशे की हालत में रामगोपाल ने उत्तर दिया हाँ! क्यों नहीं बन सकता मैं शेर! लेकिन शेर के रूप में मुझे देख कर तुम डर गयी तो..........भला मैं आपसे डरूँगी। गायत्री हंसने लगी। क्या मैं जानूँगी नहीं कि शेर के रूप में आप हैं। ठीक है, रामगोपाल कामोन्माद में बोला दो लोटा साफ पानी लाओ। गायत्री दो लोटा भर कर पानी ले आयी। एक लोटा बड़ा था और दूसरा छोटा। बड़े लोटे का पानी लेकर रामगोपाल कोई मंत्र बुदबुदाया। फिर छोटे लोटे का पानी लेकर उसी तरह कोई मंत्र पढ़ा। फिर छोटे लोटे के पानी को एक तरफ रख दिया और बड़े लोटे का पानी गायत्री को देते हुए उसने कहा इस लोटे का पानी मुझ पर डालते ही मैं शेर बन जाऊँगा और जब छोटे लोटे का पानी मेरे ऊपर डालोगी तो मैं वापस मनुष्य बन जाऊँगा। लेकिन खूब होशियार रहना जरा सी भी भूल मत करना।

फिर क्या हुआ ?

होगा क्या ? शास्त्री जी ने कहा—जो होना था वही हुआ। गायत्री ने बड़े लोटे का पानी, आधी रात की निस्तब्धता में रामगोपाल के ऊपर डाल दिया और फिर देखते ही देखते कमरे के भीतर एक विशालकाय भयंकर शेर अवतरित हो गया। उसने अपनी अंगारे की तरह जलती हुई

आँखों से गायत्री की ओर देखा और फिर अपनी जीभ लपलपाते हुए रह–रहकर गुर्राने लगा और साथ ही चक्कर काटने लगा कमरे का।

अपने सामने एक भयानक शेर को देखकर गायत्री थर–थर कांपने लगी और चीखकर बेहोश हो गयी वह। उसके बाद सर्वनाश ही हो गया। गायत्री की चीख सुनकर आठ साल के श्यामू की नींद टूट गयी। बिछौने पर उठ बैठा। भयंकर शेर को सामने देखकर उसकी भी घिग्घी बंध गयी डरकर वह भागा लेकिन इसी भाग दौड़ में दूसरे लोटे में रखा पानी जमीन पर गिरकर फैल गया। पानी को गिरते देखकर शेर की आँखे जल उठी क्रोध से नहीं भय और पश्चाताप से। दुबारा मनुष्य बनने का रास्ता बन्द हो चुका था अब। गायत्री उस समय भी बेहोश पड़ी थी। श्यामू भी बदहवास था। रामगोपाल शेर के रूप में जोर से दहाड़ा।

उसकी दहाड़ काफी जोरदार थी। पड़ोसियों ने भी सुना। लाठी बल्लम, फरसे लेकर वे रामगोपाल के घर की तरफ दौड़े। रामगोपाल को सारा माजरा समझ में आ गया। लोग सचमुच ही उसे शेर समझ बैठे थे। लेकिन सच यही था। एक व्यक्ति ने निशाना साधकर रामगोपाल की तरफ बरछा फेंका। रामगोपाल वार बचा ले गया और छलांग लगाकर घर को पार किया उसने और जंगल में जाकर विलीन हो गया।

गायत्री को तब होश आ गया था। लोगों ने पूछा शेर कैसे आ गया यहाँ अचानक? इसके पहले तो इस इलाके में आदमखोर को कभी देखा नहीं गया था।

गायत्री ने रोते हुए अपने सर्वनाश की कथा कह सुनायी। मारे भय के सबके सर्वांग कांप उठे। यह सब अप्रत्याशित था उनके लिए मंत्र सिद्धि का ऐसा भयानक परिणाम होगा? इसकी तो कल्पना तक नहीं की थी किसी ने। तंत्र ने स्वयं रामगोपाल का घर–परिवार जला दिया था।

उसके बाद गायत्री के बुरे दिन आ गये। पति के अभाव में उसका जीवन तमाम कठिनाइयों और विपत्तियों से भर गया। केवल गायत्री का ही नहीं सनावद और आसपास के गांवों के लोगों का जीवन दुश्वार हो गया। शेर ने भारी उत्पात मचाना शुरू कर दिया। चारो तरफ अंग्रेज

सिपाहियों तक को मारकर खाना शुरू कर दिया उसने। चरवाहों ने पशुओं को चराना बन्द कर दिया। दस–पन्द्रह गाय भैसों और बीस पच्चीस बकरे–बकरियों को मारकर उदरस्थ कर गया शेर के रूप में रामगोपाल। सनावद के तहसीलदार थे मंजूर अली। शेर का उत्पात सुनकर उन्होंने मालकम साहब से शिकारियों की फरमाइश की। शेर के उपद्रव के बारे में विस्तार से बतलाया भी उन्होंने मालकम साहब को साधारण शेर नहीं है वह मंत्रों के जोर से शेर बना इलाके का एक अभागा पण्डित रामगोपाल है।

मालकम साहब ने सुना तो उनको आश्चर्य हुआ भला ऐसे कैसे मुमकिन है कि जिन्दा आदमी मंत्रों की ताकत से शेर में तब्दील हो जाय। हंसकर बोले–कलक्टर मालकम साहब।

शिकारियों का इन्तजाम करना पड़ा मालकम साहब को। लेकिन काफी कोशिशों के बाद हाथ नहीं आया शेर। शिकारियों को देखकर गायत्री का कलेजा मुंह को आ गया। यदि सचमुच इन शिकारियों ने शेर को मार डाला तो उसकी मांग सूनी हो जायेगी।

सनावद और कुशी से लेकर ओंकारेश्वर तक अंग्रेज सिपाही शेर की तलाश करते रहे और फिर एक रोज वापस लौट आये।

रात होती तो रामगोपाल जंगल से निकलकर अपने घर के पिछवाड़े आ जाता। कभी भूखी पत्नी और बेटे के लिए मुंह में दबाकर लाया हुआ कुछ फेंक जाता। एक बार सोने की गिन्नी से भरी एक झोली ले आया वह, जो अंग्रेज सिपाहियों को मारने के बाद उसे मिली थी। गुमसुम सी गायत्री पति की दशा देखती रहती और फिर अपनी गलती पर रोने लगती। रोने की आवाज पड़ोसी न सुन ले, इस आशंका से अपने मुंह में कपड़ा ठूंस लेती गायत्री। उसे रोते देखकर शेर की आँखों से भी आँसू झरने लगते। भोर होने के पहले ही फिर गायब हो जाता रामगोपाल। श्यामू गांव के पटवारी शारदा प्रसाद के यहाँ से श्राद्ध–भोजन करके आया था। आधी रात के समय उसे उल्टियां होने लगी और साथ ही दस्त भी गायत्री घबरा गयी। तुरन्त गांव के वैद्य मातादीन को बुलाकर ले आयी। मातादीन की दवा से उल्टियां तो थम गयी लेकिन

बुखार ने उसे जकड़ लिया और धीरे–धीरे जीर्ण ज्वर के प्रकोप का शिकार हो गया अभागा श्यामू। फिर पीलिया और न जाने क्या–क्या?

गायत्री के होश उड़ गये। मंत्रो की विनाशक शक्ति ने सुहागिन होने के बावजूद भी विधवा बना दिया था उसे। एकमात्र पुत्र भी संसार से विदा होता नजर आ रहा था। मातादीन की औषधियाँ भी बेकार सिद्ध हो रही थी।

शेर रोज आता। पिछवाड़े उसकी गुर्राहट सुनकर गायत्री धीरे–धीरे कुएँ के पास आ जाती और श्यामू की गिरती हुई हालत रोते–रोते बतलाने लगती। जिसे सुनकर शेर भी रोने लगता। आधी रात का सन्नाटा उसकी रुदन मिश्रित निश्वासों से गूंजने लगता।

पीलिया रोग से कृश हुए श्यामू की गिरती हालत देखकर एक रोज वैद्य मातादीन ने अपने हाथ उठा लिए असमर्थता व्यक्त करते हुए। लगभग निराश से बोले–तुम्हारे लड़के को बचाने का एक ही उपाय है।

कौन सा उपाय? आशंकित होकर गायत्री ने पूछा मातादीन कुछ देर तक चुप रहे।

आप बोलते क्यों, नहीं महाराज गायत्री बोली तन बेचकर मजूरी करके अपने बेटे की दवा दारू करूँगी। 'शेर की चर्बी' मातादीन बोले, शेर की चर्बी का लेप रोगी की छाती पर रोज दो चार बार करना होगा तभी कटेगा जीर्ण ज्वर। इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं है।

लेकिन शेर की चर्बी भला लायेगा कौन? गायत्री ने पूछा।

"इन्दौर जाने पर, शायद वहाँ के शाही हकीम के पास जीर्ण ज्वर काटने के लिए शेर की चर्बी मिल सके।" वैद्य ने कहा।

गरीब गायत्री को, शाही हकीम शेर की चर्बी क्यों देने लगे और फिर कदम–कदम पर खूनी पिंडारियों की शक्ल में मौत बिछी हुई थी पूरे रास्ते। बारिश के दिन थे। नर्मदा नदी भी बाढ़ पर थी।

फिर भी गांव के हर समर्थ असमर्थ व्यक्ति के पास शेर की चर्बी लाने के लिये गायत्री ने हाथ पांव जोड़े। कहीं–कहीं जाकर रोयी भी, लेकिन बारिश और दुर्गम नदी नालों की वजह से इन्दौर, खंडवा या बुरहानपुर जाकर शेर की चर्बी लाने के लिए कोई भी राजी नहीं हुआ।

उन सबने भी गायत्री को संकट में देखकर मदद करने से इंकार कर दिया, जिनके गाढ़े वक्त में रामगोपाल ने मंत्र–साधना कर उनकी विपत्ति दूर की थी। गांव में तैनात कम्पनी के सिपाहियों ने भी गायत्री को देखकर मुँह फेर लिया।

बारिश की रात थी वह। गहरा अंधकार मूसलाधार पानी गिर रहा था। रामगोपाल रोज की तरह दबे पांव कुंए के पास चला आया।

शेर को देखकर गायत्री के सब्र का बांध टूट गया। वैद्य मातादीन के इलाज के बारे में पति को बतला दिया। गायत्री ने रोते–रोते कहा "लगता है, शेर की चर्बी नहीं मिलेगी और हमारा श्यामू दम तोड़ देगा।"

सुनकर शेर भी रोने लगा। पूरा चेहरा भींग गया उसका। बेचैनी से अपनी पूंछ उठाकर वह कुंए के आसपास चक्कर लगाने लगा। कभी गायत्री के पास आता वह, कभी कुएँ की जगत के पास बैठ आता।

पूरब दिशा में हलकी–सी उजास फूटने लगी उसी दरम्यान।

"सुबह होने को है अब वापस लौट जाइये, "गायत्री ने अपने पति शेर से कहा।

लेकिन रामगोपाल टस–से–मस नहीं हुआ।

गायत्री रूँधे कंठ से बोली, "आपको किसी ने देख लिया तो पूरी बस्ती में शोर हो जायेगा। आप चले भी जाइये।"

लेकिन रामगोपाल तब भी नहीं गया।

और तभी, घटी वह विचित्र घटना। कुंए की जगत पर अपने दोनों पंजे सटाकर अचानक जोर से दहाड़ उठा रामगोपाल। एक बार दो बार तीर बार उसकी दहाड़ से समूचा सनावद गूँज उठा।

अपने घरों में बिस्तरों के भीतर दुबके लोग शेर की दहाड़ सुनकर चिंहुके। ईस्ट इंडिया कम्पनी के सिपाही भी उस गर्जना को सुनकर जाग उठे। तहसीलदार मंजूर अली ने भी सुनी वह आवाज। चारो तरफ से शेर–शेर...... का शोर होने लगा।

गायत्री के सामने पत्थर की तरह स्थिर खड़ा रामगोपाल एक दफा फिर से दहाड़ा।

ईस्ट इंडिया कम्पनी के सिपाही बन्दूक लेकर तब तक गायत्री के घर पर आ धमके। उनके पीछे–पीछे मंजूर अली और उनका अमला था। शेर सिपाहियों को देखकर, तो गुर्राया, लेकिन हिला नहीं कुँए के पास से।

मंजूर अली चिल्लाये, "देखते क्या हो...... चलाओ गोली।"

आनन–फानन में बन्दूक की गोलियां जिस्म में धंस गयीं। वह छटपटा कर कुएँ के पास ही गिर पड़ा। गीली जमीन उसके खून से लाल हो गयी। पति को मरते देखकर गायत्री मूर्छित हो गिर पड़ी।

उसी शेर की चर्बी को हासिल किया वैद्य मातादीन ने। श्यामू की छाती पर पन्द्रह दिन तक उस चर्बी की मालिश कर उन्होंने उसे चंगा कर दिया। गायत्री ने चूड़ियां फोड़ डालीं, मांग का सिन्दूर मिटा डाला।

इस घटना को घटे लगभग पौने दो सौ बरस बीते, लेकिन आ‍ भी, धामनोद और सेंधवा के बीच का इलाका अक्सर आधी रात को शेर की दहाड़ से सिहर उठता है।

कथा सुनाने के बाद कुछ क्षण के लिए मौन साधे रहे राजाराम शास्त्री। फिर जैसे अपने आपसे ही बोल पड़े वह–समझ में नहीं आता शर्मा जी शेर तो मर गया लेकिन उसके गुर्राने गरजने और चिंघाड़ने की आवाज कैसे सुनायी पड़ती है? यह रहस्य मेरी समझ में नहीं, आया अभी तक।

मैंने कहा–शास्त्री जी–बड़ा ही सरल है इसका समाधान।

वह क्या? चौंककर बोले शास्त्री जी।

वह रामगोपाल की प्रेतात्मा है जो शेर की आवाज में बोलती है। रामगोपाल ब्राह्मण था। जब तक प्रेत योनि से उसकी मुक्ति नहीं होगी तब तक इसी प्रकार वह गरजता रहेगा और गुर्राता भी रहेगा।

कैसे मिलेगी मुवित्त? शास्त्री जी उत्सुक होकर बोले।

ग्यारह ब्राह्मणों को भोजन कराने से। शास्त्रीजी को मेरी बात समझ में आ गयी। विधिवत् ग्यारह ब्राह्मणों के भोजन कराया गया। उन्हें दक्षिणा दी गयी और सम्मानपूर्वक विदा किया गया। यह सारा भार स्वयं शास्त्री जी ने उठाया।

लगभग एक साल बाद। एक दिन सपने में एक दिव्य ब्राह्मण दिखलायी दिया। युवा था वह। गौर वर्ण, शरीर पर धवल धोती और चादर, गले में रुद्राक्ष की माला, मस्तक पर चन्दन का प्रलेप। मेरी ओर

कृतज्ञता भरी दृष्टि से देखते हुए दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया उसने सपने में ही मैंने पूछा—आप कौन हैं महाराज? मैं रामगोपाल शर्मा हूँ पण्डित जी। आपकी कृपा से प्रेत योनि से मुक्त हो चुका हूँ अब नये गर्भ की खोज में हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि अति शीघ्र पुनर्जन्म होगा मेरा आपकी अनुकम्पा से। आशीर्वाद दीजिये आप मुझे....। अचानक नींद उचट गयी। उठकर बैठ गया मैं बिस्तर पर। लगा, जैसे किसी व्यक्ति का अस्तित्व था मेरे कमरे में। कुछ विचित्र सी गन्ध वातावरण में फैली हुई थी। सवेरा हुआ। तुरन्त राजाराम शास्त्री को भोपाल फोन किया और सपने की सारी बात बतलायी मैंने उन्हें। यह सब सुनकर शास्त्री जी बोले—बन्धुवर, ब्राह्मण भोजन के बाद से शेर की आवाज सुनाई देना बन्द हो गयी। धन्य हो महाराज, आपको मान गया मैं।

●

रहस्य आठ

मायाविनी

जब मैं स्टेशन पर उतरा हाथ में अटैची लिए, तो उस समय अपरान्ह के चार बजे थे। स्टेशन पर सन्नाटा बिखरा था। मेरे साथ जो, चार, पांच यात्री उतरे थे, वे न जाने कहाँ गायब हो चुके थे। स्टेशन मास्टर बंगदेशीय थे। नाम था शरत् बाबू। प्रौढ़वय के सज्जन पुरुष थे महाशय। जब मैंने बंगला भाषा का प्रयोग किया तो मुझे बंगाली ही समझ बैठे वह। उनकी यह समझ मेरे बड़े काम आयी। तुरन्त घुल मिल गये। प्लेटफार्म के अन्तिम छोर पर शरत् बाबू का रेलवे क्वाटर था। पत्नी और एक पुत्री के साथ रहते थे वह।

परिचय होने के बाद थोड़ा अधीर हो उठे थे शरत् बाबू। बोले—बाम्बे मेल आने वाली है। बस, उसी को रास्ता देकर खाली हो जाऊँगा। मैं फिर क्या कल सवेरे दस बजे तक का समय अपना है। खूब बातचीत होगी थोड़ी ही देर बाद बाम्बे मेल धड़धड़ाती हुई आयी और तूफान की तरह निकल गयी। हरी झण्डी दिखाने के बाद माथे का पसीना पोंछा और मुझे साथ लिया और फिर चल पड़े अपने क्वाटर की ओर शरत बाबू। अपनी पत्नी और पुत्री से परिचय कराया शरत बाबू ने। पत्नी का नाम था सुनीता और पुत्री का नाम था संगीता। माँ और पुत्री के नाम के आगे और पीछे एक ही अक्षर। बड़ा ही सुन्दर लगा मुझे। इसे सौभाग्य सूचक माना जाता है। माँ और पुत्री दोनों में जैसे बंगाल का सारा सौन्दर्य सिमट आया है—ऐसा लगा मुझे।

सांझ घिर आयी थी। पंचमढ़ी जाना सम्भव नहीं था अब। इसलिए रात्रि में रूकना पड़ा। शरत बाबू ने अपनी बिरादरी का मानुष समझ कर प्रेमपूर्वक सारी व्यवस्था कर दी। रात्रि भोजन के समय शरत् बाबू अचानक पूछ बैठे–पंचमढ़ी कैसे जाना हो रहा हैं आपका?

प्रश्न सुनकर थोड़ा अचकचा गया फिर अपने को संभालते हुए बोला मैं–एक तांत्रिक सन्यासिनी का दर्शन करने के लिए आया हूँ यहाँ।

यह सुनकर एकबारगी चौंक कर मेरी ओर स्थिर दृष्टि से देखने लगे शरत बाबू। उस समय उनकी दृष्टि में भय आतंक और आश्चर्य का मिश्रित भाव था। लेकिन क्यों ? समझ में नहीं आया उसका कारण मुझे। फिर सिर झुक कर धीरे–धीरे भोजन करने लगे वह फिर कोई बात नहीं हुई।

प्रातःकाल जब मैं चलने लगा तो धीरे से पूछा शरत बाबू ने–क्या आप उस तांत्रिक सन्यासिनी से पूर्व परिचित हैं? उनकी वाणी में गम्भीरता थीं।

नहीं मैं तो उस साधिका का नाम तक भी नहीं जानता–।"

मेरा उत्तर सुनकर चकित हुए शरत बाबू फिर थोड़ा व्यंग मिश्रित स्वर में बोले–आप नहीं जानते, लेकिन मैं तो जानता हूँ बन्धु उसका नाम है मायाविनी। मायाविनी है मायाविनी। जो उसके मायाजाल में एक बार फंसा तो फंसा, फिर मुक्ति कहाँ?

कहने की आवश्यकता नहीं, शरत् बाबू की इन बातों का उस समय कोई प्रभाव नहीं पड़ा मुझ पर। इसका कारण था कि बनारस से चलते समय गुरुदेव म0म0 डॉ. गोपीनाथ कविराजजी ने कहा था– वह उच्च कोटि की तांत्रिक सन्यासिनी है। परम योग साधिका है। कई दुर्लभ योग–तंत्र की सिद्धियां उपलब्ध हैं, उस दिव्यात्मा को। पंचमढ़ी के अरण्य में एक कन्दरा में न जाने कब से निवास कर रही हैं वह, पता नहीं।

गुरुदेव के मुख से यह सब सुनकर उस दिव्यात्मा सन्यासिनी के दर्शन का लोभ संवरण न कर सका मैं और चल पड़ा दूसरे ही दिन पंचमढ़ी के लिए।

दूर तक सीधी किसी विधवा की मांग की तरह सूनी टेढ़ी मेढ़ी सड़क चली गयी थी और उसी के साथ चली गयी थी हरे भरे वृक्षों की

लम्बी कतार। जो सड़क के दोनों ओर निस्तब्ध मौन साधे चुपचाप खड़े थे और उन्हीं वृक्षों की ओट से कुहरें से ढंकी पंचमढ़ी भी झांक लेती थी बेडौल भद्दी और बदरंग पहाड़ियों को अपने आंचल में समेटे हुए और जब कभी बीच–बीच में वृक्षों की हरीतिमा का क्रम कुछ टूट सा जाता है आंखों के सामने आ जाते सलोने सांवले बादलों के छोटे–छोटे टुकड़े। जो पहाड़ियों को छूते हुए उड़े जा रहे थे दिशाहीन से। कलाई घड़ी पर नजर डाली चार बजकर पैंतीस मिनट। देर हो गयी थी मुझे चलने में शरत् बाबू के यहां से। फिर उन्हीं के शब्द मंडराने लगे मस्तिष्क में। बार–बार सोचने पर भी तांत्रिक सन्यासिनी के प्रति उनके विचार और भाव समझ में नहीं आ रहे थे। उनकी धारणा के प्रति भी सन्देह था मुझे कौन सी ऐसी बात थी....?

पहली बार जाना हो रहा था मेरा पंचमढ़ी। इसलिए जरा–सा भी अनुमान नहीं था कि पंचमढ़ी में सूरज जल्दी डूब जाता है। सिर घुमाकर पश्चिम की ओर देखा–वृक्षों के झुरमुट के पीछे सूरज का लाल गोला सरकता–सरकता बादलों के टुकड़ों के पीछे पहाड़ियों में अपना मुंह छिपा रहा था।

बस स्टॉप आ गया। जल्दी से उतरा बस से। कुछ समय पहले जिन छोटे–छोटे बादलों के टुकड़ों पर मेरी नजर पड़ी थी, अब वे एकत्र हो कर आकाश में चारो ओर से घिरने लगे थे। बूंदाबांदी की सम्भावना बढ़ गयी थी।

पंचमढ़ी का बाजार काफी छोटा था उस समय। पच्चीस तीस दुकानों के अलावा जरा हटकर एक पुरानी धर्मशाला थी और उसी से सटा हुआ एक लॉज भी था जिसके सामने चाय और समोसे की एक छोटी–सी दुकान थी। दो समोसे खाकर चाय पी। शरीर को थोड़ी राहत मिली। सोचा रात लॉज में बिताकर सवेरे सन्यासिनी की खोज में निकलूँगा आराम से। लेकिन मेरा सोचना गलत निकला। पूरा लॉज भरा हुआ था। धर्मशाला की भी वैसी ही स्थिति थी। अब क्या किया जाय और तभी एक सज्जन पुरुष से पता चला कि वहां से लगभग दो तीन फर्लांग दूर पर एक सरकारी गेस्ट हाउस है। उसमें ठहरने की व्यवस्था हो जायेगी, क्योंकि उधर शीघ्र कोई आता जाता नहीं। अब तक नीले

आसमान की छाती पर तैरते काले भूरे बादलों को देखकर लगा कभी भी बारिश हो सकती है। मैं जल्दी–जल्दी पैर उठाता हुआ चल पड़ा गेस्ट हाउस की ओर बगल में अपनी अटैची दबाये लेकिन वही हुआ जिसका भय था मुझे। एकाएक बादल गरजने लगे आसमान में। पहले छोटी–छोटी बूँदें गिरी और थोड़ी ही देर बाद फिर झम–झम बरसने लगा आसमान। हे भगवान् अब क्या होगा कहाँ आकर फंस गया मैं? बाजार में ही कहीं रूक जाता भींगता तो नहीं लेकिन भाग्य में तो और ही था कुछ? बारिश मुझे अच्छी लगती है वैसे। फुहार सी गिरती हल्की–हल्की बूंदे मुझे शीतल, सुहानी और मनमोहक लगती है। किन्तु उस समय वही बारिश विषमय–सी लग रही थी मुझे। प्रकृति तल्लीन हो गयी जैसे अपने नृत्य में। सायं–सायं कर रही थी पहाड़ी हवा। झूम–झूम पड़ रहे थे वृक्ष। रह रह कर बुरी तरह बादल गरज रहे थे और चमक रही थी बिजली भी। घबरा सा गया मैं। स्वाभाविक भी था। मेरा घबराना। अपरिचित पहाड़ी मौसम अनजानी जगह और ऐसी तूफानी वर्षा। यदि मुझे कहीं कुछ हो जाता है तो शायद मेरी लाश भी खोजने से न मिलती किसी को।

भींगता हुआ किसी प्रकार गिरते पड़ते पहुँचा मैं गेस्ट हाउस के गेट पर। खण्डहरनुमा एक मंजिली छोटी–सी इमारत थी वह अंग्रेजो के जमाने की। जिस हालत में वह इमारत थी, उस देखकर विशेष उत्साह नहीं हुआ मुझे। पूरी की पूरी इमारत सुनसान थी। कब्रिस्तान जैसी उदासी बिखरी हुई थी वातावरण में। सभी खिड़कियाँ बन्द थी और बदरंग दीवारों पर जिन–जिन स्थानों से चूना झड़ा था, वहां चिपकी काई ने अजीबोगरीब किस्म की काली बेढंगी शक्लें बना दी थी। गेस्ट हाउस के सामने कभी कोई हरा–भरा बाग रहा होगा, जो अब उजड़ कर वीरान–सा हो गया था। कुछ कैक्टस के पौधे अभी भी थे वहां। अब तक मैं काफी भींग चुका था। रात का चिपचिपाता अंधेरा फैल चुका था चारो ओर। जिसके बीच अंग्रेजों के जमाने का वह खण्डहरनुमा गेस्ट हाउस भूत जैसा लग रहा था। बाग में से होता हुआ मैं गेस्ट हाउस के टूटे दरवाजे के सामने अभी पहुँचा ही था कि सामने एक बूढ़े व्यक्ति पर मेरी नजर पड़ी लगा जैसे वह मेरा ही इन्तजार कर रहा था। आयु यही साठ के आस–पास रही होगी। उसकी कनपटियों के बाल पूरी तरह सफेद

हो चुके थे। सिर गंजा था। बायें हाथ में पुराने जमाने की लालटेन झूल रही थी। जिसकी चिमनी धुंए से थोड़ी काली पड़ गयी थी। उसमें से छनकर आती हुई पीली रोशनी में मैंने देखा, उस वृद्ध व्यक्ति ने ऊपर से नीचे तक हल्के गेरूयें रंग का चोंगा पहन रखा था। गले में बड़े दाने वाले रूद्राक्ष की माला झूल रही थी जो काफी लम्बी थी। दोनों कलाईयों में लोहे के कड़े थे। सब कुछ मिला कर वह रहस्यमय वृद्ध कोई साधु–सा लग रहा था मुझे। उसकी चुहचुहाती आंखों में चमक थी। वह मुझे घूर रहा था उस समय।

मैंने थोड़ा आगे बढ़कर कहा–क्षमा करिए।

क्या मैं यहां एक रात के लिए ठहर सकता हूँ? वृद्ध की आँखे फैल गयी आश्चर्य से और उसी के साथ आँखों की चमक भी थोड़ी बढ़ गयी एक बार फिर घूर कर देखा उसने और बुदबुदाते हुए कहा–क्यों नहीं, क्यों नहीं, आइये वह मुझे एक हालनुमे कमरे में ले गया। जिसमें हल्का–हल्का अंधेरा छाया हुआ था और सीलन की गन्ध आ रही थी। मैंने सिर घुमा कर चारो ओर देखा। दीवारों पर मकड़ी के जाले लटक रहे थे। फर्श धूल से भरा था और लगता था कि जैसे महीनों से सफाई न हुई हो उसकी। सामने एक लम्बी चौड़ी खिड़की थी, जिसमें से उस समय हवा के साथ पानी का बौछार भीतर आकर फैल रहा था। बीच में एक बड़ा सा तख्त था जिस पर पुरानी दरी बिछी हुई थी, गन्दी और मटमैली–सी।

कुछ–कुछ रहस्यमय लग रहा था मुझे कमरे का वातावरण। वह साधु जैसा वृद्ध व्यक्ति कमरे में चहलकदमी करते हुए अचानक मेरी ओर मुड़ा और बोला–अरे आप खड़े क्यों हैं?

बैठिये न।"

मैं मटमैली गन्दी दरी पर बैठ गया। वृद्ध चहल कदमी करते हुए खिड़की के पास जाकर खड़ा हो गया। उसके दोनों हाथ झूल रहे थे उस समय।

कमरे का उदासी भरा मौन खलने लगा मुझे हौले से पूछा क्या आप यहाँ अकेले ही रहते हैं?

मेरी बात सुनते हुए वह वृद्ध घूमा। मुझे ऐसा महसूस हुआ कि उसने मुझे देखने के लिए अपना पूरा शरीर घुमाया है। खखारते हुए वह बोला–हां बेटे! मैं एक लम्बे अर्से से अकेले ही रहता आया हूँ इस इमारत में। वृद्ध ने अपने शब्दों का प्रयोग इस भाव से किया था कि मेरे होठों पर न जाने क्यों मुस्कराहट फैल गयी। निश्चय ही उसका मस्तिष्क विकृत सा लगा था मुझे उस समय।

मैंने मृदु स्वर में पूछा– क्या अपने गीले कपड़े बदल सकता हूँ?

हाँ हाँ! बदल डालिए। गीले कपड़े बदलना स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं और फिर थोड़ा झिझकते हुए बोला–मुझे अफसोस हैं कि मैं आपकी इस समय कोई खातिर नहीं कर सकता।

कोई बात नहीं शुक्रिया! मे आई हैव ए स्मोक?

अवश्य, अवश्य! पीजिए आप मुझे कोई आपत्ति नहीं। थोड़ा रूककर वृद्ध आगे बोला–शायद आप इधर घूमने टहलने के लिए आये थे और अचानक झड़ी लग गयी।

आपका अनुमान गलत है–मैंने सिगरेट की राख झाड़ते हुए धीरे से कहा–स्वास्थ्य लाभ या मनोरंजन के लिए इतनी इतनी दूर काशी से चलकर पंचमढ़ी नहीं आया हूँ मैं। बाबा मैं तो आया हूँ यहां एक तांत्रिक सन्यासिनी से मिलने के लिए। सुना है वह अत्यन्त रहस्यमयी है और किसी से शीघ्र मिलती जुलती भी नहीं। मेरी बात सुनते ही एकबारगी चौक पड़ा वह वृद्ध साधु। लगा जैसे बिजली का करेन्ट लग गया हो उसे। सूखे पपड़ी जमे उसके होठों पर एक विचित्र और रहस्यमयी सी मुस्कान तैर गयी और उसका झुर्रीदार चेहरा विषाद की गहरी रेखाओं से भर गया एकबारगी। ऐसा परिवर्तन क्यों हुआ समझ न सका मैं। अन्धकार गहरा होता जा रहा था कमरे में। बाहर बारिश की गति में भी तीव्रता आ गयी थी। मैंने प्रसंग बदलना चाहा, लेकिन उसके पहले ही अपने दोनों हाथों की अंगुलियों को आपस में फंसाते हुए वह वृद्ध सन्यासी धीरे–धीरे चल कर मेरे करीब आया, इतने करीब की उसकी गर्म–गर्म सांसों को मैं अपनी कनपटी पर महसूस कर रहा था। धीरे से अपना बायां हाथ मेरे कन्धे पर रखा उसने।

आप उस सन्यासिनी को पहले से जानते हैं?

नहीं!''

क्या आप उसका नाम जानना चाहेंगे?

जी.....जी.... हाँ।''

उसका नाम हैं, सिद्धेश्वरी–सिद्धेश्वरी माँ।' सचमुच वह सिद्ध सन्यासिनी हैं, इसमें सन्देह नहीं। यह सुनकर दंग रह गया मैं एकबारगी। क्या यह वृद्ध साधु उस तांत्रिक सन्यासिनी से भलीभांति परिचित है? होगा तभी तो.......।''

हिम जैसे उसके शीतल हाथ के स्पर्श से न जाने कैसी, रोमांच की विचित्र अनुभूति हुई मुझे। जिससे एक सनसनी मेरे सारे शरीर में दौड़ गयी। उसका हाथ धीरे से मैंने हटा दिया और हकलाते हुए धीरे से पूछा क्या आप सिद्धेश्वरी माँ से पूर्ण परिचित है? कमरे का वातावरण अब तक और अधिक रहस्यमय हो गया था। एक अनपेक्षित सी गम्भीरता और एक विचित्र सी मनहूसियत छाती जा रही थी वहां। वृद्ध साधु खिड़की के बाहर बिखरे घोर अन्धकार की ओर देखते हुए गम्भीर स्वर में बोला–मैं परिचित न होऊंगा तो भला और कौन होगा?

मेरी समझ में नहीं आया कुछ। सोचने लगा–इस वृद्ध साधु का क्या संबंध हो सकता है सिद्धेश्वरी माँ से? क्या यह साधु भी कोई तांत्रिक हैं या और कुछ......?

मैंने देखा–लालटेन की पीली रोशनी में–वृद्ध कांप रहा था। उसका पूरा शरीर हिल रहा था न जाने क्यों।

अब तक दूसरी सिगरेट सुलगा ली थी मैंने। सिगरेट का धुआं कमरे में चारो ओर चक्कर काटने लगा। शायद सिगरेट की गन्ध पाकर वृद्ध साधु खिड़की से हटकर मेरे करीब आया और अकस्मात उसने पूछा–आत्ममुक्ति' पर विश्वास करते हैं आप।

आत्ममुक्ति में? इस बार मेरे चौंकने की बारी थी। क्या कहना चाहता है वह? मेरी इच्छा हुई कि जोर से 'ना' कर दूँ लेकिन उसके चेहरे पर नाचती उत्कण्ठा एवं उद्विगनता को देखते हुए उसे निरूत्साहित करने का साहस नहीं हुआ मुझे। मैंने कहा–जी हाँ, जहाँ तक मेरा

विचार है, आत्ममुक्ति किसी न किसी अवस्था में सम्भव अवश्य है। आत्मा, मुक्त होने पर परम शान्ति का अनुभव करती है—ऐसा पढ़ा सुना है मैंने।

वह मेरे और निकट आ गया और बोला—मुझे लग रहा है कि आपको मेरे प्रति पूर्ण सहानुभूति है। सोचता हूँ आपको सब कुछ बतला ही हूँ। क्या आप मेरी कथा सुनेंगे?

अवश्य, लेकिन आप भी बैठ जाइये। इससे मुझे आपकी कथा सुनने में सुविधा होगी। वृद्ध तख्त के एक ओर बैठ गया। कुछ कहने के लिए उसके होंठ स्पन्दित हुए थे कि सहसा सहमी दृष्टि से उसने खिड़की की ओर देखा और फिर थोड़ा सिहर कर कहा—आज से एक सौ दस वर्ष पहले मेरी बलि दी गयी थी।

बलि..........क्यों? मेरा खून सर्द हो गया। हृदय की गति अवरूद्ध—सी होती जान पड़ी। उसके विलक्षण हाव—भाव से मुझे ऐसे ही किसी अनपेक्षित अप्रत्याशित रहस्योद्घाटन की आशा थी लेकिन मुझे रंचमात्र भी विश्वास नहीं था कि रहस्योद्घाटन इतना सनसनीखेज और इतना भयंकर भी हो सकता है? कई क्षणों तक मैं स्तब्ध रहा किन्तु फिर साहस करके बोला—फिर सशरीर मेरे सामने कैसे हैं आप?

वृद्ध की आंखे चमक उठी एकबारगी। एक लम्बी सांस लेकर वह बोला—इसी कारण परेशान हूँ और हूँ अशान्त।

कहने की आवश्यकता नहीं, प्रेतशास्त्र पर गहरा अध्ययन किया हैं मैंने। कई पुस्तकें भी लिखी हैं मैंने। कुछ विशिष्ट प्रेत आत्माएँ कुछ समय के लिए अपनी वासना के आधार पर पूर्व स्थूल शरीर का निर्माण कर लेती है। इसलिए जब उस वृद्ध साधु ने यह कहा कि उसका वह प्रेत शरीर है और जिस शरीर की बलि दी गयी थी उसका नरकंकाल कहीं टंगा हुआ है—तो उसका प्रभाव मुझ पर नगण्य ही रहा। लेकिन 'नरबलि' की बात ने मुझे चिन्तित और थोड़ा विचलित कर दिया था अवश्य। क्यों बलि दी गयी थी आपकी और दी किसने थी? मैंने थोड़ा सहिष्णु होकर पूछा।

यही तो मेरी कथा हैं भाई! वह एक क्षण के लिए रूका इतना कहकर और फिर बोला—आपका नाम क्या है?

मुझे आश्चर्य हुआ आखिर नाम जानकर करेगा क्या यह? मैंने बतलाया—अरुण कुमार शर्मा! मेरा नाम सुनकर हो—हो—कर हंसने लगा वह वृद्ध साधु। हंसने—हंसते अन्त में खांसने लगा और जब खांसी बन्द हुई तो बोला—आश्चर्यचकित भाव से— क्या आप वहीं अरुण कुमार शर्मा हैं जो पिछले कई वर्षो से पराविज्ञान पर शोध और अन्वेषण कार्य कर रहे हैं?

जी हाँ! मैं वहीं अरुण कुमार शर्मा हूँ। मैंने दूसरी सिगरेट जलाते हुए उत्तर दिया।

तब तो मेरी कथा पर आपको पूरा विश्वास होगा। मैंने समर्थन में सिर हिलाया।

हाँ तो एक सौ दस वर्ष पहले मैं भी आपकी ही तरह योग और तंत्र—मंत्र के चक्कर में इधर—उधर भटक रहा था। उस समय आपकी ही तरह मैं भी जवान, स्मार्ट, सुन्दर और आकर्षक व्यक्तित्व का धनी था। तंत्र मंत्र का चक्कर अवश्य था मगर मैं तो सरकारी नौकरी करता था। हां! मैंने आपको अपना नाम नहीं बतलाया—मेरा नाम हैं—चन्द्रभूषण भारद्वाज। उस समय कालिम्पोंग में था मैं। वहां महाकाली का अतिप्राचीन मन्दिर था। शायद अब भी हो कहा नहीं जा सकता। खैर, मन्दिर से सटे एक छोटे से कमरे में एक तंत्र साधक रहते थे। लगभग पचास साठ के रहे होंगे नाम था वामाचरण। बंगाली सज्जन थे। मजबूत कदकाठी के थे रंग गोरा था। छोटी सी दाढ़ी लेकिन सिर मुड़ा हुआ था और आँखों में चमक थी। लाल वस्त्र पहनते थे। माथे पर सिन्दूर का गोल टीका लगाते थे। बोलते बहुत कम थे। काम से काम रखते थे। मेरा उनके प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक था। जिसका परिणाम यह हुआ कि मुझे अपना शिष्य बना लिया उन्होंने दीपावली की रात में विधिवत दीक्षा देकर। मैंने अब नौकरी छोड़ दी और गुरुदेव के साथ रह कर तांत्रिक साधना करने लगा मैं। मगर बाद में पता चला कि तंत्र साधना अत्यन्त रहस्यमयी और गूढ़ है। सबके बस की बात नहीं उसकी साधना करना।

अब मैं गुरुदेव को 'बाबा' कहकर सम्बोधित करने लगा था। उनके आदेश के अनुसार कोट पैंट फेंक कर लाल वस्त्र मैं भी धारण करने

करने लगा था। सिर मुड़ाकर दाढ़ी रखने लगा उनकी तरह। बाबा थोड़ी घुमक्कड़ प्रवृत्ति के थे। एक बार मुझे आसाम ले गये अपने साथ। गंगा और ब्रह्मपुत्र के संगम के ऊपर एक महाश्मशान था। चारो ओर गहरी निस्तब्धता थी वातावरण में। गहरी खिन्नता भरी उदासी बिखरी हुई थी श्मशान में। कुछ देर पहले एक चिता जलकर बुझ चुकी थी लेकिन उसकी गर्म राख से धूएँ की स्याह लकीरे निकल रही थी। एक मरियल सा कुत्ता वहीं बैठा हुआ ऊँघ रहा था सिर झुकाए।

बाबा एक स्थान पर बैठ गये और गम्भीर स्वर में बोले–तुमने मेरी सेवा की है और साधना भी की है। योग्य पात्र की प्रतीक्षा थी मुझे। वह पूरी हो गयी तुम्हारे जैसा पात्र प्राप्त होना असम्भव तो नहीं कठिन अवश्य है। थोड़ा रूककर बाबा आगे बोले मेरे जाने का समय हो गया है लेकिन जाने के पहले तुम्हे एक उच्चकोटि की तांत्रिक सिद्धि की दीक्षा दूंगा जिसके प्रभाव से तुम इच्छानुसार जो चाहो वह कर सकते हो।

मेरी समझ में नहीं आया कुछ। टुकुर–टुकुर मुंह ताकता रहा बाबा का। मैंने देखा–बाबा ने एक अंजुली गंगा का पानी लिया, कोई मंत्र पढ़ा और फिर अंजुली का पानी सामने की ओर उछाल दिया और फिर देखते ही देखते गंगा की धारा से एक अति स्थूलकाय काला व्यक्ति बाहर निकला वह पूर्ण नग्न था। उसकी गर्दन मोटी थी और सिर कोहड़े जैसा था। उसकी आँखे बड़ी–बड़ी और लाल थी। वह पानी के बाहर निकल कर बाबा के सामने आया। बाबा ने हाथ हिलाकर कोई संकेत किया। कौन था वह क्या कोई मानवेतर प्राणी था? कुछ समझ में नहीं आ रहा था भय मिश्रित भाव से देख रहा था मैं उस भयानक व्यक्ति को और तभी मैंने देखा बाबा के चारों ओर दर्जनों मानव खोपड़ियाँ फैल गयी और उन खोपड़ियों के बीच में लम्बा चौड़ा नर कंकाल नृत्य करने लगा। बड़े बेढंगे ढंग से नृत्य कर रहा था वह नरकंकाल। उसी समय एक हवन कुण्ड बन गया वहां और उसमें जलने वाली आग की ऊँची लाल पीली लपटे आकाश में उठने लगी और उस हवन कुण्ड के पास मदिरा से भरी कई बोतलें हवन की सामग्री और अनचीन्हीं वस्तुएं न जाने कहां से आ गयी वहाँ? किसने की थी उन तांत्रिक वस्तुओं की सृष्टि? अविश्वसनीय

चमत्कार था वह सब कुछ देर तक बाबा शांत भाव से बैठे रहे। उसके बाद उन्होंने जलते हवन कुण्ड में मदिरा की आहुति दी। आग भभक उठी। लाल, पीली लपटे चारो ओर फैलने लगी।

उस समय मुझे घोर आश्चर्य हुआ और थोड़ा भय भी जबकि मैंने देखा, उन लाल पीली लपटों के बीच से एक रहस्यमयी काली छाया ऊपर उठ रही थी। बाद में सब कुछ स्पष्ट हो गया। वह एक पन्द्रह सोलह वर्षीया कन्या की छाया थी। किसी छोटी जाति की लगी मुझे। रंग काला था लेकिन शरीर सुगठित और चेहरा आकर्षक था। उसकी बड़ी–बड़ी आँखे न जाने किन रहस्यों से भरी लगी मुझे। पलकें नहीं गिर रही थी पुतलियां स्थिर थीं। उस विचित्र और रहस्यमयी कन्या में गाम्भीर्य था। नवयौवन की चंचलता नहीं थी। रंग काला होने पर भी उसमें न जाने कैसा विचित्र आकर्षण था। वह पूर्ण नग्ना थी। धीरे–धीरे आग की लपटों के बाहर निकल कर बाबा के सामने बिछे लाल आसन पर बैठ गयी वह रहस्यमयी कन्या। अपने तांत्रिक अनुष्ठान में लीन थे बाबा। उन्होंने एक बार सिर घुमाकर उस कन्या की ओर देखा और फिर अपने कार्य में लीन हो गये। अग्नि कुण्ड में प्रकट होने वाली वह श्यामा कौन थी यह मेरे लिए अति रहस्यमय था। निश्चय ही वह कोई और थी मनुष्य नहीं थी, इसमें सन्देह नहीं।

और तभी न जाने किधर से एक युवती प्रकट हो गयी श्मशान में। उसकी आयु पच्चीस–तीस के लगभग रही होगी। गोरा रंग था। सिर के काले स्याह बाल बिखरे हुए थे। न जाने कितने सपनों से भरी बड़ी–बड़ी भौराली आखें। मस्तक पर लाल सिन्दूर का बड़ा सा गोल टीका और गले में मोतियों की कई मालाएं। लाल चौड़े पाढ़ की साड़ी पहने थी वह। उसके होठों पर मन्द–मन्द मुस्कराहट थी। अति प्रसन्न दिखी वह रहस्यमयी युवती मुझे।

उस अज्ञात युवती के प्रकट होते ही बाबा की आहुति बन्द हो गयी और बाबा सिर घुमाकर प्रसन्न भाव से बोले आ गयी रोहिणी तुम्हारी ही आवश्यकता थी मुझे इस समय।

युवती ने प्रणाम किया और बाबा के बगल में बैठ गयी पद्मासन की मुद्रा में वह। निश्चय ही बाबा की भैरवी थी रोहिणी। यह समझते देर

न लगी मुझे और यह भी समझते देर न लगी कि रोहिणी किसी उच्च कुल से संबंधित थी। न जाने कैसे बाबा ने दीक्षा देकर अपनी भैरवी बना लिया था रोहिणी को। मैं तो यह जानता था कि बिना भैरवी के तांत्रिक साधना कैसी? सफलता कहां मिलेगी बिना भैरवी के? भैरवी तो एक अति आवश्यक अंग है तंत्र–साधना मार्ग का। बड़े भाग्य से साधक को योग्य और अनुकूल भैरवी उपलब्ध होती है। माँ महामाया की जब अनुकम्पा होती है तभी साधनानुकूल भैरवी के दर्शन होते हैं अन्यथा नहीं। साधक के साधना मार्ग में कोई त्रुटि होने पर कोई गड़बड़ी होने पर किसी प्रकार की विकट स्थिति उत्पन्न होने पर अथवा किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न होने पर संभाल लेती है भैरवी। मैंने देखा–अब बाबा, हवन कार्य को बन्द कर रक्त चन्दन, जवा पुष्प और अक्षत से भैरवी की पूजा कर रहे थे। भैरवी के नेत्र बन्द थे। उसके बाल पीठ पर बिखरे हुए थे। एक विशेष प्रकार की दिव्य आभा से दप्–दप् कर रहा था भैरवी का मुखमण्डल।

भैरवी पूजा के बाद बाबा ने फिर शुरू कर दिया तांत्रिक हवन। लाल, पीली लपटें फिर उठने लगी हवन कुण्ड से। उस काले मोटे व्यक्ति ने नरमुण्डों को उठाकर हवन कुण्ड के चारो ओर क्रम से रखा और फिर उनमें मदिरा उड़ेली। अब तक नाच रहा नर कंकाल एकाएक गायब हो गया था न जाने कहां ? हवन कुण्ड से कच्चे मांस के जलने की दुर्गन्ध निकलकर चारो ओर फैलने लगी थी श्मशान के उदास वातावरण में। पश्चिम के पहाड़ों के पीछे सूरज डूब चुका था अब। सांझ की स्याही बिखरने लगी थी चारो तरफ। श्मशान का वातावरण अब पहले से अधिक भयावह हो उठा था भुतहा जैसा। भैरवी पाषाणवत् बैठी थी अभी तक। बाबा उसकी ओर देखते हुए न जाने कौन सा मंत्र बुदबुदा रहे थे अब।

कौन सी तांत्रिक क्रिया थी कौन सी तंत्र साधना थी वह? समझ में नहीं आ रहा था और यह भी समझ में नहीं आ रहा था कि कौन सी सिद्धि देंगे मुझे बाबा इस भयंकर और अति रहस्यमय तांत्रिक अनुष्ठान के पश्चात्? एक ओर पत्थर पर बैठा टुकुर–टुकुर सब कुछ देख रहा था मैं यह सोचते हुए।

मैंने पलटकर देखा भारद्वाज की बूढ़ी आँखों में भय और आतंक की छाया लहरा उठी थी अचानक उस समय। क्यों? मेरी समझ में नहीं आया कुछ। कैसी विचित्र दृष्टि थी वह मुझे अच्छा नहीं लगा।

भावहीन स्वर में बोले भारद्वाज। तंत्र मंत्र की विलक्षण कथा है, न शायद विश्वास नहीं करेंगे आप।

नहीं, नहीं, ऐसा न सोचे आप। मैं तो स्वयं इस दिशा में हूँ विश्वास क्यों नहीं होगा।

शर्माजी! भारद्वाज ने आगे कहना शुरू किया—न जाने कहां से एक मोटा ताजा काला बकरा ले आया वह रहस्यमय व्यक्ति। बकरे की विधिवत पूजा की गयी और दी गयी उसकी बलि। बाबा ने ही दी बलि। खून का फौव्वारा फूट पड़ा बलि पशु के कटे हुए शरीर से। रक्त रंजित हो उठी हवन कुण्ड की भूमि और पास ही बैठी हुई समाधिस्थ कृष्ण वर्णा षोडशी कन्या का पूरा शरीर भी प्लावित हो उठा पशु रक्त से। अति भयानक लग रही थी वह रहस्यमय तरूणी।

और उसी समय एकाएक गंगा के तट से समवेत स्वर में सियारों के रोने की आवाज आने लगी और उसी के साथ खून से सने कच्चे मांस के टुकड़े गिरने लगे आकाश से। बड़ी भयानक स्थिति की सृष्टि हो गयी देखते ही देखते। आतंक और भय से भर उठा मेरा मन। सियारों का रूदन बकरे का छटपटाता रक्त रंजित शरीर और मांस वर्षा श्मशान के वातावरण को और अधिक भयानक बना रहा था स्याह अंधेरे में। पत्थर पर पत्थर बना बैठा मैं बाबा के तांत्रिक शक्ति के प्रभाव से आक्रोश भरे और तमतमायें चेहरे की ओर कभी देखता तो कभी देखता निश्चेष्ट बैठी भैरवी की ओर। सच तो यह था कि मेरी आन्तरिक स्थिति बड़ी दयनीय हो रही थी—श्मशान के भयावह वातावरण में उन रहस्यमयी तांत्रिक क्रियाओं को देख कर। शर्माजी क्या कहूँ? यदि मैं यह जानता कि और भी कुछ अविश्वसनीय घटना घटनेवाली है तो वहां एक पल भी रूकता नहीं भाग खड़ा होता मैं तुरन्त।

अनायास ही भारद्वाज के स्वर में तीखापन आ गया और उसी तीखेपन से भरे स्वर में बोले वह सांझ की स्याही रात्रि की कालिमा में बदल चुकी थी अब तक। श्मशान का सन्नाटा अब और गहरा गया था।

हवन कुण्ड के सामने जलते हुए पंचमुखी दीपक के पीले प्रकाश में निस्तब्ध और निर्विकार बैठी हुई उस षोडशी श्यामांगी का चेहरा वीभत्स और विवर्ण लगा मुझे। साक्षात कालरात्रि–सी प्रतीत हो रही थी उस समय वह। हे भगवान! क्या है यह सब निश्चय ही मैं किसी भयंकर तांत्रिक चक्कर में फंस गया था, इसमें सन्देह नहीं। हे माँ क्या होगा अब मेरा मस्तिष्क जैसे शून्य होता जा रहा था शर्माजी! क्या और कैसे बतलाऊँ मैं आपको उस समय की अपनी मनः स्थिति को।

फिर क्या हुआ? व्यग्र भाव से पूछा मैंने और तभी हवा का एक झोंका आया और कमरे में बिखर गया एकबारगी और उसी के साथ धुआँ फेकता हुआ बुझ गया लैम्प भी। मैं बैठा रहा अपने स्थान पर।

शराबी की तरह लड़खड़ाते कदमों से भारद्वाज उठे। लैम्प फिर से जलाया उन्होंने। लैम्प की हल्की पीली रोशनी में कमरा पहले से अधिक भयानक हो उठा। कांपते ''लौ'' की रोशनी जब कभी भारद्वाज के चेहरे पर नाचती तो चेहरे की गहरी रेखाएं और गहरी हो जाती। अब तक लैम्प का हल्का पीला प्रकाश पूरे कमरे के रहस्यमय वातावरण में फैल चुका था। आँखों को मिचमिचाते हुए भारद्वाज ने आगे अपनी रहस्यमयी तांत्रिक कथा को सुनाना शुरू किया– शर्माजी देखते ही देखते घोर अन्धकार से काला पड़ा आकाश का एक टुकड़ा काफी दूर तक फट गया और थोड़ी ही देर में वह जगह खूनी रंग के बादलों से अटकर लाल हो गयी और वहां सैकड़ों मांसखोर पक्षी अपने लम्बे चौड़े फंख फैलाए चक्कार काटने लगे और उसी समय न जाने कहां से श्मशान में समवेत स्वर में रोते हुए आ गया सियारों का झुण्ड और उसी के बाद सामूहिक नृत्य होने लगा नरकंकालो का श्मशान में। कभी वे नृत्य करते तो कभी हो–हो कर आपस में हंसते, चीखते और चिल्लाते। एकाएक बादलो के गरजने की आवाज आने लगी। क्या बतलाऊँ मैं आपको शर्मा जी कुछ मिलाकर बड़ा ही अद्‌भुत, विचित्र भयानक और अविश्वसनीय दृश्य था। मेरा तो भय और आतंक से सारा शरीर ही कांपने लगा था बन्धु। सोचा, भागूं यहां से किसी प्रकार। एक दो बार कोशिश भी की, लेकिन सफल न हो सका मैं। चारो ओर अन्धकार जो था गाढ़ा और चिपचिपा, उसी कारण शर्मा जी मेरी हिम्मत नहीं पड़ रही

थी और तभी बादलों के गरजने की आवाज सुनायी दी। सिर उठाकर आकाश की ओर देखा तो देखता ही रह गया मैं। पहाड़ जैसे लाल बादलों को चीरता हुआ एक बहुत बड़ा गिद्ध–जिसकी मोटी और काफी लम्बी थी–गर्दन पीले रंग की चोंच भी अधिक लम्बी थी–सिर हद से ज्यादा बड़ा था आँखें गोल थी– पलकें मोटी थी। क्रुद्ध भाव से अपने चारों ओर गर्दन घुमाकर न जाने क्या देखने का प्रयास कर रहा था वह भयानक गिद्ध। अपने बड़े–बड़े पंखों को हवा में हिलाता हुआ धीरे–धीरे आगे बढ़ रहा था वह। थोड़ा नजदीक आने पर मैंने देखा उस राक्षस जैसे विशाल गिद्ध की पीठ पर दोनों पैर नीचे लटकाए हुए एक सुन्दर स्त्री बैठी हुई थी। वह मन्द–मन्द मुस्कराती हुई बाबा की ओर देख रही थी। उसके गौर वर्ण शरीर पर गुलाबी रंग की रेशमी साड़ी थी और गले में रत्नजड़ित कई हार थे। सिर के घने काले बाल हवा में बिखर कर लहरा रहे थे। निश्चय ही वह विशालकाय गिद्ध श्मशान की ही ओर आ रहा था। मेरा अनुमान सत्य निकला देखते ही देखते श्मशान में उतर गया वह। श्रद्धा भाव से दोनों हाथ जोड़कर और सिर झुका कर पहले उस रहस्यमयी देवी को प्रणाम किया बाबा ने और फिर कहा–हे यक्षलोक की अधिष्ठात्री आपके दर्शन की अभिलाषा आज पूर्ण हुई। हे माँ मात्रिका रूपिणी आपको शत् शत् प्रणाम।

यह सुनकर देवी मुस्करायी और अपना दाहिना हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया बाबा को और देखते ही देखते अपने स्थान से तिरोहित हो गयी वह तंत्र की अधिष्ठात्री देवी।

तांत्रिक साधना का वह अद्भुत विलक्षण और साथ ही अविश्वसनीय चमत्कार विरले ही किसी को देखने के लिए मिलता है बन्धु।

थोड़ा रूक कर भारद्वाज आगे बोले–एकाएक मेरी दृष्टि रोहिणी की ओर घूम गयी। मैंने देखा उसका चेहरा क्रोध, घृणा और उत्तेजना से लाल हो रहा था। बार–बार बाबा की ओर आग्नेय दृष्टि से देख रही थी वह। कारण समझ में नहीं आ रहा था कि ऐसा क्यों किसलिए? उस समय ध्यानस्थ थे चिन्तन मनन में डूबे हुए थे शायद बाबा। उस समय मैंने यह भी अनुभव किया कि श्मशान का वातावरण बोझिल–सा हो रहा है। ऐसा भी लगा कि कोई अघटित होने वाला है। तभी बाबा की आवाज

कानों में पड़ी। वे बुला रहे थे मुझे और जब मैं क्रिया स्थलि पर पहुँचा तो देखा—बाबा के सामने वह रहस्यमयी कन्या बैठी हुई थी नेत्र बन्द किए निश्चल पाषाणवत। बाबा ने संकेत से उसका पूजन करने का आदेश दिया और मैंने वैसा ही किया। लाल चन्दन, अक्षत जवा पुष्प आदि से पूजन कर मदिरा पात्र अर्पित किया और अर्पित करते ही षोडशी के नेत्र खुल गये। तीव्र दृष्टि से देखा उसने मेरी ओर। हे प्रभु, हे माँ क्या था उन लाल हो रहे नेत्रों में? पूरी सृष्टि को निगल लेने का भाव। आक्रोश से भरा छिन्नभिन्न कर देने का भाव। भय और आतंक का भाव समझ गये न आप।

उत्तर में केवल सिर हिला दिया मैंने।

अब मैं जो कथा सुनाऊँगा क्या आप उस पर विश्वास करेंगे नं?

क्यों नहीं, क्यों नहीं करूँगा मैं।"

तो......सुनिए। भारद्वाज ने आगे कहना शुरू किया— उच्च स्वर में कोई तांत्रिक मंत्र पढ़कर बाबा ने कन्या पर अभिमंत्रित जल फेंका। मैंने देखा जल का स्पर्श करते हुएं वह षोडशी कन्या धीरे—धीरे अग्नि पुंज में बदल गयी। आश्चर्य से मेरी आँखे फटी की फटी रह गयी एकबारगी। अन्त में वह अग्निपुंज बहुत छोटा हो गया और तीव्र गति से आकर मेरे शरीर में समा गया। उसके समाते ही मेरा शरीर एक बार काफी जोर से हिला कांपा और फिर जड़वत् हो गया। आँखे अपने आप बन्द हो गयी और उसी के साथ लुप्त हो गयी मेरी बाह्य चेतना और उस स्थिति में मैंने देखा, वह षोडशी श्यामा मेरे सामने खड़ी मुस्करा रही है मन्द—मन्द। उस समय उसका रूप कुछ और ही था, सुन्दर अति सुन्दर। घनी भौहे, कजरारी भौराली आँखें, बाघिन की तरह पीली और चमकती हुई लम्बी नुकीली नाक रस भरे रक्ताभ होंठ ललाट पर ध्रुव तारा जैसी चमकती सफेद बिन्दी कान में कुण्डल और गले में मयूराक्षी हार। बंधा हुआ बाल का जूड़ा और उस जूड़े में हर श्रृंगार की महकती गमकती वेणी। श्याम शरीर पर पीले चौड़े पाढ़ की नीले रंग की रेशमी साड़ी। सच कहता हूँ शर्मा जी वह देवी साक्षात् श्रृंगार रस में डूबी हुई किसी कवि की परकीया नायिका सी लग रही थी उस समय। एकबारगी विह्वल हो उठी मेरी आत्मा उस अपरूप सौन्दर्य को देख कर।

अपने गुलाब जैसे होठ पर अपनी तर्जनी उंगली रख कर मेरी ओर वक्र दृष्टि से देखते हुए मन्द स्वर में बोली—कैसी लगी मैं आपको?

ईश्वर की महानतम् कला।

मेरा नाम नहीं पूछा आपने?

थोड़ा झेंपकर बोला—क्षमा करे गलती हो गयी। गलती करना मानव का स्वभाव है।

मेरा नाम है ऋचा, वेदों की ऋचा नहीं तंत्रालोक की ऋचा जिसे यक्षलोक के नाम से भी जाना जाता है।.....मैं तो अब आपके साथ मंत्र के छन्दों से बंध गयी हूँ। मेरी मानवेतर शक्ति का आश्रय लेकर कोई भी असम्भव से असम्भव लौकिक, पारलौकिक कार्य कर सकने में समर्थ है आप लेकिन मन में सदैव कल्याणकारी और निरपेक्ष भाव रहना चाहिए। तंत्र का अर्थ है कल्याण, संसार में रहते हुए भी उससे अलग और निरपेक्ष। देश, काल और पात्र को देखते हुए किसी का दुख कष्ट स्वयं लेकर उसे स्वयं भोग ले, लेकिन कभी किसी को दुख न दे कष्ट न दें और न दे किसी की किसी भी प्रकार की पीड़ा।.....अच्छा आइये चलिए मेरे साथ मेरे लोक, जिसे तंत्रालोक कहते हैं। जिसे लोग यक्ष लोक के नाम से भी जानते है।

मैं अपने आपमें अत्यधिक हल्कापन का अनुभव कर रहा था। लगा जैसे शून्य में विचरण कर रही हैं मेरी आत्मा। एकाएक मैं घिर गया नीले रंग के बादलों से। बड़ा सुखद लगा मुझे। नीले बादलों के झुण्ड हटते गये और मैं आगे बढ़ता गया। मैं किस कान से सुन रहा था ? किस आँख से देख रहा था और किस मुंह से बोल रहा था यह मैं नहीं बतला सकता लेकिन मेरा मन सारी स्थितियों का अनुभव कर रहा था और बराबर मेरी आत्मा ग्रहण करती जा रही थी उस अलौकिक जगत के वातावरण में बिखरे गूढ़ गोपनीय रहस्यों को। (यक्षलोक के विषय में विशेष अध्ययन के लिए पढ़े—कारणपात्र) अचानक् उसी अवस्था विशेष में किसी का आर्तनाद सुनायी दिया मुझे। किसका था वह आर्तनाद? एकबारगी चैतन्य हो उठा मैं। कांच की तरह छन्न् से टूट गया था, तांत्रिक मायाजाल। आँखे खुली देखा सामने बाबा का रक्तरंजित शरीर

पड़ा था और उनकी छाती पर बैठी हुई थी रोहिणी हाथ में बलि खड्ग लिए अट्टहास करती हुई भयंकर मुद्रा में। यह क्या सारा शरीर रोमांचित हो उठा एकबारगी मेरा। बाबा का सिर धड़ से अलग होकर हवनकुण्ड के पास लुढ़का पड़ा था आँखे बन्द थी और सिर के बाल खूने से सने हुए थे। दोनों पैर अभी भी कांप रहे थे। शायद पूरी तरह निकला नहीं था प्राण। सिर घुमाकर देखा मैंने रोहिणी की ओर लाल–लाल आँखों से चिंगारियां फूट रही थी। चेहरा तमतमाया हुआ था क्रोध से। सब कुछ समझते देर न लगी मुझे। जिस परम तांत्रिक सिद्धि की अधिकारिणी स्वयं अपने आपको समझ रही थी वह उन्मत भैरवी उसे बाबा ने मुझे दे दिया था और उसी का परिणाम था वह अकल्पनीय, रोमाञ्चकारी और घृणित दृश्य। फिर एक पल भी रूका नहीं उठा और उठ कर भागा वहां से मैं। गहरी काली रात सांय–सांय करता हुआ वातावरण। चारो ओर पसरा सन्नाटा और अन्तहीन छोर। भागता रहा, भागता रहा और भागता ही रहा मैं और न जाने कब कहां और कैसे पैर लड़खड़ाये और गिर पड़ा मैं मुँह के बल और बेहोश हो गया मैं और जब होश आया और चेतना लौटी तो देखा एक झोपड़ी में पड़ा था खाट पर। मेरे अगल बगल कई लोग खड़े मेरी ओर देख रहे थे। मुझे होश में आया हुआ देखकर सभी प्रसन्न हो उठे। तभी एक नवयुवती हाथ में दूध का गिलास लेकर आयी, मेरे सिर पर अपना कोमल हाथ फेरा और गिलास मेरे मुंह से लगाकर धीरे से मधुर स्वर में बोली लो दूध पीलो आराम मिलेगा। मैंने आँखें उठाकर उसकी ओर देखा बहुत ही सुन्दर थी वह नवयुवती। दूध पीते हुए पूछा–कौन हैं आप? क्या नाम हैं आपका? 'रालू'! इस घर की लड़की हूँ मैं नवयुवती ने खाली गिलास थामते हुए उत्तर दिया।

आसाम का वह छोटा सा गांव था और उस गांव के मुखिया चरनू की झोपड़ी थी वह। चरनू ने ही मुझे जंगल में बेहोश पड़ा देखा था और उठा कर अपनी झोपड़ी में लाया था। बड़ा ही सीधा सादा सरल और कोमल स्वभाव का था चरनू उसकी तीन बेटियां थीं। सबसे बड़ी थी रालू। रालू की शादी बचपन में ही हो गयी थी, लेकिन उसे दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि बेचारी बिना ससुराल गये और बिना पति का मुंह देखे ही विधवा हो गयी वह। यह सब सुनकर भारी कष्ट हुआ मुझे और जब

मैंने यह सुना कि दूसरा विवाह करने के लिए चरनू भाग दौड़कर रहा है और कोई लड़का विधवा से विवाह करने के लिए तैयार नहीं हो रहा है तो मेरे दुख की सीमा ही नहीं रही। जब चरनू ने बतलाया कि एक अच्छा और कमाऊ लड़का पास के ही गांव का है। दहेज में पांच बकरा और पांच बकरा और पांच गगरी शराब देने के लिए भी चरनू तैयार है लेकिन लड़का तैयार नहीं हो रहा है विवाह के लिए। मैंने कहा–तैयार हो जायेगा चरनू तुम चिन्ता मत करो। आज सायंकाल ही वह लड़का तुमसे मिलने जायेगा और बिना कुछ दहेज में लिए विवाह कर लेगा।

मेरी बात सुनकर चरनू जैसे अवाक् रह गया। लगा उसको मेरी बात पर विश्वास नहीं हो रहा था। काफी देर तक मेरी ओर अपलक देखता रहा वह। फिर बोला–सच महाराज!

हाँ चरनू सच सायंकाल होने तो दो.......कहने की आवश्यकता नहीं शर्माजी दूसरे ही दिन रालू की शादी काफी धूमधाम से हो गयी और रालू मेरा चरणस्पर्श करके खुशी–खुशी चली गयी अपने ससुराल अपने पति के साथ। चालीस पचास घर के उस गांव में एक सिद्ध और चमत्कारी साधु के रूप में मेरी प्रसिद्धि फैलते फिर देर न लगी। इतना ही नहीं, आसपास के कई गांव के लोग भी मुझे जान गये और उनकी भीड़ लगने लगी चरनू की झोपड़ी के सामने रोज। शर्माजी, पहली बार समझ में आया कि इस संसार में कितना दुख है कितना कष्ट हैं और कितनी हैं पीड़ा? लगभग दस दिन रहा मैं उस गांव में और इस अल्प अवधि में कई लोगों को कैंसर जैसे असाध्य रोगों से मुक्ति दिलायी। कई लोगों के शारीरिक और मानसिक कष्टों को दूर किया। कई लोगों की तरह–तरह की समस्यायें हल की। इसी प्रकार कई लोगों की पीड़ाओं का और व्यथाओं का हरण किया मैंने गुरु प्रदत्त सिद्धि द्वारा। सैकड़ों लोग ईश्वर की तरह पूजा करने लगे मेरी। लेकिन न जाने क्यों मेरा मन उचट गया और वहां से खिसकने के लिए सोचने लगा मैं। एक रात जब पूरा गांव गहरी नींद में सो रहा था, उस समय भाग निकला मैं गांव से। मेरा मन एक प्रकार से विरक्त हो चुका था संसार से। न जाने कैसे मेरे पैर हिमालय की ओर बढ़ गये। पूरे पांच वर्ष हिमालय में भटकता रहा पागलों की तरह मैं। फिर........

फिर क्या? वापस लौट आया संसार में। कोई ऐसा तीर्थ नहीं बचा जिसकी यात्रा मैंने नहीं की। लेकिन सन्तप्त मन स्थिर नहीं हो पाया। आसाम के गांवों में मनुष्य के जिन कष्टों जिन दुखों को और जिन विवशताओं को देखा था और किया था अनुभव, शर्मा जी! उन सब कर गहरा प्रभाव पड़ा था मेरी आत्मा पर और यही कारण था मेरे मन की अशान्ति का। सचमुच विरक्त हो गया था मैं संसार से।

नित्य मैं इधर–उधर भटकता अलौकिक सिद्धि का बोझ लिए। भिक्षा में साधु को जो कुछ मिल जाता उसे स्वीकार कर लेता मैं सहर्ष। रात होती किसी मन्दिर में या किसी एकान्त स्थान में कम्बल ओढ़ कर सो जाता मैं।

और तभी एक घटना घट गयी। बड़ा ही दारूण और साथ ही बड़ा ही करूण वातावरण था वह। एक टूटे फूटे पुराने मकान में एक अति दरिद्र परिवार रहता था। कुल सात प्राणी थे उस अकिंचन परिवार में। पति पत्नी और पांच बच्चे। चरम अभाव का साकार रूप था वह परिवार और इसी कारण टी.वी. रोग से ग्रस्त गंगाराम ने आत्महत्या कर ली थी। उसकी निर्जीव काया एक मैली कुचैली चादर में लिपटी आंगन में पड़ी थी। पास पड़ोस और नाते रिश्तेदार का कोई भी आदमी नहीं था वहां। अगर थे तो जोर–जोर से रोते हुए बच्चे थे और शव पर सिर धुन कर विलाप करती हुई गंगाराम की पत्नी लालमनी। न जाने क्यों और किस प्रेरणा के वशीभूत होकर मैं उस जीर्णशीर्ण मकान में भीतर चला गया। एक साधु को सामने देखकर लालमनी हकबका–सी गयी। रोते हुए बोली–महाराज! मेरा सब कुछ लुट गया। मैं बर्बाद हो गयी महाराज। कहां जाऊँगी इन बच्चों को लेकर? कौन है मेरा अब? कैसे पालन–पोषण में करूँगी, इन बच्चों का? एक साधु को उस मृतक के घर में घुसते हुए कुछ लोगों ने देख लिया। इसीलिए पांच छः व्यक्ति वहां आ गये। सभी मेरी ओर देख रहे थे लेकिन मैं देख रहा था लालमनी की निःसहाय अवस्था को मैंने धीरे से कहा–माँ तुम रोओ मत। रोने से कोई लाभ नहीं। तुम्हारी पीड़ा का स्वयं अनुभव कर रहा हूँ मैं। तुम्हारा पति गंगाराम, मरा नहीं है। वह तो चार घंटे से बेहोश है।

मेरी बात सुनकर सभी हतप्रभ हो गये। लालमनी ने अविश्वास की दृष्टि से मेरी देखा।

हाँ! लालमनी, जरा कपड़ा हटाकर देखो तो..........कपड़ा हटाया गया। शव पर झुक कर देखने लगी लालमनी। शीतल हो गये अंग अब गरम हो गये निश्चेष्ट पड़े शरीर में कम्पन होने होने लगा था। बन्द आंखे खुल गयी। चारो ओर आँखे फाड़ फाड़कर देखने लगा गंगाराम। सभी आश्चर्य चकित थे। मेरे दोनों पैरों को पकड़कर रोने लग गयी थी लालमनी। क्यों न रोती, उसका सुहाग जो लौट आया था। वास्तविकता क्या थी यह तो केवल में ही जानता था शर्माजी। मुंह से ढेर सारा खून फेंककर मर चुका था चार पांच घंटे पहले ही गंगाराम। बाबा की दी हुई सिद्धि ने ही उसे जीवित किया था। क्या बतलाऊँ शर्माजी इस घटना ने मेरे मन को पूर्ण रूप से सन्तप्त कर दिया था अब। वैराग्य हो गया था आत्मा को इस नश्वर और दुखमय संसार से। जो अलौकिक और दुर्लभ सिद्धि मुझे प्राप्त थी उसके द्वारा असम्भव से असम्भव कार्य कर सकने में समर्थ था। जगत का भारी कल्याण कर सकता था। लेकिन पहली बात यह थी कि अब प्रकृति के विरूद्ध और प्रकृति के नियमों के प्रतिकूल मैं कुछ भी नहीं करना चाहता था। सुख, दुख, क्लेश, कष्ट, भाव, अभाव सभी कुछ मनुष्य के अपने कर्म फल हैं जो नियति बन कर जीवन में प्रकट होते हैं और उस नियति में विश्रृंखलता क्यों उत्पन्न करूँ मैं। क्यों भोगूं मैं किसी के कर्म का परिणाम। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि घोर वैराग्य के कारण निरपेक्ष और पूर्ण विरक्त हो चुका था मैं संसार के प्रति।

आप जो कुछ कह रहे हैं वह पूर्ण उचित है भारद्वाज जी इसमें सन्देह नहीं।

लगभग चार पांच वर्ष बाद।

अपनी सिद्धि का एक अद्‌भुत चमत्कार देखा मैंने। भगवती महाकाली का दर्शन करने के उद्‌देश्य से कलकत्ता में था उन दिनों मैं। सायंकाल का समय था। माँ का दर्शन कर बाहर निकल आया था और तभी एक लम्बी चमचमाती विदेशी कार आकर मेरे बगल में खड़ी हो गयी।

दरवाजा खुला और काले रंग का सूट बूट पहने टाई लगाये और आंखों पर सोने के फ्रेम का चश्मा चढ़ाये एक लम्बा चौड़ा व्यक्ति बाहर निकला और निकलते ही झुककर मेरा चरण स्पर्श किया उसने। सकपका कर देखा वह व्यक्ति और कोई नहीं गंगाराम था सेठ गंगाराम। उसे जमीन में गड़ा हुआ धन मिला था और वह भी उसी के जीर्णशीर्ण मकान में और उसी धन से गंगाराम ने व्यापार शुरू किया था जो अब तक कलकत्ता तक फैल चुका था। पर्याप्त सुखी जीवन जीते हुए भी एक पल के लिए मुझे विस्मृत न कर पाया था गंगाराम। बहुत दिनों तक मुझे इधर–उधर खोजता रहा वह। उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि अचानक मिल जाऊँगा और वह भी कलकत्ता में ही। मेरे दोनों पैर पकड़ कर काफी देर तक रोता रहा, गंगाराम हिलक–हिलक कर। फिर मुझे ले गया अपनी कोठी पर अपूर्व वैभव विलास देखकर मुझ जैसा विरक्त साधु भी दंग रह गया एकबारगी। अपने सुसज्जित ड्राइंगरूम में बैठाया गंगाराम ने मुझे। समझते देर न लगी मुझे। सब कुछ मेरी सिद्धि का ही परिणाम साकार रूप से था मेरे सामने इसमें सन्देह नहीं। एकाएक मेरी दृष्टि सामने की दीवार पर थम गयी। देखा, वहाँ एक लम्बे–चौड़े कीमती फ्रेम में किसी प्रौढ़ सन्यासिनी महिला का फोटो टंगा हुआ था। सन्यासिनी के चेहरे पर तेज था और उसकी आँखों में थी साधना की चमक। ध्यान से देखने लगा मैं। एकाएक कुछ कौंध–सा गया मेरे मस्तिष्क में। अरे यह तो रोहिणी है। बाबा की महाभैरवी रोहिणी लेकिन गंगाराम के ड्राइंग रूम में कैसे आ गया उसका चित्र? आश्चर्य हुआ मुझे और तभी गंगाराम आ गया वहां। मैंने सहज भाव से पूछा–यह चित्र किसका है गंगाराम?

सिद्धेश्वरी माँ का स्वामीजी! फिर गंगाराम ने जो कथा सुनायी वह कम आश्चर्यजनक नहीं थी। बहुत दिनों तक मेरी खोज में इधर–उधर भटकता रहा था गंगाराम और उसी सिलसिले में पहुँच गया वह पंचमढ़ी और वहाँ भेंट हो गयी मायाविनी के रूप में प्रसिद्ध सिद्धेश्वरी माँ के रूप में रोहिणी से। सिद्धेश्वरी माँ के अलौकिक चमत्कारों को देख कर खूब प्रभावित हुआ गंगाराम। फिर तो भूल ही गया एक प्रकार से मुझे। सिद्धेश्वरी माँ को अपने साथ कलकत्ता ले आया वह। कहने की आवश्यकता नहीं, उसी समय का चित्र टंगा था वहाँ। फिर तो रहा ही

नहीं गया मुझसे। सिद्धेश्वरी माँ से मिलने के लिए न जाने क्यों लालायित हो उठी मेरी आत्मा। कलकत्ता से सीधे पंचमढ़ी पहुँचा मैं। वहाँ पता चला कि सिद्धेश्वरी माँ पंचमढ़ी से काफी दूर एक पहाड़ी गुफा में रहती हैं। खोजने में अधिक समय नहीं लगा। अन्त में मिल ही गयी मुझे उनकी रहस्यमयी गुफा। काफी लम्बी चौड़ी और गहरी गुफा थी वह। कुछ दूर तक तो संकरी थी फिर काफी चौड़ी हो गयी थी। उसी चौड़े स्थान पर मैंने देखा, लम्बी चौड़ी काले पत्थर की बनी भव्य मूर्ति। वह मूर्ति काफी रहस्यमयी लगी मुझे। किसी तांत्रिक देवी का पाषाण रूप था वह। चार हाथ थे देवी के। एक हाथ में त्रिशूल दूसरे हाथ खप्पर, ऊपर के एक हाथ में विशाल खड्ग और दूसरे हाथ में नरमुण्ड। देवी के दोनों पैर शव पर खड़े थे। शव वाहिनी थी वह रहस्यमयी देवी। सामने चौमुखा दीप जल रहा था और जिसके पीले प्रकाश में देवी का स्वरूप अति भयंकर लगा मुझे। वहाँ के नीरव और निस्तब्ध वातावरण में तंत्र की गहन साधना का गन्ध भरा हुआ था और अजीब सी शान्ति बिखरी हुई थी।

और तभी गैरिक वस्त्र धारण किए गले में रूद्राक्ष की माला पहने एक प्रौढ़ गौरांग महिला वहां न जाने किधर से आ गयी। तुरन्त पहचान गया मैं। वह रोहिणी यानी सिद्धेश्वरी माँ थी। उन्हें भी मुझे पहचानने में देर न लगी। निश्चय ही मेरे और मेरी सिद्धियों और चमत्कारों के संबंध में विस्तार में बतला दिया था उस मायाविनी को इसमें सन्देह नहीं। मेरा हाथ थामकर बड़े ही प्रेम से सिद्धेश्वरी माँ अपने साधना कक्ष में ले गयी। बहुत ही सुन्दर था वह साधना कक्ष। बातचीत का सिलसिला चल पड़ा और उसी सिलसिले में सिद्धेश्वरी माँ बोली तुमको दुर्लभ गुरुप्रदत्त सिद्धि प्राप्त है। उसके द्वारा क्या नहीं किया जा सकता। धनोपार्जन किया जा सकता था। मान सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त की जा सकती है। यश कीर्ति प्राप्त की जा सकती है। मठ मन्दिर और आश्रम का निर्माण किया जा सकता है। संसार को चमत्कृतकर अपना अनुयायी भी बनाया जा सकता है। क्या कुछ नहीं किया जा सकता है लेकिन तुम हो कि स्वर्ग में रहकर भी स्वर्ग के सुख आनन्द और ऐश्वर्य को उपलब्ध नहीं हो रहे हो। कैसी विडम्बना है यह भारद्वाज।

सचमुच विडम्बना या मेरा दुर्भाग्य ही है यह। लेकिन करूँ क्या? संसार के प्रति विरक्त और निरपेक्ष हो चुका हूँ मैं। मुझसे यह सब कुछ भी न होगा सिद्धेश्वरी माँ। कुछ भी न होगा। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि इसी दुर्लभ सिद्धि की प्राप्ति हेतु आपने क्या–क्या नहीं किया? उसी के लोभ में बंगाल के उस जमीन्दार परिवार को जिसके पास करोड़ों की सम्पत्ति थी और उस अथाह सम्पत्ति की एकमात्र वारिस आप ही थी, केवल आप–छोड़कर तांत्रिक दीक्षा ली और सन्यासिनी बन गयी। लेकिन उस सिद्धि को अपने हाथ से निकलती देख कर आप अपना आया खो बैठी और अपने गुरु की ही हत्या कर दी। सचमुच कितना जघन्य और अक्षम्य अपराध किया है आपने हे भगवान हे जगदम्बा।

मेरी बात सुनकर एकबारगी स्तब्ध और अवाक् रह गयी सिद्धेश्वरी माँ। लेकिन दूसरे ही क्षण उनके सपाट चेहरे पर एक ऐसा भाव उभर आया जिसे समझ न सका मैं उस समय। निश्चय ही वह ईर्ष्या, द्वेष और घृणा का मिला जुला भाव था, इसमें सन्देह नहीं। थोड़ी देर चुप रहने के बाद कुटिलता से मुस्कराती हुई बोली सिद्धेश्वरी माँ–यदि तुम्हारी उस सिद्धि का बोझ उठाने की इच्छा नहीं है तो उसे दे दो मुझे और चले जाओ हिमालय तपस्या करने के लिए उस विलक्षण मूर्ति की ओर निहारते हुए मैंने धीरे से कहा–हाँ! मैं भी अब यही चाहता हूँ, लेकिन वह सिद्धि मुझसे आपको कैसे मिलेगी? एकाएक यह सुनकर सिद्धेश्वरी माँ का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा गुलाब के फूल की तरह हिलकर बोली वह–इसकी चिन्ता तुम करो। सारी व्यवस्था हो जायेगी। तुमको दीपावली तक यहां रहना होगा। सिद्धेश्वरी माँ की यह बात काफी रहस्यमयी लगी मुझे। काश! उस समय यदि मैं सारी व्यवस्था का अर्थ समझ गया होता तो शर्माजी इस दुर्गति को न प्राप्त होता। लेकिन जो होना था वह होकर ही रहा समझा नहीं। साफ–साफ बतलाइये क्या हुआ फिर....मैंने थोड़ा व्यग्र होकर पूछा। मेरी बात सुनकर भारद्वाज ने एक बार खिड़की के बाहर फैले अन्धकार की ओर देखा और फिर बोले इसके लिए तंत्र में जो नियम है। उसी नियम के अनुसार दीपावली की रात में उसी रहस्यमयी देवी की मूर्ति के सामने बलि दे दी सिद्धेश्वरी माँ ने।

आपकी? चौंक पड़ा मैं एकबारगी।

हाँ भाई, हाँ मेरी ही बलि। धोखा हुआ था मेरे साथ मेरी बलि देकर वह सिद्धि प्राप्त कर लेना चाहती थी वह मायाविनी। यही एक रास्ता था उसके लिए।

कैसे क्या हुआ बतलायेंगे आप मुझे?

पहले मुझे खूब शराब पिलायी गयी। फिर उस रहस्यमयी देवी की पूजा करने के लिए कहा गया और उसके बाद सिर झुकाकर देवी को प्रणाम करने का आदेश दिया गया। लेकिन जैसे ही मैंने दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करने की मुद्रा में सिर झुकाया, उसी समय खड्ग से एक झटके से मेरा सिर धड़ से अलग कर दिया गया। कुछ क्षणों तक मेरी आन्तरिक चेतना बनी रही और उसी अवस्था में अपना पूरा शरीर हिलने का अनुभव हुआ मुझे। फिर क्या हुआ मैं नहीं जानता। शायद अब शरीर से अलग हो गया था मेरा पूरा अस्तित्व। न जाने कब और कैसे अपने आपका और अपने अस्तित्व का बोध मुझे हुआ। बतला नहीं सकता लेकिन बोध जब हुआ तो देखा मेरे शरीर का नर कंकाल सिद्धेश्वरी माँ के साधना कक्ष में दीवार के सहारे टंगा हुआ हिल रहा था। ग्लानि और पश्चाताप से भर उठी मेरी आत्मा। एक अपूर्व विलक्षण महत्वपूर्ण और मानवेतर शक्ति सम्पन्न तांत्रिक सिद्धि एक परम स्वार्थी परम अज्ञानी और एक महामूर्ख के हाथ में चली गयी थी। कल्याण की बात तो अलग अपने स्वार्थ के वशीभूत गुरु हत्यारिणी अकल्याण ही करेगी वह। क्या-क्या करेगी इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। बाद में मुझे अनुभव हुआ कि प्रेत योनि को उपलब्ध हो गया हूँ मैं। क्या करूँ कहाँ जाऊ मैं अब? अशान्त इधर-उधर भटकता रहा और अन्त में इसी स्थान पर स्थायी रूप से रहने लगा मैं। इतनी कथा सुनाकर चुप हो गये भारद्वाज।

सवेरा होने वाला था। बारिश भी बन्द हो चुकी थी लेकिन आकाश में बादल अभी भी घिरे हुए थे।

आपकी यह रोमाञ्चकारी और विलक्षण तंत्र कथा सुनकर मेरी आत्मा सन्न रह गयी है। दुख से भर उठा है मेरा मन-भारद्वाज जी, बोलिए कुछ कहिए! क्या कर सकता हूँ आपके लिए? मुझसे जो भी होगा वह मैं करूँगा आपके लिए बतलाइये आप...

सच में आप करेंगे मेरी सहायता? झुके हुए सिर को उठाकर बोले भारद्वाज।

आप बतलाइये तो पहले।"

सिद्धेश्वरी माँ की गुफा में लटके हुए मेरे नरकंकाल को ला सकते हैं आप?

यह सुनकर थोड़ा व्यग्र हो उठा मैं। फिर बोला–यदि इस कार्य में सफल हो गया तो.....।"

यदि आप के अधिकार में नरकंकाल हो जाय तो उसे आप गंगा में प्रवाहित कर दीजियेगा।

क्या लाभ होगा आपको?

लाभ! पहला लाभ तो यह होगा कि मैं प्रेतयोनि से मुक्त हो जाऊँगा समझ में आया। दूसरा लाभ यह होगा कि उस गुरुघातिनी के हाथ से निकल जायेगी वह सिद्धि और मुझे पुनः प्राप्त हो जायेगी। तीसरा महत्वपूर्ण लाभ यह होगा बन्धु जिसे सुनकर प्रसन्न हो उठेंगे आप।

क्या?

मेरा पुनर्जन्म शीघ्र होगा और जन्म लूंगा तो मेरे साथ ही वह परम सिद्धि भी जन्म लेगी। मैंने देखा, अन्तिम शब्द के साथ ही भारद्वाज का पार्थिव अस्तित्व धूम्राकृति में परिवर्तित होकर एकाएक मेरे सामने से गायब हो गया। अब इसके बाद की कथा काफी लम्बी है। स्थानाभाव के कारण उसका संक्षिप्तीकरण करना पड़ेगा मुझे। सिद्धेश्वरी माँ की रहस्यमयी गुफा को खोजने में काफी परेशानियों का सामना करना पड़ा। पूरे दिन भटकने के बाद मिली गुफा। पंचमढ़ी के जन पद से बहुत दूर थी। कोई कल्पना भी नहीं कर सकता उस गुफा के अस्तित्व की। चारों ओर घना जंगल और जंगल के पार पहाड़ों का सिलसिला सूरज ढलान पर था। हवा तेज हो चली थी। ऊँचे घने पेड़ों से झर कर सूखे पत्ते कभी–कभी बिखर जाते जमीन पर। न जाने कितनी पगडण्डियों को पार करता हुआ, गुफा तक आ गया था मैं। सूरज की पीली धूप पेड़ों के सिरे पर झिलमिला रही थी। तीसरे पहर की उदास परछाइयाँ बिखर गयी थी पहाड़ों पर। गुफा का द्वार थोड़ा छोटा था और उसे बांस की खपच्चियों से बने टाट से ढंक दिया गया था। धीरे से उस टाट को

हटाकर गुफा के भीतर घुस गया मैं। भारद्वाज ने जैसा बतलाया था वैसा ही था गुफा का अन्तरंग कक्ष। अब मैं उस रहस्यमयी देवी के सामने खड़ा था जिसकी चर्चा भारद्वाज ने की थी। वास्तव में बड़ी ही अद्‌भुत और रहस्यमयी मूर्ति थी वह, इसमें सन्देह नहीं। निश्चय ही पंचमुण्डी आसन पर प्राण प्रतिष्ठा की गयी होगी उस विलक्षण मूर्ति की। मूर्ति के बगल में एक बड़ा सा भयंकर खड्ग खड़ा था। जिसमें खून के ताजे धब्बे थे। सामने जमीन पर भी ताजा रक्त फैला हुआ था जो अब सूख कर काला पड़ता जा रहा था। निश्चय ही कुछ समय पहले किसी पशु की बलि दी गयी होगी–ऐसा लगा मुझे। न जाने कैसे मेरा सिर घूम गया बायीं ओर। रोमाञ्चित हो उठा मैं एकबारगी। देवी से थोड़ा हटकर दीवार पर एक नरकंकाल झूल रहा था वहां। भारद्वाज का ही नरकंकाल था वह। समझते देर न लगी मुझे। फिर मेरी दृष्टि खोजने लगी सिद्धेश्वरी माँ को लेकिन कहीं दिखलायीं नहीं दीं वह। हाँ उनका साधना कक्ष अवश्य देखने को मिला जो अपने आपमें अत्यन्त रहस्यमय था। भारद्वाज की आत्मा को प्रेतयोनि से मुक्त होना था, इसलिए ईश्वर ने मुझे अवसर दिया था। यदि सिद्धेश्वरी माँ होती तो नरकंकाल लाना कठिन ही नहीं असम्भव था मेरे लिए। जल्दी–जल्दी नरकंकाल के हाथ पैर की हड्डियाँ अलग की और अंगों की भी हड्डियाँ तोड़ डाली मैंने और फिर एक चादर में कसकर बांधा गठरी की तरह उन सबको। कैसे उस अस्थि पंजर को काशी लाया छिपाकर और कैसे गंगा में प्रवाहित किया मैंने यह एक अलग कथा है। धीरे–धीरे समय गुजरता गया और उसी के साथ–साथ मैं भूलता गया सारी बांतों को। लगभग चालीस साल का समय गुजर गया और फिर एक दिन। अचानक एक ऊँची कदकाठी का गौरवर्ण सन्यासी मेरा नाम पता पूछते हुए आकर मेरे सामने खड़ा हो गया तन कर। बड़ा ही सुन्दर और आकर्षक व्यक्तित्व था उस सन्यासी का। आयु रही होगी तीस पैतीस के बीच।

कौन है आप? यह प्रश्न करने के पहले ही वह सन्यासी झुका और मेरे दोनों पैरों को थामकर रोने लगा फफक–फफक कर। उसके आँसुओं से भींग उठा मेरा पैर। कहने की आवश्यकता नहीं, वह थे भारद्वाज महोदय। चित्त शांत होने पर आंसू पोछते हुए बोले, आप न होते

तो कैसे प्राप्त होती प्रेतयोनि से मुक्ति मुझे और फिर कैसे जन्म लेती मेरी आत्मा एक उच्च ब्राह्मण कुल में। लगभग पन्द्रह सोलह वर्ष की अवस्था थी मेरी उस समय। एक रात स्वप्न में एक महात्मा दिखलायी दिये। तुरन्त पहचान गया मैं। वे महात्मा और कोई नहीं, बाबा थे वह। उसी समय पिछले जीवन की सारी कथाओं की स्मृतियाँ जागृत हो उठी मेरे मस्तिष्क में। फिर क्या था एक पल भी रुका नहीं गया मुझसे। न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर हरिद्वार चला गया और स्वामी सत्यानन्द से सन्यास दीक्षा ली मैंने। निश्चय ही इसके पीछे बाबा की ही प्रेरणा रही होगी इसमें सन्देह नहीं। पिछले जन्म की सारी स्मृतियाँ अवश्य ही जागृत हो गयी थी, लेकिन न जाने क्यों और किस कारण से, आपकी भूमिका क्या रही हैं मेरे लिए पिछले जन्म में, यह जान नहीं सका था मैं। ऐसा लगा कि आपसे संबंधित स्मृतियों को किसी ने जानबूझ कर पोंछ दिया हो मानस पटल से। उस समय भला क्या जानता था कि आप ही मेरे पिछले जन्म के त्राणकर्ता हैं और हैं कल्याणकर्ता। आपके ही द्वारा प्रेतयोनि से मुझे मुक्ति मिली थी और प्राप्त हुआ था मुझे पुनर्जन्म।

स्वामी सत्यानन्द का एक आश्रम देवप्रयाग में भी था। वहां रह कर योगाभ्यास किया मैंने पूरे सोलह वर्ष। स्वामी सत्यानन्द ने कहा कि सविकल्प समाधि को उपलब्ध होने पर योगी को उन तिमिराच्छन्न सत्यों का ज्ञान होता है जो इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष नहीं होता। एक दिन अपने आप सविकल्प समाधि को उपलब्ध हो गया मैं। एक दिन उसी अवस्था में मैंने देखा सिद्धेश्वरी माँ को पागलों की तरह भिक्षा मांगते हुए काशी के घाटों पर। बड़ा ही क्लेश हुआ उस गुरुघातिनी दुष्टा की स्थिति देखकर। सचमुच बहुत ही दयनीय और शोचनीय स्थिति थी उस भ्रष्ट भैरवी की और फिर जिसकी कभी कल्पना तक नहीं की थी, उससे परिचित हो गया मैं एक दिन समाधि की अवस्था में और वह 'सत्य' आप थे। फिर तो विह्वल हो उठा मैं एकबारगी। मेरे पिछले जन्म में आपकी क्या भूमिका थी यह जानकर विह्वल होना स्वाभाविक था मेरे लिए फिर रहा नहीं गया मुझसे। रहा भी कैसे जाता। आपकी खोज में तीन बार आया मैं काशी। बहुत खोजा लेकिन आपका दर्शन नहीं हुआ दुर्भाग्यवश। अन्त में हार थक कर स्वामी सत्यानन्दजी से आपकी चर्चा की और अन्त

में सारी कथा सुनायी उन्हें। स्वामीजी सब सुने और सुनने के बाद बोले तुम्हारें उद्धारकर्ता से मैं अच्छी तरह परिचित हूँ। जब वे हिमालय यात्रा पर थे, उसी समय मेरी उनसे भेंट हुई थी कैलाश में। अब जाओगे तो दर्शन उपलब्ध हो जायेगा उनका। यह मेरी चौथी यात्रा है काशी की। आपका दर्शन पाकर कृत्य–कृत्य हो गयी मेरी आत्मा। धन्य हो गया मेरा सन्यासी जीवन। हाँ मैंने आपको अपना गुरु प्रदत्त नाम नहीं बतलाया मेरा नाम है कृष्ण चैतन्य।

सारी कथा सुन लेने के बाद मेरे यह पूछने पर की वह तांत्रिक सिद्धि कहां गयी जिसके कारण इतना उपद्रव हुआ था ? इस संबंध में कृष्ण चैतन्य ने जो कुछ बतलाया उसके अनुसार वह परम तांत्रिक सिद्धि इस जन्म में भी उसके पास थी। प्रेतयोनि से मुक्त होने के बाद और पुनर्जन्म लेने के पहले ऋचा प्रकट हुई थी उसके सामने। उसने कहा कि अगले जन्म में भी उसके साथ तब तक रहेगी जब तक वह अपनी सिद्धि को दे नहीं देगा किसी योग्य साधक व्यक्ति को। सिद्धि द्वारा कोई भौतिक कार्य सम्पन्न करने के लिए ऋचा का आवाहन करना पड़ता है। वह तंत्र के "ह्रीं" बीजाक्षर की कृत्या है। तंत्र के प्रत्येक बीजाक्षरों अपनी कृत्या होती है। कृत्या का आवाह्न न होने पर बीजाक्षर मंत्र काम नहीं करते असफल हो जाते हैं। (इस संबंध में शीघ्र प्रकाश्य आवाह्न पढ़े) कुछ विशेष कृत्याएं वासना के वशीभूत होती हैं। साधक के संसर्ग के लिए सदैव रहती है व्याकुल। वे ऐसा वातावरण और ऐसी परिस्थिति का निर्माण कर देती है कि साधक ब्रह्मचर्य की दृष्टि से भ्रष्ट हो ही जाता है। इसलिए साधक को अपनी इच्छा शक्ति और संकल्प शक्ति को सदैव प्रबल रखना चाहिए। वैसे ऋचा ने इस जन्म में कई बार उसके सन्यास व्रत को भंग करने के लिए प्रयास किया, लेकिन असफल ही रही अपने उद्देश्य में। वैसे भी वह उस अमानवीय तांत्रिक सिद्धि का उपयोग किसी भी जागतिक कार्य के निमित्त नहीं करना चाहता। पहले से ही उसके मन में संसार समाज और परिवार के प्रति घोर विरक्ति थी। इस जन्म में सन्यास ले लेने पर गुरु का जो उस पर आध्यात्मिक प्रभाव पड़ा उसने उसके वैराग्य को और अधिक गहरा कर दिया। मानव शरीर कर्म प्रधान हैं। कर्म अच्छा हो या बुरा, उसका फल तो मनुष्य को कभी न

कभी और किसी न किसी रूप में भोगना ही हैं इसमें सन्देह नहीं। यह प्रकृति का नियम है। कोई भी साधक, योगी हो या तांत्रिक प्रकृति के नियम को कभी भी नहीं तोड़ेगा भले ही किसी की दुख कष्ट वेदना आदि को स्वयं लेकर उन्हें भोग लेगा अथवा उन्हें भविष्य के लिए टाल देगा, उसकी अपनी इच्छा। लेकिन नियति के विरूद्ध कभी नहीं जायेगा वह।

कहने की आवश्यकता नहीं कृष्ण चैतन्य के विचार अपने स्थान पर पूर्ण रूप से सत्य थे, इसमें सन्देह नहीं। सब कुछ सुन लेने के बाद जब मैंने यह पूछा कि क्या उस ऋचा से साक्षात्कार करा सकते हैं आप?

हाँ! हाँ! क्यों नहीं प्रसन्न चित्त बोले कृष्णचैतन्य।

क्या इस समय सम्भव है? मेरे इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया कृष्ण चैतन्य ने। थोड़ी देर मौन साधे रहे और फिर उठकर मेरे कमरे के सारे दरवाजे और खिड़कियाँ बन्द कर दिया उन्होंने और ढेर सारी अगरबत्तियाँ मेरे सामने जला दी। देखते ही देखते मेरा कमरा सुगन्धित धुएँ से भर उठा एकबारगी। थोड़ा मुझसे हटकर पद्मासन की मुद्रा में बैठ गये ध्यानस्थ कृष्णचैतन्य। कोई मंत्र बुदबुदा रहे थे शायद वह। अचानक मेरे कमरे का वातावरण बोझिल होने लगा और उसी के साथ बोझिल होने लगा मेरा मन भी। ध्यान से देखा कमरे का सारा धुआं मेरे सामने धीरे–धीरे सिमटने लगा था अब और थोड़ी ही देर के बाद एक आकृति में परिवर्तित हो गया वह गाढ़ा धुआँ। बाद में वह रहस्यमयी आकृति बिल्कुल स्पष्ट हो गयी और मैने देखा वह आकृति एक श्यामवर्णा षोडशी बाला की थी। पहचानते देर न लगी मुझे। ऋचा की थी वह आकृति। फिर तो सब कुछ स्पष्ट हो गया। आवाहन किया था कृष्णचैतन्य ने कृत्या का। बड़ा ही मोहक आकर्षक और सुन्दर रूप था उस देवकन्या जैसी यक्षलोक की षोडशी का। मेरी ओर अपलक देखती हुई मुस्करा रही थी मन्द मन्द और मैं न जाने कब तक अपलक निहारता रहा उस लावण्यमयी षोडशी को।

•

रहस्य नौ

और जब माँ भगवती प्रकट हुई

अपने आपमें एक अत्यन्त रहस्यमय और विलक्षण कथा प्रसंग

सन् 1965 ई0 काशी का लालीघाट।

शुरू से ही मेरे चिन्तन–मनन का स्थान रहा है लालीघाट। बगल के हरिश्चन्द्र घाट के महाश्मशान में चट्–चट् कर जलती हुई चिताएँ। गंगा की अविरल स्वच्छ धारा, निरभ्र आकाश, पंख फैलाए उड़ते हुए पक्षी। दूर क्षितिज पर बादलो की रक्ताभ लम्बी रेखाएँ। घण्टे घड़ियालों की मधुर ध्वनियाँ। मन्दिरों से निकलने वाले सुवासित गन्ध। वातावरण में फैली हुई नीरवता एक आध्यात्मिक सृष्टि करती थी मेरे मन मस्तिष्क में और तब डूब जाता था मैं चिन्तन मनन के अगाध सागर में।

पिछले बीस–पच्चीस दिनों से नित्य काला मटमैला और कई जगह से फटा पुराना कम्बल ओढ़े सिर झुकाए मौन साधे एक अति वृध्द व्यक्ति को घाट की टूटी–फूटी और धूल से अटी सीढ़ियों पर बैठा हुआ देखता था मैं। पैरों पर मैल की परतें जमी थी। हाथ भी गन्दे थे। पीले पड़ गये थे हाथ पैर के नाखून। मटमैली फटी पुरानी धोती। आपस में उलझे हुए सिर के बड़े–बड़े बाल और वैसी ही दाढ़ी भी। एक बार अचानक उस रहस्यमय व्यक्ति का चेहरा देखने को मिल गया। लालिमा लिए तेजस्वी चेहरा और बड़ी–बड़ी रक्ताभ आंखे देखकर स्तब्ध रह गया था मैं एकबारगी। वह कोई दिव्य साधक पुरुष था, इसमें सन्देह नहीं।

फिर भी वह कौन है? यह इच्छा जागृत हुई मुझमें एक दिन। थोड़ा सा सरक कर उसके निकट चला गया और धीरे से पूछा—बाबा! कौन है आप? कहां से आये हैं आप?

मेरा प्रश्न सुनकर उस रहस्यमय वृद्ध ने धीरे से कम्बल हटाया और सिर घुमाकर मेरी ओर देखा अपनी धधकती हुई लाल—लाल आँखों से। हे भगवान कैसी थी वे आँखे, गहरी तमाम रहस्यों से भरी और आग के शोले उगलती हुई लेकिन साथ ही निर्विकार और भावहीन। वैसी आँखें जीवन में कभी नहीं देखी थी मैंने कभी नहीं। किसी अज्ञात भाव से प्रकम्पित हो उठा मेरा मन प्राण और रोमाञ्चित हो आया मेरा पूरा शरीर। कुछ देर तक अपलक देखने के बाद लड़खड़ाते और भर्राये स्वर में बोला वह वृद्ध—'क्या करोगे मेरे विषय में जानकर। बस समझ लो एक असफल असहाय और अर्थहीन देवी भक्त हूँ मैं। वृद्ध की वाणी में दर्द था कोई गहरा दर्द और कोई गहरी वेदना। थोड़ा रूककर आकाश की ओर शून्य में न जाने क्या खोजता हुआ वृद्ध आगे बोला—कहीं कोई लगाव नहीं है। मृत्यु की प्रतीक्षा में शरीर का बोझ ढो रहा हूँ मैं। कब किस समय शरीर छूट जाय और छूटकर कब सीढ़ियों पर लुढ़कते हुए अपने आप गंगा में विलीन हो जाय और यही सोच कर यहां आता हूँ और बैठता हूँ नित्य.....हे माँ! कल्याण कर। लम्बी सांस लेकर अन्त में कहा उस वृद्ध ने।

सहानुभूति से भर उठा मेरा मन। विह्लल हो उठी मेरी आत्मा।

पास ही एक लड़का खड़ा था। शायद मल्लाह था वह। नाम था कल्लू। कल्लू ने बतलाया कि बाबा घाट के नीचे बनी मढ़िया में रहते हैं। दिन भर मढ़िया में पड़े रहते है। कब सोते है कब जागते हैं और क्या खाते पीते हैं कोई नहीं जानता। कभी किसी को कुछ देते हुए भी किसी ने नहीं देखा है आज तक। रात के सन्नाटे में कभी कदा माँ! माँ! कहकर चिल्लाते हुए अवश्य सुना है आसपास के लोगों ने।

कुछ सोचते हुए कल्लू आगे बोला—एक रात जब मैं अपनी नाव में सो रहा था। अचानक न जाने कैसे मेरी नींद उचट गयी। आँखें मलते हुए इधर—उधर देखने लगा। उस समय मढ़िया में हल्की—हल्की रोशनी

हो रही थी आश्चर्य हुआ मुझे। इसके पहले तो हमेशा रात के अन्धेरे में डूबी रहती थी मढ़िया। आज क्या बात है?

समझ में नहीं आ रहा था। थोड़ा नाव आगे बढ़ाकर देखा तो देखता ही रह गया बाबूजी। क्या देखा, बोल– मैंने कहा।"

इधर–उधर देख कर कल्लू बोला–उस हल्की पीली रोशनी में एक छोटी सी लड़की अपने हाथ से रोटी खिला रही थी बाबा को। वह लड़की बहुत सुन्दर थी। उमर ज्यादा नहीं थी। बस रही होगी यही दस बारह साल की, मगर पीले रंग की रेशमी साड़ी पहने थी वह।

फिर क्या हुआ? व्यग्र हो उठा मैं एकबारगी। हुआ क्या बाबूजी फक् से रोशनी बुझ गयी थोड़ी ही देर में और वह लड़की न जाने कहां गायब हो गयी अंधेरे में। इतना कहकर चुप हो गया कल्लू।"

यह वृद्ध कोई साधारण व्यक्ति नहीं है, यह समझते देर न लगी मुझे। निश्चय ही यह माँ भगवती का अनन्य साधक है, इसमें सन्देह नहीं। मेरा मन न जाने क्यों पहले से अधिक विगलित हो उठा और हो उठा आद्र भी। धीरे से करूण स्वर में बोला–बाबा आपको पिछले कई दिनों से यहां बैठते हुए देख रहा हूँ मैं। मैं भी माँ का एक साधारण सा साधक हूँ और यही कारण है कि आपकी पीड़ा क्या है आपकी वेदना क्या है और आपकी व्यथा क्या है उसे समझ रही है मेरी आत्मा। आपकी क्या सेवा करूँ क्या सहायता करूँ और क्या सहयोग दूँ अपना समझ कर बतलाइये मुझे बाबा। जरा सा भी संकोच नहीं करेंगे आप।

बाबा कुछ बोले नहीं। पहले की ही तरह सिर झुकाए और मौन साधे बैठे रहे चुपचाप। थोड़ी देर बाद उठे और धीरे–धीरे सीढ़ियाँ उतरकर मढ़िया के भीतर चले गये वह। जमीन पर पुआल रखा था। उसी पर अपना फटा कम्बल बिछाकर लेट गये। शायद सोयेंगे–यह सोचकर वापस लौटने लगा और लौटते समय कल्लू को दस का नोट थमाते हुए बाबा का बराबर खयाल रखने के लिए कहा। उस दिन पूरी रात सो न सका मैं। बार–बार तन्द्रिल अवस्था में बाबा का विषण्ण भावहीन मनस्वी चेहरा घूम जाता था मानस पटल पर और बार–बार यह प्रश्न भी उठता था मन में आखिर कौन है यह वृद्ध व्यक्ति? साधक है;

सिद्ध है, महात्मा है या फिर कोई सिद्ध योगी....वह बालिका कौन थी? क्या रोज रोटी खिलाने आती है वह, जितना ये सब सोचता उतना ही गहराता जाता रहस्य।

सवेरे से ही बरसने लगा पानी। पूरे दिन बरसता ही रहा। दूसरे दिन भी घने बादलों से अटा रहा आकाश, हल्की–हल्की झड़ी लगी रही बारिश की। मन नहीं माना माँ दुर्गा का दर्शन करने चला गया पैदल ही। छाता था मगर भींगने से भला कौन बचा सकता था। लौटते समय फिसल गया पैर, गिर पड़ा। कमर में गहरा दर्द होने लगा। किसी तरह माँ! माँ! पुकारते हुए घर पहुँचा। पहले तो पत्नी की डांट खायी, दो चार दिन घर में बैठा नहीं जाता। घूमने के अलावा और कोई काम ही नहीं है आपको थोड़ा सा मौका मिला कि चल पड़े दर्शन के बहाने.......।

मुंह बाये सुनता रहा फटकार। गीला कपड़ा उतार कर बैठ गया बिस्तर पर। दर्द बढ़ गया था अब, फिर प्रवचन शुरू हो गया–दर्द हो रहा है न, होगा ही लाओ बाम लगा दूँ। बाम मलने के बाद गरम दूध में हल्दी डालकर ले आयी पत्नी। प्रेमपूर्वक सिर सहलाते हुए धीरे से बोली–पी लो आराम मिलेगा। मेरी डांट फटकार का बुरा मत माना करो। आप तो जानते ही हैं कि आपको कुछ हो जाता है तो मेरा कलेजा बैठने लगता है कुछ फिर सूझता ही नहीं। न जाने क्या–क्या बोल जाती हूँ। आप नहीं समझते कि मैं आपको कितना.....कितना......।

बस, बस कितना के आगे तुम क्या कहना चाहती हो, क्या बोलना चाहती हो, वह जानता हूँ मैं।

क्या ? बतलाइये।

प्रेम यही न! अच्छा, अब चाय बनाकर ला।

तुम्हारे हाथ की बनी चाय बाकी दर्द को भी दूर कर देगी।

चाय पीते समय बाबा के विषय में पत्नी को बतलाया मैंने। सुनकर बोली मैं भी चलूँगी दर्शन करने बाबा का। निश्चय ही वे कोई महात्मा होंगे मेरी आत्मा कह रही है। कब जायेंगे आप? मैं कोई उत्तर दूँ कि उसी समय कल्लू आ गया और आते ही बोला–आपकी पत्नी का नाम किरण शर्मा है न।

हाँ! क्यों, क्या बात है कल्लू ?

कल्लू ने मेरी पत्नी की ओर देखते हुए कहा–भाभी जी को साथ लेकर बुलाया है बाबा ने।

यह सुनकर आश्चर्य हुआ मुझे। पत्नी का नाम कैसे जानते हैं बाबा। किसलिए बुलाया है पत्नी को। कुछ समझ में नहीं आ रहा था। सम्भव है कोई बात हो।

सायंकाल पत्नी को लेकर गया मैं बाबा से मिलने। बूँदाबांदी के कारण मढ़िया में लेटे हुए थे बाबा। हम दोनों को देखकर उठ गये वह। भाव विह्वल हो उठी मेरी पत्नी। चरणस्पर्श कर देखने लगी मूकवत् बाबा की ओर। थोड़ा हैरान हुआ मैं कभी बाबा को देखता तो कभी पत्नी को।

सिर झुकाये बैठे थे बाबा कुछ देर तक और फिर उसी अवस्था में किरण से बोले– 'माँ' जब कभी तेरा बेटा किसी बात को लेकर–जिसे आप नहीं चाहती–मचलता है, जिद करता है और हठ पर उतर आता है तो क्या करती हो तुम उस समय? सकुचाती हुई किरण ने उत्तर दिया–बहुत झुंझलाती हूँ बाबा! गुस्सा भी आ जाता है। कभी–कभी मार भी देती हूँ बेटे को।

फिर क्या होता है? बाबा थोड़ा मुस्कराये।

मन को बड़ा कष्ट होता है बाबा! पछताने लगती हूँ फिर क्यों मारा बेटे को। रहा नही जाता माँ का हृदय है न। गोद में ले लेती हूँ बाबा उसे और सजल हो उठती है आँखे फिर....।

यह सुनकर कुछ बोले नहीं बाबा। बस एकटक देखने लगे मेरी ओर। इस बीच न जाने क्या–क्या सोच गया मैं। यह सब कहने सुनने का तात्पर्य क्या था?

काफी देर बाद सिर उठाकर मेरी ओर देखते हुए बाबा कहने लगे–समझ में आया कुछ। माँ महामाया की लीला विचित्र है। वह आपको जो देना चाहती है वह आप लेना नहीं चाहते और जो आप लेना चाहते हैं, वह मां देना नहीं चाहती आपको। जो कुछ आपके लिए आवश्यक है वही आपको देगी माँ! मांग कर तो देखे, कैसे नहीं देती वह। अज्ञानतावश हठ करते हैं, ज़िद करते हैं और फिर हाथ–पैर

पटकते हुए मचलते हैं। दोष देते है मां को। यह देखकर माँ परेशान होती है। झुंझलाती है, क्रोध आने पर किसी न किसी रूप में दण्ड भी दे देती है। जैसे आप गये थे माँ का दर्शन करने के लिए और गिर गये फिसलकर। कमर में चोट लगी दर्द होने लगा। उसके बाद क्या हुआ आप स्वयं जानते हैं।

यह सब सुनकर स्तब्ध और अवाक् रह गया मैं। मुंह बाये देखने लगा बाबा को। किस प्रकार माँ महामाया के कौतुक को और उनकी रहस्यमयी लीला को समझाया था बाबा ने। हिल उठी मेरी आत्मा एकबारगी। सिर घुमाकर पत्नी की ओर देखा, वह आश्चर्यचकित थी। अन्तर्यामी है बाबा, निश्चय ही कोई उच्चकोटि के साधक हैं वह।

धीरे–धीरे बाबा का पूरा रहस्य जान गया मैं। सचमुच बाबा की जीवन कथा विलक्षण थी और थी अति रहस्यमय। बाबा का नाम था पं. शम्भूरत्न। पं. शम्भूरत्न माँ दुर्गा के परम भक्त और साधक थे। उनकी जीवन कथा यहां से शुरू करता हूँ मैं जो अपने आपमें माँ दुर्गा की उपासना साधना का एक ज्वलन्त उदाहरण है।

जीवनलाल गौतम और उनकी पत्नी श्रीमती चन्द्रावती गौतम को काफी पूजापाठ मान–मनौतियों के बाद एक पुत्र रत्न प्राप्त हुआ। जिसके मस्तक पर त्रिशूल का स्पष्ट चिन्ह् था। माता–पिता ने उस शिशु का नाम रखा गौतम अम्बिकाचरण। अम्बिकाचरण अध्यात्म प्राण थे। बाल्यावस्था में ही संसार से विरक्त हो गये थे वह। पूजा पाठ साधना उपासना आदि में ही अधिक समय व्यतीत होता था उनका। गृहस्थाश्रम के चक्कर में पड़ना नहीं चाहते थे वह, इसलिए चित्रकूट के अनसूइया आश्रम के परमहंसी बाबा से दीक्षा ले ली उन्होंने। गुरु की अहैतुकी कृपा से वाक्सिद्धि प्राप्त हुई उनको। वे जो बोल देते थे और जो कह देते थे, वह तत्काल प्रतिफलित हो जाता था।

1917 ई0 में अम्बिकाचरण चित्रकूट से जबलपुर चले आये और अपनी सिद्धियों के द्वारा जनकल्याण करने लगे। फिर उस साधक को प्रसिद्ध होते देर न लगी। उस समय जबलपुर का इतना विस्तार नहीं हुआ था। उस समय कछपुरा का महाश्मशान काफी विस्तृत और अत्यन्त

भयानक था। इतना भयानक था कि दिन में भी उधर जाने से लोग डरते थे। श्मशान के बगल में एक काफी पुराना वटवृक्ष था। जिसके जड़ों में पचासों बांबियाँ थी सापों की। कहा नहीं जा सकता कब और किस काल में काले पत्थर की बनी भगवती की एक विलक्षण मूर्ति अचानक पाताल फोड़कर प्रकट हुई वहां मां महामाया की। वह पाषाण प्रतिमा अत्यन्त सजीव और जाग्रत थी इसमें सन्देह नही। अम्बिकाचरण ने उसी स्थान पर एक मढ़िया का निर्माण कराया और उसी में रहकर भगवती की उसी मूर्ति की पूजा उपासना करने लगे। फिर तो भगवती के दर्शन करने के निमित्त वहां श्रद्धालुओं की भीड़ लगते देर न लगी। लोग माँ का दर्शन करते और अम्बिकाचरण का आशीर्वाद लेते और लौट जाते प्रसन्नचित्त। जैसा कि मैंने कहा, काफी लम्बा चौड़ा श्मशान था वह। हर समय चट्चट् कर चिताएँ जलती रहती थीं वहां। कभी–कभी प्रत्यक्ष घूमती और टहलती हुई दिखलायी दे जाती थी श्मशान में प्रेतात्माएँ। श्मशान के किनारे से रेल की लाइन गयी हुई थी। ट्रेन में बैठे लोग आँखे फाड़कर श्मशान को देखते और फिर मढ़ियाँ को देखते जहां अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए लोगों की भीड़ लगी रहती और जहां के आध्यात्मिक वातावरण में सदैव गूंजा करता था जय माँ, जय भवानी और जय जगदम्बे का मधुर कोमल स्वर।

होलिका दहन हो चुकी थी। चैत्र का महीना था। बासन्ती बयार में झूम–झूम उठते थे आमो के वृक्ष। एक दिन दोपहर का समय था। दर्शनार्थियों की भीड़ लगी थी। अपने साधना कक्ष में लीन थे अम्बिकाचरण और तभी मढ़िया के सामने एक तांगा आ कर रूका। शुभचिन्तक प्रेस के मैनेजर उमाशंकर अग्निहोत्री एक अन्य व्यक्ति के साथ उतरे। उमाशंकर अग्निहोत्री भगवती भक्त थे। प्रत्येक मंगलवार को आते थे और माँ की पूजा अर्चना किया करते थे। अग्निहोत्री जी सरल और मदु स्वभाव के प्रौढ़ व्यक्ति थे। उनसे काफी स्नेह रखते थे अम्बिकाचरण।

तांगे के रूकने की आवाज सुनकर अपने आसन से उठकर मढ़िया के बाहर आ गये अम्बिकाचरण। भक्ति भाव से नतमस्तक होकर उनको प्रणाम किया अग्निहोत्री जी ने और अपने साथ आये व्यक्ति का परिचय दिया–महाराज ये पण्डित शम्भूरत्न जी हैं। काशी से चलकर आपका

दर्शन करने आये हैं। अम्बिकाचरण ने स्थिर दृष्टि से पण्डित शम्भूरत्न को देखा। वे लगभग पचास वर्ष के सुदर्शन पुरुष थे। आयु का प्रभाव उन पर नहीं पड़ा था। गौरवर्ण, ऊँचा ललाट, लम्बे कान, लम्बी नासिका बड़े–बड़े भौराले नेत्र, घने घुंघराले बाल, शरीर पर गैरिक वस्त्र, पैर में खड़ाऊं, हाथ में एक झोला बस।

पण्डित शम्भूरत्न का दमकता हुआ तेजस्वी मुखमण्डल देखकर अम्बिकाचरण क्षणभर के लिए स्तब्ध रह गये थे। फिर वे हाथ जोड़कर बोले–पधारिए महाराज! माँ भगवती के दरबार में आपका स्वागत है।

पण्डित शम्भूरत्न हाथ जोड़कर मुस्कराये, वटवृक्ष के नीचे बिछे तख्त पर बैठते हुए अग्निहोत्री ने कहा–शम्भूरत्न जी एक भारी संकल्प लेकर माँ भगवती के दरबार में आये हैं गौतम जी। कैसा संकल्प उत्सुक होकर पूछा गौतम जी ने। इस बार पण्डित शम्भूरत्न बड़ी गुरु गम्भीर वाणी में बोले–आज अश्विन मास की चतुर्दशी है न?

हाँ! गौतम अम्बिकाचरण ने उत्तर दिया–कल से नवरात्रि प्रारम्भ हो जायेगी।

पण्डित शम्भूरत्न ने सिर हिलाकर कहा–पिछले चौदह वर्ष से काशी के अन्नपूर्णा मन्दिर में भगवती की साधना कर रहा हूँ मैं। बड़ी प्रसन्नता की बात है गौतम अम्बिकाचरण ने विनम्र भाव से कहा– हम भी माँ के एक अकिंचन साधक हैं।

लेकिन हमारी साधना अभी अधूरी है गौतम जी शम्भूरत्न ने गम्भीर स्वर में कहा, हमने वहां प्रतिज्ञा की थी कि यदि माँ भगवती हमको साक्षात् दर्शन देंगी तो हम कमल पूजा करेंगे।

क्या? गौतम अम्बिकाचरण चौंककर बोले– क्या कह रहे हैं आप? कमल पूजा?

जी हाँ! शम्भूरत्न बोले–कमल पूजा के निमित्त मैं माँ के चरणों में अपना सिर काटकर अर्पित कर दूँगा। पिछली नवरात्रि में हम जब दुर्गा सप्तशती का पाठ कर रहे थे। उस समय एक रात स्वप्न में माँ का आदेश हुआ कि अगली नवरात्रि में तुम जबलपुर जाना। वहां मैं स्वयं पाषाण रूप में प्रकट हुई हूँ उस स्थान पर मेरी आराधना करना। मैं

अवश्य दर्शन दूँगी। काशी में कैसे प्रकट हो सकती हूँ 'काशी बाबा विश्वनाथ की नगरी है और यही कारण है कि हम यहाँ आये है।

उसी समय जबलपुर के दो प्रख्यात साधक पण्डित शंकरलाल भट्ट और पण्डित बाबूलाल शर्मा वहां आ गये। वे लोग भी नवरात्रि साधना में जुटे हुए थे और उसकी तैयारी कर रहे थे। उन्हें गौतम अम्बिकाचरण ने पण्डित शम्भूरत्न का संकल्प बतलाया तो वे लोग भी आश्चर्यचकित भाव से उनकी ओर देखने लगे। उमाशंकर अग्निहोत्री पूर्व परिचित थे पं. शम्भूरत्न महाशय से। जब वे उनको लेने स्टेशन पहुँचे तो वहां उनका आदेश हुआ सीधे मढ़िया चलने के लिए।

गौतम अम्बिकाचरण असमंजस में पड़े थे। वे बोले आपने अच्छा किया अग्निहोत्रीजी लेकिन पं. शम्भूरत्न जी को मैं यह बतला देना चाहता हूँ कि मैं दीर्घकाल से माँ की विधिवत् पूजा उपासना कर रहा हूँ लेकिन अभी तक दर्शन लाभ उनका नहीं हुआ मुझे। शम्भूरत्न मुस्कराये, लेकिन बोले कुछ नहीं। कल से नवरात्रि शुरू हो रही है" गौतम अम्बिका चरण स्वयं ही फिर बोले–'आप जब आ ही गये हैं तो दुर्गा सप्तशती का पाठ आप यहीं पर पूर्ण करें। आपके आगमन से हम सब लोग प्रसन्न है। संकल्प तो हम पूर्ण करेंगे ही पं. शम्भूरत्न दृढ़ता से बोले और यदि माँ ने यहां भी मुझे दर्शन नहीं दिया तो उन्हीं के तलवार से अपनी गर्दन काटकर हम उनके चरणों में अर्पित कर देंगे।

माँ महामाया की इच्छा! गौतम अम्बिकाचरण ने एक लम्बी और गहरी उच्छवास के साथ कहा–भट्टजी पं. शम्भूरत्नजी का आसन हवनकुण्ड के समीप लगा दीजिए और ये जो वस्तु चाहें उसकी व्यवस्था भी कर दीजिए।

उस रात गौतम अम्बिकाचरण सो न सके ठीक से। बार–बार उनकी नींद उचट जाती थी। उनको लग रहा था कि कदाचित् उनकी मढ़िया के अन्तिम दिन आ गये हैं। काशी का यह हठी ब्राह्मण आज के दसवें दिन जब अपने हाथों से ही अपना शीश काटकर माँ भगवती के चरणों में अर्पित कर देगा, तब क्या होगा? भगवती की मूर्ति के सम्मुख पं. शम्भूरत्न का रक्तरंजित मुण्ड होगा और चारो ओर फैला होगा रक्त

ही रक्त। तहलका मच जायेगा पूरे नगर में तब और फिर जबलपुर का शहर कोतवाल, चन्द्रशेखर तिवारी आयेगा और उन्हें गिरफ्तार कर ले जायेगा कोतवाली थाने में। फिर देवी की मढ़िया की कितनी बदनामी होगी। इसकी कल्पना मात्र से गौतम अम्बिकाचरण को रोमाञ्च हो आया।

दूसरे दिन नंवरात्रि शुरू होने वाली थी। मढ़िया को विशेष रूप से सुसज्जित कर दिया गया था। मुख्यद्वार पर तोरण बांध दिया गया था। त्रिशूल माँ के साथ ही आविर्भूत विशाल खड्ग और पूजन पात्रों को चमका दिया गया था। **.....या देवी सर्वभूता नां तस्या जगरात्रि संयमी......**का पाठ शुरू हो चुका था। शक्ति से भरपूर आध्यात्मिक वातावरण सुगन्धित द्रव्यों की मनभावन सुगन्ध से भर गया था। पांच फुट गहरे और दस फुट लम्बे चौड़े विशाल हवनकुण्ड के निकट पं0 शम्भूरत्न पूरे ललाट पर चन्दन का प्रलेप किए लाल सिन्दूर का गोल टीका लगाये भगवती की स्वयम्भू पाषाण प्रतिमा के सम्मुख बैठे दुर्गा सप्तशती का भ्रामरी स्वर में पाठ कर रहे थे। उनके नेत्र बन्द थे। शरीर तना हुआ था। चेहरे पर तेज था।

पं0 शम्भूरत्न प्रातः चार बजे ही उठ गये थे और अब तक आठ–पाठ कर चुके थे। एक सौ एक पाठ और शेष रह गये थे जो उनके संकल्प के अनुसार नवें दिन पूर्ण होने थे।

किसी भी निष्णात् पण्डित को दुर्गा सप्तशती का एक पाठ करने में साधारणतः दो से ढाई घंटे का समय लगता है लेकिन पं0 शम्भू रत्न तो दिन के नौ बजे तक आठ पाठ पूरा कर चुके थे। एक पाठ पूरा करने में उन्हें आधा घण्टा भी नहीं लगा था। अधिक लगता भी कैसे उस महान् साधक को पूरा पाठ ही कंठस्थ था। तंत्र के विलक्षण ग्रन्थ "शक्ति संगम तंत्र" में स्पष्ट लिखा है कि जो साधक नवरात्रि में दुर्गा सप्तशती का एक सौ आठ पाठ करता है उस पर महाशक्ति दुर्गा की असीम कृपा होती है और वे स्वयं प्रत्यक्ष दर्शन देकर साधक को आशीर्वाद प्रदान करती है। उसी सत्य को साकार करने में लगा था वह साधक। पण्डित शम्भूलाल भट्ट चिन्तातुर होकर शम्भूरत्न की ओर अपलक देख रहे थे। लेकिन पं. शम्भूरत्न नेत्र बन्द किए पाठ में लीन थे।

उनकी उपस्थिति का ज्ञान उन्हें नहीं था। उसी समय गौतम अम्बिकाचरण वहां आ गये तो शंकरलाल भट्ट ने फुस–फुसाकर उनसे कहा–आठ पाठ पूरे हो चुके हैं अब तक।

क्या ? गौतम अम्बिकाचरण ने चौंककर पूछा। भट्टजी ने वैसे ही फुसफुसाकर कहा–'ये तो महान साधक ज्ञात होते हैं। लगता है, एक सौ आठ पाठ पूरा करने में इन्हें पांच दिन भी नहीं लगेंगे।"

हे भगवान! हे महामाया! गौतम अम्बिकाचरण ने ठण्डी सांस लेकर कहा–'जो भी हो भट्टजी क्या भगवती इस हठी साधक को दर्शन देंगी?

भट्टजी ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। उन्होंने केवल अपना हाथ ऊपर उठा दिया।

लगभग वैसी ही स्थिति बाबूलाल शर्मा की भी थी। वे गौतम अम्बिकाचरण के परम शिष्यों में से थे और मढ़िया से उन्हें भी प्रबल मोह था। वे मन ही मन उस घड़ी को कोस रहे थे जब उमाशंकर अग्निहोत्री शम्भूरत्न को लेकर गौतम अम्बिकाचरण के पास आये थे। यह विचार भी उनके मन में उठ रहा था कि ये शम्भूरत्न पागल–वागल तो नहीं है जो अपने जीवन का इस तरह अन्त करना चाहते हैं।

तीसरे दिन जब पं. शम्भूरत्न दुर्गा सप्तशती के पैंतीस पाठ कर चुके तो गौतम अम्बिकाचरण का माथा ठनका, शम्भूरत्न के पास पहुँचे वह। शम्भूरत्न उस समय दूध और फल ग्रहण कर रहे थे। छत्तीसवें पाठ की तैयारी कर रहे थे अब।

आइये गौतमजी–उन्होंने दूध का खाली गिलास रखते हुए कहा।"

गौतम अम्बिकाचरण उनके पास ही बैठकर बोले–'दुर्गा सप्तशती का पाठ किस पद्धति से करते हैं?

मैं कुंजिका स्तोत्र के बाद सीधे पाठ शुरू कर देता हूँ–शम्भूरत्न ने बतलाया।

सुनकर गौतमजी की आँखें चमक उठी। वे बोले, पण्डितजी यह तो सर्वथा अशुद्ध पद्धति है।"

वह "कैसे? शम्भूरत्न ने चौंककर पूछा"

हठ योग की साधना पद्धति का आरम्भ कवच, कीलक और अर्गला स्तोत्रों से होता है शम्भूरत्न जी! गौतमजी बोले, कुंजिका पाठ तो अन्त में किया जाता है।

यह सुनकर एकबारगी हतप्रभ हो गये पं. शम्भूरत्न महाशय स्याह पड़ गया उनका चेहरा।

लेकिन गौतम अम्बिकाचरण का चेहरा चमक उठा प्रसन्नता से। उनकी मढ़िया में होने वाली नरबलि टल गयी थी। अब न एक सौ आठ पाठ पूरे होंगे समय पर और न शम्भूरत्न देवी के दर्शन न होने पर अपना शीश अर्पित करेंगे।

सामने खड़ी भगवती को ओर करूण दृष्टि से देखते हुए पं. शम्भूरत्न हताश भाव से बोले—'आप निश्चिन्त रहिए गौतमी जी विश्वास रखिये, दुर्गा सप्तशती का एक सौ आठ पाठ समय पर पूर्ण कर लूँगा मैं।

मैं भी यही चाहता हूँ कि आपका 'संकल्प माँ महामाया पूर्ण करे। गौतमजी ने कहा—जब मुझे पता चला कि आप अशुद्ध पाठ कर रहे हैं तो सोचा आपकी त्रुटि परिमार्जित कर दें।

किन्तु शम्भूरत्न ने जिस द्रुतगति से पुनः पाठ आरम्भ किया, उससे गौतम अम्बिकाचरण पुनः विचलित हो उठे। वैसे भी अशुद्ध पाठ नहीं कर रहे थे पं. शम्भूरत्नजी। कुंजिका स्तोत्र से भी पाठ शुरू होता है, लेकिन गौतमजी, पं. बाबूलाल शर्मा और शंकरलाल भट्ट मढ़िया पर छा रहे अनिष्ट के बादल को हटाने के लिए शम्भूरत्न की साधना खण्डित कर देना चाहते थे मिलकर लेकिन इसका परिणाम प्रतिकूल ही हुआ।

पहले एक पाठ समाप्त हो जाने के बाद फलाहार कर लेते थे पं. शम्भूरत्न, किन्तु तीसरे दिन प्रातःकाल से ही आधी रात तक भगवती की प्रतिमा के सामने बैठे निरन्तर पाठ करते रहे पं. शम्भूरत्न। इस बीच जल भी ग्रहण नहीं किया उन्होंने। उस रात अट्ठारह पाठ पूरे कर लिए और इस तरह अपनी खण्डित साधना का लगभग आधा भाग उन्होंने एक ही दिन रात में पूरा कर लिया। उसके बाद वे केवल दो घण्टे सोये और फिर चार बजे प्रातःकाल उठकर स्नानकर पुनः पाठ करने बैठे गये महाशय।

अब तक पूरे जबलपुर शहर में पं. शम्भूरत्न के संबंध में खबर फैल चुकी थी। उनके दर्शन के लिए नित्य भीड़ लगने लगी। देवी का तो दर्शन कम लेकिन उनका दर्शन अधिक लोग करने आते। फूल मिठाईयाँ नारियल का अम्बार लगने लगा।

आठवें दिन हवन शुरू हो गया। हवन सामग्री की सुगन्ध मढ़िया और उसके बाहर की वातावरण में फैलने लगी। 'स्वाहा' 'स्वाहा' की गूंज से वायुमण्डल मुखरित हो रहा था। नवें दिन प्रातःकाल जब पूर्णाहुति हुई तो गौतम अम्बिकाचरण शम्भूरत्न के पास आये। शम्भूरत्न उस समय नेत्र बन्द किये पाठ करने में लीन थे। कितने पाठ हो गये पण्डितजी? गौतमजी ने आतुरता से पूछा।

लेकिन शम्भूरत्न ने कोई उत्तर नहीं दिया वे पाठ में निमग्न रहे। केवल हाथ की उंगली से उन्होंने उन काले कमलगट्टों की तरफ इशारा कर दिया जो पास ही बिखरे हुए थे। प्रत्येक पाठ की समाप्ति पर शम्भूरत्न एक कमलगट्टा प्रतिमा के सामने रख देते थे।

धड़कते दिल से उन कमलगट्टों को अम्बिकाचरण ने गिना। वे निन्यानवे थे। उनका दिल बैठने लगा। मन ही मन सोचने लगे वह, आज रात उनकी प्रख्यात मढ़िया वधस्थल बन जायेगी एक साधक की। उस समय मढ़िया में कन्या भोजन कराया जा रहा था। बाबूलाल शर्मा और शंकरलाल भट्ट उसी में व्यस्त थे। गौतम अम्बिकाचरण जाकर उन लोगों से धीरे से बोले—100 वां पाठ कर रहे हैं इस समय शम्भूरत्नजी। आज रात पाठ पूरा हो जायेगा। फिर 'माँ' के प्रकट होने की प्रतीक्षा करेंगे शम्भूरत्नजी और जब देवी प्रकट नहीं होगी तो वे.. ....पुलिस को अभी खबर क्यों न कर दें, बाबूलाल शर्मा ने अपना सुझाव दिया। अम्बिकाचरण ने कुछ सोचते कहा—'पुलिस शम्भूरत्न को गिरफ्तार कर लेगी तो पूरे शहर में तहलका मच जायेगा और मेरी मढ़िया की प्रतिष्ठा धूल में मिल जायेगी।

फिर? भट्टजी ने पूछा?

मैंने अब सब कुछ 'माँ' महामाया पर छोड़ दिया है उसकी जो इच्छा होगी, वही होगा।

निश्चित समय के अन्दर एक सौ आठ–पाठ पूरा कर लिया शम्भूरत्न ने। वे उस समय बड़े ही कमजोर और शिथिल नजर आ रहे थे। संकल्प पूरा हो जाने पर उनकी आत्मा तृप्त थी। तख्त पर तन कर बैठे हुए थे वे और तभी उनके पास अम्बिकाचरण जी आये। वे एक थाली में व्यञ्जन ले आये थे। वे बोले–लीजिये महाराज ग्रहण करिए।

आज मेरा व्रत है गौतमजी, शम्भूरत्न बोले।'

यह तो माँ भगवती का प्रसाद है, गौतमजी बोले–आप ग्रहण नहीं करेंगे तो माँ का अनादर होगा। बड़ी अनिच्छा से पं. शम्भूरत्न ने थाली में से एक केला उठाकर खा लिया। फिर आँखे बन्द कर लेट गये तख्त पर।

न जाने कितनी देर तक सोते रहे पं. शम्भूरत्न। निरन्तर जागरण के बाद आक्रमण कर दिया था निद्रा ने उन पर। माँ भगवती की आरती होने लगी तो चौंककर उठ बैठे वह। उस समय सायंकाल के पांच बजने वाले थे। उन्होंने चटपट स्नान किया। नये वस्त्र पहने और जाकर बैठ गये माँ भगवती के सामने वह। उस समय अम्बिकाचरण मढ़िया में नहीं थे। श्मशान में जाकर बैठे थे वह और अपना सिर धुन रहे थे कि उसी समय एक टूटी हुई समाधि के पास अन्धेरे में कोई नजर आया। वे रूककर बोले कौन ?

मैं हूँ शंकरलाल भट्ट, उत्तर मिला, आप यहां बैठे हैं और वहां आपकी खोज हो रही है। क्यों? गौतम जी भयभीत स्वर में बोले–पुलिस आ गयी क्या?

नहीं! भट्टजी हँसकर बोले–पं. शम्भूरत्न का पाठ तो पूरा हो चुका है। माँ भगवती के सामने मौन साधे निर्विकार भाव से बैठे हैं और माँ का विशाल खड्ग अपने पास रख लिया है।

तब तो आप वहीं रहें भट्टजी। अम्बिकाचरण ने कहा और किसी भी प्रकार उन्हें रोके।

रात के ग्यारह बज रहे थे। नवरात्रि की अन्तिम रात थी वह। चारो ओर घोर सन्नाटा छाया हुआ था। मढ़िया में दर्शनार्थियों का आना जाना बन्द हो गया था।

टन्–टन् कर बारह का घंटा बजा। उसी समय एक गौरांगवदना अति सुन्दर युवती मढ़िया के भीतर आयी। चौड़े लाल किनारे की रेशमी साड़ी पहने थी वह। उसके घने काले बाल खुलकर पीठ पर बिखरे हुए थे। मांग में लाल सिन्दूर की पतली रेखा थी। चौड़े ललाट पर लाल सिन्दूर का गोल टीका था। गले में स्वर्णाहार पहने थी, वह। कलाईयों में शंख के साथ लाल चूड़ियां थीं। उस षोडशवर्षीया युवती ने एक बार मुस्कराकर भगवती की भव्य मूर्ति की ओर देखा और फिर पलटकर कटाक्ष कर मुस्करायी पाषाणवत् बैठे शम्भूरत्न महाशय की ओर देखकर। काफी देर तक उसी मुद्रा में देखती रही वह रहस्यमयी युवती उस साधक की ओर।

एकाएक ध्यान भंग हुआ पं. शम्भूरत्न का। आँखे खोल कर उस रहस्यमयी युवती की ओर देखा और देखते ही क्रोध से तिलमिला उठे एकबारगी। उन्हें लगा कि अम्बिकाचरण ने उस युवती को उनका व्रत भंग करने के लिए उनके पास भेजा था वे बोले कुछ नहीं। अब नेत्र बन्दकर जोर–जोर से कुंजिका स्तोत्र का पाठ करने लगे वह। लेकिन वे अधिक समय तक अपनी आँखे बन्द रख न सके। वाणी भी लड़खड़ाने लगी। क्या हो गया उन्हें? अब तक वह युवती उनके बिल्कुल निकट आ चुकी थी और जमीन पर पैर पटक–पटक जोर–जोर से पायल बजाने लगी।

मढ़िया में सन्नाटा था। नवरात्रि का कोलाहल समाप्त हो चुका था। शम्भूरत्न की क्रोध से आँखे लाल हो रही थी उस अज्ञात नवयौवना को देखकर। सामने रखा जल भरा लोटा उठाकर फेंका उन्होंने उस युवती की तरफ। झनझनाकर गिर पड़ा लोटा जमीन पर। फिर भी वह युवती वहां से नहीं हटी। शम्भूरत्न ने देखा, युवती उन्हीं की तख्त पर आकर बैठ गयी और फिर मुस्कराते हुए उनकी ओर देखने लगी। शम्भूरत्न ने माँ को प्रणाम किया और उनके मुख से निकला "ॐ नम भगवती"। तब तक वह युवती उनके बिस्तर पर उनकी ही ऊनी शाल ओढ़कर लेट गयी थी। यह देखकर क्रोध से कांपने लगे शम्भूरत्न। वे यह भूल गये कि पाठ पूरे हो गये थे और माँ भगवती अभी तक प्रकट नहीं हुई थी। वे यह भी भूल ये थे कि संकल्प के अनुसार अब उन्हें अपना शीश काटकर देवी को अर्पित कर देना चाहिए।

नीच, वेश्या, पापिनी शम्भूरत्न ने गलियाँ बकना शुरू कर दिया। मैं जानता हूँ कि मेरा संकल्प खण्डित करने के लिए तुझे किसने भेजा है। अगर मुझे यह पता होता कि यह मढ़िया व्यभिचार का अड्डा है तो मैं काशी से चलकर यहां कदापि नहीं आता और तभी शंकरलाल भट्ट मढ़िया में घुसे और वे क्रोध से कांपते गालियां देते शम्भूरत्न को देख कर हतप्रभ हो गये। बोले–क्या हुआ पण्डित जी? देखो साले की बदमासी मेरी साधना नष्ट करने के लिए उसने मेरे पास एक वेश्या को भेजा। कहकर उन्होंने तख्त की ओर उंगली से इशारा किया। भट्टजी ने भी देखा–तख्त पर शाल ओढ़े कोई लेटा हुआ था और सांस लेने से सीना ऊपर नीचे हो रहा था। तभी गौतमजी और उनके साथ बहुत सारे लोग मढ़िया में पहुंच गये। वे देखने आये थे कि भगवती ने शम्भूरत्न को दर्शन दिया अथवा शम्भूरत्न ने अपना सिर काटकर देवी को कर दिया अर्पित।" शम्भूरत्न गौतम अम्बिकाचरण को देखते ही उन्हें गालियां देने लगे। फिर उन्होंने तख्त की ओर इशारा करके पूछा क्या इसी तरह साधना करते हो? यह कौन है तुम्हारी बेटी या बहन? 'कहां कौन है महाराज! गौतमजी चकित और परेशान होकर बोले।"

'देख, अपनी आँखों से देख अपनी बेटी, बहन को, वह तख्त पर लेटी है सिर ढांककर। गौतमजी ने तख्त की तरफ देखा, सचमुच तख्त पर शाल ओढ़े कोई लेटा हुआ था।

मैंने तो किसी औरत को नहीं भेजा महाराज–गौतमजी बोले, मढ़िया में तो हर समय औरत–मर्द दर्शन करने आते जाते ही हैं।

......तो फिर अपनी आँखों से ही देख कि यह कौन है? कहते हुए शम्भूरत्न ने तख्त पर लेटी हुई युवती के ऊपर से शाल खींच दी। लेकिन यह देखकर स्वयं शम्भूरत्न आश्चर्यचकित रह गये कि तख्त पर युवती नहीं थी। वहां खिला हुआ एक ताजा कमल का फूल था जिसे थोड़ी देर पहले माँ के चरणों में अर्पित किया था शम्भूरत्न ने। सभी लोग शम्भूरत्न का मुंह देखने लगे। शम्भूरत्न की हालत दयनीय हो रही थी। कमल का फूल उठाकर मस्तक पर लगाया और रोने लगे हिलक–हिलक कर और उसी अवस्था में उस रहस्यमयी युवती के रूप रंग का रूक रूककर करने लगे वर्णन जिसे सुनकर सभी लोग अवाक् और स्तब्ध रह गये। सभी के

मुंह से एक ही बात निकली माँ भगवती साकार रूप में यहाँ आयी थी, लेकिन शम्भूरत्न पहचान न सके उस परम शक्ति के साकार रूप को।

शम्भूरत्न की स्थिति पागलों जैसी हो गयी थी। लोगों ने देखा, माँ भगवती के सामने अपना सिर जोर–जोर से पटकने लगे। सिर फटते देर न लगी। रक्तरंजित हो उठे माँ भगवती के चरण। वे चीख–चीख कर कहते जा रहे थे– हाय माँ आप मुझे दर्शन देने आयी और दुर्भाग्यवश मैं आपको पहचान न सका। कितना पापी और कृतघ्न हूँ मैं। आपको बुरा भला कहा और कितनी दी गाली भी। क्या करूँ माँ बोलो माँ क्या करूँ? अब इस शरीर को रखने से लाभ ही क्या? जीवन को समाप्त कर दूँगा माँ.....

अब तक काफी खून निकलकर फैल गया था चारो तरफ बेहोश हो गये थे अब शम्भूरत्न। उनको उठाकर तख्त पर लिटा दिया गया।

यह बात पूरे शहर में फैल गयी। लोग यही कहते थे, चमत्कार हो गया माँ भगवती दर्शन देने के लिए प्रकट हुई पर शम्भूरत्न उनको पहचान न सके। चैतन्य होने पर अपना सुधबुध खो बैठे हमेशा के लिए शम्भूरत्न। वे रूके नहीं फिर जबलपुर से काशी लौट आये पैदल ही चल कर।

यह घटना 16 अक्टूबर 1952 की है। बनारस में एक सुपरिचित रहते थे भूतपूर्व कलक्टर स्व0 देवी प्रसादजी शुक्ल। उन्होंने अपनत्ववश मेरी एक पुस्तक स्वयं प्रकाशित की थी, जिसका नाम था "मरणोत्तर जीवन का रहस्य"। कहने की आवश्यकता नहीं शम्भूरत्न की यह कथा मुझे श्री शुक्लजी ने ही सुनायी थी। मुझसे रहा न गया। मैं स्वयं 1972 में जबलपुर गया और अपने मित्र श्री शरद मोझरकरजी के साथ माँ भगवती का दर्शन करने गया। निश्चय ही माँ भगवती की पाषाण प्रतिमा सजीव और जागृत लगी मुझे। माँ का दर्शन तो अवश्य हुआ लेकिन गौतम अम्बिकाचरणजी का नहीं। वे गोलोकवासी हो चुके थे। जब मैंने ये सारी विलक्षण कथा अपने गुरुदेव म0म0 डॉ गोपीनाथजी को सुनायी तो वे बोले–हठयोग मार्ग की साधना में ज्ञान का अभाव होता है। शम्भूरत्न में ज्ञान का पूर्ण अभाव था और इसीलिए वे पहचान न सके माँ

को। अन्त में उनकी दुर्दशा हो गयी, बिना ज्ञान की भक्ति चीनी बिना मिठाई है, बिना नमक का भोजन है। ज्ञान आवश्यक है। ज्ञान के अभाव में सभी साधना उपासना आदि असफल है। सफलता न मिलने पर साधक की शारीरिक और मानसिक स्थिति संसार के योग्य नहीं रह जाती। साधना–उपासना मार्ग में ज्ञान से क्या तात्पर्य है आपका? इस प्रश्न के उत्तर में गुरुदेव ने कहा–यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो हम जिस शक्ति की साधना या उपासना करते है। अधिकतर हम उसके बाहरी स्वरूप से ही परिचित होते हैं। वास्तविकता तो यह है कि प्रत्येक देवी या देवता के चार स्वरूप होते हैं, भौतिक स्वरूप जिसे हम अपनी आंखों से देखते हैं। इसके अतिरिक्त दूसरा है चिन्मय स्वरूप, तीसरा है, आध्यात्मिक स्वरूप और इसी प्रकार चौथा है तत्व रूप। इनमें तत्व रूप अति रहस्यमय गुह्य और गोपनीय है। इस तत्व रूप को जान समझ लेना ही ज्ञान है जिसे योग की भाषा में तत्वज्ञान कहते हैं। तत्वज्ञान को उपलब्ध होने पर ही साधना या उपासना सार्थक होती है। इष्ट दर्शन भी होता है इसमें सन्देह नहीं। इतना कहकर मौन हो गये गुरुदेव मुझे इसके आगे जानने–समझने की इच्छा नहीं रह गयी थी। मैं वहां से घाट ही घाट लाली घाट आया। सीढ़ी चढ़ते समय कल्लू मिल गया। उसका चेहरा उतरा हुआ था उस समय। बाबा के संबंध में उसने हकलाते हुए बतलाया कि पिछली रात वह लड़की आयी और रोज की तरह बाबा को अपने हाथ से रोटी खिलायी और फिर उनका हाथ थामकर न जाने कहां ले गयी वह। सच कहता हूँ बाबूजी अपनी आँखों से देखा मैंने यह सब।

समझते देर लगी मुझे, माँ महामाया ने अपने अंक में सदैव के लिए ले लिया था उस पागल और हठी साधक को।

●

रहस्य दस

कलकत्ते की वह रहस्यमयी श्यामांगी

सन् 1950 ई0।

अमृतसर हावड़ा मेल जब धड़धड़ाता हुआ हावड़ा स्टेशन के प्लेटफार्म पर लगा उस समय सवेरे के आठ बज रहे थे। ट्रेन अपने ठीक समय पर आयी थी। पहली बार कलकत्ता आना हुआ था मेरा और वह भी बंगाल के एक महातंत्र साधक के दर्शन लाभ के लिए, नाम था राखालचन्द्र भट्टाचार्य। हाजरा रोड में उनका निवास था। पश्चिम बंगाल के ख्याति प्राप्त तंत्र साधक थे। कई प्रकार की तंत्र की दुर्लभ सिद्धियां उपलब्ध थी उन्हें। बंगाल और आसाम के कई स्टेट ऐसे थे जो उनका आशातीत सम्मान करते थे। एक प्रकार से राजतांत्रिक थे राखालचन्द्र भट्टाचार्य। मुझ पर उनकी विशेष कृपा थी। सोचा अपने आगमन की सूचना दे दूँ लेकिन उनका फोन नम्बर मेरे पास नहीं था। था तो उनके गुरु भाई गोपालचन्द्र न्यायरत्न का। उन्हीं को किया फोन। पता चला कि दोनों व्यक्ति आसाम की यात्रा पर गये है दो–तीन बाद लौटेंगे कलकत्ता। बेचैन हो उठा मैं अब क्या किया जाय। फोन बूथ के पास खड़ा होकर सोचने लगा मैं। अनजाना अनदेखा शहर था कलकत्ता मेरे लिए। वैसे बनारस के कई परिचित लोग थे कलकत्ता में लेकिन उनका अता–पता मालूम नहीं था मुझे। मुंह बाये इधर–उधर देखते हुए खड़ा रहा मैं और तभी एक युवती मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी। वह जवान सुन्दर और आकर्षक थी। रंग सांवला था लेकिन उसमें अजीब सा आकर्षण था। लाल रंग की बंगला साड़ी

में लिपटी उसकी सुडौल और मादकता भरी काया, घने काले बाल धवल दन्त पक्तियां चमकती हुई रहस्यमयी आखों में ऐसा घातक सम्मोहन था जिससे बचना आसान नहीं था। नाम था उसका श्यामांगी। मैं तीन चार दिनों का समय कलकत्ता घूमकर व्यतीत करना चाहता था। इसके लिए एक योग्य मार्गदर्शक की आवश्यकता थी। जब मुझे श्यामांगी मिली तो उसके सौन्दर्य ने मेरे मन मस्तिष्क को झिंझोड़ दिया एकबारगी।

गुड मार्निंग सर! क्या मैं कलकत्ता दिखलाने में आपकी सहायता कर सकती हूँ। एक मोहक मुस्कराहट होठों पर लिए हुए श्यामांगी ने मुझसे अंग्रेजी में पूछा?

उसका अंग्रेजी का उच्चारण स्पष्ट और शुद्ध था। उसने लाल रंग की साड़ी अपने सुडौल बदन पर बड़े आकर्षक ढंग से पहन रखी थी। उसके तीखे नयन नक्श, सांवला रंग देखकर मैं पल भर को अवाक् सा रह गया। फिर मेरे मुंह से अपने आप निकल गया अवश्य। उसी समय आप सच मानिए मैं जीवन की बहुत बड़ी भूल कर गया था। वे मेरे जीवन के सबसे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण क्षण थे, इसमें सन्देह नहीं।

बंगला भाषा में मेरा उत्तर सुनकर श्यामांगी का चेहरा दमक उठा। उसने बंगला में ही जवाब दिया–मैं कलकत्ता के दूसरे गाइडों से काफी सस्ती पड़ूँगी महाशय। इसके पश्चात् धड़ाधड़ बंगला में पर्यटकों के आकर्षण के स्थानों के बारे में बतलाने लगी। उस समय मैंने इस बात पर विशेष ध्यान नहीं दिया था कि उसने कलकत्ता के आकर्षक स्थानों में काली मन्दिर का नाम विशेष रूप से लिया था। बार–बार उसी नाम को दुहराती थी। फिर भी मैंने उत्सुकतावश सबसे पहले काली मंदिर देखने की इच्छा प्रकट की थी।

इस पर श्यामांगी गुलाब की तरह खिल उठी। शायद वह स्वयं काली मंदिर में जाने को बेचैन थी। मैंने सुना है कि काली मंदिर में बकरों की बलि दी जाती है। बलि का वह दृश्य देखने की मेरी लालसा थी। तंत्र–साधना शास्त्र के कुछ ऐसे प्रसंग थे जिनको प्रत्यक्ष देखना चाहता था मैं। पशुबलि भी उसी में एक था।

कलकत्ता जैसे शहर में एक गोरे लम्बे सुन्दर और आकर्षक व्यक्तित्व वाले युवा व्यक्ति के साथ एक लम्बी दुबली पतली श्यामवर्णा

बंगाली युवती को देखकर राह गुजरते हर व्यक्ति की आँखे हमारी तरफ उठ जाती थी। लोग आश्चर्य से हम दोनों की ओर विचित्र दृष्टि से देखते लेकिन श्यामांगी बड़ी निडर और आधुनिक विचारों की युवती प्रतीत होती थी। लोगों की घूरती नजरों की परवाह न करते हुए वह गर्दन उठाये, गर्वीले अन्दाज में जैसे मेरे साथ चल रही थी। उसे किसी भी प्रकार की हिचक शर्म या संकोच महसूस नहीं हो रही थी।

कुछ मोहाच्छन्न अवस्था में था मैं। श्यामांगी के सौन्दर्य ने मेरे अन्दर हलचल उत्पन्न कर दी थी। मेरा मस्तिष्क उसके चेहरे पर अधिकार करने के लिए सोचने लगा था। मन ही मन उसके शरीर को आलिंगनबद्ध करने की इच्छा से मैं स्वयं उससे और सटकर चलने लगा था जिसका एतराज उसने नहीं किया।

ट्राम पर बैठकर मैं श्यामांगी के साथ कालीघाट पहुंचा। दर्शन करने वाले श्रद्धालुओं की भीड़ लगी थी। बंगालियों की भीड़ अधिक थी। मन्दिर के चारों तरफ छोटी–बड़ी कई दुकाने थी। जिन पर काली के चित्र चूड़ियाँ, सिन्दूर और चुनरियाँ बिक रही थी। बंगला मिठाईयों की भी कई दुकाने थी फूल मालाओं की भी दुकाने कम न थी जिन पर रजनीगन्धा, कृष्णचूड़ा और जवा–पुष्प की मालाएं अधिक थी। मंदिर के मुख्य प्रवेश द्वार पर भिखारियों की भीड़ अधिक थी जो हाथ फैलाये कटोरी लिए भीख मांग रहे थे। भिखारियों में कुछ मेहतर जाति के भी लोग थे। उन सबने हम दोनों को चारो ओर से घेर लिया। काफी परेशानी का होने लगा मुझे अनुभव। थोड़ा आगे बढ़ा तो बंगाली पण्डो ने घेर लिया। परेशानी और बढ़ गयी लेकिन यह देखकर घोर आश्चर्य हुआ कि श्यामांगी के आगे बढ़ते ही उसे देखकर भयभीत होकर पीछे हट गये। सभी पुजारी लोग भी सहमकर अपने–अपने स्थान पर खड़े रह गये थे। यह बात विचित्र लगी मुझे। श्यामांगी ने उन्हें न डाँटा था न फटकारा था और न तो उन्हें कुछ कहा ही था फिर वे सभी क्यों भयभीत हो गये थे? पुजारी लोग भी क्यों सहम गये थे?

हम जैसे–जैसे आगे बढ़ते गये, लोग हमारे लिए राह बनाते गये। यह श्यामांगी के प्रभाव के कारण ही हो रहा था। लोग उसे देखते ही रास्ता छोड़ देते थे। इसका कारण क्या था? श्यामांगी के व्यक्तित्व में भला

क्या था जो लोगों को भयभीत कर देता था और सहमा देता था। समझ में न आया और फिर मुझे आश्चर्य का दूसरा धक्का लगा, जब मैंने देखा कि मन्दिर में प्रवेश करने के उपरान्त कुछ मिनटों में ही सारा मंदिर एकदम खाली हो गया और मंदिर में केवल मैं और श्यामांगी रह गये।

सामने महाकाली की विशाल प्रतिमा थी काले पत्थर की। मातृत्व और विनाश का प्रतीक महाकाली के विकराल रूप को देखकर मेरे मन में जो प्रथम प्रक्रिया हुई—वह आतंक और भय की थी। विचित्र और भय से आत्मा तक को कंपा देने वाला कैसा रूप था हिन्दू धर्म के उस महान देवी का जो जननी भी थी और संहारिका भी थी। लपलपाती हुई लाल जिह्वा, तीन नेत्र, चार भुजायें गले में नरमुण्डों की माला, मुख और वक्ष स्थल रक्त से सने हुए, चारो हाथों में दो आशीर्वाद की मुद्रा में उठे हुए और शेष दो हाथों में से एक में विकराल खड्ग और दूसरे में रक्तालिप्त नरमुण्ड लगा अभी—अभी किसी मनुष्य की अपने विकराल खड्ग से माँ ने बलि दी हो। वह मूर्ति निश्चय ही 'तंत्र' की एक अद्भुत कल्पना थी जिसे देखते ही मेरे मन में एक अनजाना सा भय छा गया लेकिन जब मैंने श्यामांगी की ओर देखा तो उसका श्याम मुखमण्डल भक्ति भाव से उदीप्त था। वह अपलक मूर्ति की ओर हाथ जोड़े देख रही थी। उसकी लीनता देखकर ऐसा लगता था मानो वह अपने आस—पास की हर चीज को बिल्कुल भूल गयी हो, यहाँ तक की मेरे अस्तित्व को भी। जब मैंने उसे पुकारा तो उसकी तन्मयता भंग हुई और इस दुनिया में लौट आयी। वह कोई मंत्र बुदबुदाई, जिसे समझ न सका मैं। उसके बाद जब उसने मेरी ओर देखा तो उसके मुख पर कुछ विशेष भाव थे। वह बंगला में बोली देवी कितनी सुन्दर हैं; कितनी शक्तिशालिनी है ना?

लेकिन क्षमा करो बड़ी विचित्र! मेरे मुंह से सहसा निकल गया।

इस पर श्यामांगी के होठों पर मुस्कराहट फैल गयी। एक अजीब—सी रहस्यमयी मुस्कराहट। फिर वह बोली—आओ बलि का समय हो गया है। मंदिर के गर्भगृह के सामने चारो ओर ऊँचे—ऊँचे खम्भों से घिरा लम्बा चौड़ा चारो ओर ऊँचे ऊँचे खम्भों से घिरा लम्बा चौड़ा ध्यान और साधना कक्ष था। फर्श मार्बल का था। जहां बैठे हुए कई लोग जप बार रहे थे और कई लोग ध्यान की मुद्रा में बैठे हुए थे।

उसके बाद थोड़ा उतरकर काफी लम्बा चौड़ा आंगन था। जिसके चारों ओर दालान थे। माँ की मूर्ति के ठीक सामने ढालान में बलि यूथ बने थे। वहां मैंने पांच काले बकरों की बलि का भयानक और लोमहर्षक दृश्य देखा। वे बलि पशु खूब मोटे ताजे और युवा थे और एक मोटा ताजा काले रंग का तांत्रिक जिसका सिर मुड़ा हुआ था, गले में रुद्राक्ष की माला थी, नंगे बदन था, कमर में सिर्फ एक लाल गमछा लपेटे था और जिसके मस्तक पर लाल सिन्दूर का प्रलेप था–मंत्रोच्चारण करते हुए पशुओं की पूरा कर रहा था। वह तांत्रिक बड़ा भयानक लग रहा था। उसकी आंखे लाल थी। निश्चय ही उसने मदिरा पान कर रखा था। पांचों बकरे आपस में सटे कांप रहे थे। भला उन्हें क्या पता था कि कुछ ही देर में वे इस संसार से मुक्त हो जायेंगे और पड़ा रह जायेगा उनका रक्तरंजित छटपटाता हुआ मृत शरीर। बकरों की तांत्रिक पूजा खत्म हो गयी थी। एक भीमकाय व्यक्ति ने उनके पैरों को रस्सी से कसकर बांध दिया और फिर वह भयानक तांत्रिक कोई मंत्र पढ़ता हुआ आगे बढ़ा और एक–एक बकरे के गर्दन को बलियूथ पर रखने लगा। मैं तो दम साधे हुए उस लोग हर्षक दृश्य को देख रहा था लेकिन श्यामांगी का चेहरा भाव शून्य था लगा जैसे उसके लिए वह सब सहज है।

वह भीमकाय राक्षस जैसा व्यक्ति एक बार चारो ओर देखा अपनी खूनी आँखों से और फिर उसका भयानक खड्ग हवा में लहराया, नीचे गिरने लगा और खच्च–खच्च की आवाज के साथ एक–एक बकरे का सिर कटकर नीचे जमीन पर गिरने लगा। खून का फब्बारा छूट रहा था लेकिन उस भयानक रूप रंग वाले व्यक्ति का हाथ रूका नहीं। उसके सधे हुए खड्ग लगातार अपना काम करता रहे।

अन्त में पांचों बकरों के सिर जमीन पर पड़े थे और उनके धड़ों से खून निकल कर चारो ओर फैल रहे थे। तब वह भयानक व्यक्ति एक कटोरा लेकर उसमें खून जमा करने लगा। यह सब कितना लोमहर्षक वीभत्स और विचित्र था। उसे देखकर जुगुप्सा का मान मुझमें होना चाहिए था, किन्तु आश्चर्य मैं उस पशु बलि के दृश्य को देखकर एक विचित्र सी उत्तेजना का अनुभव कर रहा था।

मेरे साथ खड़ी श्यामांगी की स्थिति कुछ और ही थी। उसके चेहरे पर तो पूर्णतः तृप्ति का भाव था। ऐसा लगता था मानो बलि के दृश्य में

दर्शक मात्र नहीं थी वह बल्कि स्वयं उसने उस बलि में कोई क्रियात्मक भाग लिया था। ऐसा ही कुछ भाव था उसके चेहरे पर।

बकरों के कटे हुए मुण्डों को एक तरफ कर दिया गया। उनको माला पहनायी गयी और उनपर कपूर जलाया गया और लटका दिया गया उनके शरीरों को खूंटी पर। न जाने कहां से झुण्ड की झुण्ड आ गयी मक्खियां और भिनभिनाने लगी वहां। चार पांच कुत्ते भी वहां आ कर जमीन पर फैले खून को लगे चाटने।

उस वीभत्स और रोमाञ्चकारी दृश्य को श्यामांगी बड़े मनोयोग और सन्तुष्टि के भाव से देख रही थी। मेरे पुकारने पर उसकी समाधि भंग हुई। उसने मेरी ओर एक अजीब दृष्टि से देखा और पूछा—क्या आप सर! भयभीत है?

'नहीं, नहीं तो....मैंने कहा।''

यह सुनकर श्यामांगी के होठों पर व्यंगात्मक मुस्कान फैल गयी। वह बोली—अधिकांश लोग यह सब कुछ देखकर भयभीत हो जाते है। उन लोगों में से भिन्न हूँ मैं। मेरा जन्म तंत्र साधकों के परिवार में हुआ है। स्वयं मैं योग तंत्र पर शोध कार्य कर रहा हूँ और उसके वास्तविक साधना स्वरूप को सामने लाना चाहता हूँ। सच? अचानक अपने हाथ से मेरा हाथ दबाते हुए श्यामांगी ने कहा।''

उसके स्पर्श से मेरे सारे शरीर में एक अवर्णनीय सनसनी फैल गयी। बड़ा ही उत्तेजक था और था उष्ण उसका स्पर्श। कुछ पल के लिए स्थिर सा हो गया मैं उस मादक स्पर्श से।

मेरा हाथ थामे वह मंदिर के बाहर निकल आयी। मेरी अवस्था किसी सम्मोहित व्यक्ति जैसी थी उस समय। रास्ते में श्यामांगी ने बतलाया कि पुराने जमाने में काली को प्रसन्न करने के लिए मनुष्यों की भी बलि दी जाती थी।

मैने स्वीकृति से सिर हिलाकर कहा, हाँ जानता हूँ तंत्र के कई ग्रन्थों में पढ़ा है नरबलि के संबंध में। यह सुनकर एक विचित्र सी चमक आ गयी श्यामांगी की आँखों में।

हाजरा रोड से टैक्सी लेकर दक्षिणेश्वर काली के लिए रवाना हो गये हम दोनों। रास्ते में रानी रासमणि और स्वामी रामकृष्ण परमहंस की

चर्चा करती रही श्यामांगी। काली के उच्चकोटि के साधक थे स्वामी रामकृष्ण आप तो जानते ही होंगे सर। हाँ! सब जानता हूँ सारी कथा सबकी मालूम है मुझे।

टैक्सी में दोनों अगल बगल बैठे हुए थे। कई बार श्यामांगी की देह मेरी देह से टकरायी, सोचा ऐसा उसकी असावधानी के कारण हुआ था। नहीं, मेरी सोच गलत थी। श्यामांगी जानबूझकर ऐसा कर रही थी। जैसा कि मैं बतला चुका हूँ कि श्यामांगी एक पूर्ण नारी थी। अति सुन्दर, अति आकर्षक और अति लावण्यमयी। तुम्हारा नाम श्यामांगी किसने रखा—मैंने पूछा? काली का एक नाम श्यामांगी भी तो है। इसलिए स्वयं अपना नाम श्यामांगी रख लिया मैंने। सायंकाल हो चुका थी। बैलूरमठ और दक्षिणेश्वर घूमने के बाद काफी थक गया मैं भूख भी लगी थी। किसी अच्छे होटल की खोज में था। शायद मेरे मन की बात समझ गयी श्यामांगी। भूख लगी है?

हाँ!

मुझे भी लगी है। अच्छा है, सर चलिए मेरे घर! वहां भोजन भी मिल जायेगा और रात में रहने की जगह भी।

न जाने क्यों श्यामांगी के अनुरोध को टाला न जा सका मुझसे। न जाने कैसी अन्तरंगता स्थापित हो गयी थी हम दोनों के बीच। टैक्सी बदली कलकत्ता से हावड़ा की ओर चल पड़े। शिवपुर ट्रामडीपो के चौराहे से बायीं ओर टैक्सी घूम गयी। फिर चलती रही लगातार। फिर रूकी और जहां रूकी वहाँ एक गरीबों की बस्ती थी। बस्ती के हर कोने से झांकती हुई दरिद्रता से मेरी आत्मा कांप उठी एकबारगी। एक पुकुर (तालाब) था बीच में जिसका पानी काफी गन्दा था। उसी गन्दे पानी में औरत मर्द और लड़के सभी एक साथ नहा रहे थे। प्रायः सभी अर्द्धनग्न थे। युवतियों में लज्जा, काम की वस्तु नहीं देखी मैंने। मुकुट के बगल से एक संकरा और कच्चा रास्ता गया था। उसी रास्ते के अन्त में एक आधा कच्चा और आधा पक्का मकान था एक मंजिला। वही श्यामांगी का निवास स्थान था जिसके चारो ओर केले के दर्जनों पेड़ थे। कृष्ण चूड़ा और हरश्रृंगार के भी पेड़ थे। मकान को छोटा तो नहीं कहा

जायेगा और न तो बड़ा ही। सामने का हिस्सा पक्का था। श्यामांगी ने साड़ी के पल्लू में बंधी चाभी के गुच्छे से एक ताली से उचककर पुराने का ताला खोला। दरवाजा खुलते ही न जाने कैसी गन्ध भर गयी मेरी नाक में।

लम्बा चौड़ा कमरा था वह। एक ओर पलंग था जिस पर साफ सुथरा बिस्तर विछा हुआ था। दीवारों पर न जाने कौन से देवी देवताओं के चित्र टंगे थे दर्जनों की संख्या में। दो खिड़कियां भी थी जिन पर लाल पर्दे फूल रहे थे। भीतर भी एक कमरा था। शायद वह रसोई घर था।

थका था ही बिस्तर पर अपनी अटैची रखकर लेट गया। झपकी लगी कुछ क्षण के लिए और तभी हाथ में भोजन की थाली लेकर श्यामांगी आ गयी वहां। बोली उठें सर भोजन कर ले। स्वादिष्ट था भोजन मेरे मन का पदार्थ था। भूख लगी थी सब खा गया। खाते समय मेरे सामने खड़ी श्यामांगी न जाने क्यों एकटक देख रही थी मुझे।

कमरे में कम पावर का एक बल्ब जल रहा था जिसकी पीली हल्की रोशनी में ध्यान से इस बार देखा चारो तरफ। सामान के नाम पर लकड़ी की दो तीन पुरानी कुर्सियाँ एक हिलती डुलती टेबल, एक लोहे का पुराना सन्दूक और खूंटी पर टंगी साड़ियाँ और ब्लाउज। एक ओर छोटे से आले पर रखी हुई श्रृंगारिक सामग्रियाँ। भोजन कराने के बाद न जाने कहां गायब हो गयी श्यामांगी पूरे दो घंटे बाद लौटी वह। शुरू से ही वह मुझे एक रहस्यमयी युवती लग रही थी। अब वह रहस्य और अधिक धनीभूत हो चुका था। उसके हाथ में एक कांच का गिलास था, जो गहरे रंग के किसी पेय से लबालब भरा हुआ था। उस पेय को पहचान न सका मैं। न जाने क्या था वह?

"पी लें! गिलास मेरी ओर बढ़ाते हुए श्यामांगी ने कहा।" उस समय उसकी आंखों में एक विचित्र चमक थी।

तुम्हारा गिलास कहाँ हैं? मैंने पूछा!"

बाद में पीऊंगी मैं श्यामांगी ने कहा, तुम पीयो।

गिलास को होठों से लगा लिया मैंने। स्वाद कुछ विचित्र सा लगा मुझे। तेज नमकीन कुछ खड़िया और मैग्नेशिया के दूध जैसा।

श्यामांगी मुस्करायी और बोली—यह जानना तुम्हारे लिए आवश्यक नहीं है समझ लो कि यह एक अच्छी चीज हैं। इसे पीकर तुम तरोताजा महसूस करोगे।

पहले सर आप और अब 'तुम' शब्द का प्रयोग करने लगी थी वह रहस्यमयी युवती। मैं गिलास आधी से ज्यादा खाली कर चुका था। शेष वैसे ही रहने देना चाहा मैंने मगर श्यामांगी ने कहा नहीं पूरा गिलास पी जाओ। यह बहुत अच्छी चीज है।"

अब मेरे लिए अस्वीकार करने की गुंजाइश नहीं थी होठों से लगा कर पूरा गिलास खाली कर दिया मैंने। बोली मेरी प्रतीक्षा करो, अभी आती हूँ मैं।

कहकर श्यामांगी ऊपर चली गयी। मुझे इस बात का फिर पता ही नहीं चला कि श्यामांगी कब लौटी थी? अब उस अज्ञात पेय का असर होने लगा था मेरे शरीर और मन पर। मुझे लगने लगा कि मैं स्वप्न लोक में पहुंच गया हूँ। मेरा सारा शरीर इतना इल्का हो गया था मानो उसका कोई वजन ही न हो। इसके साथ ही अपने सारे शरीर में असीम गर्मी का भी कर रहा था अनुभव मैं। अब कमरे की विपन्नता मेरे लिए समाप्त हो गयी थी और वहां की प्रत्येक वस्तु के साथ मुझे गहरी आत्मीयता का एहसास होने लगा। फिर मुझे ऐसा एहसास होने लगा मानो अत्यधिक शक्तिशाली हो गया हूँ मैं परमेश्वर हो गया हूँ। फिर अचानक मेरे नाक में एक विचित्र सी गन्ध महसूस हुई। कैसी थी वह गन्ध बतला नहीं सकता।

सहसा कमरे में प्रवेश किया श्यामांगी ने। आश्चर्य में पड़ गया मैं उसका वह रूप देखकर। उस समय उसके शरीर का रंग बिलकुल काला था। बाल काफी लम्बा था काफी घना, काफी काला भी था वह और पीठ पर बिखरा हुआ था गले में हड्डियों की माला पहने थी जो घुटने तक लटक हुई थी। उसकी आँखे पहले से अधिक बड़ी हो गयी थी और डरावनी भी लग रही थी। उसके एक हाथ में भयंकर खड्ग था

और दूसरे हाथ में थी खोपड़ी। अति भयानक और डरावनी लग रही थी उस समय श्यामांगी। एक ऐसी भी वस्तु थी—जिस पर अभी तक मेरी नजर नहीं पड़ी थी और वह वस्तु था एक भयंकर लम्बा काला नाग—जो मुक्तस्तनी श्यामांगी के गले में लटक कर रेंग रहा था इधर—उधर। आप ही जरा सोचिए कैसा रहा होगा वह अवर्णनीय और भयानक दृश्य। श्यामांगी के स्थान पर एक श्मशान भैरवी का अकल्पनीय रोमांचकारी रूप देख रहा था उस समय मैं।

उस समय पूर्ण सम्मोहित अवस्था में था मैं और उसी अवस्था में फिर ऐसी आवाज में जो लगता था कि दूर से आ रही हो—श्मशान भैरवी के रूप में श्यामांगी कहने लगी—मैं महादेवी एकांगनशा हूँ मातृत्व की देवी संहार की वधु। चार सौ वर्ष पहले एक महान और दुर्धर्ष महाकापालिक ने यहां चिताग्नि के आसन पर बैठकर तमोराज्य से मेरा आवाह्न किया था और तब से मैं यहां हूँ और है उस कापालिक का नरमुण्ड भी। कापालिक का वह नरमुण्ड आपने आप में तमोगुणी तांत्रिक सिद्धियों से परिपूर्ण है और उसकी सहायता से साधारण मनुष्य भी इच्छानुसार अपने किसी भी कार्य को सम्पन्न कर सकता है। मैं पाषाणवत् बैठा सब देख सुन रहा था। जैसे स्वप्नावस्था में होऊँ और स्वप्न किसी अदृश्य शक्ति के अधीन हो।

मैं सीधा अपलक श्यामांगी को निहार रहा था और एक विचित्र उत्तेजना की लहरे मेरी रगों में दौड़ रही थी उस समय। श्यामांगी ने उसी अवस्था में मेरा हाथ थामकर अपने ऊपर वाले कच्चे कमरे में ले गयी। वह छोटा सा कमरा चारो ओर से बन्द था। न खिड़की और न तो कोई दरवाजा। केवल एक दरवाजा था जिससे भीतर गया था मैं और उसी दरवाजे से थोड़ी बहुत रोशनी आ रही थी भीतर और उसी हल्की रोशनी में देखा—सामने की दीवार से लगकर मिट्टी का एक ऊँचा चबुतरा था और उसी चबुतरे के ऊपर काली मिट्टी की बनी एक ऐसी देवी की मूर्ति खड़ी थी जिसका रूप उस समय धारण किया था श्यामांगी ने। दोनों में बिलकुल साम्य था कहीं कोई अन्तर नहीं था। चबुतरे के सामने मिट्टी का ही एक हवनकुण्ड भी बना था और ठीक उसी के ऊपर एक बड़ा सा नरमुण्ड भी रखा था पत्थर पर। नरमुण्ड सामान्य से अधिक बड़ा

था और सजीव प्रतीत हो रहा था। मैंने देखा श्यामांगी देवी एकांगनशा ठीक सामने खड़ी हो गयी। उसकी पीठ मूर्ति की तरफ थी और वह सामने थी। उसके शरीर से मूर्ति पूरी तरह ढंक चुकी थी। न जाने कैसे उसी समय हवनकुण्ड में अपने आप प्रज्ज्वलित हो गयी अग्नि और उस कमरे का वातावरण एक विचित्र सुगन्ध से भर उठा।

मैं अभी तक श्यामांगी की ही ओर निहार रहा था। उसने भी अब मेरी आंखों में अपनी आँखें डाल दी। दृष्टि आजीवन भूल न सकूँगा मैं। वह दृष्टि श्यामांगी की कदापि नहीं थी जो कलकत्ता में मुझे गाइड के रूप में मिली थी। उस दृष्टि में एक प्रकार की प्यास एक प्रकार की कामोत्तेजना थी और था एक प्रकार का सम्मोहन और वह दृष्टि मुझे कुछ और के लिए विवश कर रही थी।

श्यामांगी मूर्ति से अभी भी सटी हुई थी। देखकर लगता था कि वह स्वयं देवी एकांगनशा है। देखते ही देखते हवनकुण्ड की अग्नि की लाल पीली लपटें ऊपर उठने लगीं और थोड़ी ही देर बाद उन्हीं लपटों के बीच से एक भीमकाय और जटाजूटधारी व्यक्ति प्रकट हुआ। बड़ा ही भयानक रूप था उस दैत्य जैसे व्यक्ति का। मन ही मन मैं सोचने लगा क्या यह वहीं सिद्ध कापालिक है जिसकी खोपड़ी मेरे सामने है। जैसे किसी ने धीमे स्वर में कहा– हाँ! यह वही कापालिक है, जिसका वह नरमुण्ड है और जिसका नाम है अघोरेश्वरानन्द कापालिक।

कापालिक अब तक पूरी तरह हवनकुण्ड से बाहर निकल आया था और वह मेरी ओर देखकर भयानक और रहस्यमय ढंग से मुस्करा रहा था। उसकी मुस्कराहट में कुटिलता भरी थी और क्रूरता की झलक थी उसकी बड़ी–बड़ी रक्ताभ आंखों में क्या चाहता था वह पिशाच ? क्या उद्देश्य था उस कापालिक का। मेरी समझ के परे था वह। मेरा सारा शरीर भय और आतंक से कांप रहा था उस समय। मेरी कितनी दयनीय स्थिति थी, यह बतला नहीं सकता मैं आपको।

हवन कुण्ड से निकलने वाली लाल पीली लपटें अब और अधिक तेज हो गयी थी। अपने चारो ओर सिर घुमाकर एक बार देखा उस कापालिक ने और जोर से अट्टहास किया फिर! मैं उठकर वहां से

भागना चाहा, लेकिन क्या भाग सका ? नहीं उस अट्टहास ने मेरे सारे शरीर को जड़वत बना दिया था, उस समय। हे भगवान! कहां आकर फंस गया मैं? उद्धार करो काली माँ, उद्धार करो देवी। मैंने देखा वह पिशाच कूदकर हवन कुण्ड से बाहर निकल आया। उसके हाथ में एक विशाल खड्ग था। उसी समय दो लड़कियाँ न जाने कहाँ से आ गयी। दोनों का शरीर तो था आठ, दस वर्ष की लड़की जैसा लेकिन सिर था कोहड़े जैसा जो मुड़ा हुआ था। नीबू की तरह बड़ी–बड़ी गोल आँखे थी जो बाहर की ओर निकली हुई थी और अपनी–अपनी जगह स्थिर थीं। पलके तो थी ही नहीं। दोनों के जबड़े नीचे की ओर लटके हुए थे। बड़े–बड़े दांत जबड़े नीचे की ओर लटके हुए थे। बड़े–बड़े दांत साफ दिखलायी दे रहे थे। कान भी हद से ज्यादा बड़े–बड़े थे। वे मेरी ओर देखते हुए भयानक ढंग से मुस्करा रही थी। वे दोनों भयानक रूप रंग के प्राणी कौन थे क्या किसी तमोराज के प्राणी थे और उसी समय जब मैं देवी एकांगनशा की मूर्ति से चिपकी श्यामांगी ओर देख रहा था, न जाने कैसे और कहां से एक दस बारह वर्ष का बालक वहां आ गया। कौन लाया उसे यह जान समझ न सका मैं। वह बालक अर्धतन्द्रिल अवस्था में था। कभी आँखें खोलकर चारो ओर देखता और आंखे बन्द कर लेता था वह। उसका गोरा शरीर पूरी तरह नग्न था और उस नग्न शरीर पर हल्दी जैसा कोई कोई पीला प्रलेप लगा था। मस्तक पर लाल सिन्दूर का टीका लगा था और गले में फूलों की माला पड़ी थी।

क्या इस बालक की बलि तो नहीं होगी? मेरे मन में यह विचार आते ही रोमाञ्चित हो उठा मैं एकबारगी। अब तक वातावरण और अधिक भयानक और रहस्यमय हो उठा था। अब वह भयानक कापालिक धीरे–धीरे चलकर बालक के पास आ गया था और झुककर उसकी ओर देखने लगा था। उस समय उसकी आँखों में कौन सा भाव था, यह समझ में नहीं आया। बालक अपने स्थान पर जोर से कांपा और फिर शांत हो गया। जरा आप ही सोचिए जलता हुआ हवन कुण्ड कालजिह्वा की तरह लपलपाती और ऊपर की ओर उठती हुई लाल पीली लपटे, हवन कुण्ड के निकट लेटा हुआ बालक और उसके पास ही बैठी हुई दो भयंकर रूप वाली लड़कियां और यमदूत की तरह हाथ में भयानक

खड्ग लिए खड़ा कापालिक और असहाय सा जड़वत बैठा मैं। कैसा रहा होगा वह दृश्य?

कमरे का वह पैशाचिक वातावरण और अधिक भयानक होता जा रहा था। आतन्कित अवस्था में था मैं। आगे का दृश्य तो और अधिक कारुणिक और हृदय विदारक था।

एक बेडौल बदसूरत लड़की ने आगे बढ़कर लेटे हुए बालक को उठाकर उसका सिर ऊपर कर दिया। बालक के सिर का बाल उसकी मुट्ठी में था। बालक अभी तक तन्द्रिल अवस्था में था। बीच में केवल एक बार आँखे खोलकर देखा चारो ओर और उसी समय कापालिक ने हाथ में लिए खड्ग को हवा में लहराया और दूसरे ही क्षण खच की आवाज हुई और उसी आवाज के साथ बालक का सिर अलग हो गया धड़ से। खून का फौव्वारा फूट पड़ा हवन कुण्ड के चारो ओर, एक निरीह अज्ञात बालक का रक्त फैल गया और जमीन लाल हो उठी उससे। कुछ देर तक बालक का खण्डित शरीर छटपटाता रहा खून से लथपथ और फिर शान्त हो गया हमेशा के लिए। कापालिक ने झुककर बालक का रक्तरंजित नरमुण्ड उठाया और उसे प्रज्ज्वलित हवनकुण्ड में डाल दिया। मांस के जलने की दुर्गन्ध से भर उठा दूसरे क्षण वातावरण। मैंने देखा वे दोनों पिशाचिणी लड़कियां बालक के शरीर के मांस को नोंच–नोंच कर चबाने लगी।

हे भगवान! कितना दर्दनाक दृश्य था वह और तभी एक विकट अट्टहास गूंज उठा उस तामसिक लोक के वातावरण में। देखा हाथ में रक्तरंजित विशाल खड्ग ताने वह यमराज जैसा कापालिक मेरी ओर बढ़ रहा था।

एक बालक की नरबलि के भयानक और वीभत्स दृश्य से अभी उबर ही नहीं पाया था कि तभी अपने सामने महाकाल को आता देखकर रूका न गया वहाँ मुझसे। न जाने कहां से मेरे भीतर कौन सी शक्ति जागृत हो उठी एकाएक उस समय। उठकर भागा मैं एक पल फिर रूका नहीं। अंधेरे में गिरता पड़ता बाहर आया। रात का अन्धेरा फैला था चारों तरफ। कुछ सूझ ही नहीं पा रहा था। मुझे गली पुकुर और टूटे–फूटे मकानों के बीच से निकलकर कैसे सड़क पर आया, यह स्वयं

नहीं जानता मैं। सड़क के किनारे एक पत्थर पर बैठकर काफी देर तक हांफता रहा और कांपता रहा भय से। कुछ समझ में नहीं आ रहा था क्या करूँ और क्या न करूँ? सचमुच बड़ी शोचनीय स्थिति थी मेरी उस समय। सबेरा हो चुका था। सड़क पर लोगों का आना जाना शुरू हो गया था। मैं भी उठा देखा, जिस पत्थर पर बैठा था वह पत्थर नहीं मेरी अटैची थी जिसे मैं श्यामांगी के कमरे में छोड़ आया था और जिसे साथ ले आने का होश ही नहीं था मुझे उस समय। हे भगवान! यह कैसा चमत्कार पूरे एक घंटे पैदल चलने के बाद किसी प्रकार शिवपुर ट्राम डीपों पहुँचा। वहाँ एक सहृदय सज्जन मिल गये। बंगाली थे महाशय। नाम था ठाकुर दा! ठाकुर दा को मेरी दयनीय दशा देखी नहीं गयी थी। शायद इसीलिए मेरी ओर आकृष्ट हुए थे वह। अपने घर ले गये। स्नान कराया और स्नान के बाद भोजन कराया। थोड़ी देर विश्राम करने के बाद जब उठा तो सांझ हो चुकी थी।

ठाकुर दा शिवपुर स्थित सहस्रभुजा काली के पुजारी थे। परिवार में पत्नी थी और एक पुत्री थी श्यामला। ठाकुर दा अति सज्जन और मृदुभाषी व्यक्ति थे। पहले मैंने अपना परिचय दिया और कलकत्ता आने का उद्देश्य बतलाया और अन्त में सुनायी हृदय विदारक वामाचार की वीभत्स कथा। सब कुछ सुनने के बाद थोड़ी देर तक ठाकुर दा गम्भीर रहे, फिर बोले—लगभग सात सौ वर्ष पहले वह इलाका घोर जंगल था। एक प्रकार से वह घोर जगल वाममार्गीय तांत्रिकों और भयंकर कापालिकों का साधना गढ़ था। कापालिकों के सबसे बड़े गुरु थे कापालिक अघोरेश्वरानन्द। कापालिक अघोरेश्वरानन्द अनेक दुर्लभ सिद्धियों के अधिकारी थे। गंगा में बहते हुए शवों को अपने साधना स्थान पर लाते। उसकी चिता बनाकर दाह संस्कार करते और जब चिताग्नि प्रज्ज्वलित हो उठती तो उसके सामने बैठकर साधना करते समाधिस्थ होकर। तंत्र में शायद इसी को चिता साधना कहते हैं, जो भी हो, चिता साधना के पश्चात् वह कापालिक महाशय शव साधना करते। यह क्रम बहुत समय तक चला। शव साधना द्वारा उस दुर्धर्ष साधक का तमोराज्य से सम्पर्क स्थापित हो गया था। जब क्या? अब तो एक प्रकार से तमोगुणी शक्ति का भण्डार ही उपलब्ध हो गया अघोरेश्वरानन्द को। अहंकार होना

स्वाभाविक था। तंत्र के अनुसार इस प्रकार के साधक में अहंकार ने जन्म ले लिया तो वह उसी के विनाश का कारण बन जाता है। जैसाकि मैंने सुना है, ठाकुर दा थोड़ा रूक कर आगे बोले—श्वास प्रश्वास के बीच जो आकाश यानि स्थान है उसके स्वामी यमराज और उसकी अधिष्ठात्री शक्ति एकांगनशा है।

तंत्र का यह अति रहस्यमय विषय है शीघ्र इस पर ध्यान नहीं जाता। श्वास प्रश्वास के बीच का रिक्त स्थान आकाश तत्व है। उस पर अधिकार प्राप्त करने के पश्चात् शव साधना द्वारा तमोगुणी राज्य की महाशक्ति और आकाशतत्व की अधिष्ठात्री देवी एकांगनशा का सान्निध्य प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा ही किया कापालिक अघोरेश्वरानन्द ने। परिणाम जो होना था वह हुआ महाशक्ति देवी एकांगनशा से सम्पर्क स्थापित हो गया उनका। एक बार ध्यान की अवस्था में उस महाशक्ति ने दर्शन भी दिया उस साधक को। देवी का भयानक रूप देखकर स्तब्ध हो गये अघोरेश्वरानन्द। सारा शरीर रोमाञ्चित हो उठा उनका। बाद में उसी रूप के आधार पर उन्होंने उस महातामसिक शक्ति की पाषाण प्रतिमा स्थापित की अपने साधना कक्ष में। जिसे आपने देखा भी होगा। अब साधक महाशय देवी एकांगनशा को सिद्ध करना चाहते थे। इसके लिए शिशुबलि आवश्यक थी। खोज शुरू हुई। अन्त में प्रयास सफल हुआ। दस ग्यारह वर्ष का बालक मिल गया उन्हें। वह बालक कलकत्ता के सेठ चरणदास का इकलौता पुत्र था। सेठ चरणदास उस समय के बहुत बड़े व्यापारी थे। काफी मान मनौती और पूजा पाठ के बाद पुत्र लाभ हुआ था सेठ जी को। वे स्वयं धार्मिक प्रवृत्ति के थे। नित्य ब्राह्मणों को भोजन कराना, गरीबों को अन्न वस्त्र दान करना और धार्मिक कार्यों में आगे बढ़कर सहयोग देना उनका कार्य था। उनकी पत्नी शीला देवी भी अपने पति की अनुगामिनी थी। उन्होंने अपनी कोठी में राधा कृष्ण की मूर्ति स्थापित कर रखी थी। पूजन करना, भोग लगाना, भजन करना उनका नित्य का कार्य था। सचमुच पति परायण और भगवद्भक्त थी शीला देवी। राधाकृष्ण का आदेश समझकर उन्होंने अपने एकमात्र पुत्र का नाम रखा था गोपाल। बहुत ही सुन्दर था गोपाल। बड़ी—बड़ी आँखे, गोल मटोल चेहरा, ऊँचा ललाट

और गम्भीर स्वभाव जरा सोचिए शर्मा जी ऐसे निरीह बालक की बलि से निश्चय ही माँ महामाया का हृदय द्रवित और विगलित हो उठा होगा और भर उठा होगा करुणा से इसमें सन्देह नहीं और तभी तो तमोगुणी राज्य की महाशक्ति देवी एकांगनशा की वह पाषाण प्रतिमा अपने आप सजीव हो उठी नरबलि का हृदयविदारक और करुण दृश्य देखकर। अट्टहास कर उठी देवी एकांगनशा और अट्टहास के बाद गूंज उठी उस तमोगुणी वातावरण में उस महाशक्ति की क्रोध भरी आवाज–तू एक धर्मनिष्ठ परिवार के एकमात्र निरीह पुत्र–जो स्वयं अपने आप में एक उच्च आत्मा थी–की बलि देकर मुझे प्रसन्न और सिद्ध करना चाहता था मूर्ख! लेकिन ऐसा सम्भव नहीं है। तू एक पथभ्रष्ट साधक है। तुम्हारी आत्मा अहंकार और दम्भ से भरी हुई है। बालक की आत्मा पुनः अपनी माँ के गर्भ से जन्म लेगी ही लेकिन तू.....तू.....नराधम तेरी आत्मा दीर्घकाल तक यक्षलोक में यातनाग्रस्त रहेगी। इसके बाद एक अलौकिक किन्तु आश्चर्यजनक घटना घटी। देवी एकांगनशा ने स्वयं अपने खड्ग से कापालिक अघोरेश्वरानन्द का सिर धड़ से अलग कर दिया। पूरी जमीन पर फैल गया एक पथभ्रष्ट तांत्रिक का खून और उस खून से भींग उठा उसका शरीर भी। खण्डित मुण्ड जा गिरा था देवी एकांगनशा के चरणों के निकट। सबसे आश्चर्य की बात तो यह थी शर्मा जी कापालिक अघोरेश्वरानन्द का वह खण्डित मुण्ड चीत्कार करते हुए बोल पड़ा– माँ क्षमा कर दो, क्षमा कर दो माँ मुझे मुक्त कर दो.... मुक्त कर दो माँ। थोड़ा रूक एक गिलास पानी पीया ठाकुर दा ने और फिर एक लम्बी सांस लेकर बोले–उस महातंत्र साधक की आत्मा को। माँ ने मुक्त किया कि नहीं यह तो मैं नहीं जानता हाँ गोपाल की आत्मा ने अवश्य लिया जन्म अपनी माता के गर्भ से। क्या मैं आपसे कुछ पूछ सकता हूँ, पूछिये! बेझिझक पूछिये ठाकुर दा बोले।'

श्यामांगी कौन थी और क्यों ले गयी थी वहां मुझे और उसका उद्देश्य क्या था इसकी पृष्ठभूमि में? मेरे प्रश्नों को सुनकर न जाने किस दृष्टि से एक बार मेरी ओर देखा ठाकुर दा ने। ऐसा लगा उनके चेहरे पर उभर आये भाव से कि उन्होंने यह सोचा न रहा होगा कि मैं ऐसा प्रश्न भी करूँगा उनसे।

शर्मा जी! आप एक ऐसे व्यक्ति हैं जो योग तंत्र के अथाह सागर में प्रवेश करने का प्रयास कर रहे हैं। अपनी दिशा में शनै–शनै सफलता भी कर रहे हैं प्राप्त। तंत्र साधना हो या हो योग साधना सभी आध्यात्मिक साधना में नारी की आवश्यकता पड़ी है, लेकिन उसकी भी अपनी एक विशिष्ट सीमा है। साधना भूमि में नारी के तीन भेद है–प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा। इन तीनों के तीन रूप है– भैरवी, महाभैरवी और दिव्य भैरवी। इनकी अलग–अलग तीन दीक्षायें है–जिनको स्पर्श दीक्षा, मंत्र दीक्षा और शक्तिपात दीक्षा की संज्ञा दी गयी है। गुरु के तीन भाव है, गुरु भाव, महागुरु भाव और सद्‌गुरु भाव। गुरु भाव से स्पर्श दीक्षा, महागुरु भाव से मंत्र दीक्षा और सद्‌गुरु भाव से शक्तिपात दीक्षा प्रदान की जाती है। श्यामांगी को कापालिक ने केवल स्पर्श दीक्षा ही प्रदान की थी। यह सुनकर थोड़ा आश्चर्य हुआ मुझे। पूछा क्या श्यामांगी भैरवी थी उस कापालिक की।

सिर हिलाकर ठाकुर दा ने उत्तर दिया–हाँ! भैरवी थी वह।

श्यामांगी की भी अपनी एक अलग कथा है

वह क्या ? उत्सुक हो उठा मैं।

स्पर्श दीक्षा के लिए विशुद्ध अक्षता चाहिए तभी वह भैरवी पद के लिए योग्य हो सकती है अन्यथा नहीं। स्पर्श दीक्षा द्वारा योग्यता लाभ होने पर आगे भैरवी को मंत्र दीक्षा देकर महाभैरवी का स्थान दिया जाता है। इसी प्रकार शक्तिपात दीक्षा प्राप्त कर महाभैरवी, दिव्य भैरवी का स्थान ग्रहण करती है।

उस समय आसाम से लगा हुआ बंगाल की सीमा पर एक स्टेट था जिसके मालिक थे रायचौधरी ध्रुवपदनारायण घोषाल। घोषाल महाशय धार्मिक और आध्यात्म प्राण जीव थे। तीन पुत्रों में अन्तिम सन्तान थी उनकी श्यामांगी। घोषाल महाशय तंत्र में भी थोड़ी रूचि रखते थे। उस समय आसाम और बंगाल वाममार्गीय शाक्त साधकों और कापालिकों का बहुत बड़ा गढ़ था। नैयायिकों और विभिन्न प्रकार के दार्शनिक मत के अनुयायियों का भी अपना–अपना क्षेत्र था। मुग्धाभक्ति की भी धारा प्रवाहित थी लेकिन इन सबके ऊपर 'पंचमकार' का प्रभाव सर्वाधिक था।

ऐसी सम–विषम स्थिति में कापालिक अधोरेश्वरानन्द की दृष्टि घोषाल महाशय पर पड़ी। उन्होंने उनकी 'तंत्र रूचि' का लाभ उठाना चाहा। फिर क्या? कापालिक के आदेश पर प्राय नित्य ही तांत्रिक मत से हवन पूजन आदि होने लगा राजभवन के प्रांगण में। धीरे–धीरे कापालिक का प्रभाव बढ़ता गया राजपरिवार पर और घोषाल महाशय भी वशीभूत होते गये कापालिक के। उस समय श्यामांगी की अवस्था दस वर्ष थी। श्याम रंग होने पर भी वह अति सुन्दर थी। उसका स्वभाव भी अन्य बालिकाओं की तरह चंचल और अस्थिर नहीं था। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि दस वर्षीया श्यामांगी के घने काले बाल इतने लम्बे थे कि खुल जाने पर जमीन का करते थे स्पर्श और यही विशेषता देखकर आकर्षित हो गया कापालिक। मुग्ध भाव से काफी देर तक देखता रहा वह सरल निश्छल और कोमल श्यामांगी की ओर। अपनी भैरवी बनाने के लिए व्याकुल हो उठी उसकी आत्मा। फिर कुचक्र शुरू हुआ। एक दिन अवसर देखकर कापालिक ने घोषाल महाशय से गम्भीर स्वर में कहा रायचौधरी आपके परिवार में आपकी कन्या के रूप में एक अति दुष्ट आत्मा ने जन्म लिया है। कन्या के ग्यारह वर्ष की अवस्था में प्रवेश करते ही आपका सारा वैभव समाप्त हो जायेगा। इतना ही नहीं आपका राज्य भी म्लेक्षों के अधिकार में चला जायेगा। निश्चय ही आपकी अन्तिम अवस्था अतिकष्टमयी होगी इसमें सन्देह नहीं। एक सिद्ध कापालिक के मुख से यह भविष्यवाणी सुनकर एकबारगी अवाक् और स्तब्ध रह गये घोषाल महाशय। चिन्तित होना स्वाभाविक था। किसी प्रकार अपने आपको संभालते हुए भर्राये स्वर में बोले महाराज! आप अन्तर्यामी है। आपकी दृष्टि में कोई मार्ग तो होगा ही भावीं विपत्ति के नाश का? यह सुनकर सिर उठाकर और आँखे मूंदकर आकाश की ओर देखने लगा वह कापालिक। लगा जैसे घोषाल महाशय के सर्व कल्याण के लिए कोई उपाय सोच रहा हो वह। थोड़ी देर बाद उसी मुद्रा में गम्भीर स्वर में बोला कापालिक है रायचौधरी, उपाय है। यदि आप अपनी कन्या को यहाँ श्मशान भैरव के चरणों में अर्पित कर दे तो कोई अनिष्ट नहीं होगा। आपकी मान प्रतिष्ठा, यश वैभव आदि पर किसी भी शत्रु की कुदृष्टि नहीं पड़ेगी। कल्याण ही कल्याण होगा भविष्य में। यह सुनकर चिन्तित और

व्याकुल हो उठे घोषाल महाशय एकबारगी। एक ही कन्या थी पूरे परिवार की दुलारी। उसके बिना कोई कैसे रह सकेगा लेकिन नियति के सामने विवश था पूरा राजपरिवार। एक सिद्ध कापालिक की भविष्यवाणी कदापि असत्य नहीं हो सकती। पूरे परिवार को झुकना पड़ा। समझ लीजिये शर्मा जी! कापालिक की सारी भविष्यवाणी छल से भरी हुई मनगढ़ंत थी। केवल मात्र श्यामांगी को प्राप्त करने के लिए ही वाक्जाल फैलाया था उसने और उस वाक्जाल में सीधे साधे सरल चित्त घोषाल महाशय फंस भी गये। फिर क्या हुआ ? जिज्ञासु हो उठा मैं। होगा क्या ? जो होना था वही हुआ विषण्ण भाव से बोले ठाकुर दा—कापालिक अघोरेश्वरानन्द के विशाल मठ में एक भव्य समारोह का तांत्रिक आयोजन हुआ। उस आयोजन में घोषाल महाशय का पूरा परिवार भी सम्मिलित हुआ। निरीह विवश और निश्छल बालिका को नहला धुलाकर लाल वस्त्र पहनाया गया। सिन्दूर का टीका लगाया गया और गले में पहनायी गयी माला। देखकर लगता था सचमुच माँ जगदम्बा श्यामांगी के रूप में अवतरित हो गयी है।

श्यामांगी को एक ऊँचे आसन पर बैठाकर उसकी कापालिक विधि से पूजा की गयी। फिर शुरू हुई पूजा काल भैरव की। पूजा के बाद हवन हुआ और हवन के बाद एक मोटे ताजे भैंसे की दी गयी बलि और अन्त में दी गयी श्यामांगी को स्पर्श दीक्षा। प्रसन्न हो उठा वह भयंकर कापालिक। मदिरा पान से उसकी आँखे लाल हो रही थी उस समय। पशु रक्त से रंजित खड्ग से रक्त लेकर उसका घोषाल महाशय के मस्तक पर लम्बा टीका लगाते हुए बोला—विजयी भव। पूरे राजपरिवार ने झुककर कापालिक का चरणस्पर्श किया और वापस लौट आया श्यामांगी को अर्पित कर। सभी के नेत्र सजल थे, एक प्रकार से सभी रो रहे थे श्यामांगी के वियोगजन्य पीड़ा के कारण। आगे की कथा थोड़ी मार्मिक हैं शर्मा जी सुनाने की तो इच्छा नहीं है लेकिन जब इतना सुना दिया तो शेष में क्या रखा है—ठाकुर दा थोड़ा विगलित हो उठे। कुछ क्षण के लिए जैसा लीन हो गये अपने आपमें। समय चक्र घूमता रहा। धीरे—धीरे दस वर्ष का समय न जाने कब और कैसे सरक गया अतीत में। श्यामांगी अब बीस बाइस वर्ष की युवती थी। रूप लावण्य और

सौन्दर्य की साक्षात् मूर्ति। कापालिक ने तांत्रिक साधना भूमि में भरपूर उपयोग किया श्यामांगी का, लेकिन उसकी आत्मा की पीड़ा की पीड़ा दर्द व्यथा को समझ न सका वह अहंकारी साधक श्यामांगी मुक्त होना चाहती थी मठ से, मठ के वातावरण से और उस कापालिक से भी। मार्ग नहीं मिल रहा था। कोई सहयोग देने वाला भी नहीं था। मठ में स्थापित काली माँ की मूर्ति के सामने बैठकर घंटों रोती श्यामांगी। 'माँ' ने सुन लिया एक दिन उसकी करुण पुकार को शारदीय नवरात्र दुर्गापूजा का महोत्सव शक्ति साधना का पर्व। दर्शनार्थियों की भीड़ जुटने लगी माँ काली का दर्शन–पूजन करने के लिए मठ में महाष्टमी की महापूजा थी जिसकी आयोजिका थी श्यामांगी। लाल चौड़े पाढ़ की पीले रंग की रेशमी साड़ी, पैर में महावर मस्तक पर लाल सिन्दूर का टीका, गले में हार कलाईयों में शंख के वलय पीठ पर बिखरी हुए घनी केशराशि, सौम्य शान्त गम्भीर मुखमण्डल और आँखों में एक अबूझ सा भाव जिसे कोई भग्न हृदयी ही समझ सकता था।

भीड़ से थोड़ा हटकर एक गौरवर्ण सुन्दर युवक खड़ा था। ताड़केश्वरी धोती और ढाकेमलमल का जरीदार कुर्ता पहने था वह। हाथ में सोने का रत्नजड़ित कंगन और गले में सोने की चेन और कानों में हीरे का कुण्डल उस युवक के व्यक्तित्व को और निखार रहा था। जिसे देखकर लगता था कि किसी उच्च सभ्य और सुसंस्कृत बंगदेशीय परिवार का युवक है वह। उसका व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि बरबस नजर उसकी ओर उठ जाती थी लोगों की विशेषकर युवतियों की। लेकिन वह युवक इन सबसे बेखबर और अपने आप में लीन दोनों हाथ विवेकानन्द की तरह सीने पर बांधे एकटक श्यामांगी को देख रहा था।

कौन था वह सुदर्शन युवक?

नदिया ग्राम के प्रसिद्ध व्यवसायी और धनी कृष्णधर चौधरी का एकमात्र पुत्र गंगाधर चौधरी अचानक सिर घूम गया गंगाधर चौधरी की ओर अपनी ओर स्थिर दृष्टि से देखते हुए एक युवक पर नजर पड़ते ही एकबारगी सकपका गयी श्यामांगी। होंठ कांपने लगे माथे पर पसीने की बूँदे झिलमिला उठी। चेहरा लाल हो उठा।

कौन है यह युवक? क्यों आया है यहाँ ? क्या 'माँ का दर्शन....तो फिर...मेरी ओर क्यों देख रहा है इस तरह! क्या चाहता है वह?

गंगाधर चौधरी के लाल होंठों पर मुस्कराहट के कण बिखर गये दूसरे क्षण। श्यामांगी ने भी लजाकर सिर नीचा कर लिया। उसका हृदय धड़क रहा था जोर–जोर से फिर क्या दो युवा हृदय एक दूसरे से मिलने के लिए व्याकुल हो उठे।

एक रात मठ के बाहर बगीचे में दोनों मिले और उस प्रथम मिलन में ही सारा कुछ निर्णित हो गया। दोनों युवा हृदय विवाह बन्धन में बंधने के लिए तैयार हो गये।

लेकिन क्या दोनों परिणय सूत्र में बंधे? नहीं नियति में तो कुछ और ही लिखा था जिसे पढ़ न सके दोनों। न जाने कैसे इन बातों का पता लग गया कापालिक अघोरेश्वरानन्द को। उसकी साधना का भविष्य अन्धकार में डूबता हुआ नजर आया। क्या करे और क्या न करें? उस समय तक बंग समाज काफी जागरूक हो चुका था। बाल विवाह विधवा उत्पीड़न, कन्या अपहरण आदि मुद्राओं को लेकर आन्दोलन शुरू हो चुका था। दूसरी ओर मुगल शासकों और नवाबों की शनि दृष्टि पड़ने लगी थी बंगाल पर। इन सब कारणों से विवश हो गया था कापालिक एक बात और थी वह यह कि तंत्रमंत्र के नाम पर ढोंग पाखण्ड और अत्याचार के विरूद्ध भी आवाज उठने लगी थी इसका सबसे बड़ा कारण था, एक तांत्रिक द्वारा दी गयी नरबली। इससे बंग समाज भड़क उठा था एकबारगी।

कापालिक ने इन सबको देखते हुए बीच का रास्ता निकाला, जो अपने आप में अत्यन्त वीभत्स और भयानक था। एक रात श्यामांगी मृत पायी गयी अपने कमरे में। उसका सारा शरीर नीला पड़ गया था। निश्चय ही उसे कोई भयानक विष दे दिया गया था, इसमें सन्देह नहीं। दूसरे दिन ही उसकी समाधि बना दी गयी मठ के सामने बाग में। जब श्यामांगी की अकस्मात् मृत्यु का समाचार गंगाधर को मिला तो वह हतप्रभ और स्तब्ध रह गया। उसके हृदय को इतना कठोर आघात लगा था कि उसके सपने कांच की तरह टूटकर छिन्न भिन्न हो गये एकबारगी। गंगा किनारे बैठकर काफी देर तक अपलक निहारता रहा आकाश की

ओर शून्य में और फिर उसी शून्य में विलीन हो गया उसका अस्तित्व।

आप कहना क्या चाहते हैं?

गंगा में छलांग लगाकर आत्महत्या कर ली गंगाधर ने। इतना कहकर ठाकुर दा ने श्यामला को आवाज दी–खोखी जल ला।

पानी पीकर ठाकुर दा ने एक लम्बी सांस ली और कहा बस, अब इस अविश्वसनीय और दारुण कथा के अन्त में इतना ही कहना शेष है कि श्यामांगी की प्रेतात्मा अपनी मुक्ति की कामना के लिए आज भी भटक रही है हावड़ा और कलकत्ता की सड़कों और गालियों में।

ऐं! क्या कहा आपने?

हाँ सत्य कह रहा हूँ शर्मा जी! भैरवी दीक्षा प्राप्त होने के कारण प्रायः अपने अपने स्थूल शरीर में ही विचरण करती है वह। उसकी आत्मा को कब मुक्ति मिलेगी यह तो माँ काली ही जान समझ सकती है।

मुझसे गाइड के रूप में श्यामांगी क्यों मिली थी? मुझसे क्या चाहती थी वह और मेरे साथ ऐसा सब कुछ क्यों किया उसने? इन सबका समुचित उत्तर शायद नहीं था ठाकुर दा के पास। मेरा मन विषण्ण हो चुका था। मेरी मानसिक स्थिति कुछ विचित्र सी हो गयी थी और यही कारण था कि ठाकुर दा को ये सारी कथाएँ कैसे मालूम हुई? यह पूछने का साहस न कर सका मैं। रूका न गया मुझसे फिर! ठाकुर दा का चरण स्पर्श किया, अटैची उठायी और चल पड़ा स्टेशन की ओर! अब मैं एकपल रूकना नहीं चाहता था कलकत्ते में। राखाल बाबू के दर्शन लाभ की भी इच्छा समाप्त हो गयी थी। प्लेटफार्म पर कालकामेल खड़ थी। टिकट लिया और बैठ गया ट्रेन में।

आप समझेंगे यह रहस्यमयी करूण कथा यही समाप्त हो गयी। नहीं महाशय नहीं, अभी तो 'अंत' शेष है। कुछ दिनों के बाद सारी कथा की स्मृतियाँ लुप्त हो गयी धीरे–धीरे और वे सिमट गयी मेरी डायरी के पन्नों में लेकिन श्यामांगी का अस्तित्व बराबर बना रहा मेरे मानसपटल पर दीर्घकाल तक। लगा जैसे उसका अस्तित्व पूरी तरह चिपक गया हो मेरे जीवन से। उससे अपना ध्यान हटाने का काफी प्रयत्न किया, लेकिन सफलता नहीं मिली। मन में कभी–कभी अपने आप वह खूनी दृश्य भी उभर आता श्यामांगी के साथ। फिर सारी रात सो न पाता मैं और वह

रात मेरे लिए भयानक हो जाती। यह एक दो रात की बात नहीं थी। फिर तो वैसी ही भयानक रातों का कभी भी समाप्त न होने वाला सिलसिला शुरू हो गया मेरे जीवन में। मेरी मानसिक अवस्था एक प्रकार से शोचनीय हो गयी लेकिन श्यामांगी ने मेरे सपनों में आना नहीं छोड़ा और न तो वे भयानक दृश्यों ने। मैंने नींद की गोली खानी शुरू की। कोई लाभ नहीं मनोवैज्ञानिको से भी परामर्श लिया कोई लाभ नहीं। किसी भी काम में मन ही नहीं लगता था पागलों की तरह इधर–उधर भटकता। किसी शुभचिन्तक ने शराब पीने की सलाह दी। शराब पीने लगा दिन में भी और रात में भी कोई लाभ नहीं। मेरी आँखों से नींद और दिन का चैन लुट गया था।

एक अजीब सा कोई अज्ञात भय बराबर सताने लगा था मुझे। मैं आपको अपनी मानसिक और वैचारिक स्थिति को बतला नहीं सकता बन्धु!

बरसात का मौसम था। आकाश में बादल घिरे हुए थे। हल्की–हल्की बारिश हो रही थी। सायंकाल का समय था। सामने टेबल पर शराब की बोतल और गिलास थी। पूरा गिलास पी गया मैं। यह मेरा रोज का काम था। गरजते बरसते बादलों की ओर देखने लगा इत्मीनान से। नशा को तो चढ़ना ही था और वह चढ़ने लगा धीरे–धीरे अब तक। सांझ की स्याही वातावरण में बिखर चुकी थी और उसी अवस्था में मैंने देखा, एक स्याह छाया धीरे–धीरे बादलों के बीच से होकर बढ़ रही है मेरी ओर। निश्चय ही किसी नारी की छाया थी वह, इसमें सन्देह नहीं। कुछ ही क्षणों के बाद वह छाया मेरे निकट आ गयी। स्पष्ट हो गया पहचानने में देर न लगी मुझे श्यामांगी थी वह। शरीर पर सफेद साड़ी थी और लम्बे बाल हवा में उड़ रहे थे। स्तब्ध रह गया मैं। रोमाञ्च हो आया सारे शरीर में। एक मृतात्मा सशरीर उपस्थित थी मेरे सामने। हत्‌वाक् सा देखने लगा मैं उसे। मैं श्यामांगी हूँ पहचाना नहीं पहचानोगे कैसे? गाइड का रूप नहीं है न इसीलिए। नहीं श्यामांगी तुमको कैसे भूल सकता हूँ मैं तुम तो रोज मेरे सपने में आती हो। शराब मुझे भी दोगे? श्यामांगी खड़ी–खड़ी ही बोली।

हाँ! क्यों नहीं और एक पूरी गिलास भरकर शराब रख दी मैंने सामने। एक क्षण का भी सौवां हिस्सा गिलास खाली हो गयी। हे

भगवान्! अब क्या होगा? क्यों आयी है श्यामांगी की आत्मा? क्या चाहती है वह सोचने लगा मैं। दूसरा गिलास खाली करते हुए श्यामांगी कहने लगी आपकी दारुण स्थिति देखकर रहा नहीं गया मुझसे और आना पड़ा तुम्हारे पास। आपकी जो स्थिति है उसका कारण मैं स्वयं हूँ। सूक्ष्म लोक में उसी समय से भटक रही हूँ। गंगाधर ने भी मेरा साथ छोड़ दिया। वह पुण्यात्मा था इसलिए उसने जन्म ले लिया लेकिन मैं कैसे ले सकती थी जन्म। मैं तो बंधी हुई हूँ कापालिक के कारण। मरने के बाद भी नहीं छोड़ा उस अधम पापी ने मुझे। एकबार मुक्ति की कामना लेकर श्यामला के माध्यम से ठाकुर दा को मैंने सुनाई थी सारी कथा। लेकिन मुक्ति नहीं दिला सके ठाकुर दा मुझे। शायद उनके बस के बाहर की बात थी।

आप एक ऊँची आत्मा हैं। आपका चरित्र और आपका ज्ञान बहुत ही ऊँचा है कोई समझ नहीं सकता। जानते हैं सर! इसीलिए आपके सान्निध्य में आयी मैं गाइड के रूप में। खूब अच्छी तरह मैं जानती हूँ सर! एकमात्र आप ही मुझे दिला सकेंगे इस भयंकर यातना से मुक्ति और कोई नहीं सर और कोई नहीं। लगभग सात सौ वर्षों से भटक रही हूँ। कहाँ जाऊँ क्या करूँ? कहाँ मिलेगी मेरी आत्मा को शांति और कहाँ मिलेगी मुझे मुक्ति।

कुछ सोचकर मैं बोला कैसे मिलेगी तुमको मुक्ति? इस संबंध में मैं तो कुछ जानता समझता ही नहीं। तुम्ही बतलाओ कोई मार्ग।''

मेरी बात सुनकर कुछ सोचती हुई श्यामांगी बोली तीन काम करने होंगे आपको सर!

क्या?

एक गरीब ब्राह्मण कन्या का विवाह कराना होगा। ग्यारह कन्याओं और ग्यारह ब्राह्मणों को भोजन कराना होगा और अन्त में काशी विश्वनाथ मंदिर में रूद्राभिषेक कराना होगा। किसी विद्वान ब्राह्मण से और एक विशेष तान्त्रिक अनुष्ठान भी करना होगा घबड़ा गया मैं एकबारगी। इन सब के लिए पैसा कहां से लाऊँगा और इन्तजाम भी करूँगा कैसे? शायद मेरे मन के भावों को समझ गयी श्यामांगी थोड़ा हंसकर बोली–चिन्ता न करें सर सब हो जायेगा अपने आप। आप बस

'हाँ कर दें। 'मैंने सिर हिलाकर 'हाँ' कर दिया और एक अदृश्य विपत्ति मोल ले ली उसी समय।

अचानक आकाश में बिजली कड़की और बादल गरज उठे और उसी के साथ श्यामांगी का पार्थिव अस्तित्व गायब हो गया मेरे सामने से और सबेरे जब सोकर उठा तो देखा, तकिये के नीचे हजार रूपये के तीस कड़कड़ाते नये नोट रखे हुए थे। समझते देर न लगी अपनी मुक्ति की व्यवस्था कर दी थी स्वयं श्यामांगी ने।

कौन सी विपत्ति मोल ली थी मैंने अन्त में यह भी बतला हूँ। मुक्त होने के बाद भी श्यामांगी का जन्म नहीं हुआ। उसका दिव्य और अलौकिक अस्तित्व किसी उच्चलोक में अभी भी बना हुआ है जिसकी आन्तरिक अनुभूति कभी न कभी होती ही रहती है मुझे। ऐसा लगता है—मेरे सामने नीले रंग की साड़ी पहने और बगल में बैग लटकाये खड़ी हैं श्यामांगी गाइड के रूप में और कहना चाहती है, सर मेरे जैसा गाइड आपको दूसरा कोई नहीं मिलेगा। इसलिए कि ज्यादा पैसा मैं नहीं लेती।

●

रहस्य ग्यारह

असम की रक्त पिशाचिनी
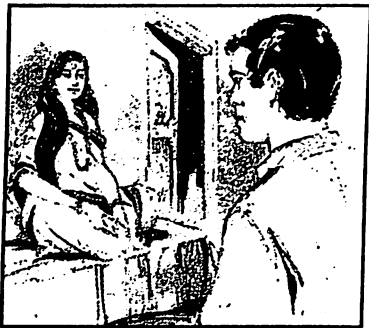
तंत्र शुरू से ही मेरे चिन्तन, मनन और अध्ययन का विषय रहा है। लेकिन इस दिशा में भट्टाचार्य महाशय से मुझे जो प्रेरणा मिली, वह निसन्देह मेरे लिए नवीन स्फूर्तिदायक सिद्ध हुई और एकबारगी जुट गया मैं शोध कार्य में। शक्ति तंत्र की अमोघ विद्या है कामरूप विद्या। सच पूछिए तो मैं उसी गोपनीय विद्या के तमाम रहस्यों से भलीभांति परिचित होना चाहता था। जब मैंने इस संबंध में भट्टाचार्य महाशय से चर्चा की तो उन्होंने बतलाया कि शक्ति तंत्र साधनाओं से सम्बन्धित शक्तिपीठ कामरूप कामाख्यापीठ है। इसीलिए कामरूप विद्या का प्रसाद जितना कामाख्या में है—उतना अन्यत्र नहीं है। कामरूप की स्त्रियां इस रहस्यमयी, गोपनीय विद्या को बहुत अच्छी तरह जानती हैं। इतना ही नहीं, वे उसका उपयोग भी कभी कदा किया करती है। मगर उन्हें पहचानना और उनसे सम्पर्क स्थापित करना बड़ा ही कठिन कार्य है।

उसी समय भेंट हुई ठाकुर जगमोहन सिंह से। ठाकुर जगमोहन सिंह अजयगढ़ के सम्पन्न जमींदार थे। उनका व्यक्तित्व बड़ा ही भव्य और आकर्षक था। राजोचित सभी गुण थे उनमें, लक्ष्मी पैर तोड़कर बैठी थी उनके परिवार में। भोग—विलास वैभव किसी की कमी नहीं थी। यदि कमी थी तो केवल एकमात्र सन्तान की। सन्तान की लालसा में वशीभूत होकर ठाकुर साहब ने एक के बाद एक तीन शादियां की थी। लेकिन फिर भी सन्तान का मुंह देखने का सौभाग्य नहीं मिला था उन्हें। एक

प्रकार के हताश और निराश हो चुके थे अब ठाकुर साहब। मगर फिर भी वंश कैसे चलेगा, इसकी चिन्ता बराबर सताती रहती थी उन्हें। यह बात नहीं कि पुत्र प्राप्ति के निमित्त कोई उपाय न किया हो उन्होंने। सभी प्रकार की दवादारू से लेकर तंत्र–मंत्र, पूजा–पाठ, हवन, यज्ञ आदि सब कुछ करके हार चुके थे वह। जिसने जो भी बतलाया वह किया उन्होंने पूरी श्रद्धा और पूरे विश्वास के साथ मगर परिणाम शून्य ही रहा। अन्त में नेपाल के किसी ज्योतिष के कहने पर इच्छा न रहते हुये भी चौथी शादी की उन्होंने। उस समय उनकी अवस्था पचास–पचपन के आस–पास थी, जबकि पत्नी की आयु थी बीस वर्ष।

ठाकुर साहब की चौथी पत्नी का नाम था दुलारी। अत्यधिक सुन्दर एवं आकर्षक युवती थी वह। छरहरा बदन, लम्बा कद, चम्पई रंग और तीखा नाक–नक्श। किसी देवबाला सा था उसका रूप और सौन्दर्य।

बातचीत के सिलसिले में ठाकुर साहब ने बतलाया था कि शादी करने की जरा–सी भी इच्छा नहीं थी उनकी। ज्योतिषियों और तांत्रिकों के चक्कर में पड़कर न जाने कितना रुपया खर्च कर चुके थे वह। मगर उस नेपाली ज्योतिषी की बातों में कौन–सा ऐसा जादू था कि प्रभावित हुए बिना न रह सके वह। सोचे–चलो जैसे तीन वैसे ही चार हो सकता है। उस ज्योतिषी की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हो लेकिन इसे भाग्य का विडम्बना ही कहा जायेगा कि तीन साल का समय गुजर गया। दुलारी की भी गोद सूनी ही रही। ठाकुर साहब के आंगन में बच्चे की किलकारी नहीं गूंजी। ठाकुर साहब अब बिल्कुल हताश हो चुके थे। उनका मनोबल भी टूट चुका था मगर दुलारी निराश नहीं हुई थी। व्यग्र और चिन्तित अवश्य दिखलायी दी थी मुझे। ज्योतिष और तंत्र–मंत्र के प्रति उनके मन में अभी भी अगाध विश्वास था। उसको किसी तांत्रिक ने बतलाया था कि यदि आसाम की मनकेरा चण्डी के मंदिर में पूरे चालीस दिन तक तांत्रिक विधि से सन्तानेश्वरी देवी का प्रयोग किया जायेगा तो निसन्देह पुत्र लाभ होगा। तांत्रिक की यह बात हमेशा गूंजती रहती थी दुलारी की आत्मा में। उसे यह विश्वास था कि सन्तानेश्वरी देवी के तांत्रिक प्रयोग से अवश्य सन्तान होगी उसे।

मनकेरा के नाम से परिचित था मैं। चारो ओर से घने जंगलों से घिरे हुए पहाड़ी तलहटी में था बसा मनकेरा गांव। सुना था कि उस गांव में औरतों की संख्या अधिक है और वे तंत्र–मंत्र जानती हैं। जादू–टोना करने में प्रसिद्ध हैं वे। एक बार उनके चंगुल में जो फंस गया तो फिर उसकी मुक्ति नहीं जो कोई भी मनकेरा गया था वह वापस नहीं लौटा। तंत्र मंत्र और जादू टोना के डर भय से कोई उधर जाने की हिम्मत नहीं करता। गुप्त रूप से निवास करने वाले शक्ति साधकों की खोज के सिलसिले में कई बार आसाम के घने जंगलों और दुर्गम स्थानों की यात्रा की थी मैंने मगर मनकेरा गांव की ओर जाने का साहस कभी नहीं जुटा पाया था मैं।

जब दुलारी को पता चला कि मैं मनकेरा से परिचित हूँ और सन्तानेश्वरी देवी का तांत्रिक प्रयोग भी जानता हूँ तो उसका मुरझाया हुआ चेहरा गुलाब के फूल की तरह खिल उठा और हमेशा बुझी रहने वाली उसकी आँखें भी चमक उठीं। मेरे करीब आकर चहकती हुई कहने लगी वह–"कब चलेंगे मनकेरा आप? आपको चलना होगा और मेरे लिये तांत्रिक प्रयोग भी करना होगा। मुझे ऐसा लग रहा है कि उस ज्योतिषी की और उस तांत्रिक की भविष्यवाणी जरूर सच होगी अब! बोलिये, चलेंगे न? करेंगे न, मेरे लिए सब कुछ.....?

दुलारी के स्वर में इतना अपनापन था, इतनी कातरता थी और इतनी व्याकुलता थी कि उसके अनुरोध को टाल न सका मैं। तुरन्त सिर हिलाकर स्वीकृति दे दी मैंने।

ठाकुर साहब यह सुनकर पहले तो तैयार नहीं हुये। मगर बाद में मेरे कहने पर साथ चलने की स्वीकृति उन्होंने भी दे दी। दुलारी की खुशी की कोई सीमा ही नहीं थी। जल्दी–जल्दी तैयारी करने लगी वह। तीसरे दिन हम सब लोग गौहाटी पहुँचे। वहां मेरे एक परिचित मिल गये। नाम था वीरभद्र गोस्वामी, तांत्रिक थे वह। अपनी तंत्र साधना के सिलसिले में दो तीन बार गये थे मनकेरा। उन्होंने बतलाया कि पहले डिब्रूगढ़ जाना होगा। वहां से चालीस मील दूर है मनकेरा। रास्ता काफी भयानक और दुर्गम है। कुछ दूर तक तो कच्ची सड़क है। उसके बाद

पहाड़ों के बीच और घने जंगलों से होकर टेढ़ी–मेढ़ी पगडण्डियों का रास्ता है। जहां तक सड़क है वहां तक बैलगाड़ी से जाया जा सकता है और उसके बाद पैदल।

गोस्वामी से मिली इतनी जानकारी मेरे लिए काफी थी। पूरा दिन बैलगाड़ी से यात्रा करने के बाद सांझ के समय हम लोग एक गांव में पहुँचे। वहां एक विचित्र व्यक्ति मिला। आयु बस, यही रही होगी चालीस के लगभग नाम था कालीपद गुहा। काला रंग, हट्टाकट्टा शरीर, मझोला कद, गोल चेहरा कोहड़ें जैसा बड़ा बेडौल सिर, चौड़ा मस्तक और उस चौड़े मस्तक के बीचों–बीच गहरे टीके जैसा अंगूठे के बराबर काला दाग। बड़ा ही कुरुप और अजीब लगा मुझे वह व्यक्ति। इतना ही नहीं उसका स्वर भी तीखा और कर्कश था। वाणी भी मुझे अत्यन्त कठोर और कर्ण कटु लगी। वह देखने में भी कठोर और क्रूर था। लेकिन बातचीत और व्यवहार से दीन–हीन और सरल दिखलायी पड़ता था। उसकी आँखों में एक विशेष प्रकार की चमक थी। मगर फिर भी उनमें से हर समय हीनता और दीनता ही झलकती रहती थी। बातचीत के सिलसिले में उसने बतलाया कि देवी का भक्त है वह। मनकेरा में काफी दिनों तक रह चुका है। उस समय कल्पना तक नहीं की थी कि वह काला, कुरुप और कर्कश व्यक्ति स्वयं इतना बड़ा तंत्र साधक है। जब उसे यह मालूम हुआ कि हम सब लोग मनकेरा जा रहे हैं तो वह भी साथ चलने के लिये तैयार हो गया।

गांव के बाद पन्द्रह बीस मील तक चारो ओर फैला हुआ घोर जंगल था। सचमुच रास्ता काफी भयानक था। कभी हाथियों का मदमत्त झुण्ड मिलता तो कभी दिखलायी देते लम्बी सांस लेते हुए भयानक अजगर। जब हम लोग मनकेरा पहुँचे, तो उस समय सांझ की स्याह कालिमा धीरे–धीरे फैल रही थी चारो तरफ। गांव के एक ओर घने जंगलों का सिलसिला था दूसरी ओर मीलों लम्बी सूनसान घाटी थी। जिसके सीने को चीरती हुई एक पहाड़ी नदी बह रही थी, नाम था सोना रानी और उसी के किनारे था मनकेरा का चण्डी मंदिर। काफी पुराना मन्दिर था। उसकी निर्माण कला को देखकर लगता था कि उत्तर मध्य युग में किसी कापालिक–शक्ति साधक ने अपनी किसी साधना की सिद्धि के लिये मंदिर का निर्माण बड़े ही मनोयोग से कराया होगा, इसमें सन्देह नहीं।

मंदिर के पीछे बहुत बड़ा पुराना पाकड़ का पेड़ था। जिसकी मोटी–मोटी जड़े–मंदिर की दीवारों को तोड़ती हुई दूसरी ओर निकल गयी थी। सामने की ओर पंचवटी थी जिसके चारो ओर फूलों के बाग थे। जिनमें कृष्णचूड़ा और जवा के ताजे फूल खिले हुए थे उस समय। बकुल के भी कई पेड़ थे। जिनकी डालियों पर पक्षी चहचहा रहे थे। इसके अलावा वातावरण में गहरी शान्ति बिखरी हुई थी और छायी हुई थी चारो तरफ घोर निस्तब्धता।

मन्दिर की धूल से भरी टूटी–फूटी सीढ़ियां चढ़ते समय लगा कि वर्षों से कोई आया न हो यहां। मंदिर के गर्भगृह का दरवाजा भी टूटा–फूटा और जीर्ण–शीर्ण था। फर्श पर धूल की मोटी परतें जमी हुई थी। भीतर हल्का–सा अंधेरा था लेकिन सब कुछ साफ दिखलायी दे रहा था। बिल्कुल बीच में पंचमुण्डी आसन था। जिस पर भगवती चण्डी की पाषाण प्रतिमा स्थापित थी। बड़ा ही विकराल और भयंकर रूप था देवी का। मुझे बड़ी ही सजीव लगी वह। काफी देर तक अपलक निहारता रहा मैं माँ महामाया की ओर। कालीपद गुहा ने बतलाया कि पहले यहां बलि होती थी। अमावस्या की रात्रि में बलि के रक्त से माँ को स्नान कराया जाता था और कुमारी कन्यायें पूजा करती थीं।

"क्या अब यह सब नहीं होता?" मैंने पूछा।

"बलि तो नहीं होती, लेकिन पूजा अवश्य होती है, हर अमावस्या की रात्रि में। गांव में एक लड़की है सोनिया, वही नग्न होकर करती है पूजा माँ की–गुहा ने बतलाया।

दूसरे ही दिन से सन्तानेश्वरी का प्रयोग शुरू कर दिया मैंने मंदिर में। गुहा ने प्रयोग में मेरी भरपूर सहायता की। उस दिन आमवस्या थी। सांझ की स्याह कालिमा धीरे–धीरे रात्रि के निविड़ अन्धकार में बदल चुकी थी। मैं नित्य की तरह अपना काम कर मंदिर के बाहर निकलने ही वाला था कि अचानक एक युवती प्रकट हुई वहां। बीस से अधिक आयु नहीं थी उसकी। यौवन की मादकता से भरी हुई सुगठित देह। काला स्याह रंग पीठ पर खुलकर बिखरे हुए बाल, उन्नत उरोज बड़ी–बड़ी आँखें, जिनमें एक ऐसा तेज था, जो बरबस आत्मा को आकर्षित कर लेता था। लाल रंग का घाघरा और उसी रंग की चोली पहने थी वह।

जिसके भीतर से उसका बरसाती नदी की तरह यौवन उफन कर बाहर निकल पड़ रहा था।

लेकिन सुन्दरी को इन सब बातों की कोई चिन्ता ही नहीं थी जैसे। वह सब कुछ देखती और मुस्करा कर रह जाती।

मेरा काम खत्म हो चुका था और वापस लौटने की तैयारी करने लगा था मैं। रवाना होने के एक दिन पहले मुझसे मिलने के लिए गुहा आया और बातचीत करके जब वह जाने लगा तो अचानक तुनककर खड़ा हो गया दरवाजे पर। हवा में कुछ सूंघता रहा कुछ क्षण तक। दीन–हीन सी उसकी आँखें फैल कर चौड़ी हो गयीं। सहसा मुझे भीतर की ओर ढकेल कर उसने कहा–"तुम बैठो शर्मा बाबू, मैं जाता हूँ अब और झटके से चला गया वह। मेरी समझ में कुछ नहीं आया। सकपकाया–सा देखता रहा उसे जाते हुए।

उस दिन दुलारी भी असामान्य और व्यग्र दिखलायी दी। उसका व्यवहार भी कुछ अजीब–सा लगा मुझे। रात में काफी देर तक अकेली बैठी रही वह मेरे पास और इधर–उधर की बातें करती रही। बीच–बीच में निर्लज्ज भाव से हंसना और उसके साथ यौवन के नशे में बोझिल देह का तरंगित होना, बड़ा ही विचित्र और उत्तेजक लगता मुझे। कभी–कभी तो अनायास हँसते हँसते लोटपोट हो जाती मेरे ऊपर और तब मेरा नासापुट भर जाता उसकी देह से निकलने वाली मादक गंध से और साथ ही कोमल अंगों के स्पर्श से सिहर उठता मेरा तन–मन पर मैं अपने को बराबर काबू में किये रहा। अन्त में नींद का बहाना करके सोने की तैयारी करने लगा मैं। तब दुलारी बेबस–सी उठी और अपनी खुमारी भरी आंखों से मुझे घूरती हुई भीतर चली गयी। आँखें मूंद ली मैंने मगर नींद कहां से आती? काफी देर तक मैं करवटें बदलता रहा।

भोर के समय थोड़ी झपकी लग गयी मुझे। सहसा किसी झोंके से आँखें खुल गयी मेरी। आँखें खुली, देखा–दुलारी मुझे झकझोर कर उठा रही थी। उसके चेहरे पर चिन्ता और घबराहट थी उस समय। हड़बड़ा कर उठ बैठा मैं। भोर होने वाली थी मगर अभी अन्धेरा था बाहर।

"क्या बात है?" पूछा 'मैंने।

"जरा ठाकुर साहब को देखिये। उनकी हालत न जाने कैसी होती जा रही है।" दुलारी की आवाज में घबराहट थी। बगल वाले कमरे में ठाकुर साहब थे। लपक कर जा पहुँचा मैं वहां। कमरे में एक तीखी दुर्गन्ध भरी हुई थी। कोने में सरसों के तेल की जलती हुई दीये की पीली और कांपती हुई रोशनी में ठाकुर साहब की शक्ल देखकर कांप उठा मैं एकबारगी। उनका भरा हुआ गोरा हंसमुख चेहरा सिकुड़कर मुट्ठी भर का हो गया था। सारी देह जर्द हो गयी थी। उंगलियों के नाखून काले पड़ गये थे। आँखें भी सूझी हुई थी। नाड़ी देखी छाती पर हाथ रखा तब सांस में सांस आयी।

"कब से ऐसी हालत है?" तीखे स्वर में पूछा मैंने।

दुलारी काफी घबराई हुई थी। हकलाहट में वह जो कुछ बतला सकी। उससे बस, इतना ही पता चल सका कि कोई दो घंटा पहले, जब वह मेरे पास से लौटी थी। तब ठाकुर साहब गहरी नींद में सोये थे। झकझोर कर हिलाने पर भी वे नहीं उठे बल्कि उनकी गर्दन एक ओर लटक–सी गयी। दुलारी शंका से कांप उठी बत्ती जलाया उसने। ठाकुर साहब का स्याह चेहरा देखकर उसका दिल धक से रह गया। किसी तरह दुलारी ने जोर लगाकर ठाकुर साहब को उठाया और अपने सहारे उन्हें बिठाया। एकाएक ठाकुर साहब के मुंह से जोर से एक डकार–सी निकली। फिर उनकी पूरी देह हिल उठी और उसी के साथ उल्टी करने लगे वह। कालिमा मिली उल्टी जिसकी भयानक दुर्गन्ध से पूरा कमरा भर उठा एकबारगी। एक के बाद एक कई उल्टियाँ करने के बाद शिथिल होकर गिर पड़े ठाकुर साहब। उसी के बाद दौड़कर मुझे बुलाने पहुँच गयी थी दुलारी।

अचानक मेरे मस्तिष्क में कुछ कौंध–सा गया। दुलारी की आँखों में अपनी आँखें गड़ाकर फिर तीखे स्वर में पूछा मैंने–"क्या रात में सोनिया आयी थी?"

दुलारी अचकचा उठी। फिर बोली–"हाँ, आयी थी।"

"ठाकुर साहब ने उससे मंगला रस लेकर पिया था ?"

"हाँ, पी थी।" डरते–डरते उत्तर दिया दुलारी ने।

मेरी शंका निर्मूल नहीं थी। ठाकुर साहब पर अवश्य कोई भयानक तांत्रिक प्रयोग किया गया था इसमें सन्देह नहीं। सोनिया ने ही किया था वह तांत्रिक प्रयोग और जब यह बात दुलारी को मालूम हुई तो वह फफक–फफक कर रो पड़ी, दोनों हाथों से चेहरा छिपाकर। फिर अटैची खोलकर उसने ढेर सारे नोट निकाले और उन्हें मेरे पैरों पर रखती हुई बिलख उठी–"ये मेरे पास रखे हैं। चाहे कितना भी खर्च हो–कर डालिये, मेरे सारे गहनें भी बेचने पड़े तो कोई गम नहीं। किसी तरह इनकी जान बचाइये आप।"

मैंने दुलारी का दोनों कंधा पकड़ कर झकझोर डाला। आवेश में दांत किचकिचाते हुए पूछा–"जल्दी बताओ, तुमने क्या किया है?"

सिर पीट कर और धुन कर रोती हुई दुलारी ने बतलाया कि कल शाम को सोनिया ने लाकर एक दवा दी थी। कहा कि वह पिला देने से आदमी रीछ की तरह शक्तिशाली और बलवान हो जाता है और एक तो क्या वह एक साथ कई औरतों को सन्तानवती बना सकता है। सोनिया ने यह भी कहा कि यह दवा बनाने के बाद उसके कबीले की पुजारिने विशेष मंत्रों से शोध कर उसे एक साल तक श्मशान में दबाकर जगाती है।"

मेरे खून में सनसनी दौड़ गयी। पूछा–"फिर क्या हुआ?"

दवा उसने खुद ही ठाकुर साहब को पिलायी थी और उसके बाद कमरे में काफी देर तक रही भी थी वह।

झोपड़ी के बाहर निकल पड़ा मैं और जंगली लोगों की बस्ती की ओर चल पड़ा। सच बात तो यह है कि मैं इस स्थिति से काफी विचलित हो उठा था। इस क्षेत्र से भलीभांति परिचित होनें के कारण मुझे ऐसी कितनी ही घटनाओं की जानकारी थी और ठाकुर साहब के साथ जो गुजर रही थी उससे मैं बेहद आतंकित हो उठा था। सोनिया ने यह काण्ड अवश्य किसी विशेष कारण से ही खड़ा किया है। अपने अनुभवों के कारण मुझे इस बात का पक्का विश्वास था। लेकिन उस समय मैंने इस बात की कल्पना भी नहीं की थी सोनिया का रूप इतना भयानक होगा। इन इलाकों में औरतों द्वारा जादू–टोना और तंत्र–मंत्र के बल पर पुरुषों को अपने काबू में कर लेने की कितनी ही कथायें प्रचलित हैं।

लेकिन ठाकुर साहब जैसे अधेड़ और अशक्त पौरुष वाले व्यक्ति के प्रति सोनिया जैसी उद्‌ग्र नवयौवना को ऐसी आशक्ति होगी। यह बात सोचने में ही अजीब लगती थी लेकिन संयोग की बात ही कहिये कि घंटो की दौड़–धूप बेकार गयी। सोनिया की खोज में निकला था, मगर वह नहीं मिली। झाड़–झंकार भरे जंगली रास्तों पर चलते–चलते मेरा सारा शरीर कांटों से छिद गया जैसे कपड़े भी फट गये। फिर राह भी भटक गया मैं। हवा में पानी की गंध सूंघता हुआ थका–मादा, टूटा और हताश–सा मैं नदी की ओर चल पड़ा। सोचा कि नहीं मिलेगी तो उसी के किनारे–किनारे मनकेरा पहुंच जाऊँगा।

सुनहरी किरणों से चमचमाता हुआ सोनारानी का सोने जैसा जल। मुझे मानो प्राण मिल गये। मैं थकान भूलकर पानी की ओर दौड़ पड़ा एकबारगी। पानी गरम था नदी का। हाथ मुंह धोकर कई चुल्लू पानी पीने के बाद जान में जान आयी। उसके बाद धीरे–धीरे आगे बढ़ा मैं मनकेरा की ओर। लगभग डेढ़ मील चलने के बाद, चण्डी मंदिर दिखलायी दिया मुझे। सोचा शायद मंदिर में ही हो सोनिया। अनुमान सत्य निकला। दोनों हाथ जोड़े पल्थी मारे और दोनों आँखें बंद किये सोनिया बैठी थी चण्डी की प्रतिमा के सामने।

सोनिया ने मेरी आवाज सुनकर धीरे से आँखें खोली और घूमकर मेरी ओर देखा। उसकी आँखें गुड़हल के फ़ूल की तरह लाल थी और चेहरे पर एक *विचित्र भाव* था उस समय।

मैंने गिड़गिड़ाकर कहा–"मैं भोर के पहर से तुमको ही खोजता हुआ भटकता रहा भगवान के लिये तू मेरे साथ चल..... अभी चल।"

"तू आया ही बहुत देर से। मैं भी तुम्हारा सवेरे से ही राह–बाट देख रही थी।.......ठाकुर की हालत कैसी है?"

मैं अचकचा कर बोला, "ठाकुर की हालत काफी खराब है लेकिन तुमको.....?

सोनिया गम्भीर होकर कुछ सोचने लगी।

मैं उसकी बात सुनकर भौचक्का सा खड़ा था।...तो सोनिया ने सचमुच ठाकुर साहब को.....।

आगे कुछ सोचने का समय नहीं था। मैंने कहा–"सोनिया तू मेरे साथ चल और ठाकुर साहब को ठीक कर दे। तू जो कहेगी वह मैं करूँगा। तू जो मांगेगी वह मैं दूँगा तुझे।"

यह सुनकर विस्मृत भाव से एक बार मेरी ओर देखा उसने और फिर बोली हँसकर–"सच, मैं जो कहूँगी, वह करेगा?"

'हाँ।'

सोनिया उठकर खड़ी हो गयी और मेरे करीब आकर अपनी बांहों को मेरे गले में डाल दिया उसने और अजीब–सी हरकत करने लगी।

सोनिया क्या चाहती है यह समझते देर न लगी मुझको। क्या इसी सबके लिये मुझे कसम खिलायी थी सोनिया ने मां चण्डी की? हे भगवान।

सोनारानी की लहरों को चूमती हुई जो हवा आ रही थी वह अब काफी तेज हो गयी थी। पश्चिम के आकाश में धीरे–धीरे बादल छाने लगे थे। थोड़ी ही देर बाद वातावरण में एक अजीब सी मादकता छा गयी और मौसम सुहावना हो उठा।

सोनिया ने मुझे अपने आलिंगन में पूरी तरह समेट लिया था अब। एक बार उस कामुक बन्धन से मुक्त होने की कोशिश की, मगर असफल रहा। उसके शरीर से निकलने वाली अजीब–सी गन्ध से मेरा नासापुट भर गया एकबारगी और उसी के साथ बोझिल हो उठा मेरा मन प्राण। जो होना था, वह हुआ। जब होश आया तो सांझ की स्याह कालिमा धीरे–धीरे फैलने लगी थी चारो तरफ और आकाश में बादल उमड़–घुमड़ रहे थे।

सोनिया शायद जो कुछ चाहती थी वह उसे मिल चुका था और फिर चल पड़ी मेरे साथ। मगर थोड़ी ही दूर जाने के बाद एकाएक ठमक कर खड़ी हो गयी वह।

मैं कुछ कहता कि इससे पहले ही वह उछल पड़ी।

"क्या हुआ?" चल मैंने उसे जगा–सा दिया।

"तू........तू..... वह कैसे आया यहां? सोनिया की छाती तेज–तेज सांसों के साथ उठ बैठ रही थी। चेहरा लाल हो गया था। मैं कुछ बोल

पाता कि सहसा सोनिया खून का घूँट पीकर तड़प उठी। मुझसे धोखा करता है। उसे बुलाकर लाया है तो ले भुगत। उसे भी मैं देख लूंगी। जा.... जाकर देख, वह मर गया।

"मर गया? कौन क्या कहती है तू?" मैंने चीखकर दबोच लिया उस जहरीली नागिन को।

लेकिन सोनिया एकदम मछली की भांति फिसल कर छूटी और पलक झपकते ही मुड़कर जंगल में चली गयी। पल भर मैं अवाक् खड़ा देखता रहा। होश आया तो पागल की तरह डेरे की तरफ भागा लेकिन दरवाजे पर पहुँचते ही दोनों पैर पत्थर हो गये। देखा, सामने ही जमीन पर ठाकुर साहब का शव पड़ा था और दुलारी पीठ पर बालों को छितराते छाती पीट–पीटकर रो रही थी और मुझ पर निगाह पड़ते ही वह लहरा कर आयी और मुझसे लिपट गयी।

"शर्मा बाबू अन्दर आओ जल्दी करो। यह रोने–धोने का समय नहीं है। वह चुड़ैल लौटकर आये, इसके पहले ही..... ।" यह आदेश भरी आवाज सुनकर चौंक पड़ा मैं। आँखें उठाकर देखा सामने कालीपद गुहा खड़ा हुआ था। मेरा साहस लौट आया। मैं तो समझ ही नहीं पा रहा था कि इस विपत्ति के समय मैं क्या करूँगा? कैसे करूँगा? ऐसे में कालीपद गुहा जैसे साक्षात देवदूत बनकर ही आया था मेरे लिये।

मैं इस वज्रघात से पथरा–सा गया था। बस टुकुर–टुकुर ताकता रहा। कालीपद गुहा ने पुकारने के बाद मेरी ओर से जैसे अपना ध्यान ही हटा लिया था। वह ठाकुर साहब के शव पर झुककर बड़े ही विचित्र ढंग से शव के सभी अंगों को चुटकी से छूता हुआ न जाने क्या मन में बुदबुदाता रहा था। फिर एकाएक चुटकी को शव की छाती के बीच में रखा। उसने चुटकी में क्या पकड़ रखा था, यह मैं दूर से नहीं देख पा रहा था। लेकिन ऐसा लग रहा था कि कोई लम्बी–सी चीज है, शायद कोई जड़ी थी, पतली डंठल जैसी। चुटकी से उसे पकड़कर गुहा ने होठों में ही कुछ बुदबुदाते हुए मेरी ओर निगाह उठाकर देखा। उसका चेहरा तमतमाया हुआ था। ऐसा लगता था कि वह किसी अदृश्य शक्ति से भयानक संघर्ष कर रहा है। आँखें लाल थीं। चेहरे पर आक्रोश के साथ–साथ क्षोभ का भी तीखा तनाव था।

उसकी निगाह में कुछ ऐसी रूखी तीक्ष्णता थी कि मैं सहम उठा। कालीपद गुहा को पलक झपकते ऐसे हो क्या गया? उस पर तो जैसे भूत सवार हो। कालीपद गुहा जैसा दीन–हीन प्राणी का भी ऐसा रौद्र रूप हो सकता है कि उसे देखकर मैं भयभीत हो जाऊँगा, इसकी मुझे कल्पना तक न थी। इस समय तो उसका भयानक अप्राकृतिक रूप देखकर मैं सचमुच विचलित हो उठा। तभी उसने क्रोध से सिर झटककर पास आने का इशारा किया। मेरे पांव अपने–आप उठ गये।

पास पहुँचते ही उसने शव के सिरहाने रखा लोटा उठाने के लिए कहा मैं उसे देखकर चकित रह गया। लोटे में हल्दी मिला पीला पानी भरा था। लोटे के ऊपर चावल के कुछ दाने चिपके हुए थे। भीतर लाल रंग के जंगली फूलों की पंखुड़ियाँ भी तैर रही थीं। सबसे विस्मयजनक थी लोटे पर हल्दी से बनाई हुई आकृति, मैंने इस प्रकार की आकृति वाले कलश और हल्दिया जल अक्षत का उपयोग ऐसे तांत्रिक अनुष्ठानों में ही होते देखा था, जो किसी प्रेतात्मा को वश में करने के लिये बलि देते समय किये जाते हैं। तो क्या कालीपद गुहा भी ठाकुर साहब के प्रेतात्मा पर कोई प्रयोग कर रहा था। क्या वह बलि देगा? लेकिन कुछ पूछने का साहस नहीं हुआ मुझे उस समय। कालीपद गुहा के संकेत की अवहेलना भी न कर सका।

उस अभिमंत्रित लोटे को उठाते–उठाते उस पर खिंची आकृति पर नजर पड़ी तो मैं सिहर उठा एकबारगी, फिर लोटे को पकड़कर खड़ा हो गया। कालीपद गुहा की आँखों में सन्तोष की झलक दिखलायी दी। उसके बाद आँख फेरकर वह चुटकी में कील को पकड़कर ठाकुर साहब की छाती के बीच में खड़ी कर फिर मन ही मन बुदबुदाने लगा। हाँ वह किसी पौधे की डन्ठल नहीं कील थी तांबे की नुकीली कील। एक बार लोटे की आकृति की ओर देखकर जोर–जोर से मंत्रोच्चारण करने लगा वह। उच्चारण के साथ उसका लहजा धीरे–धीरे अधिक तीखा और आवेशपूर्ण होता जा रहा था और उसी के साथ ही उसका कुरुप कठोर चेहरा भी विकृत और खूंखार होता जा रहा था। हर अक्षर के उच्चारण के साथ जैसे तनाव के कारण उसकी नसें फूली जा रही थी। मुझे लगा वह संभाल नहीं पा रहा है। उसका एक अंग समूचा शरीर कुछ इस

प्रकार ऐंठने—सा लगा मानो अदृश्य शक्तियां उसे चारो ओर से पकड़कर खींच रही हों। पर वह बरबस अंगूठे के नीचे दबी कील के जोर पर ही जहाँ का तहाँ टिका था।

कालीपद गुहा का गला फट गया। एकदम चरमोत्कर्ष पर पहुँचकर वह सहसा एक चीख के साथ झटके से शव के ऊपर लटक—सा गया। मैं स्वयं भी चीख रोक न सका और जैसे धक्का खाकर अपने आप औंधा हो गया। छाती जोर से धड़क उठी। आँखें फटी रह गयीं। कालीपद गुहा के अंगूठे के नीचे दबी तांबे की लम्बी कील पूरी की पूरी ठाकुर साहब के सीने में धंस गयी थी। उसी के साथ ही दूसरी आश्चर्यजनक घटना यह हुई थी कि मेरे लोटे का पानी छलक कर ठीक ठाकुर साहब के मुंह में गिरा। एक पल के लिये यह देखकर मेरी धड़कन रूक सी गयी कि लोटा अपने आप टेढ़ा हो गया और पूरा का पूरा पानी गिरकर शव के पेट में समा गया। ठीक वैसे मानो वह प्यास से व्याकुल होकर धार से गिरते पानी को पी रहा हो। मैं विक्षिप्त—सा देखता रह गया। पानी की आखिरी बूँद भी लुप्त हो गयी और तभी सहसा किसी ने बांह पकड़ कर मुझे सीधा खड़ा कर दिया। मैं कुछ समझ पाता कि इसके पहले ही मेरे हाथ से लोटा झपट कर कालीपद गुहा ने उसे ठाकुर साहब के सिरहाने औंधा रख दिया। तब यह देखकर मैं दंग रह गया कि अभी—अभी शव का जो मुंह खुला था। वह फिर पहले की तरह बंद हो गया है। तो क्या ठाकुर साहब का प्रेत ही शरीर में प्रवेश कर गया है।

हाँ ठाकुर साहब का प्रेत ही शरीर में पुनः प्रवेश कर गया था इसमें सन्देह नहीं।

वह विलक्षण घटना मुझ पर कुछ ऐसी हावी हो गई थी। मैं काफी कोशिश करने के बावजूद अपनी धड़कनों पर काबू नहीं कर पा रहा था। यह सब क्या हो रहा था। इस संबंध में न तो मैं कुछ समझ पा रहा था और न तो मुझे कालीपद गुहा से कुछ पूछने की हिम्मत ही हो रही थी। पास ही किसी की जोर—जोर से सांस लेने का आभास लगा मुझे। पलट कर देखा पास ही खड़ी दुलारी हांफ रही थी। उसकी बड़ी—बड़ी आँखें आतंक से फट—सी पड़ रही थी। वह ठाकुर साहब के सीने में धंसी कील के चमकते सिरे को अपलक देख रही थी। चेहरे पर निर्जीव पीलापन छाया हुआ था। मैं स्वयं हतप्रभ खड़ा दुलारी की ओर देखने लगा।

लेकिन कालीपद गुहा के हाव–भाव में एकदम से परिवर्तन आ गया था। थोड़ी ही देर पहले कैसी विचित्र आकृति हो गई थी उसकी। किसी ने जैसे ऐंठ मरोड़–सा डाला था। अब वह सहज हो गया था दुलारी की ओर करूण दृष्टि डालकर वह मुझसे बोला–"शर्मा बाबू बहूरानी का भाग्य साथ दे रहा है। तभी तो भैरवी ने मुझे समय पर भेज दिया। अब जाकर कुछ आस बंधी। मगर यह मत समझो कि जान बच गई।"

"मैं हताश हो गया आज? अब काहे का आस? जो होना था सो तो हो ही गया, गुहा। ठाकुर साहब आखिर हमारे हाथ से निकल ही गये अब क्या आशा और निराशा ?

मेरी बात सुनकर कालीपद गुहा बोला, "वह पिशाचिनी एकदम मेरे हाथ में आकर निकल गयी शर्मा बाबू। रोने–धोने के चक्कर में चूक गया मैं नहीं तो अभी निबटारा हो गया होता। प्रेत के साथ–साथ उसे भी मैं यही कील कर देता। इसी तरह दगाबाजी करके वह राक्षसिनी कितने ही बेचारे अभागे यात्रियों का खून अब तक चूस चुकी है। "कौन सोनिया?" "हाँ, शर्मा बाबू वही। उसे मामूली लड़की मत समझना। वह डाइन है डाइन। आज इस बाबू का खून पीकर रहती लेकिन बहू का सुहाग पूरा नहीं हुआ था। माँ भैरवी की कृपा हो गई।"

मेरे आग्रह करने पर कालीपद गुहा ने उस समय जो कुछ मुझे बतलाया वह इतना भयानक था कि मेरे रोंगटें खड़े हो गए सुनकर। दुलारी तो भय के कारण लोक–लाज भूलकर मुझसे ही चिपक गई। वह इस तरह कांप रही थी जैसे उसे जूड़ी का बुखार चढ़ आया हो।

कालीपद गुहा ने सहमे हुए स्वर में बतलाया कि सोनिया इस इलाके की सबसे अधिक भयानक तांत्रिक युवती है साथ ही अत्यधिक रहस्यमयी भी। उसका गुरु कोई कापालिक संन्यासी था। जिसकी वह भैरवी भी थी और उसी कापालिक संन्यासी के साथ वह इस इलाके में आयी भी थी। मगर कहां से आयी थी और उसके पहले कहां रहती थी वह? यह सब कोई नहीं जानता।

"सोनिया का उद्देश्य क्या है इन सबके पीछे?" मैंने पूछा "आप सबको तो यह मालूम ही हो गया कि सोनिया भंयकर और रहस्यमयी

तांत्रिक युवती है। वह हर साल कोई न कोई वीभत्स भयानक और कठोर तांत्रिक अनुष्ठान किया करती है। इस साल वह श्मशान की पाताल पिशाचिणी को सिद्ध करने वाली है और उसके लिये अब तक ग्यारह नरबलि दे चुकी है वह। बारहवीं नरबलि देने पर उसे पाताल पिशाचिनी की भयानक सिद्धि मिल जायेगी और आपको मालूम होना चाहिए कि उसने बारहवीं नरबलि के लिये ठाकुर साहब को अपना शिकार बनाया था।"

"क्या सोनिया अपनी तांत्रिक साधना और सिद्धि के लिये पुरुषों से शारीरिक सम्बन्ध भी स्थापित किया करती है ?" सहज भाव से पूछा मैंने।

"हाँ, ठीक प्रश्न किया आपने।" कालीपद मेरी ओर ताक कर बोला–"मनचाहे व्यक्ति के साथ मिलन करने पर उसकी साधना और मजबूत होती है। यह शक्ति भी उसकी सिद्धि में सहायक होती है। मगर शर्मा बाबू वह पापिनी जिस व्यक्ति के साथ मिलन करती है उसकी जिन्दगी बर्बाद हो जाती है।"

"वह कैसे?"

"वह व्यक्ति भले ही कितनी दूर पर क्यों न हो मगर सोनिया अपनी वासना शरीर के माध्यम से तत्काल उसके पास पहुँच जाती है और अपनी वासना की पूर्ति कर वापस उसी तरह लौट आती है। यदि इस काम में उसे कोई रोकना भी चाहे तो रोक नहीं सकता। धीरे–धीरे वह व्यक्ति शक्तिहीन होता हुआ अन्त में मर जाता है।

इतना बतलाने के बाद कुछ देर तक कालीपद गुहा मौन साधे रहा फिर बोला– "पिछली रात जब वह मुझसे मिलकर जाने लगा तो उस समय उसने देखा–सोनिया हाथ में शराब, मुर्गा, माला–फूल आदि लेकर श्मशान की ओर जा रही थी। माथा ठनका उसका पीछा किया उसने। आधी रात तक बैठकर सोनिया श्मशान में दुनिया भर का टोना, टोटका करती रही और जगाती रही तंत्र–मंत्र। वह स्वयं तो उस पाताल पिशाचिनी को साक्षात् नहीं देख पाया था, लेकिन उस रात उसने बिल्कुल स्पष्ट अनुभव किया था कि सोनिया के आह्वान पर वह पिशाचिणी भी आई थी श्मशान में सोनिया उसे आज की रात पुरुष का भरपेट रक्त पिलाने का वचन देकर सन्तुष्ट करने में सफल हो गई थी।"

कालीपद गुहा ने आगे बताया कि सोनिया के लिये भयानक से भयानक कृत्य भी असंभव नहीं। वह किसी न किसी प्रकार ठाकुर साहब के शव को अपने अधिकार में कर लेती और उसे ले जाकर आज आधी रात के समय पाताल पिशाचिनी को सिद्ध करने के लिये इसका खून पिलाती है।"

"मृत शरीर में भला खून कहाँ?" शंका भरे स्वर में बोला मैं। हँस पड़ा हो–होकर कालीपद गुहा। फिर बतलाया उसने, "सच पूछिये शर्मा बाबू, ठाकुर साहब मरे नहीं थे। इस समय उनकी आत्मा शरीर के बाहर निकलकर इस वातावरण में चक्कर काट रही थी मगर वातावरण के बाहर जा नहीं पा रही थी। इसीलिए कि चारो ओर चौकी बांधकर सोनिया ने ऐसा इन्तजाम कर रखा था कि आत्मा कहीं जाने के बजाय यहीं पर मंडराती रहेगी। जब सोनिया खून पिला लेती तो अपने आप इस वातावारण से मुक्त हो जाती आत्मा।"

कालीपद गुहा ने आगे कहा–'उसको विश्वास है कि उसके द्वारा प्रतिबन्धित प्रेत को छुटकारा दिलाने की शक्ति सोनिया में नहीं है। फिर भी उस डाइन का कोई भरोसा नहीं। यह उसकी जान के साथ–साथ मेरी जान की भी बाजी है।"

"आज वह पाताल पिशाचिणी को ठाकुर साहब का खून पिलाने के लिए अपनी जान लड़ा देगी नहीं तो स्वयं उसका ही नाश हो जायेगा। उसको किसी भी कीमत पर रोकना पड़ेगा मुझे।"

"कैसे रोक पायेगा कालीपद गुहा, यह बात मेरी समझ में नहीं आ रही थी और दुलारी तो बिल्कुल पागलों की ही तरह हो गई थी।

कालीपद गुहा स्वयं एक बड़े से थैले में भरकर अनुष्ठान में प्रयुक्त होने वाली सारी सामग्री ले आया था लेकिन उतावली में कच्चा धागा लाना भूल गया था। वह स्वयं शव को छोड़कर हटना नहीं चाहता था। इसलिये उसने मुझे कच्चा धागा लाने के लिये कहा।

बाजार दो मील पर था। इलाका बीहड़ था। मगर मैं दुलारी के लिये सब कुछ करने को तैयार था। अतः मैं तुरन्त चल पड़ा बाजार की ओर और कच्चा धागा लेकर वापस लौटा।

"लाओ। ठाकुर साहब के शव के पास आसन पर बैठे कालीपद

गुहा ने मेरी ओर बिना देखे अपना हाथ फैला दिया, कच्चा धागा रख दिया मैंने उसके हाथ पर।

उसने धागा उठाकर उसे जल से अभिमंत्रित किया, धूप दिखलाया और उसे ठाकुर साहब के पैरों पर डाल दिया। फिर आसन से उठते हुए श्रद्धा भरे स्वर में कहा–"आप बड़े समय पर आ गये शर्मा बाबू, अब माँ चण्डी की कृपा रही तो मैं अवश्य विजय प्राप्त करूँगा लेकिन वह चुड़ैल इस समय श्मशान में पहुँच चुकी है। अब वह अपनी कोई भी ताकत बचा नहीं रखेगी। मैं भी आज उसे नहीं छोड़ूंगा। फैसला होकर रहेगा या तो मैं रहूँगा या फिर वह। जय माँ चण्डी...यह क्या? माँ तेरी क्या इच्छा है?"

कालीपद गुहा की बात बीच में ही टूट गई और वह झुककर लोटे के भीतर देखने लगा। मैं भी कौतूहलवश झुक गया कितना विचित्र दृश्य था। लोटे पर हल्दी के घोल से बनाई गई उस आकृति की रेखायें सहसा काली पड़ गई। उसके बाद वह सहसा फीकी पड़ गई। फिर देखते ही देखते लाल पड़ गई। उसके बाद बदरंग होते–होते सहसा मिट गई। दूसरे लोटे के जल पर भी कोई आकृति नहीं थी।

"चुड़ैल, मक्कार हरामजादी।" कालीपद गुहा पागल की तरह चीख पड़ा। फिर दांत पीसकर बोला–"यह ऐसे नहीं मानेगी। आज इसका नाश ही लिखा है मेरे हाथ से। चलो उठो जो मैंने कहा है, याद रखना चूकना मत। तुम्हारे सुहाग के साथ हम सबके प्राण भी तुम्हारे हाथ में है। तैयार हो जाओ।"

सर्वांग नग्न दुलारी धीरे–धीरे चलकर आंगन में गई और जब लौटी तो उसके हाथ में एक काला मुर्गा था। जो पंख फड़फड़ाकर छूटने की कोशिश कर रहा था। मुर्गा अपने से ही लाकर रखा होगा कालीपद गुहा ने यह समझते देर नहीं लगी मुझे।

शव के चारो ओर उसने जो रेखायें खींची थी रोली और हल्दी की। उसके बीचो–बीच एक अज्ञात तांत्रिक चक्र बनाया। फिर दुलारी को मुर्गा पकड़ा कर चक्र के केन्द्र में बैठा दिया उसने। उसके बायीं ओर स्वयं बैठा वह और मुझे दाहिनी ओर बैठाया। फिर वह हवन सामग्री थाली से उठा–उठा कर अग्नि में डालने लगा। "हवन कुण्ड से

लाल–लाल लपटें धधक कर उठने लगी। सम्पूर्ण वातावरण एकबारगी गन्धमय हो उठा।

अचानक एक चमत्कार घटित हुआ। हवनकुण्ड से उठती लपटें ऊपर उठने के बजाय नीचे की ओर झुकने लगी। कालीपद गुहा का चेहरा तमतमा उठा। हाथ रोककर एकटक देखता रहा। लपटें इस तरह सिमटकर लुप्त हो गई कि मानो किसी ने उन्हें चूस लिया हो। साथ ही लपटों की जगह कुण्ड धुआं से भर उठा एकबारगी।

उफ् मेरा दिमाग एकदम से चकरा गया।

दुर्गन्ध भीषण दुर्गन्ध। सुवासित गंध की जगह कुण्ड से ऐसी घिनौनी दुर्गन्ध उठने लगी, मानों चिता पर कोई लाश जल रही हो।

हे माँ भैरवी! कालीपद गुहा तड़पकर एकबारगी चीखा।–"सम्भल जाओ बहू। वह आ रही है, श्मशान लेकर आ रही है। इसके साथ ही कालीपद गुहा ने मुर्गे को पकड़कर दबोचा और छूरी उठाकर चिल्लाया, "ले तू खून की प्यासी है तो पी ले खून।"

मुर्गे की गर्दन पर छूरी चलते ही खून का फुहार उछला और ठाकुर साहब का शव खून से भीग गया। वह जोर–जोर से मंत्र का जाप करने लगा और उसी के साथ तड़फड़ाते मुर्गे को उठाकर कुण्ड में डाल दिया। सहसा ऊँची–ऊँची लपटें उठने लगी और जलते हुए मांस की दुर्गन्ध की जगह एक बार फिर वातावरण सुगन्धित गन्ध से गमगमा उठा।

"माँ....माँ.... भैरवी।" कालीपद गुहा के चेहरे पर विजय की हंसी और उल्लास छलक उठा।

लेकिन यह स्थिति कुछ ही क्षणों तक रही। अचानक ही वातावरण में श्मशान का–सा सन्नाटा फिर व्याप्त हो गया।

फिर सहसा वातावरण में भयानक चीखें, गूंजने लगी। श्मशानव्यापी उस निस्तब्ध सन्नाटे में जैसे हजारों प्रेतों का हा–हाकार गूंज रहा हो। दूसरे ही क्षण ऐसा लगा कि भीषण आंधी आ रही है। दरवाजे और खिड़कियां एकबारगी भड़भड़ा उठे। उस प्रलयकारी अंधड़ के साथ सोनिया अचानक वहां आ गई और किसी पिशाचिणी की भाँति खिल–

खिलाकर हँसती हुई अन्दर घुस गई वह। अन्दर आकर वह पल भर भी रूकी नहीं प्रचण्ड वेग से नाचने लगी। लाश की परिक्रमा करती हुई वह इतनी तेज़ी से नाच रही थी कि उसके अंगों को देख पाना असम्भव–सा हो गया था।

उफ् राक्षसी! कालीपद गुहा दांत किट–किटाता हुआ असहाय–सा खड़ा रह गया।

नाचती–नाचती सहसा सोनिया रूकी और अपनी उंगलियों से ठाकुर साहब के शव में धंसी तांबे की कील खींचकर जोर से हवनकुण्ड में फेंक दी। फिर जोर से अट्टहास किया और उसी के साथ उसने लाश को पैर से ठोकर मारी।

अगले ही पल एक ऐसा दृश्य कौंधा कि मेरा खून जम–सा गया। ठाकुर साहब की लाश सिहरी, हिली, कांपी और फिर अचानक तड़पकर खड़ी हो गयी।

फिर खिल–खिलाकर हँस पड़ी सोनिया और ऊँचे स्वर में जाने क्या गाती हुई नाचने लगी। प्रचण्ड गति से नाचती हुई सोनिया का स्वर करूण क्रन्दन और चीत्कार की भांति भयावना लग रहा था। नाचती हुई वह सहसा पाषाणवत् खड़े ठाकुर साहब की ओर लपकी मगर एक झटका सा लगा और वह जमीन पर गिरकर छटपटाने लगी। तड़पने लगी और जोर–जोर से चीखते हुए अपने ही हाथों से अपने अंगों को नोचने–खसोटने लगी।

बड़ा ही भयानक दृश्य था वह। ऐसा भयानक कि पथराया–सा बैठा मैं भी उछल पड़ा अपनी जगह पर। देखते–ही–देखते सोनिया की सुगठित मांसल देह तमाम जख्मों से भर गई। अन्त में उसके मुंह से एक भयानक और दर्दनाक चीख निकली और उसी के साथ कटे पेड़ की तरह जमीन पर गिरी और निर्जीव हो गई वह।

हे भगवान कैसा भयानक था वह दृश्य, देखकर लगता था सोनिया को जैसे हजारो पंजों ने नोचा था। उसकी मदमाती देह पर नोचे–खसोटे हुए मांस के पिण्ड भर रह गये थे।

ऐसा भयानक और लोमहर्षक तांत्रिक अनुष्ठान जीवन में पहले कभी नहीं देखा था। उस समय मेरा रोम–रोम कांप रहा था।

ठाकुर साहब अब पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गये थे। उसके बाद वहां क्या घटित हुआ वह मैं नहीं जानता क्योंकि कालीपद ने हम सब लोगों को भोर होते ही एक बैल गाड़ी पर बैठाकर विदा कर दिया था। वह स्वयं गांव के बाहर तक आया था हम लोगों को छोड़ने के लिये। गले मिलाकर विदा होते समय कालीपद गुहा के उपकार की बात याद करके मेरा मन भर आया। दुलारी भी काफी भावुक हो उठी थी।

उसने चलने के पहले दुलारी को बुलाकर कठोरता से मना किया था कि ठाकुर साहब को इन तमाम बातों और इन तमाम घटनाओं के बारे में जरा–सा भी पता न चलना चाहिये।

इस घटना के लगभग तीन साल बाद एक आवश्यक कार्य से मुझे ठाकुर साहब के गांव जाना पड़ा। जब उन लोगों से मेरी भेंट हुई तो दुलारी ने दो–ढाई साल के एक स्वस्थ और सुन्दर बच्चे को लाकर मेरी गोद में डाल दिया।

"यह...यह कौन है?" मैं अचकचा उठा।

"पहचानिये? दुलारी हँस पड़ी।

"मैं सशंक दृष्टि से बच्चे की ओर ताकने लगा। उसके माथे पर अंगूठे के निशान जैसा एक भूरा धब्बा था। मैं आँखें फैलाकर दुलारी की ओर ताकने लगा।"

दुलारी शर्मा गई। सिर नीचा करके कहने लगी, सन्तान के लिये आपका अनुष्ठान सफल रहा। यह कालीपद की ही निशानी है। उस रात जब आप कच्चा धागा लेने बाजार चले गये तब कालीपद गुहा ने मुझसे कहा था बहू तुमको अपने शरीर को अपवित्र करना होगा।

मैंने पूछा, "वह कैसे ?"

शारीरिक संबंध से। मैं तुम्हारे साथ शारीरिक संबंध स्थापित कर तुम्हारे शरीर को अपवित्र कर दूंगा।" उसने बेहिचक कहा।

यह सुनकर शर्म और संकोच से भर उठी मैं। लज्जा से मेरा सिर नीचा हो गया।

कालीपद गुहा आगे कहने लगा, "बहू यह तुम्हारे तन का पाप नहीं बलिदान होगा। तुम्हारी अशुद्ध अपवित्र देह ठाकुर साहब को जीवनदान देने में सहयोगी सिद्ध होगी। सोनिया का प्रयोग उल्टा उसी के लिये घातक सिद्ध होगा।"

यह सुनकर विरोध न कर सकी मैं। दुलारी ने सलज्ज चितवन से मेरी ओर देखकर कहा—"पति से बढ़कर मेरे लिये और था ही क्या? अपने शरीर को अपवित्र करने के लिए तुरन्त तैयार हो गई मैं।"

स्तम्भित रह गया मैं। फिर पूछा, "बच्चे के माथे पर दाग देखकर ठाकुर साहब को कभी शंका नहीं होती?"

"कौन जाने? मुझसे कभी कहा तो नहीं कुछ लेकिन इसे चाहते खूब हैं।" दुलारी के होठों पर मधुर हँसी छलक उठी।

मैं सोच रहा था, कालीपद गुहा ने क्या इसी कारण उस रात कच्चा धागा के बहाने मुझे बाहर भेज दिया था। आज इस घटना को घटे लगभग चालीस से भी अधिक साल हो गया है। दुलारी ने अपने बेटे का नाम रखा था कालीशंकर। कालीशंकर का विवाह हो चुका है। दो लड़के हैं उसके। इस समय वह कलकत्ता में रहकर व्यापार करता है। जब कभी मैं उसके माथे पर का भूरा दाग देखता हूँ तो मुझे सहसा याद आ जाती है कालीपद गुहा की।

●

रहस्य बारह

मारण प्रयोग

वाराणसी आदिकाल से भारतीय संस्कृति और साधना का केन्द्र रहा है। आज भी गुप्त रूप से इस नगरी में उच्चकोटि के योगी और महान शक्ति सम्पन्न तंत्र साधक निवास करते हैं और प्रच्छन्न भाव से साधना करते हैं। भारत भूमि में शुरू से ही दो संस्कृतियों की धारा प्रवाहित रही है और आज भी प्रवाहित है। पहली है वैदिक संस्कृति की और दूसरी है तांत्रिक संस्कृति की। इन दोनों संस्कृतियों का मूल स्रोत है सनातन धर्म। बतलाने की आवश्यकता नहीं, इन दोनों महान् संस्कृतियों ने मिलकर कई साधना मार्गों और सम्प्रदायों को जन्म दिया है ज़िनमें से एक है शाक्त साधना मार्ग और उसका सम्प्रदाय। योग पर आधारित तंत्र की यह अत्यन्त गोपनीय और उच्चकोटि की साधना है। लौकिक और पारलौकिक जीवन के उद्देश्यों और लक्ष्यों को साकार करने वाली तामसिक उपादानों पर आधारित भयंकर साधना है। शाक्त साधना मार्ग पर चलना तलवार की धार पर चलना है। इसकी सिद्धि तलवार की ध ार पर रखी शहद की बूंद के समान है, चाहो तो उसे चाट कर स्वाद लो, मगर यह भी ध्यान रहे कि कहीं जीभ न चिर जाय। यह कौशल है और इसी कौशल का नाम है साधना। वाराणसी के शिवाला घाट मुहल्ला से लेकर दशाश्वमेध घाट की सीमा में आने वाले गंगातटीय जितने मुहल्ले हैं—वे कभी किसी समय शाक्त साधकों—विशेष कर बंगदेशीय साधकों के साधना केन्द्र थे। इस समय भी इन मुहल्लों के

कतिपय पुराने मकानों में काली की प्रतिमा स्थापित मिलेगी और उनकी साधना पूजा करने वाले लोग मिलेंगे। इस समय भी सर्वथा गुप्तरूप से निवास करते हुए प्रच्छन्न भाव से साधनारत उच्चकोटि के योगी तांत्रिक मिलेंगे इसमें सन्देह नहीं।

लगभग चालीस वर्ष पूर्व उन दिनों मैं तांत्रिक साधना सम्प्रदाय पर व्यक्तिगत रूप से शोध कार्य कर रहा था, इसी सिलसिले में मेरी भेंट हुई एक ऐसे ही गुप्त रूप से निवास करने वाले महान तेजस्वी साधक से। उनका शरीर बंगदेशीय था और आयु थी 80 वर्ष के लगभग मगर देखने में 40 वर्ष की आयु से अधिक नहीं लगते थे। गौर वर्ण, सौम्य तेजोमय मुख–मण्डल, प्रखर नेत्र जिनके भीतर करूणा का अथाह सागर हमेशा लहराया करता था। उच्च ललाट पर लाल सिन्दूर का गोल टीका। कन्धे तक बिखरी घनी स्याह केशराशि, मजबूत और स्वस्थ देह और उस देह पर लिपटा रेशमी कषाय वस्त्र। यही था उस दिव्य विभूति का बाहरी व्यक्तित्व और नाम था भवतारण तर्कपंचानन।

तर्कपंचानन महाशय निस्सन्देह उच्च अवस्था प्राप्त सिद्ध तांत्रिक थे। उच्चकोटि की योग–तांत्रिक सिद्धियों के स्वामी तो थे ही इसके अतिरिक्त तंत्र साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान और तंत्र विज्ञान के रहस्यों से पूर्ण परिचित भी थे। लोगों से बहुत कम मिलते जुलते थे। हमेशा अपने मकान में स्थापित भवतारिणी महामाया पराशक्ति महाकाली की पाषाण प्रतिमा के निकट साधनारत रहा करते थे।

उनके सान्निध्य में लगभग 10 वर्ष था मैं और इस दीर्घ अवधि में मैंने कई अलौकिक चमत्कार देखे थे और देखी थी कई सिद्धियाँ भी उनकी।

सांझ की स्याह बेला नित्य की भांति धूएँ से भरी उस सकरी गली को पार कर पहुँचा मैं तर्कपचानन महाशय के यहाँ। मठनुमें उनके जीर्ण शीर्ण मकान में प्रवेश करते ही राल, गुगुल की गन्ध के साथ–साथ नासापुट में मदिरा की भी तीव्र गन्ध भर गयी। शायद माँ महामाया की किसी विशेष पूजा में बैठे हैं तर्कपंचानन महाशय, यह समझने में देर नहीं लगी मुझे। अन्धकार में डूबी सीढ़ियाँ चढ़कर जब मैं उनके कमरे में पहुँचा तो देखा एक सज्जन सामने बैठे धीरे–धीरे बातें कर रहे हैं। प्रौढ़ अवस्था के थे वह, वेशभूषा से किसी अच्छे कुल के प्रतीत हो रहे

थे मगर उनके चेहरे पर विषाद और चिन्ता के भाव विद्यमान थे। ऐसा लगता था मानों वे अपने किसी आन्तरिक और विशेष दुख को प्रकट करने आये हैं तर्कपंचानन महाशय के सम्मुख! इसके पहले मैंने किसी बाहरी व्यक्ति को तर्कपंचानन महाशय के निकट नहीं देखा था इसलिये मन में जिज्ञासा का उदय होना स्वाभाविक था। कौन है वह व्यक्ति ? कहाँ से और किस काम से आये हैं वह ? सम्भव है कोई तांत्रिक सहायता पाने के लिए आया हो मगर तर्कपंचानन महाशय शीघ्र किसी को तांत्रिक सहयोग प्रदान नहीं करते। तंत्र तो उनकी साधना है न कि व्यापार! फिर एक विचार आया, हो सकता है कोई पूर्व परिचित हो और यों ही मिलने चला आया हो। तभी मेरी नजर मातंगिनी पर पड़ी कृष्णवर्ण मातंगिनी। नितम्ब का स्पर्श करती हुई मुक्त केश राशि। उत्तुंग स्तन और क्षीण कटि वाली मातंगिनी, मदिरा से रक्ताभ नेत्र मुख पर विचित्र तेज, मस्तक पर ध्रुवतारा जैसी चमकती हुई लाल बिन्दिया और हाथों में शंख की चूड़ियाँ। लाल चौड़े पाढ़ की साड़ी पहने थी मातंगिनी। महान तंत्र साधक और शव सिद्ध भवतारण तर्क पंचानन महाशय की भैरवी थी मातंगिनी! तांत्रिक साधना में भैरवी का स्थान सर्वोच्च है। बिना भैरवी के पूर्ण सहयोग से तंत्र की महत्वपूर्ण साधनायें अनुष्ठित नहीं हो सकती। मातंगिनी महामाया के चरणों में समर्पित दीक्षा प्राप्त योग्य भैरवी थी। किसी विशेष कार्य के निमित्त उसकी सहायता ग्रहण करते थे तर्कपंचानन महाशय। कुछ ही क्षणों बाद मेरी जिज्ञासा का समाधान हो गया और मेरे सारे प्रश्नों के उत्तर भी मिल गये। मातंगिनी ने ही सब कुछ बतलाया मुझे।

वे सज्जन बंगाल के एक स्टेट के प्राइवेट सेक्रेटरी थे। नाम था भुवनराय चौधरी। 42 वर्ष की आयु में वंश प्राप्ति के उद्देश्य से दूसरा विवाह किया था। पत्नी का नाम था लक्ष्मी। आयु थी लगभग बीस वर्ष। लक्ष्मी साक्षात् लक्ष्मी थी। रूप गुण और सौन्दर्य की सजीव प्रतिमा थी। मगर स्वप्न में भी भुवनराय चौधरी ने यह नहीं सोचा था कि देव कन्या जैसी लक्ष्मी का अपरूप और अवर्णनीय सौन्दर्य एक दिन भयंकर विष बनकर उनके गले में उतर जायेगा और मान–मर्यादा और कुल के लिये कलंक का टीका बन जायेगा। न जाने कब और कैसे कामी दुराचारी

और व्यभिचारी ललितनारायण रायचौधरी की कुत्सित दृष्टि पड़ गयी लक्ष्मी पर। उन्मत्त हो उठे फिर वह। स्टेट का राजा था। उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं था। क्रोध, क्षोभ, घृणा से भर उठा भुवन बाबू का मन मगर विवश थे। कुछ कर सकने में असमर्थ थे। किसी से कुछ कह भी नहीं सकते थे बेचारे। मान मर्यादा की बात थी और फिर ललितनारायण रायचौधरी की शक्ति से भी परिचित थे। जरा सा भी सिर उठाने पर कुचल कर रख देगा। तभी स्मरण हो आया गुरुवर भवतारण तर्कपंचानन महाशय का उन्हें। फिर एक दिन चल पड़े वाराणसी के लिये और आते ही गुरु के चरणों में मस्तक डालकर सारी व्यथा कथा सुना डाली उन्होंने और अन्त में विगलित स्वर में बोले–आपका ही कहना है कि सच्चा योगी और सच्चा साधक अन्याय अधर्म और असत्य को पनपने नहीं देता, उनको सहन नहीं कर सकता। अब आप ही बतलाइये गुरुवर! मैं अब क्या करूँ ? फिर फफक–फफककर रो पड़े भुवन बाबू। उष्ण नेत्र जल से एकबारगी भींग उठे उस महान तंत्र साधक के चरण।

कुछ क्षण तक मौन साधे बैठे रहे पाषाणवत् भवतारण महाशय फिर गम्भीर स्वर में बोले–'तुम ठीक कहते हो भुवन! यदि योगी मुंह नहीं खोलता, अन्याय और अधर्म को पनपने देता है, समाज को अश्रद्धा और अविश्वास के पंक में फंसने देता है तो स्वयं वह अपने धर्म से च्युत होता है। श्रीकृष्ण ने अपने लिये नहीं वरन् सभी योगियों की ओर से कहा था–"यदि मैं कर्म नहीं करता तो लोक नष्ट हो जायेंगे। अब तो वह समय आया है कि मैत्री, करूणा, मुदिता और उपेक्षा से सक्रिय रूप से कार्य लिया जाय पर किचिंत रूककर फिर बोले तर्कपंचानन महाशय–वर्तमान समय का पर्यावरण योग और तंत्र के अनुकूल नहीं है मगर फिर भी लोकहित के लिए किसी न किसी रूप में समाज का ऋण चुकाना ही चाहिये। कोई सुने या न सुने, समझे या न समझे, लोकहित तो करना ही चाहिए। कहते–कहते साधक की दृष्टि आग की तरह जलने लगी मुखमण्डल लाल हो उठा। फिर एक अमानवीय चेष्टा से अपने आपको संभाल कर तीखे स्वर में आवाज दी मातंगिनी.......।

दूसरे ही क्षण सामने आकर खड़ी हो गयी वह मगर खाली हाथ नहीं आयी थी। वह ऐसी स्थिति को भलीभांति समझती थी। हाथ में

लिये मदिरापात्र को उसने सामने रख दिया। स्फटिक के गिलास में आकण्ठ भरी सुरा को एक सांस में पीने के बाद मातंगिनी को कुछ आवश्यक आदेश दिया उन्होंने। आदेश का तुरन्त पालन हुआ और उसके अनुसार पूजा सामग्रियों के साथ–साथ बलिपशु की भी व्यवस्था हो गयी। कालीगृह का पट खोल दिया गया। मातंगिनी द्वारा तांत्रिक पूजा प्रस्तुत की गयी पराशक्ति महाकाली की। उस पाषाण प्रतिमा में केन्द्रित महाशक्ति को मदिरा से स्नान करा कर जैसे ही जवा कुसुम की माला उसके गले में डाली गयी वैसे ही पंच–मुण्डी आरूढ़ उस प्रतिमा का मुखमण्डल दप्–दप् कर जल उठा एकबारगी। ऐसा लगा मानो वह पाषाण प्रतिमा बिल्कुल सजीव हो उठी है। पंचमुण्डी आसन के निकट हवनकुण्ड था जिसमें राल, गुगुल, चन्दन का धुंआ निकल कर गृह में चारो ओर फैल रहा था। टन्–टन् कर 12 का घंटा बजा कहीं। महानिशा की बेला आ गयी थी। तर्कपंचानन महाशय अपने आसन से उठे और कालीगृह के जल से अपने गले का रूद्राक्ष धुलाया फिर माँ को प्रणाम किया। उनका संकेत पाकर मातंगिनी ने पंचमुखी दीप जलाया और बलि पशु की पूजा की और उसके बाद पूजा की बलि खड्ग की। वातावरण में एक अप्राकृतिक नीरवता व्याप्त थी। रहस्य का धुंआ भरा था। ऐसा लग रहा था कि किसी भयंकर तांत्रिक अनुष्ठान की सिद्धि के लिये कुछ सम्पन्न किया जा रहा है। कालीगृह के पट से सट कर मातंगिनी खड़ी थी। उसके मुख पर भयंकर कठोरता थी उस समय। साहस बटोरकर फुसफुसाहट के स्वर में धीरे से पूछा मैंने–कौन सा प्रयोग है यह ? मेरा प्रश्न सुनकर मदिरा से बोझिल नेत्रों से एक बार देखा मेरी ओर मातंगिनी ने और फिर शान्त किन्तु मन्द स्वर में बोली– मारण प्रयोग!

रोमांचित हो उठा तन मन एकबारगी। हे भगवान मारण प्रयोग! मगर किसके लिये ? तभी ललितनारायण रायचौधरी का, मस्तिष्क में उभर आया नाम, निस्सन्देह मारण प्रयोग अनुष्ठित हो रहा था उसी नर पशु के लिये बलि पशु प्रदान कर। तभी मेरी दृष्टि पड़ी भवतारण तर्क पंचानन महाशय पर, भयंकर खड्ग उठा लिया था उन्होंने। कोई मंत्र पढ़कर पशु पर एकबारगी फूंक मारी। दूसरे ही क्षण पशु ने अपने आप

चलकर अपना सिर जगत नियंत्रणकारिणी महाशक्ति के सम्मुख झुका दिया और तभी एक भयंकर चीख गूंज उठी उस रहस्यमय वातावरण के अन्तरम को फोड़कर पर वह आर्तनाद करती हुई चीख बलि पशु की नहीं थी। निस्सन्देह वह किसी अदृश्य अमानवीय प्राणी की थी।

पर कौन था वह, अगोचर प्राणी समझ में नहीं आया उस समय मुझे कुछ। कालीगृह की सारी धरती पशु शोणित से लाल हो उठी। मातंगिनी ने मुण्ड को थाली में रखकर पूजा की और उस पर कपूर जलाया। सहसा मेरी दृष्टि मुण्डमालाधारिणी चतुर्भुजा काली की प्रतिमा के पीछे की ओर चली गयी। भय से सारा शरीर सिहर उठा स्पष्ट देख रहा था मैं—वहाँ कई धूम्राकृति परछाईयाँ एक साथ जैसे नृत्य कर रही थीं। निश्चय ही वे सब अदृश्य लोक की अतृप्त जीवात्मायें थीं। धीरे–धीरे उनका नृत्य खत्म हुआ—फिर एक को छोड़कर सारी परछाईयाँ लुप्त हो गयीं। जो परछाई लुप्त नहीं हुई थी—वह मनुष्य की तरह चल कर सामने आ गयी और झुक कर भूमि पर फैले रक्त को जैसे चाटने लगी। उस समय तर्कपंचानन महाशय ध्यान की मुद्रा में बैठे किसी मंत्र का जप कर रहे थे। वह परछाई आकर उनके सामने स्थिर हो गयी। ऐसा लगा मानो वह किसी आदेश की प्रतीक्षा कर रही है। उस समय उस परछाई की आकृति बड़ी वीभत्स और भयंकर लग रही थी। सहसा पहले जैसी आर्तनाद करती हुई चीख गूंज उठी वातावरण में और उसी के साथ ही वह परछाई एकबारगी लुप्त हो गयी। कुछ समय बाद तर्क पंचानन महाशय का ध्यान भंग हुआ—और समाप्त हुआ जप। वे अपने आसन से उठे फिर माँ को प्रणाम किया। उस समय उनके मुख पर विलक्षण दीप्ति की आभा थिरक रही थी। कालीगृह में निकट खड़े भुवन बाबू को उन्होंने प्रसाद दिया, मस्तक पर टीका लगाया और फिर गम्भीर वाणी में बोले—'कल का सूर्योदय न देख सकेगा ललितनारायण राय चौधरी। श्रद्धा से झुककर उनके चरणों का स्पर्श किया भुवन बाबू ने। उनके गालों पर आँसू ढुलक आये थे। दुख के नहीं सुख, शान्ति और विजय के आँसू थे वह। उस समय उनकी प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं थी।

मेरे मानस पटल पर उस वातावरण का इतना गहरा प्रभाव पड़ा था कि महीनो नहीं गया मैं तर्कपंचानन महोदय के यहाँ। एक दिन सहसा भेंट हो गयी हरिश्चन्द्र की सीढ़ियाँ चढ़ते समय मातंगिनी से। देखते ही पूछ बैठा मैं—क्या हुआ भवन बाबू का ? मेरा प्रश्न सुनकर खिलखिलाकर हँस पड़ी फिर बोली—हो गया जो होना था। तीसरे ही दिन भुवन बाबू का तार मिला था। क्या समाचार दिया था उन्होंने ? व्यग्र होकर पूछा! इतना पेट क्यों फूल रहा है तुम्हारा समाचार जानने के लिये—कौतुकमयी हँसी, हँसकर बोली मातंगिनी। पहले यह तो बतला इधर आता क्यों नहीं था ? डर लग रहा था क्या ? नहीं डर की ऐसी कोई बात नहीं थीं। मौका ही नहीं मिल पा रहा था मुझे। देख मुझसे असली बात मत छिपा। मैं भैरवी हूँ—भैरवी—समझे, मुझे सब मालूम हो जाता है। मेरी दुर्बलता पकड़ी गयी थी पर बोला नहीं कुछ मैं। गली के मोड़ तक दोनों ही मौन रहे। फिर स्वयं उसने गम्भीर होकर बतलाया कि तार के बाद एक पत्र भी आया था भुवन बाबू का जिसके अनुसार अनुष्ठान की रात्रि में ही ललितनारायण रायचौधरी की मृत्यु हो गयी थी। उस समय वे गहरी नींद में सो रहे थे। सवेरे जब नित्य की भांति नौकर चाय लेकर गया तो देखा कि वे मृत पड़े हैं और उनके मुख से खून की धारा निकल कर तकिया और बिस्तर पर फैल गयी है।

डॉक्टरी मुआयना तो हुआ ही होगा ? हाँ हुआ था मगर डॉक्टर लोग मृत्यु का कारण कुछ भी नहीं बतला सके। मगर एक रहस्य समझ में नहीं आया मुझे ? कौन सा रहस्य ? वह चीख किसकी थी ? पगले! इतना भी समझ न सका तू और चला है तंत्र पर शोध करने व्यंग से हँसकर बोली मातंगिनी। फिर कहने लगी—वह महापिशाच की चीख थी। उसी ने तो जान ली ललित बाबू की तू नहीं जानता! तंत्र के अन्तर्गत मारण, मोहन, वशीकरण उच्चाटन विद्वेषण और सम्मोहन—ये जो तंत्र के षट्कर्म साधन है न! उनके शक्तिशाली मंत्रों के छन्द में बंधकर विशेषकर तामसिक लोक की अदम्य शक्तिशालिनी दुर्धर्ष आत्मायें ही कार्य सम्पन्न किया करती हैं। इनसे संबंधित विद्या को हाकिनी विद्या, डाकिनी विद्या और धूमावती विद्या कहते हैं। तंत्र की ये तीनों अति प्राचीन विद्यायें हैं मगर इनके सच्चे साधक इनकी शक्तियों का प्रयोग धर्म और सत्य की

रक्षा के लिये विशेष अवसर पर ही किया करते हैं। भविष्य में इन विद्याओं के दीप प्रज्ज्वलित रहेगें या नहीं—यह बतलाया नहीं जा सकता। इतना कह कर मातंगिनी का मुख विषण्ण हो गया एकबारगी उदास हो उठी वह, और बिना कुछ बोले—भारी कदमों से आगे बढ़ गयी और मैं काफी दूर तक जाते हुये उसे देखता रहा।

आज न तर्कपंचानन महाशय हैं इस संसार में और न है उनकी भैरवी मातंगिनी। काश वे लोग होते तो देखते कि आज भी वाराणसी में उन रहस्यमयी और गोपनीय तांत्रिक विद्याओं के दीप प्रज्ज्वलित हैं और उनको प्रज्ज्वलित रखने वाले उच्चकोटि के साधक भी प्रच्छन्न भाव से साधनारत हैं और हमारे आपके बीच विद्यमान हैं। मगर उनकी वेश—भूषा व्यवहार और रहन—सहन से उन्हें हम पहचान नहीं सकते, समझ नहीं सकते। उनके और हम सबके बीच भाषागत, व्यवहारगत विचारगत और कर्मगत अड़चने हैं। ऐसा यदि न होता तो भगवान राम, श्रीकृष्ण, गौतम, ईसा, मुहम्मद आदि से लेकर रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द विशुद्धानन्द, योगानन्द पर्यन्त जितने अवतारसिद्ध, योगसिद्ध और तंत्रसिद्ध युग पुरुष तथा महापुरुष हुये हैं, उन्हें उनके काल में ही जान समझ लेता और उनसे पूर्ण लाभान्वित भी हुआ होता, फिर राम—रावण युद्ध और महाभारत का युद्ध, न हुआ होता और न हुआ होता कर्बला का भी रक्तपात ईसा शूली पर न लटकाये गये होते। वे अड़चने तो बराबर बनी रहेंगी, इसीलिए कि भोगी लोग संसार और शरीर के आश्रित रहते हैं, जबकि योगी लोगों के आश्रित रहता हैं संसार और शरीर।"

अब इस प्रसंग में आपको मैं जो मारण प्रयोग से संबंधित अन्य कथा सुनाने जा रहा हूँ। वह अपने आप में चमत्कारपूर्ण और अविश्वसनीय है ही किन्तु साथ—साथ पूर्ण सत्य है इसमें सन्देह नहीं।

यह घटना सन् 1946 की है। उन दिनों हिन्दी से एम.ए. कर रहा था मैं। मेरे एक सहपाठी मित्र थे नाम था जनार्दन तिवारी। रहने वाले थे मिथिला के। हम दोनों हास्टल के एक ही कमरे में रहते थे। जनार्दन तिवारी के पिता दो भाई थे और दोनों भाई कर्म—काण्ड और ज्योतिष के प्रकाण्ड पण्डित थे। उनके कुलदेवता भगवान नरसिंह थे। मंत्रों द्वारा आवाह्न करने पर शेर के रूप में प्रकट भी हो जाते थे वह। ठाकुरों और

जमीदारों की यजमानी थी। स्वयं की भी काफी जायदाद थी। दोनों भाई मिलकर यजमानी करते थे और जायदाद की देखभाल भी। किसी बात की कमी न थी। जनार्दन तिवारी के पिता का नाम था तिलकदेव तिवारी और चाचा का नाम था सत्यदेव तिवारी। दोनों भाईयों के बीच एकमात्र सन्तान के रूप में जनार्दन तिवारी। तिलकदेव तिवारी के एक परम मित्र थे भैरव मिश्र। वे भी प्रकाण्ड विद्वान थे और साथ ही तांत्रिक भी। काली की सिद्धि थी भैरव मिश्र को। हर अमावस्या की रात में वे काले बकरे की बलि काली के सामने दिया करते थे जिससे भगवती उन पर विशेष रूप से प्रसन्न थी। भैरव मिश्र की एक भतीजी थी नाम था सुन्दरी। केवल नाम की ही सुन्दर नहीं थी बल्कि रूप में भी सुन्दर थी, वह काफी बुद्धिमान और सद्‌गुणी भी थी। एक बार भैरव मिश्र के यहाँ कोई धार्मिक आयोजन हुआ। अपने पिता के साथ जनार्दन तिवारी भी उस उत्सव में सम्मिलित हुये। पन्द्रह–बीस दिनों वहीं रह गये। इसी बीच दोनों में प्रेम हो गया। यहां तक कि दोनों ने गांव के शिव मंदिर में जाकर एक–दूसरे के कभी न अलग होने की कसमें भी खा ली। सुन्दरी, गृहकार्यों में भी निपुण थी। उसकी कार्य कुशलता और सद्‌गुणों से तिलकदेव तिवारी भी प्रभावित हो उठे। उत्सव समाप्त होने के बाद जब जनार्दन तिवारी पिता के साथ वापस लौटने लगे तो उन्हें ऐसा लगा कि वे कुछ खो कर जा रहे हैं। लौटने से पूर्व शिव मंदिर में वे जब सुन्दरी से मिले तो वह भी उदास और खोयी–खोयी सी लगी। गुलाब के फूल जैसा उसका चेहरा मुरझा गया था। उसकी झील जैसी गहरी कजरारी आँखें असहाय और कातर लग रही थी। रोम–रोम, रो रहा था जैसे उसका। जनार्दन तिवारी ने समझाया कि वह उदास न हो, वह शीघ्र ही फिर मिलेंगे।

पता नहीं क्यों जनार्दन तिवारी को इस बात का विश्वास था कि सुन्दरी अवश्य उनकी होगी। कुछ दिनों बाद तिलकदेव तिवारी और भैरव मिश्र में दोनों के विवाह की बात चली और लगभग पक्की ही हो गयी। जनार्दन तिवारी को अपनी ओर से कोई प्रयास नहीं करना पड़ा। इस बीच एक जमींदार के यहाँ नवरात्रि में देवी पूजन का आयोजन हुआ। उसके लिये जमींदार ने तिलकदेव तिवारी को बुलाया। जमींदार के जो पुरोहित थे उनसे खट–पट हो गयी थी जमींदार की। पूजन के

पश्चात् बारह बजे रात को नरसिंह भगवान को बलि दी जाने वाली थी। तिलकदेव तिवारी ने भगवान नरसिंह का आह्वान किया। वे सिद्ध—भक्त तो थे ही। आह्वान करते ही पूरब की ओर से एक भयानक शेर गरजता हुआ उपासना स्थलि पर आ पहुँचा। भय के कारण उपस्थित जितने लोग थे भाग खड़े हुये। इधर शेर के रूप में आये नरसिंह भगवान ने बकरे की बलि ग्रहण की और अन्तर्ध्यान हो गये। तंत्र की इस प्रत्यक्ष सिद्धि को देखकर जमींदार काफी प्रभावित हुआ और उसने तिलकदेव तिवारी को, प्रसन्न होकर एक गांव दान में दे दिया। बाद में पता चला कि जमींदार के पुरोहित भैरव मिश्र ही थे। तिलकदेव तिवारी ने सोचा कि उनकी गलतफहमी बाद में दूर कर दी जायेगी और यह बता दिया जायेगा कि अनजाने में ही यह सब हो गया है। वैसे जो होना था सो हो चुका था।

जब भैरव मिश्र से तिलकदेव तिवारी की मुलाकात हुई तो बात सुधरने के बजाय और बिगड़ गयी। भैरव मिश्र ने साफ कह दिया कि ऐसे कृतघ्न मित्र के साथ वे अब कोई संबंध नहीं रख सकते। तिवारीजी ने बहुत समझाया मगर वे महाशय टस से मस नहीं हुये। बात साफ थी। जनार्दन महाराज की सारी आशाओं पर पानी फिर गया। सारे सपने धूल में मिल गये। उधर सुन्दरी के पिता रामेश्वर मिश्र इस संबंध को तोड़ने लिये तैयार न थे। यही एक आशा थी। इस पर दोनों भाईयों से अनबन हो गयी। रामेश्वर मिश्र अपने परिवार में सबसे बड़े थे और सम्मिलित परिवार के अलावा गांव के भी मुखिया थे। उन्होंने साफ शब्दों में कह दिया कि विवाह यदि होगा तो वहीं जहाँ तय हुआ है नहीं तो जीवन भर अपनी लड़की को कुंवारी ही रखेंगे। भैरव मिश्र को दोनों तरफ से अपने अपमान का अनुभव हुआ। मित्र ने उनकी यजमानी में दखल देकर अपमानित तो किया ही था अब बड़े भाई ने भी उनकी बात काट दी। इस पर वे तिलमिला उठे एकबारगी। भैरव मिश्र ने क्रोध में आकर अपना जनेऊ तोड़ डाला और पैर पटकते हुए कहा—न रहेगा बांस और न बजेगी बांसुरी। फिर धड़धड़ाते हुये पहुँचे उस कमरे में जहाँ उन्होंने काली की मूर्ति स्थापित कर रखी थी। रात के समय चुपचाप काला बकरा मंगवाया। उसको तालाब में नहलाकर उसकी

विधिवत पूजा की और रात के अन्तिम पहर में उसकी बलि दी उन्होंने। खून से कमरे का कच्चा फर्श भर उठा। देवी की पाषाण मूर्ति में सजीवता आ गयी। भैरव मिश्र ने बकरे की खोपड़ी पर कपूर जलाया और उससे काली की आरती की और उसके बाद भीतर से दरवाजा बन्द कर मारण मंत्र का लगे जाप करने।

इधर जनार्दन तिवारी की हालत बिगड़ने लगी। परीक्षा का समय था मगर उसका मन न लगता था पढ़ने में। हर समय पागलों की तरह इधर–उधर घूमते रहते महाशय। चेहरा पीला पड़ने लगा था। पहले तो मैंने समझा कि विवाह टूट जाने के कारण उनको आघात लगा है और यह सब उसी का परिणाम है। मैंने उनको काफी समझाया मगर परिणाम कुछ नहीं हुआ। हालत दिनों दिन बिगड़ती ही जा रही थी। एक रात जब उनको खून की उल्टी हुई तो मेरा माथा ठनका तुरन्त मैं सतर्क हो गया। जनार्दन तिवारी पर निश्चय ही मारण प्रयोग हो रहा है, यह समझते देर न लगी मुझे। जनार्दन तिवारी यह नहीं जानते थे कि मैं तंत्र मंत्र भी जानता हूँ। आपको तो ज्ञात ही है कि इस दिशा में सदैव अपने आपको गुप्त रखा है मैंने। कभी भी अपनी साधना और शक्ति को प्रदर्शित नहीं किया न तो उनका डंका ही पीटा चारो तरफ। खैर, जनार्दन तिवारी को खून की उल्टियाँ बराबर होने लगी। आखिर एक दिन उन्होंने खाट पकड़ ही लिया। तिलकदेव तिवारी को सूचना दी गयी। वे घबराये हुये सपरिवार आये। मैंने उनको एकान्त में ले जाकर वस्तु स्थिति बतलायी। एकबारगी सन्न रह गये वह एकमात्र पुत्र की आसन्न मृत्यु की कल्पना ने उन्हें विचलित कर दिया मगर मैंने उनको सान्त्वना दी और कहा–वे घबरायें नहीं। मेरे रहते जनार्दन तिवारी की मृत्यु मारण प्रयोग से कदापि न होगी। बस मेरे आदेशों का पालन करते रहे वह। हास्टल से उठाकर जनार्दन तिवारी को मैं अपने घर पर ले आया और एक कमरे में उनकी व्यवस्था कर दी मैंने। जानता था कि जो प्रयोग किया जा रहा है वह 64 दिन का है अन्तिम दिन, अन्तिम परिणाम सामने आता है। मारण प्रयोग में खून की उल्टी होने का अपना निश्चित समय होता है। उसी समय में मृत्यु भी होती है, अन्तिम दिन। जनार्दन तिवारी को रात 11 से 1 बजे के भीतर उल्टियाँ

होती थी नित्य। मैं उसी समय यानि दो घंटे नित्य रात्रि में उनकी खाट के पास बैठने लगा। उस समय मैं कमरे में अन्य किसी को रहने नहीं देता था। कारण कि भयंकर खतरा था और उस खतरे का सामना अकेले मैं ही करना चाहता था। खैर! सारे शरीर में सिहरन दौड़ गयी मेरे। उंगलियों में फंसी माला छूटते–छूटते बची। दूसरे क्षण संभाल लिया अपने को मैंने। प्रकाश का गोला मेरे कमरे की ओर बढ़ता आ रहा था धीरे–धीरे और उसी के साथ जनार्दन तिवारी, जनार्दन तिवारी.....की आवाज भी तीव्र होती जा रही थी। लगभग बीस मिनट के बाद प्रकाश का वह गोला मकान के सामने आकर अचानक लुप्त हो गया। दूसरे क्षण मुझे कमरे के भीतर भन्–भन् की ध्वनि सुनाई पड़ी। मैं चौंककर चारो तरफ देखने लगा। सहसा मेरी दृष्टि कमरे में चक्कर काटती हुई एक कच्ची मिट्टी की हंडिया पर पड़ी। लगभग पांच मिनट चक्कर काटने के बाद वह मेरे सामने आकर रूक गयी, भन्–भन् की ध्वनि उसी हंडिया से निकल रही थी। तुरन्त समीप रखे नींबू को छूरी से काट दिया मैंने। नीबू की बलि होते ही हंडिया फर्श पर आ गयी। जनार्दन तिवारी खाट पर अपने को सिर से पाँव तक ढक, सिकुड़ कर तथा दम साधकर पड़े रहे। बंद कमरे के बाहर उनके परिवार के लोग स्तब्ध खड़े थे। भीतर आने को मैंने सभी को मना कर रखा था। हड़िया को खोल कर देखा–भीतर एक मुर्गी का बच्चा था, जिसकी गर्दन के आर–पार एक लम्बी सुई फंसी थीं। हड़िया में भरी कच्ची शराब में मुर्गी का वह बच्चा डूबा हुआ अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था। मैंने शराब से बाहर निकाला उसे, फिर गले में फंसी सुई निकाली। सहसा एक चमत्कार हुआ। सुई के बाहर निकलते ही––जनार्दन तिवारी अचकचा कर खाट पर उठ बैठे और लगे चीख–चीख कर कहने मुझे छोड़ दो–मुझे छोड़ दो, मैं वापस चला जाऊँगा–खून......खून खून। समझ गया मैं भैरव मिश्र ने "बान" मारा मुर्गी के बच्चे के माध्यम से–उन्होंने किसी पिशाच को भेजा था। वही जनार्दन तिवारी के ऊपर आकर चींख रहा था। मैंने पूछा किसने तुमको भेजा है ? भैरव मिश्र–भैरव मिश्र–खून–खून–खून–जनार्दन तिवारी के स्वर में वह पिशाच बोला।" तुमको खून चाहिये ? फिर मैंने पूछा। हाँ–हाँ–हाँ– तीन बार बोल कर फिर खून–खून–खून कह कर

चींख पड़ा। वह पिशाच! मैंने गिलास में उड़ेल कर हड़िया की कच्ची शराब थोड़ी सी पी और उतनी ही मात्रा में पास में रखी दूसरी शराब उसमें भर दी। इसके बाद मुर्गी के बच्चे के गले में उल्टी सुई डाल दी और पूर्ववत उस बच्चे को हड़िया में रख दिया। वह तब तक मरा नहीं था। इतना सब कर मैं फिर मंत्र का जाप करने लगा। लगभग आधे घण्टे बाद, हड़िया अपने स्थान से उठी और कमरे के कई चक्कर लगाने के बाद बाहर निकल गयी, भन्–भन् की आवाज करती हुई।" भैरव मिश्र ने इतना खतरनाक बान भेजा था कि ब्रह्मा भी उससे रक्षा नहीं कर सकते थे। मैंने उसी को उल्टा प्रयोग कर वापस लौटा दिया था।

उसी रात भैरव मिश्र संसार से चल बसे। रात में ठीक–ठाक सोये थे। सवेरे मरे हुये पाये गये। मरते समय खून की उल्टी हुई थी। बहुत सारा खून फैल गया था, बिस्तर पर। पिशाच को खून चाहिए था वह उसे मिल गया। खैर जनार्दन तिवारी को बचाने की जितनी मुझे प्रसन्नता हुई–उतना ही मुझे भैरव मिश्र के मरने का दुःख भी हुआ। वे विद्वान थे और साधक भी थे मगर विवशता थी। उन्होंने अपनी शक्ति का दुरूपयोग किया था जिसका परिणाम स्वयं उनको भोगना पड़ा। दूसरे साल जनार्दन महाशय का काफी धूमधाम से सुन्दरी से विवाह हो गया पर मैं नहीं गया विवाह में इसी सबके कारण। अन्त में जिस बात का भय था वही हुआ–भैरव मिश्र को प्रेतयोनि मिली। उनकी प्रेतात्मा सुन्दरी को परेशान करने लगी। बाद में लगातार कई वर्षों तक मेरे निकट भटकती रही और याचना करती रही अपने उद्धार की। जब मैंने स्वयं काशी के अच्छे पण्डितों से उनका गया में श्राद्ध कराया तब जाकर कहीं भैरव मिश्र को प्रेतयोनि से मुक्ति मिली और मुझे मिली मन की शांति। इस प्रकार मैंने अपना प्रायश्चित भी किया।

●

रहस्य तेरह

एक रानी की रहस्यमयी तंत्र साधना

विस्मित रह गये थे दरभंगा के महाराजाधिराज रामेश्वर सिंह। मंदिर के उस निविड़ अंधकार में एक छोटे से दीये की कांपती लौ में पता नहीं कैसा प्रकाशपुंज पलभर में आकर सिमट गया था। रानी कुँवर आहिस्ते से उठ खड़ी हुई थी। मृगचर्म पर बैठा साधक तबतक मंत्र बुदबुदा रहा था। रानी कुँवर की आँखे रक्तिम हो आयी थी। महाराज को लगा.......अरे! साक्षात् भगवती की आँखें हैं ये तो।

अस्फुट स्वर में रानी कुंवर से उन्होंने कहा, ''रानी कुँवर! सचमुच आज तुम महाशक्तिरूपा हो गयी....।

रानी कुंवर कुछ नहीं बोलीं। महाकाली की प्रतिमा की तरफ मुड़ गयीं। तभी महाकाली के माथे पर से एक फूल गिरा। महाराजा भावविह्वल होकर बोले, ''देवी महाकाली का आशीर्वाद संभालो....।''

वह सन् 1921 की दीपावली की अमावस्या थी। मध्यरात्रि का समय था। जगमगाता शहर धीरे–धीरे अंधकार के आगोश में सिमटता जा रहा था। गिनती के कुछेक मकानों की छतों पर टंगे कंदीलों की टिमटिमाती रोशनी दूर से धरती पर उतर आये सितारों का भ्रम उत्पन्न कर रही थी। नगर की दीपावली का मनमोहक सौन्दर्य देखने नदी में निकली नौकाएँ कब की किनारों से आ लगी थीं। पटाखों का शोर थम गया था।

पतित–पावनी गंगा के तट से सटे पटना के 'दरभंगा हाउस' के परिसर में निस्तब्धता व्याप्त थी। विशाल भवन के मध्य से एक संकरा रास्ता ठीक गंगा में उतरा हुआ था। रास्ते के मुहाने पर बनी घाट की सीढ़ियाँ घुप्प अंधेरे में डूबी थी। घाट से सटे काली मंदिर के भीतरी कक्ष में घी के दीये जल रहे थे। समूचा कक्ष लोहबान एवं अगरबत्तियों के तीव्र सुगंध से भरा था।

महाकाली की भव्य प्रतिमा के गले में रक्ताभ गुड़हल के फूलों की एक विशाल माला पड़ी थी। प्रतिमा के ठीक सामने त्रिकोणीय हवन–कुण्ड से आग की लपटें लगातार उठ रही थीं। कुंड के नजदीक अघोरी साधक की वेशभूषा में एक दिव्य पुरुष एक अनिन्द्य सुन्दरी के साथ बैठा था। उन दोनों से थोड़ा परे हटकर कुशासन पर विराजमान थे दरभंगा के महाराजाधिराज और श्रेष्ठ साधक रामेश्वर सिंह। 'महापूर्ण दीक्षाभिषेक' अत्यन्त गुह्य एवं विचित्र अनुष्ठान के एकमात्र साक्षी बने दरभंगा नरेश की आंखों में असीम कौतूहल था। मृगचर्म पर आसीन साधक के तेजोमय व्यक्तित्व के आगे उसकी आयु का आकलन नितान्त असंभव प्रतीत होता था, जबकि साधिका से पूर्व परिचित थे महाराज।

गेहुँआ रंग, धनुषाकार भौहें, सम्मोहक कजरारी आँखे, तीखी नासिका, लाल–लाल होंठ, घनी केशराशि, उन्नत वक्षस्थल और सुपुष्ट शरीर....लाल साड़ी में लिपटा हुआ उस साधिका का रूप लौकिक नहीं लगता था। वह एकटक माँ जगदम्बा की मूर्ति को निहार रही थी। साधक के दाहिनी ओर मद्यपूरित कपाल, सिन्दूर और राख से पुती अस्थियां, कछुए की पीठ की हड्डी में अक्षत एवं लाल पृष्पों के अतिरिक्त पूजन की ढेरों सामग्री रखी थी। साधिका के चारों ओर ग्यारह घटों में शव रखे थे, जिनके हर ओर अगरबत्तियां सुलग रही थीं।

थोड़ी–थोड़ी देर के बाद साधक की बुदबुदाहट तेज हो जाती थी ,और वह एक अस्थि–शलाका को मद्यपूरित कपाल में डुबोकर निकालता और हवनकुंड में छोड़ देता। ऐसा करते ही आग की लपटें तेजी से भभक उठतीं। अस्थि के चटखने की आवाज के साथ ही मुर्दा जलने की चिरागंध वातावरण में क्षणभर में व्याप्त हो जाती मगर थोड़ी ही देर में वह गंध विलीन हो जाती।

फिर साधक के इस क्रम में परिवर्तन आया और उसने मंत्र पढ़ना बंदकर साधिका को कुछ निर्देश दिये। फिर नर–कपाल को उठाकर साधिका के हाथों में थमा दिया। देखते ही देखते साधिका उस कपाल में बचे मद्य को गटागट पी गयी। उसकी मुद्रा बदल गयी। उसने अपना मुख घटों में रखे शवों की ओर कर लिया। साधक ने अपने दग्धनेत्र मूंद लिये और अस्फुट स्वर में मंत्रोच्चारण प्रारम्भ किया। अल्प विराम के बाद ग्यारह घटों में रखे शवों के ब्रह्मरन्ध्र से हठात असंख्य सुधा–बिन्दु फुहारे की तरह निकलकर साधिका का अभिषेक करने लगी।

महाराज रामेश्वर सिंह इस अलौकिक दृश्य को देखकर अभिभूत हो उठे। वे समझ गये कि साधिका का "महापूर्ण दीक्षाभिषेक" सम्पन्न हो चला है। महाराज स्वयं बहुत बड़े तांत्रिक और सिद्ध साधक थे। अपने जीवन में उन्होंने अनेक अनुष्ठान सफलतापूर्वक किये थे। तन और मन को संयम से साधा था उन्होंने लेकिन इस महत्वपूर्ण दीक्षाभिषेक को देखकर वे स्वयं विस्मित थे। काठमांडू के उस महासिद्ध के निर्देशन में उत्पन्न इस महाभिषेक को देखकर वे रोमांचित हो उठे थे। रानी कुंवर को प्रणाम करते हुए अनायास ही उसके मुंह से निकला "अरे! अरे! आज मैं धन्य हो गया साक्षात् महाशक्ति का दर्शन करके।"

रानी कुंवर का जन्म 1900 ई0 में माघ शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा के दिन पटना के 'श्यामा मंदिर' के निकट हुआ था। उनके पिता थे पंडित शिवशंकर मिश्र। आधी उम्र बीत जाने के बाद शिवशंकर को जब संतान–सुख प्राप्त हुआ तो उन्होंने बेटी का नामकरण किया–रानी कुंवर। अपनी बेटी के जन्म काल एवं ग्रह स्थिति को देखकर शिवशंकर मिश्र ने अपनी पत्नी से कहा, "बेटी ने नहीं हम सब के उद्धार के लिए बेटे के जन्म लिया है। यह बड़ी होकर महान साधिका बनेगी और दीन–दुखियों की मदद करेगी।"

रानी कुंवर जब आठ वर्ष की हुई, तो उनके पिता के शरीर छोड़ दिया। मरते समय उन्होंने एक बार फिर अपनी धर्मपत्नी से कहा, 'मैं जा रहा हूँ लेकिन तुम्हारा सहारा रानी बनेगी, चिन्ता न करना। हाँ रानी का लालन–पालन अपनी देखरेख में ही करना।"

जब रानी कुंवर' मात्र ढाई वर्ष की थी, उस समय दरभंगा के महाराज रामेश्वर सिंह ने समीप ही दरभंगा कोठी में आश्विन शुक्ल पक्ष की महाष्टमी को विधिवत पूजन करने के बाद 108 कुमारियों के भोजन का आयोजन किया। आनन–फानन में 107 कुमारियाँ इकट्ठी हो गयीं, पर एक की कमी रह गयी। महाराज बिना अन्न–जल लिये 108 वीं कुमारी की प्रतीक्षा करते रहे। जब बहुत देर हो गयी, तो उपस्थित लोगों में से एक जानकार ने पंडित शिवशंकर मिश्र की बेटी रानी कुंवर को महाराज के सम्मुख उपस्थित किया। 108वीं कन्या होने की वजह से महाराज ने रानी कुंवर का पूजन–अर्चन करने के बाद उन्हें एक स्वर्ण मुद्रा दी। रानी ने जब अपनी नन्हीं हथेली महाराज के सामने फैलायी, तो उनकी हस्तरेखाओं को देखकर वे विस्मित हो उठे। अनायास उनके मुख से निकल पड़ा, "अरे! इसका जन्म हो गया! इसमें तो शक्तिस्वरूपा मां की विलक्षण शक्ति का अंश है। यह तो साक्षात् 'माई' है।

इसके बाद महाराज की ओर से हर माह एक धनराशि रानी कुंवर के पालन–पोषण के लिए उनकी माँ को प्राप्त होने लगी। उसी दिन से रामेश्वर सिंह ने रानी कुँवर को 'माईजी' कहना शुरू कर दिया।

रानी कुंवर के पिता की मृत्यु हो जाने के बाद महाराज ने रक्सौल के प्रसिद्ध तांत्रिक केशवानन्दजी से रानी कुंवर का दीक्षा–संस्कार करवाया। जहां भी केशवानन्दजी महाराज बैठ जाते थे, वहीं उनके शरीर से कमल के फूल की सुगंध आती थी। आगे चलकर यही सिद्धि रानी कुंवर को भी प्राप्त हुई। फिर रानी कुंवर ने केशवानन्दजी के सान्निध्य में 13 वर्ष की उम्र तक 'पुरश्चरण' किया। जिस मंत्र में जितने अक्षर होते है, उतने करोड़ जप करके तथा कलियुग में चौगुना जप करे उसका दसवां हिस्सा हवन–तर्पण एवं मार्जन करने से 'पुरश्चरण' सम्पन्न होता है।

तेरह वर्ष की उम्र में रानी कुंवर महाराज के निर्देशानुसार अपनी मां के साथ कामरूप कामाख्या गयीं, जहां 'प्रभु नामक तांत्रिक से उन्होंने 'वीर साधना प्रारम्भ की। 'वीर साधना में दस साधन हैं–कदलीमूल, बिल्वमूल, त्रिपथ, चतुष्पथ, श्मशान, शून्यागार, पंचवटी, मुंड साधना, शव साधना एवं चिता साधना। इन साधनाओं को सम्पन्न करके रानी कुंवर पटना लौट गयीं। फिर अठारह वर्ष की उम्र तक महाराजाधिराज की

शांभवी शक्ति के सान्निध्य में साधना–संकेतों को सीखते हुए रानी कुंवर ने अपनी तंत्र शिक्षा जारी रखी। अठारहवें वर्ष को पार करते ही महाराज रामेश्वर सिंह ने काठमांडू और कामरूप कामाख्या के सिद्ध साधकों को बुलवाया और उन्हें उत्तर साधक के रूप में नियुक्त कर रानी कुंवर द्वारा तंत्रशास्त्र की उत्कृष्ट साधनाएं शव साधना एवं चिता साधना पूर्ण करायी।

इसके बाद महाराज ने कामाख्या मंदिर में एक विशिष्ट अनुष्ठान प्रारंभ किया। यह अनुष्ठान रात्रि 9 बजे से प्रारम्भ होकर प्रातः 3 बजे तक चलता था। इसमें कामाख्यापीठ पर से वहां रखा गया ढाई मन सोने का ढक्कन हटा दिया जाता था तथा रानी कुंवर की पूजा 'पूज्या शक्ति' के रूप में दरभंगा नरेश स्वयं करते थे। इस अनुष्ठान के सम्पन्न होने पर रानी कुंवर पटना आ गयीं और महाराज वापस दरभंगा चले गये। सन् 1929 में महाराज रामेश्वर सिंह की मृत्यु हो गयी।

महाराजा की मृत्यु के बाद रानी कुंवर ने पटना में दरभंगा हाउस के समीप ही, जहां उनका जन्म हुआ था, पंचमुंडी की स्थापना की। पंचमुंडी की स्थापना के लिए जमीन में पांच सिरों का रोपण किया था। मगर इससे पूर्व रानी कुंवर ने श्यामा मंदिर की सारी भूमि में बित्ते–बित्ते भर की दूरियों पर नर–अस्थियों को गाड़–गाड़कर उसे श्मशान भूमि में परिवर्तित कर लिया था।

इस जमीन को रानी कुंवर ने सन् 1921 में जुमाई मियां से खरीदा था। कुछ समय बाद रानी कुंवर ने श्यामा मंदिर के द्वार पर गणेश की मूर्ति तथा मंडप में भगवती जगद्धात्री एवं धात्रीवृक्ष (आंवले का पेड़) की स्थापना करायी। इस अवसर पर बिहार के तत्कालीन गवर्नर डॉ. माधव श्रीहरि अणे भी आये थे। आगे चलकर बटुक भैरव और योगिनी की मूर्तियाँ भी स्थापित हुई।

अपने जीवन–काल में रानी कुंवर ने सभी तीर्थों एवं चारों धामों का भ्रमण किया तथा मंत्रों का पुरश्चरण किया। उदयास्त एवं अस्तोदय जैसे कठिन पुरश्चरण भी उन्होंने पूर्ण किये थे।

हालांकि रानी कुंवर सरयूपारीण ब्राह्मण थीं और शाक्त मत में उनका विश्वास था, किन्तु उनके पास राजनेताओं एवं समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति के अलावा बड़ी संख्या में मुसलमान भी आये थे।

मुसलमान भाइयों की मुरादें पूरी करने के बाद रानी कुंवर उन्हें किसी मजार पर जाकर लोहबान और अगरबत्तियां जलाने का आदेश दिया करती थीं। यदा–कदा वे ख्वाजा निजामुद्दीन चिश्ती के यहां अजमेर शरीफ भी जाती थीं।

हर वर्ष रानी कुंवर माघ में प्रयाग अवश्य जाया करती थीं। कुंभ के मेले में उनके पास अनेक श्रेष्ठ साधक मिलने आते थे, जिनमें स्वामी शाश्वतानंद सरस्वती, स्वामी मूर्खानंद, स्वामी योगेन्द्र कृष्ण, पंडित ईश्वरीदत्त शास्त्री के अलावा महाकवि सुमित्रानंद पंत, जिन्हें कालीचरण पंथ के अनुरोध पर रानी कुंवर ने दीक्षित किया था, प्रमुख थे। सन् 1966 के कुंभ में पंडित देवीदत्त शुक्ल और बंबई से कोठारी स्वामी अपने साथ चांदी का एक 'श्री यंत्र' भी लाये थे, जिसे स्पर्शमात्र करने का उन्होंने रानी कुंवर से अनुरोध किया था। इन लोगों के अलावा पूर्व रेलमंत्री स्वर्गीय ललित मिश्र, बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री स्वर्गीय केदार पांडे, जम्मू–कश्मीर के पूर्व राज्यपाल और संप्रति राज्य सभा सदस्य डॉ. एल0के0 झा, बिहार के पूर्व राज्यपाल डी0के0 बरूआ एवं अन्य कई बड़े सरकारी पदाधिकारी तथा न्यायाधीश आदि रानी कुंवर के शिष्य थे।

रानी कुंवर ने न जाने कितने लोगों का उद्धार किया था। उनसे जुड़े किस्से बेशुमार हैं। रानी कुंवर श्मशान साधना के लिए आधी रात को अपनी फिटन से जाया करती थी। फिटन का चालक बद्री अपनी उम्र के 110 वे पड़ाव पर भी कुछ नहीं भूला था। भूल भी कैसे सकता था? उसने अपने जीवन का आधे से ज्यादा हिस्सा रानी कुंवर के सान्निध्य में बिताया था। रानी कुंवर का चेहरा अक्सर कौंधता रहता था उसके मन में। बद्री बताता है–

वह 1946 की श्रावणी पूर्णिमा थी। रात का दूसरा पहर शुरू हो गया था। पानी बरस गया था। बादल छाये हुए थे। हवा तेज चल रही थी। तभी माई (रानी कुंवर) ने मुझसे कहा, "बद्री जल्दी से घोड़ों को फिटन में बांधों और चलो गुलबी घाट। वहां दो व्यक्ति मेरा इंतजार कर रहे होंगे।" माईजी का हुक्म पाकर मैंने दो मिनट के अन्दर फिटन तैयार की। माईजी फिटन में बैठ गयीं। देखते ही देखते फिटन गुबीघाट की श्मशान भूमि पर जा रूकी। दो व्यक्ति फिटन के पास लपके। उन्होंने

माईजी को दंडवत प्रणाम करके उन्हें फिटन से आदरपूर्वक उतारा। गुलबी घाट की श्मशान भूमि में नीरवता व्याप्त थी। श्मशान के मरियल कुत्ते अपनी दुम सिकोड़े लकड़ी के लट्ठों के ढेर से चिपके कांप रहे थे। बीच–बीच में प्रवाहमयी गंगा की लहरें तट से टकराकर धीमा शोर पैदा कर रही थीं।

माई उन दोनों व्यक्तियों के संग उस जगह पहुंची, जहां चिताएं जलायी गयी थीं। माईजी के हाथ में एक लंबा त्रिशूल था। वहां पहुंचते ही दोनों व्यक्तियों ने माई के निर्देशानुसार, कंबल में लपेटी वस्तु को धीरे से जमीन पर लिटा दिया। आहट से चौंकन्ने हो उठे कुत्तों ने एक बार उनकी ओर देखा, फिर अपनी गर्दन मोड़कर पूर्ववत ऊँघने लगे। हवा थम गयी थी। थोड़ी ही देर में वहां दीये प्रकाशमान हो उठे। दीयों की मद्धिम रोशनी में माईजी का रूप विचित्र लग रहा था। वह स्वर्ण–आभूषणों से लदी थीं। गहरे लाल रंग की रेशमी साड़ी और गर्दन में झूल रही अस्थियों की माला से वे कुछ तो भयानक और कुछ रहस्यमयी लग रही थीं। उन्होंने मंत्रोच्चार के बाद एक अस्थि से भूमि पर दो घेरे खींच दिये। एक घेरे में दोनो व्यक्ति और दूसरे में उस कंबलवाली वस्तु के साथ वे स्वयं बैठ गयीं। फिर माईजी ने एक विचित्र अनुष्ठान प्रारंभ किया। घेरे के भीतर जमा की गयी लकड़ियों को सिन्दूर से छुआकर उन्होंने अपने समीप रखे कपाल–पात्र से उन पर मद्य उड़ेला। फिर जोर–जोर से मंत्रोच्चार करते हुए माईजी ने दो छोटी अस्थियां उन पर फेंकी।

विस्फारित नेत्रों से उन दोनों व्यक्तियों ने देखा, लकड़ियों से अग्निशिखा लपलपा उठी थी। उन जलती लकड़ियों से इतना प्रकाश पैदा होने लगा था कि घेरे के अंदर लिटायी गयी वस्तु स्पष्ट दिखाई देने लगी। वह वस्तु और कुछ नहीं, एक दस वर्षीया बालिका थी जो चिरनिद्रा में डूबी मालूम पड़ती थी। मंत्रोच्चारण के साथ–साथ साधिका माईजी अग्नि में अस्थि के छोटे टुकड़ों के अलावा अपने कपाल पात्र से मद्य भी डालती जाती थीं।

फिर उन्होंने मंत्रोच्चारण बंदकर अपना त्रिशूल हवा में ऊपर उठाया और गंगा की ओर झटके से फेंक दिया। दस पन्द्रह मिनट बाद गंगा की सतह पर तैरती कोई विशाल वस्तु किनारे से आ लगी। माईजी

अपने स्थान से उठीं और पानी की ओर चल दी। किनारे से लगे उस शव को उन्होंने एक बार गौर से देखा। वह किसी युवक का शव था।

माईजी के नेत्र उस अंधेरे में चमक उठे और उनके होठों पर रहस्यमयी मुस्कान फैल गयी। शव के सीने पर साधिका का त्रिशूल उलटा खड़ा था। माईजी ने शव का सिर अपने दोनों हाथों में उठाया और घसीटकर अग्नि के पास ले आयीं। फिर मंत्रोच्चारण के साथ उन्होंने सरसों के दाने शव के इर्द–गिर्द फैला दिये। शव साधना की अपनी शक्ति से उस शव को जीवित करके माईजी ने उसे मद्य पान कराया। फिर उन्होंने घेरे के अन्दर लिटायी गयी दस वर्षीया बालिका की ओर इशारा किया और स्वयं शव के सीने पर से नीचे उतर गयीं।

अचानक वह शव उठकर जमीन पर सीधा खड़ा हो गया। शव ने गोल–गोल घूमती अपनी पुतलियों को स्थिर करने का प्रयासकर बालिका की ओर देखा और तत्क्षण मुड़कर सीटी की तेज आवाज के साथ नदी की ओर भागा। देखते ही देखते वह दौड़ता हुआ गंगा की सतहों पर विलीन हो गया। इस भयानक दृश्य को प्रत्यक्ष देखकर उन दो में से एक व्यक्ति बेहोश हो गया था।

रात के तीन बजे वे दोनों व्यक्ति श्मशान से वापस लौट रहे थे। उनके साथ वह एक दस वर्षीया बालिका भी थी, जो स्वयं चल रही थी। उन व्यक्तियों में से एक का नाम गोविन्द मिश्र दूसरे का जगदीश पण्डा था। जगदीश पण्डा राजगीर का निवासी था। उसकी दस वर्षीया इकलौती बेटी सुषमा की आकस्मिक मृत्यु हो गयी थी। सुबह उसके सीने में तेज दर्द उठा, तो जगदीश ने भागकर डॉक्टरों की शरण ली। डॉक्टरों को दर्द का कारण पता नहीं लग सका। दिन में करीब तीन बजे काफी तड़पने के बाद सुषमा का शरीर निश्चल हो गया। डॉक्टरों ने उसे मृत घोषित कर दिया। उस समय तेज बारिश हो रही थी। शाम सात बजे जगदीश अपनी बेटी का शव लेकर गुलबी घाट की ओर जा रहा था। तभी एक व्यक्ति ने दरभंगा हाउस के समीप उसे रोककर कहा, "तुम्हें माईजी बुला रही है।"

दरभंगा हाउस के समीप बने श्यामा मंदिर के निकट पहुंचने पर उसने देखा लाल साड़ी पहने माईजी श्यामा मंदिर के चबूतरे पर बैठी थी।

उनकी आंखों में मोहिनी चमक थी। दाहिने हाथ में भारी त्रिशूल और गले में अस्थिमाला। जगदीश को देखते ही माईजी ठठाकर हँस पड़ी और कहा,"का रे! तू अपन बिटिया के नदी में प्रवाह करे ले जइते हई?"

जगदीश रोने लगा। वह माईजी के पैरों पर गिर पड़ा—"हा माई, हमर बेटी मर गइल। डाक्टर कुछ न कर सकलिनि। अब आपन ही के सहारा हई।"

रहस्यमयी मुस्कान के साथ साधिका रानी कुंवर ने जगदीश पण्डा की पीठ पर हाथ फेरा और उसे उठने का आदेश दिया। रानी कुंवर ने जगदीश को उसकी इकलौती बेटी की जिन्दा कर देने का आश्वासन देकर बताया कि उसकी अकाल मृत्यु हुई है। लेकिन अर्द्धरात्रि का वह इंतजार करे तभी वह उसके लिए कुछ कर सकेगी।

श्मशान से लौटने के बाद जगदीश अपनी जीवित बेटी के साथ राजगीर लौट गया। माईजी ने उसे इस घटना की चर्चा किसी से न करने की सख्त चेतावनी दी थी।

रानी कुंवर की रहस्यमयी गाथा यहीं समाप्त नहीं होती। एक दूसरी घटना का जिक्र करते हुए बद्री के रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

माईजी के प्रतिदिन दो बजे रात तक श्मशान जाकर साधना करती थीं। सन् 1935 की बात है। वे महेन्द्र घाट से स्टीमर द्वारा गंगा पारकर पहलेजा घाट पहुंची और वहां से दरभंगा महाराजा के वंशजों से मिलने जाने के लिए बस की प्रतीक्षा करने लगी। ठीक एक बजे रात में दरभंगा की बस पर वे सवार हुईं। मैं भी उनकी बगल में बस पर बैठा ऊँघ रहा था। हाजीपुर—सोनपुर को जोड़नेवाली गण्डक नदी पर बने पुल से जब बस गुजर रही थी, तो रात के अंधेरे में माईजी ने एक शव तैरता देखा। झटका देकर उन्होंने मुझे जगाया और बस रुकवाकर उतर गयीं। फिर मुझे साथ लेकर नदी तक गयीं।

अपनी तंत्र शक्ति के बल पर त्रिशूल के माध्यम से उन्होंने शव को किनारे खींचा। एक पचीस वर्षीय सुन्दर नौजवान का शव था वह। शव को पानी से निकालकर माईजी ने उसे रेत पर लिटाया। फिर मेरी ओर मुड़कर जोर से कहा, "बद्री! ऐकर दुश्मन सब जहर देके मार देले हई। हम ऐकरा के अभी ये जिन्दा करबई। तू डरइहे मत।"

मैं अपलक उनकी साधना देखने लगा। उन्होंने शव के मुंह से अपना मुंह लगाकर उसका सारा जहर उतारना शुरू किया। डेढ़ घंटे के अथक परिश्रम के बाद वह नौजवान जिन्दा हो उठा। फिर माईजी उस नौजवान के साथ उसके गांव हाजीपुर गयी। उसके घर के लोगों की खुशी का ठिकाना न रहा। लोग इस चमत्कार से अभिभूत हो उठे। उन्होंने माईजी का खूब सत्कार किया और उनसे वहां ठहरने का आग्रह किया। लेकिन वे कहां माननेवाली थीं आखिर ग्रामीणों ने उन्हें कुछ जमीन उपहारस्वरूप दिया, जिसे माईजी ने स्वीकार कर लिया।

सन् 1946 की एक रात की घटना बद्री को ज्यों की त्यों याद है : "वह माघी अमावस्या की काली रात थी। पूरे पटना शहर में हिन्दू–मुस्लिम दंगा रोकने के लिए चप्पे–चप्पे पर पुलिस तैनात थी। रात के दस बजे माईजी के हुक्म पर मैं उन्हें फिटन में बिठाकर बांस घाट ले गया। लगातार चार घंटे तक श्मशान में पूजा करने के बाद जब माईजी वापस लौट रही थी, तो बी0एन0 कालेज चौराहे के पास एक अंग्रेज पुलिस अधिकारी ने फिटन रुकवा दी और कड़कते स्वर में कहा, 'तुम इस औरत के साथ अभी एकदम आगे नहीं बढ़ सकता। जानता नहीं, पटना में 'रायट' हो गया है? कर्फ्यू लागू है?" उसकी बात सुनकर माईजी ने कहा, 'बेटे! मुझे सब कुछ पता है, फिर भी मुझे घर तो जाने दो। लेकिन वह आगे बढ़ने देने की तैयार नहीं हो रहा था। इतने में वहां अंग्रेज एस0पी0 की गाड़ी आ रुकी। गाड़ी से उतरकर कद्दावर एस0पी0 ने माईजी को हाथ जोड़कर प्रमाण किया और फिटन जाने दी। हैरत में डालनेवाली बात तो यह थी कि वह एस0पी0 फिटन के पीछे–पीछे अपनी गाड़ी माईजी के निवास तक ले आया था।"

रानी कुंवर के शिष्यों में अग्रणी थे पटना से प्रकाशित 'इंडियन नेशन' अंग्रेजी दैनिक के तत्कालीन व्यवस्थापक दिनेश झा। उनके दूसरे शिष्य गोविन्द मिश्र श्यामा मंदिर में रहते थे। गोविन्द मिश्र बताते थे।

"सुरसंड स्टेट के छेदन झा एक बार जमीन के बंटवारे के सिलसिले में गलती से एक व्यक्ति का खून कर बैठे। उन पर मुकदमा हुआ। सजा होनी थी। उन्होंने रानी कुंवर की ख्याति सुनी, तो उनके पास दौड़े आये। रानी ने पहले तो उन्हें फटकारकर भगा दिया लेकिन छेदन माने

नहीं। वे बराबर दुशाला ओढ़े श्यामा मंदिर की दहलीज पर आकर घंटों बैठे रहते। अंत में रानी का कोमल हृदय द्रवित हो उठा। 24 जनवरी 1935 की मध्य रात्रि में वे उनके साथ गुलबी घाट श्मशान में गयी साथ में मैं भी था।

"श्मशान में पहले से ही कोई औघड़ मौजूद था। जब रानी ने अनुष्ठान शुरू किया, तो उस औघड़ ने उन्हें नीचा दिखाने के इरादे से अपनी शक्ति का प्रयोग मुझ पर कर दिया। मैं अर्द्धचेतन अवस्था में जमीन पर गिर पड़ा। रानी गुस्से से भर उठीं। उनकी भृकुटि तन गयी और होंठ कांपने लगे। उन्होंने तत्काल मेरे माथे को छुआ। मैं तो उठकर बैठ गया, मगर रानी के क्रोध का शिकार बने औघड़ की सारी शक्तियां जाती रहीं। वह पागल हो गया। कई महीनों तक वह पटना की सड़कों पर मारा–मारा फिरता रहा।

1959 की दीपावली थी उस रोज। रानी कुँवर के संग गोविन्द मिश्र दिनेश झा और एक अन्य व्यक्ति फिटन से "श्मशान की ओर जा रहे थे। पटना इंजीनियरिंग कालेज से आगे चौराहे पर एक स्त्री 'डायन–पूजा' कर रही थी। एक अबोध शिशु को जमीन पर लिटाकर उसने उसके सारे नख उखाड़ डाले थे। रानी की नजर जब उस पर पड़ी, तो वे जोरों से चिल्ला पड़ी। उन्होंने गोविन्द मिश्र और दिनेश झा को फिटन में पीछे आ जाने का निर्देश दिया और स्वयं त्रिशूल लेकर नीचे उतर गयीं।

डायन भी हठी थी। रानी के प्रश्न के उत्तर में कहा कि इस शिशु के परिवारवालों ने उसे बहुत अपमानित किया था, इसलिए वह उसे मार डालेगी। बहुत समझाने पर भी वह नहीं मानी, तो रानी ने अपनी शक्ति का प्रयोग किया। तब वह डायन गुस्से से वस्त्रहीन होकर सड़क पर नाचने लगी। मगर रानी से पार पाना उसके लिए असंभव था। हारकर उसने रानी के पांव पकड़ लिये। रानी ने उससे सारी शक्तियां छीनने के बाद उस अबोध शिशु को उसके परिवारवालों तक पहुँचवा दिया।

रानी कुंवर उर्फ माईजी की दिनचर्या बड़ी विचित्र थी। वे प्रातः चार बजे उठ जातीं। गंगा में स्नान–ध्यान के बाद मंडप पर बैठकर पूजन करती। फिर भगवती के मंदिर में जाकर उनका श्रृंगार करती। दैनिक अनुष्ठान करती और अंत में अपने कपाल पात्र में ही भोजन करती थी।

भोजन के पूर्व प्रतिदिन वे 15–20 दरिद्रों को खिलाती थी। आश्विन नवरात्रि के समय दस दिनों तक माईजी श्यामा मंदिर से बाहर नहीं जाती थी।

पटना के प्रख्यात चिकित्सक एम0एम0 उपाध्याय के पुत्र गोविन्दशरण उपाध्याय माईजी के अनन्य भक्तों में है। उपाध्यायजी आज पटना उच्च न्यायालय के वरिष्ठ अधिवक्ता हैं। सन् 1958 में वे रानी कुंवर के संपर्क में आये थे। वैसे माईजी किसी को आसानी से अपने पास फटकने नहीं देती थी। किन्तु अनायास ही उनका विशेष अनुग्रह उपाध्यायजी को प्राप्त हो गया। जब गोविन्दशरण उपाध्याय इलाहाबाद में पढ़ते थे, कभी–कभार अपने पिता के पास पटना आना होता था। डॉ. एम0एम0 उपाध्याय का घर श्यामा मंदिर से थोड़ी ही दूरी पर था। एक बार डॉ0 उपाध्याय का भतीजा गंभीर रूप से बीमार पड़ गया। उसके दिल की धड़कन बहुत तेज हो जाती थी। पटना के तत्कालीन वरिष्ठ चिकित्सकों ने रोग को पकड़ने की कोशिश की। 'कार्डियोलाजी' में सब कुछ ठीक आता था। बावजूद इसके वे कुछ नहीं कर पा रहे थे। अंत में मरीज को माईजी के पास लाया गया। उन्होंने कहा, "इसे प्रतिदिन सुबह शाम दो चम्मच गाय का दूध पिलाओ, ठीक हो जाएगा।" सिर्फ दो महीनों में वह लड़का ठीक हो गया। आज वह बैंक ऑफ इण्डिया में पदाधिकारी हैं।

रानी कुंवर अपनी धाई मां की लड़की राधा को सगी बहन की तरह मानती थीं। राधा के जन्म के थोड़े ही समय बाद उसकी मां मर गयी थी। राधा के पिता लक्ष्मी पाण्डेय बेहद निर्धन थे। अपनी पत्नी की मृत्यु से क्षुब्ध होकर उन्होंने राधा को गंगा में प्रवाहित कर देने का विचार बना लिया। रानी कुंवर को इस बात की भनक लग गयी। उन्होंने लक्ष्मी को बुलाकर पहले झिड़का, फिर समझाया, "तुम राधा को मेरे पास रहने दो। इससे तुम्हारा बोझ हल्का हो जाएगा और इसको किसी बात की कमी न होगी। "इसके कुछ ही दिनों बाद लक्ष्मी पाण्डेय भी चल बसे। राधा उस समय मात्र 8–9 वर्ष की थी। राधा का एक भाई भी था, जो बेहद आवारा था। वह भी टी0बी0 से मर गया। रानी कुंवर ने तब अभागी राधा का विवाह जनकपुर के महन्त जनकदुलारी दास से करा दिया मगर कुछ ही वर्षों बाद महन्त ने राधा को वापस रानी कुंवर के पास भेज दिया। इस दौरान राधा के तीन संताने हुई। दो लड़कियों और एक लड़के में राधा की बेटी

किशोरी मंझली है। किशोरी की शादी राजेन्द्र मिश्र से हुई, जो आजकल रानी कुंवर के श्यामा मंदिर के प्रमुख पुजारी है।

श्यामा मंदिर एवं दरभंगा हाउस के काली मंदिर के बीच महज दस कदमों की दूरी है। दोनों मंदिर एक ही रास्ते के दो ओर बने हैं। काली मंदिर के अनुष्ठाता महाराजाधिराज रामेश्वर सिंह न सिर्फ रानी कुंवर के संरक्षक और गुरु थे, बल्कि वे स्वयं तंत्र–मंत्र के प्रकांड विद्वान थे। रानी कुंवर की रहस्यमयी कहानी तबतक अधूरी मानी जाएगी, जबतक कि उनके गुरु रामेश्वर सिंह की तंत्र साधना से जुड़े रहस्यों को लोगों के सामने न लाया जाए।

रानी कुंवर के शिष्यों का कहना है कि महाराजाधिराज अपने तंत्र–मंत्र साधना के दौरान माईजी के साथ एकाकार हो जाते थे। उस अवस्था में दोनों साधनारत होते थे, काम रत नहीं।

मिथिला की गोद में छोटी–बड़ी कई नदियां प्रवाहित हैं। इनमें सबसे चंचल और अपने तीव्र वेग से जमीन का बड़ा से बड़ा हिस्सा काटकर बहा ले जानेवाली कमला नदी महाराजा रामेश्वर सिंह के महल से कुछ ही दूर पर बहती है। यह नदी बार–बार अपना रास्ता बदल देती थी। एक बार रामेश्वर सिंह के राजनगर स्थित विशाल राजप्रासाद की ओर इस नदी ने रुख कर लिया। सभी के होश उड़ गये। इंजीनियरों ने अपनी पूरी कोशिश की, मगर धारा के प्रबल वेग के आगे उनकी एक न चल पा रही थी। यह देखकर महाराज फौरन अपने तंत्राश्रम के अनुष्ठानी पंडितों को साथ लेकर कमला नदी में प्रवेश कर गये। सबसे आगे महाराज रामेश्वर सिंह एवं उनके पीछे खड़े तांत्रिक लगातार छः घंटे तक मंत्र जाप करते रहे। बड़े ही आश्चर्यजनक रूप से अत्यन्त वेगवती कमला नदी ठीक उसी स्थान से नब्बे अंश पर घूम गयी और इस तरह राजप्रासाद डूबने से बच गया। आज भी उस जगह पर कमला नदी उसी ढंग से बह रही है। नदी के उस मोड़ का दृश्य मनोहारी एवं अद्‌भुत है। महाराज रामेश्वर सिंह से जुड़ी किंवदंतियों में एक घटना इस प्रकार है–

पर्वतराज हिमालय के शुभ्र शिखरों के नीचे अनेक कंदराएं विद्यमान है। इन कंदराओं में हजारों वर्ष की आयुवाले तपस्वियों के गुप्तवास की

कहानियाँ आज भी मान्य है। बात उस समय की है, जब कोई साधक इन कंदराओं के समीप से गुजर रहा था। उसने देखा, किसी अज्ञात शक्ति से प्रकाशित एक कंदरा में तीन मानवाकृतियां तपस्या में लीन थी। वे जिस स्थान पर बैठी थी, वहां अत्यन्त मनोरम प्रकाश फैला था। उनकी स्मृति अपने मस्तिष्क में संजोये वह साधक अपने लक्ष्य की ओर चला गया।

करीब दो दशकों के बाद जब वह उसी कंदरा के निकट से वापस लौटने लगा, तो उन तपस्वियों को एक बार फिर से देखने की इच्छा उसके मन में बलवती हो उठी। उसने कंदरा के भीतर झांककर जब देखा, तो पाया कि दो तपस्वी तो अपने स्थान पर मौजूद थे, लेकिन तीसरे का कोई पता न था। जिज्ञासावश उस साधक ने दोनों तपस्वियों से तीसरे तपस्वी के बारे में पूछा। उन दोनों ने उसे बताया कि सैकड़ों वर्ष तप करने के बाद अचानक एक दिन उसके तीसरे तपस्वी के मन में भोग–विलास की आकांक्षा जाग्रत हो उठी। इस आकांक्षा की पूर्ति हेतु उसने माँ काली के आशीर्वाद से मिथिला के एक राजपरिवार में जन्म लिया है। वही तपस्वी दरभंगा के महाराजाधिराज रामेश्वर सिंह थे।

समय गुजर गया। दरभंगा के महाराजा रामेश्वर सिंह अब नहीं रहे। रानी कुंवर को भी मोक्ष पाये लगभग तीस वर्ष हो गये। परन्तु आज भी इन दोनों की रहस्यमयी कहानियां बड़े चाव से सुनी जाती है। उनकी साधना से जुड़ी हुई अनेक किंवदन्तियां भी प्रचलित हो गयीं।

●

रहस्य चौदह

वह रहस्यमयी अंधेरी रात

सन् 1960 ई0।

जून की एक उमस भरी सांझ।

आराम कुर्सी पर लेटा हुआ बड़े ध्यान से पंकज का लम्बा–चौड़ा पत्र पढ़ रहा था मैं। मेरे परम मित्रों में से थे पंकज। उन दिनों एक विश्व विद्यालय धर्म और दर्शन के प्रवक्ता थे वह। योग और तंत्र में भी उनकी गहरी रूचि थी। समय मिलता तो उनसे संबंधित विषयों पर चर्चा किया करते थे महाशय। एक विचित्र और अविश्वसनीय स्वप्न देखा था एक रात पंकज ने और उसी स्वप्न की चर्चा की थी उन्होंने अपने उस पत्र में। उनका कहना था कि उस विलक्षण स्वप्न को एक बार नहीं लगातार कई बार देखा था और वह भी बिल्कुल स्पष्ट।

चैत्र का नवरात्र था। माँ दुर्गा की पूजा–पाठ आदि कर जलपान किया और सो गया आराम से बिस्तर पर। गहरी नींद में था और उसी समय एक लम्बी–चौड़ी काठी का एक योगी मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। उसका स्वस्थ शरीर तना हुआ था धनुष की तरह। सफेद लम्बी दाढ़ी थी और सिर पर घने सफेद बाल थे जो थोड़ा नीचे लटक रहे थे। उसके शरीर पर सफेद स्वच्छ वस्त्र था और पैरों में खड़ाऊँ। चेहरे पर तेज था और आँखों में अपूर्व चमक थी। निश्चय ही कोई सिद्ध योगी था वह इसमें सन्देह नहीं। वह मेरी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से अपलक देखते हुए बोला मैं योगी दिव्य सागर हूँ। तंत्र की भी कठोर साधना की है।

तुमको लेने आया हूँ चलो मेरे साथ। इतना कह योगी सागर ने अपना हाथ बढ़ा कर एक बार मुझे बिस्तर से खींचा और खींच कर अपने साथ ले चला आकाश मार्ग से अज्ञात स्थान की ओर और उस क्षण खुल जाती थी मेरी नींद। मेरा सारा शरीर पसीने से भर उठता था और किसी अज्ञात भय से कांपने लगा था मैं। यह एक रात की बात नहीं है शर्माजी पूरे आठ रात ऐसा ही होता रहा सपने में मेरे साथ। अन्त में एक रात वह अज्ञात और रहस्यमय योगी मुझे साथ लेकर काफी दूर निकल जाने के बाद एक ऐसे स्थान पर पहुंचा जो काफी निर्जन और सुनसान था। चारो ओर घोर निस्तब्धता बिखरी हुई थी। एक ओर घने जंगलों का सिलसिला था तो दूसरी ओर काफी दूर तक फैली हुई लम्बी चौड़ी घाटी थी जो काफी उदास और वीरान थी। इसी घाटी में झोपड़ी थी उस योगी की। वहां पहुंच कर अपने आपमें काफी प्रसन्नता का अनुभव कर रहा था मैं और साथ ही हल्कापन भी।

झोपड़ी काफी पुरानी होने के बाद भी बहुत बड़ी थी। योगी दिव्य सागर बोले– मैं तीन सौ वर्ष पहले यहां जब साधना के लिए आया था, उस समय तुम भी मेरे शिष्य के रूप में मेरे साथ थे। तुम बहुत अच्छे शिष्य थे और मेरी खूब सेवा करते थे। मैंने तुमको कई दुर्लभ सिद्धियाँ भी दी थी, लेकिन तुम उनका उपयोग करते कि उसके पहले ही सर्प विष से तुम्हारी मृत्यु हो गयी। मैं उस समय समाधि में था। अगर उस अवस्था में न होता तो तुम्हारे पुनर्जन्म का अवश्य पता लगा लेता मैं। फिर भी तुमने कहाँ जन्म लिया है इसका बराबर पता लगाता रहा मैं। दीर्घ अन्तराल के बाद अब जा कर तुम मुझे मिले हो। भागने–वागने की कोशिश मत करना। तुमको पुनः दीक्षा दूँगा और तुम्हारी सारी स्मृति को पुनर्जीवित करूँगा मैं। लेकिन अभी नहीं अभी तो तुमको ग्रहस्थ जीवन का पालन करना है। अभी तो तुम्हारा जीवन भी बहुत कम है..... पत्र के अन्त में पंकज ने कांपते हाथों लिखा था शर्माजी क्या करूँ– कुछ समझ में नहीं आ रहा है। उस दिन से मेरा मन न जाने कैसा हो गया है कहीं किसी काम में लगता ही नहीं। सोचता हूँ कभी–कभी सपना तो सपना है जो कभी सच नहीं होता। लेकिन एक बात यह हैं कि मैं ऊपर से जिस–जिस रास्ते से गुजरा था सपने में। वे सभी रास्ते मुझे स्पष्ट रूप

से अभी भी याद है। मैंने वहीं कहीं एक गढ़ी भी देखी थी काफी पुरानी और जर–जर। सबसे बड़ी बात तो यह है शर्माजी उस योगी ने मुझे एक छोटा सा शंख दिया था जो आज भी मेरे पास है। यदि सपना असत्य होता तो शंख कहां से आया मेरे पास? आश्चर्य की बात तो यह है कि शर्माजी वह विचित्र शंख हर दूसरे–तीसरे दिन अपना रंग बदलता रहता है। कभी पीला, कभी हरा और कभी नीला यह सुनकर शर्माजी आपको निश्चय ही विलक्षण लगेगा। आपने योग और तंत्र का गहन अध्यन किया है। गहरायी से अन्वेषण भी किया है। उच्चकोटि के सन्त–महात्माओं, सिद्ध–साधकों और योगियों से भी मिले है और सत्संग भी किया है आपने। आप ही मेरे सपने का रहस्य सुलझा सकते हैं।

पत्र पढ़कर निश्चय ही घोर आश्चर्य हुआ मुझे सचमुच विलक्षण और चमत्कारपूर्ण स्वप्न कथा थी वह। शायद रंग बदलने वाले उस रहस्यमय शंख में कोई और चमत्कार भी हो सकता है जो पंकज को न मालूम हो। मैं उसे देखने समझने के लिए लालायित हो उठा एक प्रकार से। इस संबंध में पत्र लिखते हुए मैंने पंकज को शंख लेकर वाराणसी आने के लिए अनुरोध किया।

कहने की आवश्यकता नहीं। एक सप्ताह बाद आ गये पंकज। लगा जैसे आने के लिए पहले से ही तैयार बैठे वह।

देखा मैंने शंख। आकार में छोटा था वह किसी भी प्रकार का प्रकाश पड़ने पर रंग बदलता था शंख का। काफी सफेद और चमकीला था वह और देखने में सुन्दर भी। सचमुच विलक्षण था वह शंख। चार पांच दिन रहे थे मेरे साथ पंकज। इस अवधि में तीन चार बार सुनी मैंने वह रहस्यमयी कथा। लेकिन कथा के बीच जब भी गढ़ी की बात आती तो सहसा मेरे सामने एक अति प्राचीन और खण्डहरनुमा 'मठ' उभ आता। कभी कापालिक सम्प्रदाय के साधकों का गढ़ था वह मठ ऐसा सुना था मैंने किसी से और यह भी सुना था कि इष्ट को प्रसन्न करने के लिए कापालिक लोग कभी कदा नरबलि भी दिया करते थे वहां। गढ़ी के संबंध में कुछ विस्तार से जानना चाहा और जब पंकज ने कुछ सोचते हुए यह बतलाया कि गढ़ी काफी ऊँची जगह पर थी और गढ़ी के मुख्य द्वार तक पहुंचने के लिए टूटी–फूटी सीढ़ियाँ ऊपर की ओर

गयी हुई थी और सीढ़ियों के दोनों ओर दीवारे थी और जिसके प्लास्टर उखड़ चुके थे और उसके भीतर से पतली ईटे झांक रही थी।

सीढ़ी की बात सुनकर यह समझते देर न लगी मुझे कि निश्चय ही कापालिकों की ही गढ़ी थी वह इसमें सन्देह नहीं। 'मध्यकालीन भारत' शीर्षक पुस्तक में कापालिको की उस रहस्यमयी गढ़ी के संबंध में विस्तार से पढ़ा था मैंने। जब यह बात पंकज को मालूम हुआ तो एकबारगी आश्चर्यचकित हो उठे वह। उनको पूरा विश्वास हो गया कि उनका सपना मात्र सपना नहीं एक रहस्य से भरा आश्चर्यजनक सत्य था। अब मेरे सामने यह प्रश्न था कि वह अद्‌भुत शंख क्यों दिया गया पंकज को? उसके पीछे कौन सा रहस्य था। बार–बार शंख को देखने पर मुझे लगता था कि अवश्य कोई चमत्कार होगा शंख में। लेकिन कौन सा चमत्कार....... न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत हो कर एक रात अपने पास शंख को रखकर सो गया मैं। शायद रात के दो बजे थे उस समय। अचानक मेरी नींद खुल गयी। कैसे और क्यों खुल गयी, यह नहीं बतला सकता मैं। आँख खुलते ही देखा, मेरे सामने एक लम्बी–चौड़ी काठी के श्वेत वस्त्रधारी महापुरुष खड़े मुस्करा रहे थे और मेरा पूरा कमरा किसी अज्ञात गंध से भरा हुआ था। रोमान्चित हो उठा मैं एकबारगी। समझते देर न लगी वे वही महात्मा थे जो आकाश मार्ग से ले जाते थे अपनी झोपड़ी में पंकज को। लगा मानो वे दिव्य पुरुष अपनी आँखों की मूक भाषा में मुझे पुकार रहे हों। उनका सौम्य शान्त और निर्विकार चेहर देख कर आत्म विभोर हो उठा मैं। कुछ क्षण उनके स्थान पर हल्के से कुहरे की परते थी और वह भी धीरे–धीरे विलीन हो गयी वातावरण में।

पंकज को यह बात न जाने क्यों मैंने नहीं बतलायी। दो तीन दिनों तक तमाम रहस्यों की गुत्थियों को सुलझाता रहा और उसी अवस्था में धीरे–धीरे अपने आप उस स्थान की भौगोलिक स्थिति मेरे मानस पटल पर उभरने लगी। अब आगे की कथा सुनाने के पहले पाठकों को यह बतला देना चाहता हूँ कि कुछ विशेष कारणवश उस दुर्गम स्थान की भौगोलिक स्थिति का उल्लेख यहां नहीं करूँगा मैं। इस संबंध में मुझसे किसी भी प्रकार का पत्राचार करने की भी आवश्यकता नहीं।

पंकज को अपना कार्यक्रम बतलाते हुए मैंने कहा आपको भी मेरे साथ चलना होगा। जैसे अन्य सारे रहस्यों का पता लगाया हैं मैं उसी प्रकार इस रहस्य की भी गुत्थी सुलझा लूंगा। सच बात तो यह है कि पंकज कि यह रहस्य मेरे लिए एक चुनौती है। यदि सफल हो गया तो मेरे जीवन की वह सबसे बड़ी उपलब्धि यानी जायेगी।

मेरी बात सुनकर कुछ देर तक मेरे चेहरे की ओर देखते रहे। पंकज और फिर बोले– मैं तैयार हूँ। 18 जुलाई सन् 1960 ई0।

18 जुलाई सन् 1960 ई0।

मध्ययुगीन साधना और सम्प्रदाय के महान चिन्तक और अन्वेषक डॉ0 राजेन घोषाल मेरे पथ प्रदर्शक और साथ ही परम शुभचिन्तक भी थे। हावड़ा के माला बाजार की एक पतली सी बन्द गली में रहते थे घोषाल महाशय। अतिवृद्ध, आयु अस्सी के पार अकेला जीवन। उस मृत्यु कालीन अवस्था में भी स्वस्थ और कर्मशील। वृद्ध हुए तो क्या हुआ। ऐसा बास की तरह तना हुआ कद–काठी विरले ही लोगों का होता है। दुबला पतला परन्तु गठा हुआ शरीर था उनका और शरीर की ही नहीं, उनके मन की गठन भी एकदम इस्पात जैसी थी। कई लोगों को इसके प्रमाण भी समय–समय पर मिल चुके है। हमेशा से नियमनिष्ठ रहे वे। बुढ़ाये में घड़ी देखकर काम करने की आपत और भी बढ़ गयी थी। पिछले कुछ बरसों में। धर्म को लेकर कभी कोई ढोग या दिखावा नहीं किया उन्होंने पर नास्तिक भी नहीं थे वे। इसका प्रमाण था उनका नित्य गीता पाठ। सोने से पहले वे नित्य थोड़ी देर के लिए गीता में डूब जाते थे। उस समय किसी की मजाल नहीं थी कि बीच में उनसे बोलता। सवेरे पांच बजे सो कर उठते ही जेब घड़ी में चाभी देते थे। घड़ी देखकर शौच स्नान आदि नित्य क्रिया करते थे। ठीक ग्यारह बजे घड़ी देखकर भोजन करते थे। कौर मुंह में तभी डालते थे जब घड़ी की बड़ी सूई ठीक बारह पर आती थी। इस तरह सभी काम उनका घड़ी की सूई के अनुसार होता था।

किसी काम से एक दिन दोपहर के समय घोषाल महाशय से मिलने के लिए गया मैं। मेरी ओर देखने के बजाय उन्होंने जेब से घड़ी निकाल कर देखा बोले ठीक बारह बजकर बीस मिनट पर तुम्हारा आना

हुआ। सज्जन पुरुष हो समझदार भी हो। मैं बारह से तीन तक लोगों से मिलता–जुलता हूँ। थोड़ी देर इधर उधर की बातें होती रही फिर घोषाल महाशय ने आलमारी से एक लम्बा–चौड़ा लिफाफा निकाला और मुझे देते हुए कहा– लिफाफा खोलो और देखो उसमें क्या है?

मैंने आदेश का पालन किया। लिफाफा के भीतर से जो निकला वह एक तैल चित्र था और वह भी काफी पुराना, कम से कम दो सौ वर्ष। वह तैल चित्र किसी भयंकर कापालिक का था देखकर रोमाञ्च हो आया मुझे।

घोषाल महाशय कहने लगे– तुम तो यह समझ ही गये होगे कि यह चित्र किसी दुर्धर्ष कापालिक का है। मैंने सिर हिलाते हुए 'हाँ' कहा। निश्चय ही अपने समय का अति प्रचण्ड और भयानक कापालिक रहा होगा यह।

ठीक समझा तुमने घोषाल महाशय आगे बोले– चौदहवीं शताब्दी के अन्त में उज्जैन से वह आसाम की ओर चला गया और फिर अरुणाचल प्रदेश। अपना एक विशाल मठ बनवाया उसने। मुझे विश्वास है कि आज भी खण्डहर के रूप में अवश्य विद्यमान होगा वह मठ इसमें सन्देह नहीं।

कापालिक का नाम तो आपको अवश्य मालूम होगा सहज भाव से पूछा मैंने।

हाँ! बतलाता हूँ। अभी बतलाता हूँ– यह कहते हुए दीवार से लगी एक बड़ी सी आलमारी खोली और उसमें से एक पुरानी पुस्तक निकाली उन्होंने और फिर उस पुरानी पुस्तक को मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा– इसे ध्यान से पढ़ो। उस कापालिक का नाम था अभयानन्द कापालिक और यह हस्तलिखित पुस्तक उसी से संबंधित है जरा ध्यान से पढ़ना।

काफी पुरानी हो जाने के कारण पुस्तक एक प्रकार से जीर्णशीर्ण हो चुकी थी। कुछ पन्ने गल गये थे। काली स्याही और नरकट की कलम से लिखी गयी वह पुस्तक 18वीं शताब्दी की थी जिसके लेखक थे महापण्डित विश्वेश्वर। जिनका जन्म काशी में शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ। वैसे उनके पूर्वज अल्मोड़ा के थे।

पुस्तक का मुख्य विषय कापालिक तंत्र साधना से संबंधित था और जिसका वर्णन कापालिक अभयानन्द को केन्द्रबिन्दु बना कर किया गया

था। आश्चर्य की बात तो यह थी कि मन्दार, मंजरी, अलंकार, कौस्तुभ, अलंकार कुल प्रदीप, अलंकार मंजरी, रस चन्द्रिका, रस मंजरी जैसी पुस्तक लिखने वाले कुशाग्रमति महापण्डित विश्वेश्वर महोदय ने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर तंत्र पर वह अद्‌भुत पुस्तक लिखी और वह भी कापालिक तंत्र पर जो अपने आपमें अत्यन्त रहस्यमय और जटिल समझा जाता है। निश्चय ही इसमें कोई रहस्य छिपा होगा। पुस्तक में अभयानन्द के मठ तक पहुंचने के लिए एक नक्शा भी बना हुआ था। साथ ही एक भव्य चित्र भी था मठ का। सब कुछ देखकर अजीब सी अनुभूति हुई मुझे।

मेरे चेहरे के आते–जाते भावों का बड़े ध्यान से देख रहे थे उस समय घोषाल महाशय। बोले तुम्हारे मन का विषय है। खोजी वृत्ति के भी हो मठ का पता लगाना हो तो लगाओ! शायद तुमको कुछ इच्छित प्राप्त हो जाय।

हाँ ठीक कहा आपने। लेकिन पुस्तक की गहरायी से अध्ययन करने के बाद ही मैं अगला कदम उठाऊँगा। इसके लिए मुझे क्या आप यह पुस्तक दे सकेंगे कुछ दिनों के लिए।"

हाँ, हाँ! *क्यों* नहीं प्रसन्नचित्त ले जा सकते हो बन्धुवर। संकोच की आवश्यकता नहीं हो–होकर हँसते बोले दोनों घोषाल महाशय।

लेकिन समयाभाव के कारण कुछ भी न कर सका मैं उस समय। पुस्तक तो पढ़ा और यह भी भलीभांति जान समझ गया कि क्यों लिखी थी कापालिक तंत्र की वह पुस्तक पण्डित विश्वेश्वर ने लेकिन मठ की खोज न कर सका उस समय। यदि पंकज का 'सपना' न सुनता तो शायद ही मुझे याद आता तीस वर्ष पहले मिले घोषाल महाशय की बात। लेकिन इसकी चर्चा पंकज से नहीं की मैंने। हाँ पुस्तक मेरे पास ही रह गयी थी क्योंकि घोषाल बाबू को उसमें कोई दिलचस्पी नहीं रह गयी थी मैंने ध्यान से एक दो बार पुस्तक फिर से देखा और उसमें दिये गये नक्शे को बड़ी बारीकी से समझने की कोशिश की। कहने की आवश्यकता नहीं उसी सप्ताह पंकज को साथ लेकर निकल पड़ा मैं अपनी अनजानी यात्रा पर।

शंख का रहस्य तो था ही। पुस्तक से संबंधित कुछ अन्य रहस्यों को भी जानना समझना था मुझे। क्या सचमुच अभयानन्द के पूर्व शिष्य थे पंकज महाशय। इस सत्य से भी परिचित होना था मुझे।

अत्यन्त कष्टदायिनी यात्रा के बाद मैं पहुंचा उस रहस्यमय स्थान पर। वैसे तो गढ़ी के संबंध में जैसा कि मैं बतला चुका हूँ– थोड़ी बहुत जानकारी मिल चुकी थी मुझे मध्यकालीन संस्कृति साधना और साहित्य की पुस्तको से।

सचमुच अभिशप्त, धूसर और अतृप्त कामनाओं से भरा हुआ था वह इलाका। घोर नितब्धता बिखरी हुई थी वातावरण में। थोड़ा चिहुंक कर पंकज ने कहा– वह सामने देखिए शर्माजी.....गढ़ी का खण्डहर। ऊँची–ऊँची जंगली घासों से थोड़ा छिप गया है वह मगर..... हाँ! हाँ! दिखलायी दे गया है मुझे, पर वह गढ़ी नहीं, मठ हैं, बहुत प्राचीन कापालिकों का मठ।

मेरी बात सुनकर पंकज थोड़ा आश्चर्यचकित अवश्य हुए लेकिन बोले नहीं कुछ। मन ही मन यह अवश्य सोचे होंगे कि मुझे कैसे मालूम हो गया कि वह गढ़ी नहीं मठ है और वह भी तांत्रिको का।

समय और इतिहास की चोट खाये धूल धूसर से उस मठ को जंगली घांसो के साये के पीछे से देखा तो वह मुझे बड़ा ही हत्श्री और म्लान प्रतीत हुआ।

एक छोटी सी पहाड़ी थी और उसी के सीने पर था वह जीर्णशीर्ण मठ। पहाड़ी के नीचे मटमैले पानी का पोखरा उस पोखरे के चारो ओर से घेरे हुए धूमिल आसमान को छूते हुए से–एक दूसरे से गुंथे बांस के पेड़। क्या आपने आकाशमार्ग से जाते हुए वे सब देखा था?

पंकज ने उत्तर दिया– हाँ! बिलकुल साफ पोखरे के उस पार थोड़ा हटकर मठ में जाने के लिए सीढ़ियाँ हैं जिसके विषय में आपको बतलाया भी था मैंने।

सचमुच ऊपर जाने वाली सीढ़ियां वैसी ही थी जैसाकि पंकज ने बतलाया था। लगभग पच्चीस तीस सीढ़ियाँ टूटी फूटी और आड़ी तिरछी दोनों ओर सुर्खी चुने की बनी हुई मोटी दीवारे उखड़े हुए प्लास्टर

झांकती हुई ईटे, जगह–जगह ऊगे हुए जंगली पौधे और घास–पात पोखरे के पास खड़े होकर जब पहली बार मैंने सिर उठा कर मठ की ओर देखा था। तब उस समय ध्वस्त परिवेश में अतीत की एक यादगार के रूप में अपने पूरे एक सौ वर्ष की अवधि में अपने कापालिक सम्प्रदाय के कठोर और भयानक और साथ ही अत्यन्त अमानवीय तांत्रिक साधनाओं का धूम मचा देने वाले कापालिकों के प्रारम्भिक काल का प्रतीत वह गढ़ीनुमा मठ धूल धूसरित होकर भी बांकी भंगिमा से सिर ऊँचाँ किए खड़ा था शान से।

मठ के पीछे अब सूरज थोड़ा सा छिप गया था। सब ओर सांय सांय हो रहा था। एक विचित्र सी उदासी एक अबूझ सी खिन्नता परिव्याप्त थी उस मठ में। लाल रंग के पत्थरों से बनी उस ऊँचे शानदार और भव्य मठ की धूल से ऊँचे सीढ़ियाँ चढ़ते समय लगा, जैसे काफी अर्से से कोई आया न हो वहां। मठ के आकार प्रकार और रूप को एक गढ़ीनुमा किला ही समझा जाय तो अच्छा रहेगा। पंकजजी गुमसुम से हो गये थे। न जाने क्यों ? इसलिए शायद अपने सपने को साकार होते देख रहे थे वह। घोषाल महाशय की उस प्राचीन पुस्तक के अनुसार उस कापालिक मठ में तांत्रिक साधना के नाम पर सामूहिक चक्रार्चन दिव्यार्चन, भैरवी साधना, भैरवी, पूजन और कौलाचार के अलावा पशुबलि और यहां तक कि कभी कदा नरबलि भी हुआ करती थी। योनि पूजा महापूजा के सिद्धान्त पर नारी शोषण भी कम नहीं था वहाँ। कुमारी पूजा और अष्टांग पूजा को लेकर कुमारी कन्याओं के साथ वीभत्स कामजन्य, व्यवहार किया जाता था। यह भी स्पष्ट रूप से लिखा था उस प्राचीन पुस्तक में। इन सब घृणित कार्यों से कौन सा लाभ होता था और कौन सिद्धि प्राप्त होती थी कापालिकों को ? इसका उल्लेख न उस प्राचीन पुस्तक में किया गया था और न तो अन्य किसी पुस्तक में ही उपलब्ध होता है। यदि ये सारी बातें पंकज को मैं बतलाता तो न जाने उनकी क्या दशा होती? निश्चय ही वे मानसिक रूप से विक्षिप्त से हो जाते।

टूटी फूटी जर्जर बरादरी में प्रवेश करते ही दहशत से पर फड़फड़ाते कबूतर कानो को छूते हुए निकल गये। एक ओर चमगादड़ों के कई

झुण्ड भी लटके हुए थे जो अब समवेत स्वर में बराबर चीखने लगे थे। सूरज अब और ढल गया था मठ के पीछे। बहुत बड़ा और काफी पुराना एक बूढ़े बरगद के पेड़ की डालियों की छाया मठ के बदरंग दीवारों पर पड़ रही थी।

मैं सतर्क होकर विस्फारित आँखों से चारो ओर का टोह लेते हुए एक–एक पग आगे बढ़ाते हुए चल रहा था पंकज के साथ। एक अज्ञात किन्तु रह–रहकर रोमाञ्चित कर देने वाली अनुभूति उस म्लान निस्तब्ध गढ़ीनुमा मठ में भी हुई मुझे। धूल से भरे पड़े, पत्थर झांकते, टूटे–फूटे बुर्जो पर घूमते हुए हर क्षण यही लगता था कि रूंधी हुई हवा की उस अवस्था के बीच काले रंग का खून कीमती किनखाव की चादर ओढ़े सिर मुड़ाए कानों में हीरे का कुण्डल पहने मस्तक पर श्मशान भस्म का प्रलेप लगाये गले में नरमुण्ड लटकाए हाथ में भयंकर त्रिशूल लिए अपने युग का भयंकर कापालिक अभयानन्द धीरे–धीरे चलता हुआ अतीत के जीर्ण शीर्ण काले परदे को उघार देगा और सहज ही में उस डरावने अंधियारे वातावरण में मन–प्राणों को स्तम्भित कर देगा एकबारगी। लेकिन कोई आया नहीं। सतर्कता से एक–एक कमरे, एक बारादरी बरामदे और आंगन को देखने पर भी निराशा ही हुई। न कापालिक के बारे में कुछ पता चला और न ही कोई विलक्षण तथ्य ही सामने आया। जब हम नीचे उतरकर आये तो सांझ घिर गयी थी। अब तक सारा आकाश काले बादलों से भर गया था और उद्दाम हवा के लय पर आम महुआ के पेड़ झूम–झूम रहे थे। मैंने कहा– अब ? पंकज ने आसमान की ओर देखा फिर सशंक्ति होकर कहा– पानी आयेगा शर्माजी।

हाँ आयेगा तो लेकिन इस भयंकर वन प्रदेश में कही रूकने का स्थान भी तो नहीं है सिवाय इस मठ के।

मेरी बात सुनकर बोले पंकज–मठ के अलावा और कोई आश्रय भी तो नहीं है। चलिए मठ के बारादरी में ही रात बितायी जायेगी। सवेरे देखा जायेगा।

भोजन की प्रचुर सामग्री और दो कम्बल के अलावा चार–चार सेल के दो टॉर्च भी लाना नहीं भूले थे। सब्जी, पूड़ी, अचार, मिठाई तीन–चार

दिन के लिए पर्याप्त थी हम दोनों के लिए। पूरा मठ अब तक अन्धेरे में डूब चुका था एकबारगी। बारादरी सामने की ओर थी, इसलिए वहां हल्का प्रकाश था। भूख लगी थी जमीन पर कम्बल बिछाकर टार्च की रोशनी में खाना खाने लगे हम दोनों। एकाएक पंकज बोले उठे, अरे भाई शर्मा। पानी पीने के लिए पानी तो लाना भूल ही गये हम लोग...... अब क्या होगा ?

बड़ी भारी गलती हुई पंकज अब क्या होगा? तब तक धुनी हुई रूई जैसे काले अंधकार से भर गया था आसमान। चारो तरफ एक अजीब सा सन्नाटा, एक अबूझ सी निविड़ता छा गयी थी। खण्डहर जैसा मठ अन्धेरे में पुरानी कहानी पर सिर धुनता सा प्रतीत हो रहा था। अभी हम दोनों सोच विचार कर रहे थे कि पानी बिना तो काम चल जायेगा आज, लेकिन इस भयानक श्मशानी वातावरण में कैसे गुजारी जायेगी रात। इस उजाड़ मरघट जैसे मठ में तो दम घुट रहा है मेरा– पंकज बोले और तभी किसी की कोमल मधुर और रस भरी आवाज सुनाई दी उस चिपचिपे अन्धेरे में। पानी लीजिये....पानी लायी हूँ मैं आपके लिए।

हे भगवान कौन है यह इस निर्जन मठ में पानी देने वाला। पलट कर देखा– एक नवयुवती बिलकुल साफ दिखलायी दे रही थी अन्धेरे में हाथ में पानी का लोटा लिए। किसी ऊँचे कुल की लग रही थी वह युवती सुन्दर भी कम न थीं। उसने अपना नाम बतलाया राधा, सचमुच मुझे कृष्ण की ही राधा लगी वह युवती।

आप रहती कहाँ है– हाथ में रोटी का टुकड़ा लिए आश्चर्य का भाव लिए पूछा पंकज ने। युवती थोड़ी हँसी और फिर बोली– यहीं पास के गांव में।

इस मठ में कैसे आयी? पंकज ने ही फिर पूछा। आप लोगों को पानी चाहिए था इसीलिए आयी थी।

अब कौन सा प्रश्न किया जाय– हम दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा।

लोटे का पानी जमीन पर रखते हुए युवती अपने आप बोली– और किसी चीज की जरूरत पड़े तो मुझे याद कर लीजियेगा।

आप तो नीचे किसी गांव में रहती हैं– पंकज ने ही फिर प्रश्न किया– मेरी आवाज कैसे पहुंचेगी आप तक?

आप पुकार करके तो देखियेगा बाबूजी कैसे नहीं आऊँगी मैं।

यह सुनकर थोड़ा आश्चर्य हुआ हम दोनों को। पंकज ने कहा– यार शर्माजी कुछ रहस्य है, ऐसा लगता है मुझे।

मुझे भी बन्धु देखे आगे क्या होता है?

खाना खाकर कम्बल बिछाकर लेट गये हम दोनों। बाहर बारिश का अभी भी हो रहा था अनवरत शोर। पंकज तो सो गये गहरी नींद में लेकिन मुझे नींद नहीं आयी। करवटे बदलता रहा। कभी झपकी लगती तो कभी टूट जाती। यहीं क्रम चलता रहा। एकाएक बिजली चमकी और उसी के बाद गरजे बादल भी। गीली बरसाती हवा का एक झोका आया और ठण्डी हवा फैल गयी भीतर। उठकर बैठ गया मैं न जाने क्यों? मुझे ऐसा आभास लगा कि कोई खड़ा है मेरे पास। थोड़ा भय सा लगा। हिम्मत कर पीछे पलट कर देखा तो देखता ही रह गया। एक विशालकाय व्यक्ति खड़ा था सामने। लम्बी–चौड़ी काठी का पहलवानों जैसा काला शरीर नंगा बदन, कमर में लाल रंग की रेशमी लुंगी कमर के चारो ओर काले रंग का फेटा भी लगा हुआ था। गले में न जाने किस–किस मनके की कई मालाएं झूल रही थी। कानों में सोने का कुण्डल भी झूल रहा था। सिर पर घने काले बाल बिखरे हुए थे और मस्तक पर भस्म का प्रलेप और बीच में लाल सिन्दूर का गोल टीका। उस भयानक असुर जैसे व्यक्ति ने एक हाथ में नरमुण्ड और दूसरे हाथ में भयंकर त्रिशूल लिए हुए था। समझते देर न लगी मुझे। भीतर से किसी ने धीरे से कहा– यही है दुर्धर्ष कापालिक अभयानन्द। दूसरे ही क्षण पूरा शरीर रोमाञ्चित हो उठा मेरा एकबारगी। चीख निकलते–निकलते रूक गयी मुंह से।

मेरी ओर देखकर कापालिक मुस्करा रहा था लेकिन उसकी वह मुस्कराहट रहस्यमयी लगी मुझे। छाती के भीतर कुछ खाली–खाली सा लगा। श्यामल आकाश का वक्ष जलाती बिजली चमकी। जलते पारे जैसी तीखी रेखा ओर छोर हीन आसमान के एक कोने से दूसरे कोने

तक कौंध–सी गयी। हजारों मैग्नीशियम के तारो जैसे प्रखर आलोक से उद्भासित हो गया विस्तार।

उठो आओ मेरे साथ– एक गरज भरी आवाज कानो में पड़ी। निश्चय ही वह कापालिक की ही आवाज थी सहम गया मैं। उठना पड़ा और उठकर जाना पड़ा उस दानव के पीछे। अभी भी रोम–रोम कांप रहा था। पंकज को उठाने की भी हिम्मत नहीं हुई। थोड़ी दूर जाने के बाद बारादरी बायीं ओर घूम गयी थी। सामने जंगल ही जंगल था। तूफानी हवा का शोर अभी थमा नहीं था। लम्बे–लम्बे पेड़ आपस में टकराकर विलाप कर रहे थे उस समय भी।

एक बहुत बड़े हालनुमे कमरे में ले गया मुझे वह कापालिक। हे भगवान! क्या देख रहा था मैं। वह कमरा था कि किसी सम्पन्न और वैभवपूर्ण राजा के राजमहल का सुसज्जित कक्ष। जमीन पर ईरानी कालीन बिछी हुई थी। लम्बी–चौड़ी खिड़कियों पर रेशमी पर्दे लटके हुए थे। ऊपर छत पर लगा वेलज्यिम के शीशे के झाड़ फानूस लटक रहे थे जिनमें रंगबिरंगी मोमबत्तियाँ जल रही थीं। जिनका हल्का प्रकाश पीले रंग की दीवारों पर झिलमिला रहा था। कई कीमती आलमरियां भी थी जो बन्द थी। उनके भीतर क्या था मालूम नहीं। एक ओर बेलजियम का ही काफी लम्बा–चौड़ा मेज था, जिस पर शराब की कई बोतले, सोने चांदी के जार और कई कीमती रत्नजड़ित गिलासे सजी थी। बगल में एक सर्वांग नग्न युवती का बुत था, जो सफेद संगमरमर का था और जो अपने हाथ में गुलदस्ता लिए खड़ी थी बांकी भंगिमा से। गुलदस्ते का फूल ताजा था और उसके सुगन्ध वातावरण को और अधिक रहस्यमय बना रहे थे। खिड़कियों के पास एक पलंग था काफी ऊँचा और उस पर गद्दा और रेशमी चादर बिछा हुआ था और कई तकिये भी थे वहां। पलंग से लग कर एक छोटी सी चांदी की नक्काशीदार टेबल सी चौकी थी जिस पर शराब की भरी एक बोतल और सोने का गिलास रखा था और ठीक उसके आसपास कई कीमती कुर्सियाँ रखी हुई थी। जिन पर रेशमी गद्दे लगे थे।

कापालिक झूमता हुआ पलंग पर जाकर बैठ गया और मुझे भी एक कुर्सी पर बैठने का संकेत किया। डरते कांपते बैठ गया मैं कुर्सी

पर। अब महाराक्षस सामने रखी मदिरा की बोतल से गिलास में मदिरा ढालने लगा और एक के बाद एक कर कई गिलास पी गया देखते ही देखते और फिर मदिरा के प्रभाव से लाल हो रही आँखों से मेरी ओर देखते हुए बोला वह कापालिक– महाराज! आप ब्राह्मण हैं। मुझे घोर प्रसन्नता है। सदियों की प्रतीक्षापूर्ण हुई। मुझे ब्रह्म बलि देकर अपने आपको कृतार्थ करना था साधना की पूर्णता प्राप्त करनी थी। आप जैसा कहां मिलेगा सुयोग्य ब्राह्मण धन्य हो गया मैं। यह सुनकर सारा शरीर कांपने लगा मेरा। गला भी सूखने लगा। भय और आतंक से बुरा हाल हो रहा था उस समय। चाहकर भी कुछ बोल नहीं पा रहा था मैं। निश्चय ही अब मेरी बलि देगा यह राक्षस, इससे सन्देह नहीं। हे भगवान क्या होगा? क्या करूँ? कहां जाऊँ भाग कर रक्षा करो, रक्षा करो प्रभु। काश इस समय पंकज आ जाते मगर वे कैसे आयेंगे। सो रहे होंगे गहरी नींद में। दयनीय हो रही थी मेरी मानसिक स्थिति उस समय।

आखिरी गिलास को खाली कर भर्राए स्वर में बोला वह कापालिक– महाराज आप किञ्चित मात्र भयभीत न हो। आपका अहित नहीं, परम कल्याण ही होगा।

मेरी समझ में नहीं आ रहा था कुछ। कभी बलि की बाते करता था तो कभी मेरे कल्याण की बात वह कापालिक। सच क्या है?......... और तभी अट्टहास करते हुए कापालिक ने पुकारा– वीरभद्र अरे ओ.... वीरभद्र। कुछ क्षण बाद मैंने देखा– एक भयानक आकार प्रकार का मोटा ताजा और काला कलूटा व्यक्ति वहां आकार खड़ा हो गया। उसका चेहरा काफी डरावना और वीभत्स था। उसने आग्नेय दृष्टि से एक बार मेरी ओर देखा, लगा जैसे लील जायेगा मुझे वह पिशाच।" अब मेरी क्या दशा थी, बतला नहीं सकता मैं। न कुछ सोचने समझने की शक्ति रह गयी थी और न तो हिलते डुलने की ही। पाषाणवत् बैठा रहा मैं कुर्सी पर।

वीरभद्र लाओ पकड कर भैरवी को तुरन्त कापालिक ने आदेश दिया भर्राये स्वर में।

हे भगवान् यह भैरवी कौन है। कभी पढ़ा था तंत्र साधकों की अपनी भैरवी होती है और उसी के माध्यम से अपनी साधना पूर्ण करते

हैं। भैरवी के अभाव में तंत्र साधना सफल नहीं होती। इस कापालिक की कौन है भैरवी और तभी वीरभद्र एक युवती का हाथ पकड़ कर लगभग खींचते हुए ले आया वहां उसे। युवती को पहचानते देर न लगी मुझे, वह राधा थी। वह शादी का जोड़ा और कीमती गहने पहने थी। लगा जैसे विवाह के मण्डप से उठाकर ले आया गया है उसे। जोर–जोर से रो रही थी और चीखते हुए कह रही थी– छोड़ दो मुझे। मेरे विवाह में बाधा मत डालो। मेरा जीवन क्यों बरवाद करना चाहते हो? क्या बिगाड़ा है मैंने तुम्हारा?

राधा को इस प्रकार दुल्हन के रूप में प्रलाप करते हुए देखकर भारी क्लेश हुआ मुझे। उसके कातर स्वर ने मेरी आत्मा को विचलित कर दिया था एकबारगी। मैं विवश था, लाचार था, भला कर ही क्या सकता था मैं उस पैशाचिक वातावरण में।

अब कापालिक दूसरी बोतल खोलकर शराब पीने लगा था। नशे की अधिकता के कारण उसका काला चेहरा और अधिक वीभत्स होने लग गया था और आँखे भी अधिक क्रूर हो गयी थी और उसी क्रूरता भरे रक्तचक्षु से राधा की ओर देखा उसने और अपने दोनों हाथों को आगे बढ़ाते हुए कर्कश स्वर में कहने लगा– अरे तुम विवाह कर लोगी तो मेरी भैरवी कौन बनेगी? कौन करेगी मेरी आत्मा को तृप्त और कौन सहयोग देगा मेरी साधना में। इतना कहकर वह कापालिक अपनी बाहों में समेटने के लिए राधा की ओर बढ़ा और बढ़ता ही गया नशे में उन्मत्त होकर। लेकिन क्या उस महाकपाल साधक की अभिलाषा पूर्ण हुई? क्या वह उस अक्षता को बना सका अपनी भैरवी? क्या वह उस अस्पर्शा युवती को कर सका आत्मसात्? नहीं दूसरे ही क्षण एक अति दारूण आर्तनाद गूंज उठा पूरे वातावरण में और उसी के साथ टूटे धनुष की तरह गिर पड़ा औंधे मुंह वह कापालिक। खून से भींग उठा कीमती कालीन। कुछ क्षण तक छटपटाया कापालिक का शरीर और फिर शान्त हो गया सदैव के लिए। चौड़े फाल का लम्बा छूरा पूरी तरह उसके पेट में प्रवेश कर चुका था। राधा की प्रचण्ड मुद्रा देखकर स्तम्भित हो उठा मैं। खून से सने दोनों हाथ कांप रहे थे उस समय। उसके मुंह से केवल एक शब्द निकला–चाण्डाल और फिर वह पीछे मुड़ी और निकल गयी

तीर की तरह कमरे के बाहर। नारी का ऐसा रूप देखने को मिलेगा मुझे इसकी कभी कल्पना भी मैंने नहीं की थी सपने में भी नहीं।

मैं कुछ आगे सोचूँ समझूँ कि उसके पहले ही गहन अन्धकार फैल गया पूरे वातावरण में और उस चिपचिपे अन्धकार में डूब गया सारा दृश्य एकाएक। किसी प्रकार बाहर निकलकर बारादरी में आया और आगे बढ़ा। अभी भी कांप रहा था भय से मेरा पूरा शरीर। कुछ समय पहले मैंने जो कुछ सुना था क्या था वह सब? इस पर विचार करने का समय नहीं था मेरे पास। बस वहां से किसी प्रकार निकल भागने को सोच रहा था मैं पंकज को लेकर। किसी प्रकार गिरता पड़ता अन्धेरे में पहुंचा मैं पंकज के पास। अभी भी वे महाशय सो ही रहे थे। उठाया और एक सांस में सारी कथा सुनाई उन्हें। सब कुछ सुनकर पंकज भयभीत स्वर में बोले– शर्माजी! बस निकल चलिए यहां से। यह मठ प्रेताविष्ट है। रूकने का मतलब है विपत्ति मोल लेना।

आधी से ज्यादा रात बीत चुकी थी शायद। किसी टॉर्च की रोशनी में बाहर निकले मठ के हम लोग। आसमान में अभी भी बादल घिरे हुए थे। लेकिन बारिश बन्द हो चुकी थी। सारी प्रकृति अन्धेरे में डूबी हुई थी। उस समय। तालाब पार कर आगे बढ़ने लगे हम दोनों ने जिस रास्ते से आये थे वह अन्धेरे में आकण्ठ डूब चुका था। दिशा भ्रम होना स्वाभाविक था। मैं जिधर चला वह निर्जन इलाका था उजड मरधट जैसा बीहड़ और धूसर निस्तब्धता थी चारो तरफ। अब बादलों से अटकर काला पड़ गया था आकाश। गहन निःश्वास जैसी हवा हाहाकार करती माड़ियों और झुरमुटो को कंपाये टोर ही थी। थोड़ी देर पहले झीगुरों की झीं झीं सुनायी दे रही थी किन्तु उस घने अंधियारे ने जैसे उस अन्नवरत क्रन्दन का भी गला घोंट दिया था। तेज गति से वापस लौट रहे थे हम। उस विकट परिस्थिति में भी बार–बार कभी राधा का तो कभी कपालिक अभयानन्द का चेहरा सामने घूम जाता था। लेकिन इस संबंध में कुछ सोचने का अवसर कहाँ था। बस मन में यही लग रहा था, पानी अभी न गिरे, अभी न गिरे।

किन्तु बारिश आ ही गयी। पहले टप्–टप् बूंदे टपकी और फिर झर–झर कर बरसने लगा आसमान। उद्दाम हवा का तूफानी विलाप

भी गूंज उठा बारिश की लय के साथ। लगा जैसे त्राण न मिला तो अकड़ जायेगा सारा शरीर। कतार स्वर में पंकज से कहा– दौड़िये पंकज जी दौड़िये।

दिशाहीन लक्ष्यहीन काले अंधियारे के बीच केवल टॉर्च की रोशनी के सहारे पहले पानी में चप्पलों से फच् फच् करते पंकज जी भागे पीछे–पीछे मैं भी दौड़ा कम्बल और गठरी संभाले किसी तरह। पानी की बौछार तेज हुई और उसी के साथ तेज हुआ हवा का वेग भी। पानी से भींगे वृक्ष झूमते हुए दोहरे हुए जा रहे थे।

थोड़ी देर बाद लगा कि अब दौड़ा न जायेगा, यही इस अनजाने अरण्य प्रान्त में हो जायेगी जल समाधि। पूछा–हम जा किस ओर रहे हैं पंकज जी। होश खोकर बदहवास सा जो अलक्ष्य दौड़ा जा रहा था, उसकी जैसे मूर्च्छा टूटी बोला– 'ऐं'।

मैंने उनके कन्धे पर हाथ रखकर कहा– रूकिए तो सही। ऐसे में तो न जाने कहां भटक जायेंगे? गजब हो गया। शायद हम भटक गये– पंकज जी बोले। छाती के भीतर कुछ खाली सा प्रतीत हुआ कातर स्वर में मैंने कहा– आपको कुछ तो पता होगा किस तरफ जा रहे है हम।

बारिश होती रही उसी तरह जोर–शोर से। कड़कड़ा कर बिजली चमकी। उस भयानक रव के क्षण मालूम हुआ जैसे वर्षा का जल वस्त्रों को गीला कर शरीर के चमड़े की परत भेंद भीतर भी प्रवेश कर गया है। पंकज जी ने अन्दाज लगा लिया कुछ। बोले– जहां तक मेरा अनुमान लगा लिया कुछ। बोले– जहां तक मेरा अनुमान हैं। हम अरुणाचल की इनर लाइन के करीब आ गये है शर्मा जी।

अभी कितनी दूर होगी?

सात आठ मील से क्या कम होगा?

मेरा जोश ठण्डा पड़ गया कहा– तब तो सब चौपट हो गया। कहीं जल समाधि ही न हो जाय हमारी यहां।

पंकज जी सिहर उठे, लेकिन बोले कुछ नहीं। मैंने कहा– कब तक श्मशान के प्रेत जैसे हम खड़े रहेंगे इस बीहड़ निर्जन स्थान में? कोई शेल्टर तो खोजना ही होगा पंकज जी। जो उद्देश्य लेकर चले

थे क्या वह अधूरा ही रह जायेगा मठ का विचित्र अनुभव प्रेतलीला नहीं, कापालिक की माया लीला थी। हमें वहां डंटे रहना चाहिए था। आगे जो कुछ होता उसे देखा जाता। राधा कौन थी? उस कापालिक के चंगुल में कैसे फंसी? यह भी कुछ समझ में नहीं आया सब तो सब मेरी बलि क्यों देना चाहता था कापालिक? यह भी एक अनसुलझा प्रश्न है। यह तो मेरी खोजवृत्ति के लिए एक प्रकार से चैलेन्ज हैं पंकज जी।"

उस विकट स्थिति में भी हँसे बिना न रह सके पंकज जी मेरी बात सुन कर।

●●●

अजीब था वह समा भी। अन्धेरे में आसमान और जमीन मिलकर एकाकार हो गये थे। शीतल आतंक का अन्तहीन समुद्र और उसके बीच दप् दप् होने वाली जुगनुओं की चमक और उस विकट अन्धकार में उद्दाम वासना लिए उठती नये पानी की भीनी–भीनी महक।

याद नहीं, उस अराजकता भरी रात में जोश होश खोकर हम कब तक भटकते रहे। मन में एक अजीब सी अवशता भर गयी थी। तभी पंकज ने कहा– रूकिए शर्माजी रूकिए। नजर उठाकर सामने देखा, अन्धकार का धुंधला सा परदा और उसके उस पार न जाने क्या चमकता–सा। मैंने कहा– क्यों? आहट लीजिये आप लगता है कि जैसे यहां कोई रहता है।

पीछे का घना अन्धेरा वैसा का वैसा ही था। किन्तु धुंधले उजाले के मटमैले तारों में फंसे सामने के हल्के अंधियारे में सुषुप्ति भरी दृष्टि ने जैसे कुछ चीजों को चिन्ह ही लिया। लगा, जैसे खूब घने वृक्षों से घिरी जर्जर ईटों का अहाता हो और उसके भीतर ही मिट्टी की कोई झोपड़ी। पंकज जी की ओर देखा। वे कुछ सुनने का प्रयास कर रहे थे। फुस–फुसा कर बोले– शर्माजी सुनिए– किसी संस्कृत पुस्तक के श्लोक की आवाज। रात की इस अन्धेरी विकट बेला में कौन श्लोक पढ़ रहा है यहां पर। क्लान्त आच्छन्नता भरे अवश चित्त में बारिश का शोर, अन्धेरे दरख्तों पर सिर पटकती हवा के चीत्कार और झींगुरों की झंकार ने मिल–जुलकर एक विचित्र सा हाहाकार भर दिया था भीतर। पंकज

जी का स्वर भी अर्थहीन सा लगा। फिर उन्मत्त हवा के आरोह अवरोह पर तिरता गीता के एक श्लोक की पंक्तियाँ कानों में गूंज उठी– नैनं छिन्दन्त्रि शस्त्राणि..... नैन दहित पावक...... ।

मैंने कलाई घड़ी देखी। रेडियम टच अंक हरी आग की तरह दप् से जल उठे तीन पैंतीस। मैं स्तब्ध सा खड़ा रह गया। इतनी रात गये इस अन्धकाराच्छन्न निर्जन प्रान्तर में कौन श्लोक पढ़ रहा है?

मैंने कहा– पंकज जी, जरा देखिए तो सही, कौन है?

श्यामल आकाश का वक्ष जलाती बिजली चमकी। जलते पारे तीखी रेखा ओर छोरहीन आसमान के एक कोने से दूसरे कोने तक कौंध गयी। हजारो मैग्नीशियम के तारों जैसे प्रखर आलोक से उद्भासित हो उठा एकबारगी सारा विस्तार।

देखा, पानी से तर कोई की परत से ढंकी ईटों के एक खण्डहर के सामने खड़े थे हम लोग।

वातावरण को मथती विद्युत वाणी गरज कर शान्त हो गयी। गीता का पाठ भी समाप्त हो गया।

आगे बढ़कर पंकज ने आवाज दी– 'अरे भाई कोई है?

बारिश का एक रस शोर। अन्धेरे की छाती पर जुगनुओं के जलते–बुझते रहने का खेल। अपने तुमुल रव से धरती को कंपाती हुई बिजली फिर कौंधी।

'अरे भाई! कोई रहता है यहां? राशि राशि बिखरे अन्धकार में धुंधले उजाले का दायरा एक बार फिर सिमट कर फैला और फिर फैलता ही गया। लगा, हाथ में लैम्प लिए कोई आ रहा हैं। आँखों में विस्मय भरे, हम एक टक सामने देखते रहे। काठ का जर्जर किवाड़ हटाये जाने की आहट हुई। म्लान उजियाला। उस पीली मुद्धिम से रोशनी में फूस का छप्पर दिखने लगा।

फिर मिट्टी के तेल का धुआं उगलती चिमनी लिए एक हाथ बाहर आया और उसके पीछे एक अस्पष्ट सा चेहरा। गौर से देखने पर शरीर की रेखाएं स्पष्ट हो गयी। लम्बा दुबला जीर्ण शीर्ण–सा शरीर तीखी नांक विस्फारित भावहीन–सी आँखें, आंखों के किनारे गहरी स्याही

विवर्ण रक्तहीन सा मुख। न जाने कैसी निगाह से देख रहा था वह युवक कि डर लग आया।

पंकज ने ही बातें शुरू की। कहा— हम यहां गढ़ीनुमा कापालिको के एक मठ की खोज में आये थे। इसके अलावा और भी कुछ आवश्यक काम थे जो पूरे नहीं हुए इसीलिए वापस लौट रहे थे। रास्ता भटक गये। बीच राह में बारिश शुरू हो गयी सोचा कि आश्रय के लिए आपका ही दरवाजा खटखटाया जाय। न जाने क्यों कापालिक मठ का नाम सुनकर वह व्यक्ति चौंक सा पड़ा था और फिर संभाल लिया था अपने आपको। यह मुझसे छिपा नहीं रहा। जैसे दुविधा हो रही हो, ऐसी निगाह से देखता रहा वह हमारी ओर। फिर क्षीण हँसी हँसकर बोला— 'आइये' भीतर चलिए।

फीकी रोशनी का दायरा कसमसाया और फिर आगे सरका। उसी के पीछे—पीछे हम चले। बाहर की दुनिया से वह अंजाना लोक परेसा प्रतीत हुआ। दीमक और घुन से खोखले हुए दो जर्जर खम्भों पर टिका बरामदा। मिट्टी की जगह—जगह से टूटी हुई दीवारें। कच्चे आंगन में उसे जंगली पौधे। एक किनारे डरावना सा आँवले का पेड़। ध्वस्त कमरों से होकर फूस के छप्पर पर फैल गयी लौकी और ककड़ी की बेले।

कांपते उजाले के पीछे—पीछे बरामदे से कमरे की ओर जाते हुए गौर किया कि कच्चे आंगन अहाते और उस सारे घूसर परिवेश में न जाने कैसे ध्वन्स की गन्ध हैं? एक कमरा और वह भी छोटा—सा। काठ के पुराने किवाड़ों का जर्जर दरवाजा। सिर झुका कर भीतर घुसे। धुआं देती चिमनी ने भीतर रखी सारी वस्तुओं को स्पष्ट कर दिया एकबारगी अरगनी पर टंगे दो चार मैले कुचैले कपड़े, गोबर से लीपे फर्श पर बिखरी चार पांच पुरानी किताबे और उन्हीं में से एक गीता भी। एक ओर कुछ टूटे फूटे बर्तन भी लगा जैसे उनका वर्षों से उपयोग न किया गया हो।

कुछ खिसकाए जाने की आहट हुई। देखा तो काठ के मोठे सामने पड़े थे न जाने किस जमाने केकु। उन्हीं की ओर संकेत करते हुए वह बोला— 'बैठिए।' फिर कन्धे पर पड़ी फटी और मटमैली चादर को भलीभांति अपने बदन पर लपेटते हुए कहा— 'अब कहिए। मुझे आश्चर्य हुआ। उस निविड़ बरसाती रात में प्राणान्त पीड़ित की कथा सुनने के

बाद अब क्या जानना चाहता हैं यह? अन्धकाराच्छन्न प्रान्तर की दुर्गम यात्रा का वर्णन सुनाने के बाद अब बताने को रह ही क्या गया था? शायद अब पंकज जी कुछ और स्पष्ट कर देना चाहते थे। उन्होंने शुरू से अन्त तक की सारी कथा सुना डाली उस रहस्यमय व्यक्ति को। बाद में कापालिक मठ में घटी घटना भी बतला दिया उसी धुन में।

मैंने कहा– वापस लौटते समय घोर विपत्ति में पड़ गये। यह तो कहिए कि आपका सहारा मिल गया। मगर आप......

मैं हूँ वीरेश्वर मिश्र। कर्मकाण्डी और कथावाचक।

थोड़ा रूककर वीरेश्वर मिश्र आगे बोले– मैं उस योगी को तो नहीं जानता लेकिन इस कापालिक मठ से भलीभांति परिचित हूँ। लगा, जैसे आंगन के आंवले के पेड़ पर चोंच रगड़ता कोई पक्षी कर्कश स्वर में चींख उठा। किसी चमगादड़ के पर फड़फड़ाने की आवाज भी सुनायी दी।

मैंने भीत दृष्टि से उस व्यक्ति की ओर देखा एकटक बिना पलक झपकायें वह मेरी ओर देख रहा था। जीर्ण म्लान चेहरा, राख जैसा रंग और अजीब से सम्मोहन से भरी वह निगाह। क्या था उस दृष्टि में कह नहीं सकता। उसी भाव और उसी भंगिमा में वीरेश्वर मिश्र ने कहा– आप सबने मठ में जो कुछ देखा और सुना वह सब शताब्दियों पहले की घटनाएं थी। ऐं क्या कहा आपने?

हाँ! शताब्दियों पहले इस निर्जन इलाके में मठ का निर्माण कराया था कापालिक अभयानन्द ने और नरबलि देकर कई प्रकार की तांत्रिक सिद्धियां प्राप्त की थी उस कापालिक ने। उस मठ में तंत्र साधना के नाम पर जो जो भी किया वे सब के सब उस रहस्यमय मठ के अतीत पटल पर अंकित हैं। जो आप जैसे लोगों को कभी कदा दिखलायी दे जाते है वर्तमान में। निश्चय ही अभिशप्त है वह मठ।

अभयानन्द कापालिक के विषय में क्या कुछ और जानते है आप? पंकज जी ने इस बार प्रश्न किया।

यह सुनकर अजीब सी हँसी–हँसा वह व्यक्ति बोला– कापालिक अभयानन्द के साथ कई अबूझ रहस्यमयी अतृप्ति से भरी हृदय विदारक और मर्म स्पशी कहानियां जुड़ी हैं महाशय कितना क्या सुनेंगे आप?

कुछ तो सुनाइये... मैंने अनुरोध भरे स्वर में कहां। अपनी इस यात्रा को सफल समझूंगा मैं....... क्या आप यहां अकेले ही रहते हैं? न जाने क्यों पूछ बैठा मैं यह।

आपने देखा नहीं। यह पूरा का पूरा इलाका निर्जन है। यहां कोई नहीं रहता सिर्फ मैं भर हूँ।

मुझे विस्मय हुआ तो सिर्फ आप ही रहते हैं इस बियावान में? उसने सिर हिलाकर कहा– दरअसल यह कोई गांव नहीं है। कभी आबादी रही होगी पर अब नहीं है। आठ मील उत्तर में अरुणांचल की सीमा है। लगभग सात आठ मील पश्चिम में है बंगाल से लगी आसाम की सीमा यहां तो सिर्फ मैं हूँ और फिर पहली ही जैसे अजीब हँसी–हँसा वह।

भय विस्मय और संशय के मिले जुले भाव से भर गया मेरा मन। उस निविड़ गीली रात में उस व्यक्ति की उपस्थिति बड़ी विचित्र लगी। पूछा– आप किन्तु उसने वाक्य पूरा होने नहीं दिया मेरा। वैसे ही क्षीण म्लान हँसी–हँसकर बोला– यह निर्जन जंगली इलाका बहुत खराब है बाबू साहब यहां कोई नहीं रहता। यहां कोई रहना भी नहीं चाहता। गीली बरसाती हवा का एक तेज झोंका आया और ठण्डी हवा भीतर फैल गयी। कोने में जलती पीली मद्धिम चिमनी की लौ एक बार सिहर कर थमक गयी। रोशनी का दायरा फिर कसमसाया।

पंकज जी ने कहा– मगर आप.....

उस व्यक्ति का विषण्ण रक्तहीन चेहरा जाने कैसे आवेग से थम्–थम् लगा। नथुने फूल आये। बिफर कर बोला– 'भुतहे अभिषाप से बंधा इलाका है तो क्या हुआ? यह घर तो मेरा अपना है, खानदानी हैं। हमेशा से रहता आया हूँ और आगे भी रहूँगा। आप पूछने वाले कौन?

यह रूप देखने की आशा नहीं थी। स्तम्भित हो गया मन। डरा सहमा हुआ तो था ही, वह सब बड़ा विचित्र इहलोक से परे का सा प्रतीत हुआ। कहा– 'ना, हमारा यह मतलब नहीं था क्षमा करिये।

धीरे–धीरे उत्तेजना का भाव शान्त हो गया। हताश स्वर में फिर वीरेश्वर ने कहा– कहानी सुनेंगे आप?

मैंने उसकी ओर देखा। अजीब सी वेदना उभर आई थी उस चेहरे पर। सूनी सूनी आंखों में थी दुःख की छाया।

पंकज जी ने कहा– 'कहानी किसकी? आंवले के पेड़ पर फिर चोंच रगड़े जाने की आवाज सुनाई दी। पीछे की झाड़ियों में हवा झोके सरसराये। वह बोला– कथा वाचक हूँ न। एक कहानी बहुत दिनों से कहने को सोच रहा था। किन्तु कोई ऐसा मिलता ही न था जिसके सम्मुख कह सकता। आप पढ़े–लिखे जान पड़ते हैं। आप कहानी में रस ले सकेंगे। मेरी समझ में नहीं आ रहा था था कि सामने बैठा व्यक्ति कभी 'तुम' का तो कभी 'आप' का प्रयोग करता है हम दोनों के लिए। पंकज जी ने कहा– ऐसे में आप कहानी कहेंगे? वह व्यक्ति हँसा। बोला– बारिश का यह एक रस झंकार, यह अन्धेरा यह निर्जन इलाका। ऐसे में आप कहां जायेंगे? अभी सवेरा होने में भी तो काफी देर है। उस अंधेरी गुफा जैसे वातावरण में वह सब कुछ मुझे अप्रिय सा लगा था। उस व्यक्ति की उपस्थिति तो अनोखी लग ही रही थी। उसकी हँसी बड़ी डरावनी लगी मन में बार–बार यही हो रहा था कि उठकर बाहर चला जाऊँ मगर यह तो असम्भव हो गया था। कहा– सुनाइये। वह बोला– पहले उस कापालिक के विषय में चर्चा करूंगा जो अधूरा रह गया था। शायद आप भी और कुछ जानने के लिए उत्सुक होंगे।

ठीक कहा आपने। निश्चय ही कुछ विशेष विलक्षणता होगी उसमें। सारी कहानी एक ही समय में सुनाना मेरे लिए सम्भव न होगा। बस एक महत्वपूर्ण बात बतलाऊँगा आपको। इतना कहकर वह व्यक्ति थोड़ा रूका और फिर आगे बोला– आदि शंकराचार्य के युग से तो आप परिचित ही होंगे और आप यह भी जानते होंगे कि उस समय तांत्रिकों, विशेषकर कापालिकों का व्यापक प्रभाव था।

हाँ! इन सबसे भलीभांति परिचित हूँ– मैंने सिर हिलाते हुए कहा।" आदि शंकराचार्य वैदिक धर्म का ह्रास होते देख कर उसके उत्थान के लिए दक्षिण से चल कर आये। उस समय तंत्र के निकृष्ट साधनाओं के प्रभाव से वैदिक धर्म प्रायः लुप्त ही हो चुका था। शंकराचार्य ने सबसे पहले कापालिकों पर प्रहार किया। उनसे प्रताड़ित होने वाले कापालिकों का समुदाय धीरे–धीरे पलायन करने लगा। जंगलों पर्वतों और सुनसान घाटियों में अपनी साधना के लिए उचित और योग्य स्थान की खोज में कापालिकों की एक मण्डली इधर भी आ गयी। उस

मण्डली का गुरु था कापालिक अभयानन्द। मठ में उसके भयंकर रूप की छाया को तो देखा ही होगा आपने। अपने समय का अति शक्तिशाली कपाल साधक था वह कापालिक। कई दुर्लभ योग तांत्रिक सिद्धियाँ प्राप्त थी उसे। वह आकाश में स्वच्छन्द विचरण कर सकता था। क्षण मात्र में कहीं किसी स्थान पर उपस्थित हो सकता था। अपने मनोनुकूल वातावरण की सृष्टि भी कर लेता था। जिस वस्तु की उसे आवश्यकता पड़ी थी वह उसे तत्काल प्राप्त कर लेता था। इतना ही नहीं वह अपने रूप को भी बदल देने में सिद्धहस्त था। योग की कोई ऐसी रहस्यमयी क्रिया जानता था वह, जिसके बल पर मृत्यु उसका स्पर्श भी न कर पाती। जब मृत्यु का समय होता, उस समय उसी रहस्यमयी क्रिया के माध्यम से न जाने कौन सी स्थिति में उसकी आत्मा चली जाती कि वह मर ही नहीं पाता था। इस प्रकार शंकराचार्य के समय से लेकर 18वीं शताब्दी तक एक ही शरीर में रहा वह कापालिक और वह भी जस का तस। कोई परिवर्तन नहीं लेकिन कभी नियति हारी हैं? मृत्यु कभी हुई है पराजित? कितना भी कोई क्यों न हो एक न एक दिन बाबू साहब उसे जाना ही जाना है। वैदिक धर्म के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण कापालिक सम्प्रदाय का सूर्य एक प्रकार से अस्त ही हो चुका था। अभयानन्द ने इस निर्जन इलाके में अपना मठ बनाया और रहने लगा। उसके शिष्यों की संख्या बहुत थी। धन का अभाव भी नहीं था। मठ काफी बड़ा था। उसमें कई रहस्यमय कक्ष थे। दिन में शिष्य लोग साधना करते थे। सबसे अलग एक विशाल कक्ष था जिसमें कपाल भैरव की पाषाण प्रतिमा स्थापित की गयी थी। जिनके सामने अखण्ड दीप जलता रहता था। पशु बलि तो नित्य ही होती थी। नरबलि भी होती थी, लेकिन केवल दीपावली की रात में और वह भी पांच मनुष्यों की एक साथ। शिष्यों के अलावा युवा भैरवियाँ भी थीं। अमावस्या की रात्रि में वामाचार और कौलाचार का ताण्डव नृत्य होता था। युवक भैरव रूप में और युवतियाँ भैरवी रूप ग्रहण करती थी। फिर दोनों का संयुक्त नग्न नृत्य होता था। मदिरा का प्रभाव उस सामूहिक नृत्य को अत्यधिक कामुक बना देता था।

कापालिक अभयानन्द दूरगामी दृष्टि रखता था। वह समझ गया था कि कापालिक सम्प्रदाय के वास्तविक स्वरूप और उसकी साधना के आध्यात्मिक तत्व को भविष्य में जानने समझने वालो की संख्या नगण्य हो जायेगी। इसीलिए कापालिक सम्प्रदाय को अक्षुण्य बनाए रखना आवश्यक है और आवश्यक है उसके लिए पुस्तक की रचना। 17वीं शताब्दी का प्रारम्भ था। उस समय काशी के महापण्डित विश्वनाथ का यश चारो ओर फैल रहा था। कापालिक को उनके जैसा विद्वान भला कहां मिलता। ब्राह्मण का रूप धारण कर महापण्डित से मिला और कापालिक सम्प्रदाय पर एक मौलिक पुस्तक लिखने का अनुरोध किया उनसे। महापण्डित सरल चित्त के व्यक्ति थे छल कपट से दूर भला वे क्या जानते थे कि उनके सामने ब्राह्मण के रूप में शताब्दियों पहले का एक कालञ्जयी भयंकर सिद्ध कापालिक बैठा है। पहचान न सके वे संस्कृत साहित्य के रस काव्य के विद्वान और लेखक थे। तंत्र साहित्य और साधना से उनका क्या मतलब? पूर्णतया अपरिचित थे महाशय। असमर्थता व्यक्त करते हुए कहा– यह मेरे लिए असम्भव है। असम्भव को सम्भव कर दिया कापालिक ने समस्या हल करते हुए देर न लगी उस तंत्र सिद्ध को। विनम्र भाव से बोला– महाराज आप लिखना तो शुरू करिये। आपकी लेखनी से अपने आप इच्छित पुस्तक पूर्ण हो जायेगी।

पण्डित जी असमंजस में पड़ गये। जब विषय का ज्ञान ही नहीं है तो कैसे.........। पण्डित जी को सोच में देखकर कापालिक बोला– महाराज आप महापुरुष और परम निष्णात् विद्वान् हैं। आप संकल्प करिए और लिखना शुरू करिए। आप तो जानते ही है कि 'संकल्प' में असीम शक्ति होती है। असाध्य को साध्य कर देती है वह। पण्डित जी उसके कहने का अर्थ समझ न सके। बेचारे सीधे सादे काशी के सरल चित्त ब्राह्मण जो थे वह।

कापालिक सम्प्रदाय और उसकी साधना एवं सिद्धि पर पुस्तक लिखना प्रारम्भ हो गया। सम्मोहित सा सा भावाविष्ट होकर लेखन कार्य में एकबारगी डूब गये पण्डित जी। होश हवास नहीं रहा। पृष्ठ पर पृष्ठ लिखते चले गये। एकाएक कलम अपने आप एक रूक गयी। पण्डितजी का हाथ थाम गया। अब तक छः सौ पृष्ठ लिखे जा चुके थे पुस्तक के।

निश्चय ही पुस्तक पूरी हो चुकी थी इसमें सन्देह नहीं। जहां एक ओर पण्डित जी थक कर निढाल हो गये थे, वही कापालिक अभयानन्द आनन्द मग्न था उसका सपना जो साकार हो गया था, पुस्तक रूप में। एक हजार सोने के मोहरो से भरी रेशमी थैली पण्डित जी के चरणों पर रख प्रणाम किया उसने और आज्ञा ली। अब वह अमूल्य पुस्तक उसके अधिकार में थी। इधर पण्डित जी सोच रहे थे– यह सब कैसे हो गया? जिस विषय का ज्ञान नहीं और अनुभव नहीं। उस पर उनकी कलम चल गयी आश्चर्य चकित थे महाशय। यह सब सुनकर आश्चर्य चकित हो उठा मैं। यह कैसे सम्भव हुआ? अविश्वसनीय–सा लगता है सब। पंकज जी ने भी मेरे हाँ में हाँ मिलाया। इसमें आश्चर्य और अविश्वास की कोई बात नहीं है बाबू साहब। वह व्यक्ति जरा हँसकर बोला– कापालिक अभयानन्द आवाह्न विधा से भलीभांति परिचित तो था ही। उसने मंत्र शक्ति से पण्डित जी के पवित्र शरीर में दिव्यलोक में विचरण करने वाले एक महान तंत्र साधक की आत्मा का आवाह्न कर दिया था। उसी ने सारी पुस्तक लिखी पण्डित जी के माध्यम से।

●●●

यह सब सुन कर एकबारगी सन्न रह गया मेरा पूरा शरीर। ऐसी घटना पहली बार सुनने को मिली थी मुझे। क्या ऐसा भी सम्भव है? पंकज जी तो आश्चर्य से मुँह बायें देखने लगे उस व्यक्ति की ओर।

वह व्यक्ति बोला– कापालिक तो अपने आपमें मग्न और प्रसन्न था। उसे तो अनमोल वस्तु प्राप्त हुई थी। सम्प्रदाय के धरोहर के रूप में पण्डित जी को तब पता चला वास्तविकता का जब वह कापालिक अपना कार्य सिद्ध कर चला गया। वास्तविकता का पता कैसे चला पण्डित जी को? व्यग्र भाव से पूछा मैंने।

उसी आत्मा ने एक बार सारा रहस्य उजागर कर दिया सपने में आकर और जब इस प्रकार पण्डित जी को वस्तु स्थिति का पता चला तो एकबारगी तिलमिला उठे। उनका उद्वेलित होना स्वाभाविक भी था। गुह्य गोपनीय ज्ञान को इस प्रकार धोखा देकर किसी विदेही आत्मा के सहयोग से प्रकट करना 'ऋषिमण्डल' के सर्वथा विरूद्ध है। उन्होंने विचार किया कि यदि यह गोपनीय तंत्र शास्त्र की पुस्तक कभी किसी

समय जन समाज में पहुँचेगी तो उस अवस्था में तंत्र क्षेत्र की प्रबल हानि होगी। उसे अपमानित और तिरस्कृत भी होना पड़ सकता है। साधारणजन जनमानस कापालिक तंत्र और उसकी रहस्यमयी गुह्य क्रियाओं को न समझकर मनमाने ढंग से उसका दुरूपयोग करेगा और जिसका परिणाम निश्चय ही अनिष्टकारी तो होगा ही इसके अतिरिक्त आडम्बर और पाखण्ड भी कुखूब बढ़ेगा। तंत्र का विषय समाज में घृणा का पात्र बना जायेगा। कापालिक सम्प्रदाय पर आक्षेप होगा वह अलग से।

पण्डितजी सरस्वती पुत्र थे और संकल्प शक्ति के बलि भी। रहा न गया उनसे तुरन्त हाथ में गंगा जल लेकर उच्च स्वर में संकल्प करते हुए बोले– वह पुस्तक अभिशप्त हो जायेगी। उसका उपदिष्ट विषय साधारण लोग से लेकर विद्वानों, साधकों और योगियों को भी कभी भी समझ में नहीं आयेगा कोई भी योग्य ऐसा न होगा जो उसे क्रिया रूप दे सकेगा। व्यर्थ ही सिद्ध होगी वह पुस्तक। क्या ऐसा ही हुआ? मैंने व्यग्र भाव से पूछा। होगा क्यों नहीं सत्ब्राह्मण का वचन जो था सत्य कैसे न होगा। उसी पुस्तक को प्राप्त किया है आपने बाबू साहब घोषाल बाबू से.....। क्या उसके पढ़ने के बाद आया कुछ समझ में? कोई तांत्रिक क्रिया कर सके? बोलिए बाबू साहब। मैं चौक–सा पड़ा एकबारगी। चिहुंक कर बोला अरे आप यह सब कैसे जानते हैं कि वह वही पुस्तक है जो मेरे पास है।

व्यक्ति हँसकर बोला– मैं इतना सब जानता समझता हूँ तो भला इस बात को नहीं जानूँगा। वह पुस्तक तो अब बाबू साहब आपके पास भी नहीं है। वह गायब हो चुकी है।

असम्भव है कैसे गायब हो सकती है? कौतूहल और आश्चर्य से भर उठा मेरा मन उस समय। उस व्यक्ति की बातों पर विश्वास ही नहीं रहा था मुझे। मैंने तो पुस्तक को काफी सावधानी से आलमारी में बन्दकर के रखा है। सम्भव नहीं कोई मेरा कमरा खोले और फिर मेरी आलमारी खोले और उस पुस्तक को निकाल कर चोरी से ले जाय। फिर किसी को मालूम भी तो नहीं है। वह व्यक्ति हो–हो कर विचित्र हँसी हँसा। बड़ी ही रहस्यमयी हँसी थी वह। बस सोच में डूब गया मैं। कैसे सम्भव है यह? नहीं, नहीं व्यर्थ की बात हैं। वह व्यक्ति बोला– अब

आगे जो कुछ सुनेंगे वह तो और भी आश्चर्यजनक लगेगा आप को अब वह भी सुना ही डालिए आप– पंकज बोला। पण्डित भास्कर राज्य विद्वान तो थे ही इसके अतिरिक्त एक और विषय का ज्ञान रखते थे और वह ज्ञान था योग। योगाभ्यासी थे पण्डित भास्कार राय। एक बार समाधि की अवस्था में उस महातंत्र साधक की आत्मा से एकाएक साक्षात्कार हुआ उनका। आत्मा विचलित स्वर में कहने लगी। आपके पवित्र शरीर में इतने समय रहकर उसे जो सुख और आनन्द की अनुभूति हुई वह बतला नहीं सकता है वह। लगभग 800 वर्ष पूर्व मेरा जन्म एक कश्मीरी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। एक सिद्ध तंत्र साधक गुरु की छाया में रह कर कठोर तंत्र साधना की। उसके गोपनीय विषयों का भी किया अध्ययन। हम जैसे लोगों के लिए यक्षलोक में स्थान निर्धारित है। शरीर छूटने पर जो मेरी आत्मा वहां गयी तब से कहीं है। भविष्य में कब तक रहना पड़ेगा कोई निश्चित नहीं हैं। तंत्र के अथाह–ज्ञान का भारते कर कब तक इधर उधर भटकता रहूँगी। मैं यक्षलोक से मुक्ति चाहती हूँ। मुझे अब मानव शरीर चाहिए ताकि ज्ञान को कर्म में आयत्त कर सकूँ। कर्म में आयत्त न हुआ ज्ञान भार स्वरूप हैं कोई उपयोग नहीं। दिव्यात्मा की बात पण्डित जी को अच्छी भली लगी। बोले– क्या चाहते हो तुम?

मानव शरीर सुसंस्कृत समृद्ध और विद्वद्परिवार में मैंने स्वयं अपनी ओर से काफी कोशिश की लेकिन सफलता नहीं मिली। आप मेरा मार्ग दर्शन करें।

काफी देर पण्डितजी मौन साधे रहे फिर बोले– सौम्य और सहज स्वर में– मैं तो अविवाहित हूँ विवाह करने की आयु भी तो नहीं है अब। वरना स्वयं अपने यहां स्थान देता......।

थोड़ा सोचकर पण्डित जी आगे ब्रोले– इसी काशी में एक दीक्षत ब्राह्मण परिवार रहता है। मैं आपके जन्म की व्यवस्था उस परिवार में करने का अवश्य प्रयास करूँगा मंगल हो।......और मंगल हो गया। व्यवस्था हो गयी उस दिव्य आत्मा ने पण्डित जी का आभार प्रकट किया और बोली– जन्म लेकर मैं आपका शिष्य बनना चाहती हूँ– आज्ञा दे। स्वीकार है– पण्डितजी ने दाहिना हाथ उठाकर आशीर्वाद

दिया। कहने की आवश्यकता नहीं यथा समय काशी के दीक्षत परिवार में उस महातंत्र साधक की आत्मा ने पुत्र रूप में जन्म लिया और उसका नाम रखा गया भास्कर राय। उनके पिता का नाम था गम्भीर राय दीक्षित। माता का नाम था कोनाम्बिका। दीक्षित परिवार विद्वान सुशिक्षित और धर्मनिष्ठ था और अर्थ सम्पन्न भी। शैशवावस्था में ही पिता द्वारा उपदिष्ट सारस्वत मंत्र उपासना से सभी विद्याएं और कलाएं अनायास ही इनमें आयत्त हो गयी। इनके सकल शास्त्रों में अगाध पाण्डित्य के संबंध में यह श्लोक प्रसिद्ध है– **स्वतंत्रेष्वेष स्वतंत्रा गिरिश गुण निकाकीर्त्त्यते कीर्तनीयः' (भास्कर विलास)** भास्कर राय ने कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक तथा कामरूप से कश्मीर तक सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया। भला उस समय कौन यह जानता था कि यक्षलोक में पूरे आठ सौ वर्ष पर्यन्त निवास करने वाली दिव्य आत्मा है भास्कर राय। उस समय के काशी के मूर्धन्य विद्वानों में भी भास्कर राय उच्च आसन पर थे। वे त्रिपुर सुन्दरी के महाउपासक और महान तांत्रिक थे इसमें सन्देह नहीं। भास्कर राय ने तंत्र पर आधारित दो दर्जन से भी अधिक पुस्तकों की रचना की जिनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध है– (1) कौलोपनिषद भाष्य (2) गुप्तवली (गुप्तवली) दुर्गामाहात्म्य व्याख्या (3) चण्डीस्तव मंत्र परिच्छेद (4) त्रिपुरा महिम्न स्तोत्र (टीका) (5) यंत्र रत्नावली (6) मंत्र विभाग (7) ललितार्चन विधि (8) श्रीविद्यार्चन चन्द्रिका (9) वामकेश्वर तन्त्रान्तर्ग नित्या षोडशी की व्याख्या (10) सौभाग्य भाष्कर (ललिता सहस्रनाम व्याख्या) सौभाग्यचन्द्रोदय (12) कौल कल्पसूत्र वृत्ति (13) रत्नालोक माला मंत्रोद्धार (14) नवरत्न माला।" इस प्रकार अन्य कई महत्वपूर्ण पुस्तकें है।

क्या भास्कर राय ने पण्डितजी का शिष्यत्व ग्रहण किया– मैंने प्रश्न किया।

हाँ! ग्रहण किया। शिष्य का नाम था उमानन्द। वे भी अपने गुरु की ही तरह तंत्र के निष्णात् विद्वान हुए। उन्होंने हृदयामृत और नित्योत्सव निबंध नामक दो महत्वपूर्ण तंत्र ग्रन्थ की रचना की। आगे चलकर भास्कर राय के प्रशिष्य रामेश्वर ने 'परशुराम कल्प सूत्र' नामक महत्वपूर्ण तंत्र ग्रन्थ की रचना की।

यह सब सुनकर मैं आश्चर्यचकित और भावाविभोर था। मेरे लिए सबसे बड़ा आश्चर्य तो बन्धु इस बात का था कि इस बीहड़ अरण्य निर्जन में एक झोपड़ी में न जाने कब से बैठा यह रहस्यमय व्यक्ति इस गुह्य प्रसंग को जानता कैसे है? अवश्य कोई गहरा रहस्य है? अच्छा अब तो यह भी कथा पूरी हो गयी। अब आज्ञा दीजिए चलूं।' आपको काफी कष्ट दिया मैंने। वह व्यक्ति हँसा बोला– बारिश का एक रस शोर झींगुरों की झंकार, यह अन्धेरा और यह निर्जन इलाका। ऐसे में आप जायेंगे कहाँ बाबू साहब।

उस अन्धेरी गुफा जैसे वातावरण में वह सब कुछ मुझे अप्रिय प्रतीत हो रहा था। उस अज्ञात व्यक्ति की उपस्थिति तो अनोखी लग रही थी। उसकी हँसी भी डरावनी लगी। मन में बार–बार यही हो रहा था कि उठकर बाहर चला जाऊँ। मगर यह तो असम्भव हो गया था। कहा– अब और कोई कथा तो नहीं सुनानी है आपको?

हाँ! बाबू साहब अभी पूरी कहाँ हुई कथा। अब जो शेष है उसे भी झटपट सुना डालिए। थोड़ा झुंझला सा गया था मैं उस समय। वीरेश्वर को जैसे रस मिला। बोला– प्रारम्भ सिद्धेश्वर की अतृप्ति से ही करूँगा।" पंकज जी ने बाधा दी– सिद्धेश्वर कौन? यह सिद्धेश्वर की ही कहानी, उसने कहा– अधिक समय नहीं लगेगा। बारिश समाप्त होने और सबेरा होने तक इस कथा का भी अन्त हो जायेगा। लेकिन इस कथा की समाप्ति आपको बड़ी विस्मयजनक और बड़ी रहस्यमय प्रतीत तो होगी ही इसके अलावा एक गहरे रहस्य से पर्दा उठ जायेगा जिसे अभी तक कोई जान नहीं पाया है। अच्छा अब कहूँ। पंकज जी रस लेकर और मैं बेमन से सुनने लगा अनबुझी प्यास की दास्तान। कैसी विचित्र बात थी? वीरेश्वर जैसे कहानी न कह रहा हो, सामने रखी किताब खोल कर किस्सा सुना रहा हो।

एक ऐसे अनजान अनाम इलाके की कथा है यह इतिहास में जिसका उल्लेख नहीं होता। सुलेखक जिस पर कुछ लिखते नहीं। अखबारों में जिनकी चर्चा नहीं होती। उन्हीं हजारों घटनाओं में से एक घटना की कहानी। आप जो यह परित्यक्त क्षेत्र देख रहे हैं न, वह काफी सम्पन्न और समृद्धशाली रहा होगा। नामों और हरीनिमा से भरी

शस्य–श्यामला धरती जब कभी आनन्दविभोर होकर झूम झूम जाती रही होगी। वायु के कल–कल हाससे जब कभी गूंज–गूंज जाता रहा होगा यह जीर्णशीर्ष प्रान्तर तभी की एक करुण और मर्मस्पर्शी वीरेश्वर कहता गया– सिद्धेश्वर के पिता पण्डित थे और ज्योतिषी भी थे और गांव के मन्दिर के पुजारी भी थें। इसलिए विरासत में सिद्धेश्वर को भी यज्ञोपवीत हवन पूजन विवाह संस्कारो के मंत्र खून में घुले मिले थे। सिद्धेश्वर के यहां पीढ़ी दर पीढ़ी पुरोहिती होती आयी थी। लेकिन जहां दो पीढ़ी पूर्व दस गांव यजमान थे– वहां सिद्धेश्वर तक पहुँचते–पहुंचते सिर्फ दो तीन गांव की जजमानी बाकी रह गयी थी। जायदाद भी पहले खूब थी। खेत थे। खलिहानों में अनाज पशु थे। पक्का मकान था। मगर सब धीरे–धीरे न जाने कहां अपने आप विलीन होता चला गया। सिद्धेश्वर के पिता जब मरे तब जायदाद के नामपल कुल जमा दो एकड़ जमीन, टूटा–सा घर, आंवले और आम के वृक्षों का एक कुंज और जन्म से मरण तक के अवसरों पर व्यवहृत होने वाले संस्कृत के श्लोक ही शेष रह गये थे।

यह सब........

पंकज जी ने फिर बाधा दी। आप अतृप्ति की कथा कह रहे थे न?

वह हँसा! आप अधीर क्यों होते हैं महाश्य यह तो पूरी कथा की भूमिका मात्र हैं। बिना इसके मजा कैसे आयेगा कहानी में फिर मुझे लगा कि शायद कहानी के बिखरे सूत्र जोड़ है वीरेश्वर।

मैली चादर फिर से लपेटी बदन पर वीरेश्वर ने। कहने लगा– सिद्धेश्वर के पिता जब मरे तब उसकी आयु थी केवल बाइस बरस। इस आयु में गांव के लड़के पक जाते हैं शहर वालों की अपेक्षा। हमीरपुर की एक लड़की से सिद्धेश्वर की शादी की बात चल रही थी। सगाई भी हो चुकी थी। केवल भांवरे पड़ना बाकी भर था। तभी लड़की के पिता का निधन हो गया जो उसके लिए घोर अभिशाप सिद्ध हुआ। निर्धनता तो थी ही। लड़की वालो ने जब पुरोहिताई और पण्डिताई ही देखी, जीविका का एकमात्र साधन, तो उन्होंने सगाई तोड़ दी। जीवन शून्य तो था ही उसका, इस नये आघात ने जेठ वैशाख की रेगिस्तानी आंधी की तरह उसके अन्तर को झुलसा दिया एकबारगी बाबू साहब। सिद्धेश्वर की

प्रबल कामना थी राधा। 'राधा'! चौक पड़ा मैं। कौन राधा? पानी लाकर देने वाली राधा तो नहीं.....।' मगर बोला नहीं राधा के साथ परिणय कर गृहस्थी जमाने की थी प्रबल इच्छा। इस धक्के ने उसकी समस्त आकांक्षाओं को राख कर दिया। चारो ओर जब शून्य ही शून्य था शेष। बहार आयेगी कभी इसकी आशा न थी। जीवन रूपी जो अभिशाप मिला था– उसे बिना प्रतिरोध के उसने ग्रहण कर लिया। तभी एक दिन सर्वथा अप्रत्याशित रूप से एक घटना घट गयी, जिसने उसके टूटे–बिखरे मन में हा–हाकार उत्पन्न कर दिया। सहा लगों के दिन थे। तिवारियों के टोले में भी बहु आयी। ज्योनार के रोज नियन्त्रण में सिद्धेश्वर भी गया। पता चला कि लड़की हमीरपुर की है। नाम सुनकर दिल धक् से रह गया। राधा ही व्याही थी उस घर में सुनकर सिद्धेश्वर को लगा– जैसे छाती के भीतर यहां से वहां तक शून्य हो गया हो?

बड़ी बांकी छवि थी राधा की बाबू साहब। सगाई के समय एक नजर देख कर ही उस पर सिद्धेश्वर हजार जान से फिदा हो गया था। राधा का जो रूप यौवन उसके उष्ण रक्त में हमेशा–हमेशा के लिए धुल मिल गया था। उसके सम्मोहन से चाह कर के भी मुक्तन हो सका। सिद्धेश्वर! अपूर्व रूप और वैसी ही मोहक देह जैसे उस पर जादू कर दिया था।

बिजली चमकी। दूर दिगन्त तक चमकीली रेखा खिच गयी। बारिश ने और जोर पकड़ लिया। पंकज ही ने कहा– फिर? फिर क्या हुआ? मैंने पंकज की ओर देखा। धुंधले उजाले में विस्मय विमुग्ध–सा अधूरे प्रणय की कथा सुन रहा था वह। शायद उद्दाम यौवन से तंरगित देहयष्टि की कल्पना भी उसके मन ही मन कर ली थी। कथा के माध्यम से मन उसी में डूब–डूब जा रहा था शायद।

राधा ने सिद्धेश्वर के मन में आग लगा दी थी। उससे भीतर ही भीतर झुलसता गया वह। दिन बीतते गये। सिद्धेश्वर दिन–दिन क्षार होता गया विष भरी आग की तरह राधा उसके मन प्राणों पर छा गयी। सोते जागते सर्वत्र राधा की ही रूप छवि नजर आती, सिद्धेश्वर जैसे पागल हो गया।

जरूर आपा खो बैठा होगा सिद्धेश्वर। बिजली जैसी दाहक चमक वाली राधा के अपरूप यौवन ने निःसन्देह उसके जीवन को लकदक उजाले से उद्‌भाषित कर दिया होगा। कैसा कातर और कैसा निरीह हो गया होगा सिद्धेश्वर। जब तक उस उजाले को सहन करने की हिम्मत संजोयी होगी सिद्धेश्वर ने, तब तक तो जीवन जलकर क्षार–क्षार हो गया होगा।

फिर एक रोज चला गया सिद्धेश्वर रामपुर। जीवन में कोई चाव तो रह ही नहीं गया था, सो बवंडर की तरह यहां वहां घूमा करता पागलों की तरह। श्रीरामपुर के मालगुजार के यहां पौत्र का यज्ञोपतीत संस्कार था। उसी सिलसिले में पन्द्रह–बीस दिन लग गये। तब तक शुरू हो गयी बरसात। ऐसे ही एक मेघों से भर गया था आकाश। निस्तब्धता थी चारो तरफ। झिर–झिर कर हल्के–हल्के बरस रहा था मेह। राह वाट सब निर्जन हो गये थे। जल्दी–जल्दी कदम बढ़ाता सिद्धेश्वर गांव की ओर जा रहा था कि सहसा ठिठक कर खड़ा हो गया। कुएं के किनारे कदम्ब के पेड़ के नीचे खड़ी थी राधा। अन्धेरा बढ़ गया था। फिर भी दप्–दप् करती राधा की यौवन श्री को पहंचाने लिया सिद्धेश्वर ने। जगर मगर करता हुआ राधा का रूप उत्ताप जला गया। कदम्ब खूब फूला हुआ था और वैसा ही फूला हुआ था राधा का यौवन। दस हाथ की लाल किनारे वाली के घेर में से जैसे फटा पड़ा था वह।

दूध और आंवले के मिले–जुले रंग के मुखड़े पर मस्तक तक घूंघट से झांकती रतनारी आँखों को हत्‌वाक् देखता रहा सिद्धेश्वर। आँखों से आँखे मिलाकर उसकी ओर अपलक देखती रही राधा। उसकी काली भौंराली पलकों से जैसे अपूर्व आकर्षण चू आया।

कुछ क्षण निस्तब्धता रही। पानी के भार को न संभाल पाकर आकाश जैसे फट पड़ना ही चाहता था। राधा ने ही कहा– पहचानते हो तुम मुझे? जैसे सिद्धेश्वर को होश आया। जी! हाँ.... तुम्हे कैसे भूल सकता हूँ राधा?

इसी गांव में ब्याही हूँ। मगर कभी सुध भीली कि राधा जीती है या मर गयी? तुम्हारे दरस के लिए तरस–तरस कर बेहाल हो गयी। मगर तुम ऐसी निर्दयी कि एक रोज भी न आये।

सिद्धेश्वर एक कदम आगे बढ़ गया। ऐसा न क़हो राधा। तुम्हारी छवि दिन रात कलेजे में आग बनकर जलती रही है। किसी दिन चैन नहीं मिला मुझे। तुम्हारी ही चिन्ता में मैं अपनी सुधबुध बिसार बैठा।'

मैं तुम्हारे साथ ही बहुत दूर चली जाना चाहती हूँ सिद्धेश्वर। आवेग से कांपते स्वर में कहती गयी राधा– मुझे तुमसे मुहब्बत हैं, प्रेम है, सिर्फ तुमसे। मैंने इस दुनिया में सिर्फ तुम्हे अपना देवता माना है। मुझे यहां से कहीं दूर ले चलो।

पाषाणवत् खड़ा रहा सिद्धेश्वर निश्चल। मैं आज रात को तुम्हारे पास आऊँगी। तुमसे बहुत–सी बातें करनी है प्रियतम।

दिगन्त में बिजली चमकी। कांप–कांप गया आकाश विस्मित स्वर में सिद्धेश्वर ने कहा– 'आज ही।'

हाँ! आज ही, अपलक देखती हुई राधा बोली– अब अधिक समय नहीं है। आग बुझाये नहीं बुझती। क्षण भर स्थिर खड़ा रहा सिद्धेश्वर। एक टक देखता वह राधा की ओर। हजार प्यालियों के नशे से मदहोश उन स्वप्निल आँखों में उसने क्या देखा, कौन जानता है? फिर बोला– ठीक है मैं तुम्हारा इन्तजार करूँगा राधा।

वज्र शेख स्वर में फट पड़ा आसमान। मूसलाधार बारिश होने लगी। घूंघट खींचकर, नतनयना राधा धीमें पगो से चली गयी।

रात आयी पिशाचिनी जैसी काली रात। घर आंगन अन्धेरा हो गया। जर्जर छप्पर पानी के भार को न संभाल पा चूने लगा। ऐसे छाया प्रकाश के वातावरण में सिद्धेश्वर किसी के इंतजार में बैठा था उद्वेलित।

आधी रात को दरवाजे पर दस्तक हुई। सिद्धेश्वर ने उठकर दरवाजा खोला कहा– 'आओ राधा। माथे का घूंघट सरका कर बायें हाथ से भीतर आयी राधा। मिट्टी के तेल की चिमनी के मन्द आलोक में उसका उज्ज्वल रूप और अधिक जगमगा उठा। आँखों से जैसे काजल बहने लगा। मांग में सिन्दूर दपदपा रहा था और कुसुम, कोमल गालों पर बिखरे थे लावण्य कण। विस्मय से अपलक सिद्धेश्वर नव परिणीता वधु जैसी आयी राधा को अपलक देखता रहा। राधा समीप आयी। उस बरसाती रात में धीमे–उजले में एक अजीब सी गन्ध से

आच्छन्न हो उठा सिद्धेश्वर। धीमे से फुसफसाकर राधा ने कहा– चिमनी बुझा दो।

क्यो?

अपनी बड़ी–बड़ी आँखें उठाकर भर निगाह राधा ने सिद्धेश्वर की ओर देखा कहा– रोशनी में अभिसार कैसे होगा मेरे प्राण।

प्राण ने धीरे से चिमनी बुझा दी। बाहर भीतर अन्धकार फैल गया जरूर हुआ होगा अभिसार। अपूर्व रूप की स्वामिनी राधा की रसवती देहलता का छक कर सौरभ पान किया होगा सिद्धेश्वर ने। जो उत्तम अहर्निश मन–प्राणो को जलाता रहा होगा उसे शीतलता का प्रलेप जरूर मिला होगा सिद्धेश्वर को, इसमें सन्देह नहीं और सिलसिला चल पड़ा।

बारिश से हाहाकार करती रातों में स्याह अंधियारों के बीच इसी प्रकार रोज राधा आती रही बाबू साहब। दिया बुझता, अभिसार होता और तृप्ति मिलती। सुबह होने से पहले ही राधा उठकर घूँघट काढ़ कर चली जाती। नवौढ़ा सा उसका रूप जगमग–जगमग करता ही रहता और यहां दिन चढ़े निढाल अवसन्न शिथिल–सा सिद्धेश्वर खाट पर पड़ा रहता। अंग–अंग में कमजोरी भरी रहती। पोर–पोर दर्द करता। मृतवत् खामोशी में निःश्वास लेता हुआ वह निस्पन्द पड़ा रहता। दिन बीतते गये। रोज रात को अभिसार के लिए राधा आती। पूरी रात यौवन की रंगीन लीला होती किन्तु सवेरे राधा के जाते ही नक्शा बदल जाता सिद्धेश्वर दिन पर दिन म्लान कमजोर और जर्जर होता जाता। जैसे रक्त चूस लिया हो किसी ने ऐसा पीला चेहरा हो गया उसका।

गांव वालों की निगाह से छुपी न रही उसकी यह दशा। पास पड़ोस में चर्चा होने लगी। जो भी उसे देखता, आश्चर्य से भर उठता। स्वस्थ, पौरुषवान सिद्धेश्वर को आखिर हो क्या गया? ऐसी ही बारिश की एक शाम को सिद्धेश्वर के एक अन्तरंग संगी ने घेर लिया उसे। आग्रह भरे स्वर में उसने कहा– सच सच बतलाओ यह क्या हो गया है तुम्हे?

'क्या? यह राख जैसा रंग, यह स्याह चेहरा, यह बदहवासी, आखिर यह सब क्या है? कौन–सी बीमारी थाम ली है तुम्हें? बोलो, छिपाना मत। सिद्धेश्वर ने बुझी–बुझी निगाह से उसकी ओर देखा फिर

विषण्ण स्वर में कहा– कुछ नहीं। अन्तरंग ने हाथ पकड़ लिया उसका। कहा– मेरे सिर की कसम, सच–सच बतलाओ और फिर बांध टूट गया। टूटे उपड़े स्वर में अपनी अभिषार की कथा सुनानी प्रारम्भ कर दी। सिद्धेश्वर ने। उस पानी बूंदी के शाम से लेकर पिछली रात तक के मिलन के एक–एक क्षण का ब्योरा प्रस्तुत कर दिया उस विनाश भरे कगार पर खड़े व्यक्ति ने। संगी के तो प्राण ही सहम गये सुनकर। दोनों कान सुनकर झन्–झन् करने लगे उसके। चीत्कार कर बोला– क्या कहते हो तुम? राधा तो मर गयी।

सिद्धेश्वर के कानों में भी अस्पष्ट सा कोलाहल गूंजने लगा। विस्मित होकर बोला– यह कैसे हो सकता है बन्धु?

मैं सच कह रहा हूँ– संगी ने कहा– शायद तुमको इस बात का पता नहीं है कि श्री रामपुर और उसके चारो तरफ फैले हुए वन प्रदेश का इलाका कापालिकों से प्रभावित है। उसमें बसे गांवों की नवयुवतियों को, कुमारी कन्याओं को जबर्दस्ती उठा ले जाते है कापालिक अभयानन्द के शिष्य साधना के लिए। फिर बाद में भ्रष्ट कर छोड़ जाते हैं या फिर उनकी बलि दे कर मार डालते हैं। राधा को उसके पिता से अभयानन्द ने साधना के लिए कई बार मांगा था, मगर ऐसा हो न सका। कोई अघटित न घट जाय, इसलिए राधा की शादी कर दी गयी लेकिन शादी हुई कहां? मण्डप से ही उठा ले गया कापालिक अभयानन्द के एक शिष्य ने उसे। फिर क्या हुआ। रोते हुए पूछा सिद्धेश्वर ने। होगा क्या राधा ने चण्डी का रूप धारण कर लिया। कापालिक की मठ में ही छूरा भोंककर उसकी हत्या कर दी उसने और मेघों भरी ऐसी ही शाम को राधा ने कुएँ में कूद कर अपनी भी जान दे दी। दूसरे दिन निकाली गयी लाश। कापालिक की हत्या का समाचार चारो ओर आग की तरह फैल चुकी थी अब तक गांव में भय से शिष्य भाग गये मठ को छोड़कर उसी समय। लेकिन सुनने में आया है कि राधा की प्रेतनी अभी भी उसी मठ में घूमती रहती है अतृप्त कामना लिए।

यह सुनकर एकबारगी दंग रह गया मैं। ऐसी ही हालत पंकज जी की भी हुई स्तब्ध रह गये वह मेहंदी रचे हाथों में लोटा पानी का, गोरी

कलाईयों में सुहाग की चूड़ियां और अध खुले घूंघट के भीतर से झांकता चांद जैसा चेहरा—एकबारगी घूम गया सामने।

व्यक्ति बोला—सिद्धेश्वर हतप्रभ हो गया था। उसकी आंखों के सामने जैसे सब कुछ शून्य हो गया। बुझे स्वर में सिर्फ इतना ही कहा उसने— ठीक है तुम जाओ और उसने उठकर भीतर से दरवाजा बन्द कर दिया।

रात आयी। सिद्धेश्वर के मन में द्वन्द मचा हुआ था। यह क्या हो रहा हैं? क्या प्रेत लीला? कैसे विचित्र इन्द्रजाल में फंस गया वह? राधा की धूं धूं जलती उद्दाम वासना ने उसका जीवन रस निचोड़ लिया था। केवल बुझते हुए प्राण भर शेष रह गये थे। उसके जीवन में राख भर कर राधा आखिर चाहती क्या है? उस रात खूब बारिश हुई। जलमग्न हो गया सब। सब ओर पानी ही पानी। आधी रात को दरवाजे पर दस्तक हुई खोलो किवाड़।

पागल बरसात के उन्मत्त कोलाहल से भर गया था वातावरण। हवा की सायं—सायं रौरव शोर उत्पन्न कर रही थी। धीमे उजाले में श्मशान के पिशाच जैसे बैठे सिद्धेश्वर के प्राण सूख गये। राधा की पागल अतृप्त कामना अब कौन सी दक्षिणा चाहती है? खोलो दरवाजा खोलो सिद्धेश्वर।

सिद्धेश्वर के मन में हा हाकार उठ गया था। फिर भी जी कड़ा करके उसने कपाट खोल दिये। प्रचण्ड वेग से बर्फीली हवा के झोंके बारिश की बूंदे लिए भीतर आ गये और उन्हीं के साथ आयी राधा हवा में उसका आंचल फर फर उड़ने लगा था।

कांपते प्राणों से भर नजर सिद्धेश्वर ने देखा उसे कैसी आसुरी छवि थी। राधा की आँखों में एक विचित्र—सा सम्मोहन उत्तर आया था। रक्तिम होंठ फड़क रहे थे। जवा कुसुम गालो पर आग की लपटें खेल रही थीं। जैसे राधा समीप आयी एक अजीब सी गंथ से न जाने कैसे होने लगा जी। लगा, जैसे चेतना खो बैठेगा वह। बोला— कहो राधा? राधा और करीब आ गयी। उसकी सांसों की गर्मी महसूस करने लगा। सिद्धेश्वर। अपनी प्यासी आँखों से सिद्धेश्वर की ओर देख कर राधा ने

कहा— आज देर हो गयी चिमनी बुझा दो। सिद्धेश्वर दो पग पीछे हटा। 'न आज कुछ नहीं तुम जाओ। आज मेरी तबीयत ठीक नहीं है। राधा की आँखों में एक लपक कौंध गयी नथुने फड़क उठे। बोली— नहीं, आज भी। मैं आयी हूँ तो सुबह के पहले नहीं जाऊँगी। तुम चिमनी बुझाओ।

एक कदम पीछे हट कर खाट पर बैठ गया सिद्धेश्वर। एक विचित्र उत्तेजना से भर उठा उसका तन, मन। आंधी सी उठ आयी उसके भीतर सहसा एक विचार जगा उसके मन में बोला— बत्ती आज मत बुझाओं। राधा रानी। अभिसार की शुरूआत आज तुम्हीं करो।

राधा का चेहरा कठोर हो गया। इस्पात जैसा रंग उतर आया उस पर। बोली— नहीं बत्ती तुमको ही बुझाना पड़ेगा, तुम्ही बुझाओ। बिजली फिर कौंधी। बारिश ने फिर जोर पकड़ लिया।

पलंग की पाटी पर अविचल बैठा रहा सिद्धेश्वर निर्मिनेष दृष्टि से राधा के चेहरे की ओर देखता रहा वह। बोला— नहीं राधा रानी उठने की शक्ति नहीं है मुझमें। तुम्ही बुझाओं बत्ती। राधा की रतनारी आँखे भावशून्य हो गयी वह जल उठी जैसे। एक अतीन्द्रिय ज्योति थी जैसे उनमें उस समय। कुछ क्षण तक यही स्थिति रही। फिर एकाएक निढाल हो गयी राधा। हताश स्वर में उसने कहा— 'अच्छा! यही सही तीव्र प्रकम्पन से भर उठा आसमान। यहां से वहां से गहरा प्रकाश भर गया। राधा सिद्धेश्वर के समीप खड़ी थी। उसके और चिमनी के बीच दस हाथ की दूरी थी। राधा के मुख पर एक भयानक पैशाचिक मुस्कान खेल गयी। एक स्पन्दन से भर उठा उसका शरीर फिर उसका बायां हाथ बढ़ता गया बढ़ता गया और करीब दस फुट की दूरी से राधा ने चिमनी की बत्ती नीची कर उसे बुझा दी। भयानक प्रेतलीला हो रही थी। भय विजड़ित दृष्टि से सिद्धेश्वर यह सब पैशाचिक लीला देख रहा था। उस क्षण राधा उसे पिशाचिनी लगी खून पानी हो गया उसका। राधा का हाथ लौट आया। आतंक और भय से स्वर भंग हो गया सिद्धेश्वर का। भयातुर कण्ठ से कुछ कहना चाहा उसने किन्तु फटे गले से गो गो का विलाप ही निकला एक अस्पष्ट सा प्राण कंपा देने वाला चीत्कार कर वह कटे वृक्ष की तरह गिर पड़ा खाट पर। भय की अधिकता से उसके प्राण तत्काल निकल गये विकट अट्हास कर, उस भयानक रात

में राधा दरवाजा खोलकर बाहर निकल गयी। सिद्धेश्वर की कहानी समाप्त हो गयी। अतृप्त कामना और उद्दम वासना की उस दिल हिला देने वाली कथा को समाप्त कर वीरेश्वर का कातर, क्षीण स्वर धीरे-धीरे हवा के सांय-सांय में खो गया विषण्ण दृष्टि से देख कर हम लोगों की ओर मुंह किए बैठा रहा वह। एक गहरा सन्नाटा छा गया वहां। अन्नाटा नहीं अपितु मन में खिन्नता और क्षोभ उत्पन्न कर देने वाली बेचैनी। पंकज को शायद अन्त अच्छा नहीं लगा बोले- राधा फिर कहां गयी? एक अबूझ-सी हँसी खेल गयी वीरेश्वर के चेहरे पर। आँखों में उतर आया एक विचित्र भाव। हँस कर बोला- मैंने कहाँ न, यह बात किसी की समझ में नहीं आयी सिर्फ रहस्य बन कर रह गयी। कोई नहीं जानता कि राधा फिर कहां गयी?

मुझे यह सब बड़ा अस्वाभाविक प्रतीत हो रहा था। एक कथा के अन्दर कई कथा-जिनका आपस में मेल मिल भी रहा था और नहीं भी। मन में एक गांठ थी संशय की। अततः बोला- सिद्धेश्वर की कथा हूब-हू कैसे जानते हैं आप? आपसे किसने कही यह दर्द भरी दास्तान?

वीरेश्वर ने मेरी ओर देखा। उफ् वह निगाह तमाम उम्र नहीं भूल पाऊँगा मैं उसे। लगा जैसे प्रेतपुरी का दावानल सुलग रहा हो वहां। चेहरा भी एकदम स्याह हो गया। बोला- आप पूछने वाले कौन होते हैं? और फिर एक विकट अट्टास किया उसने।

आतंक और संशय से बुरी दशा हो रही थी मेरी। वीरेश्वर की उपस्थिति भी रहस्यमयी लगने लगी थी अब। फिर भी कहा- सच-सच बतलाइये आप है कौन- किन्तु वाक्य पूरा न हो पाया मेरा हवा के एक तेज झोके से दरवाजा फटाक् से खुल गया।....... पानी के थपेड़े भीतर आ गये। सहसा वीरेश्वर उठकर खड़ा हो गया। एक अलौकिक भाव से रंग गया उसका चेहरा। दरवाजे की ओर उन्मुख हो- आवाहन की मुद्रा में हाथ उठाकर उसने कहा- "आओ, आओ राधा.... मेरे प्राण आतंक से हिम हो गये जैसे। उस अभूतपूर्व क्षण में क्या घटित होने जा रहा था? क्या कोई भयंकर और अविश्वसनीय प्रेतलीला? लगा, जैसे बेहोश हो जाऊँगा मैं।

हिमशीतल हवा का मर्मवेधी रूदन भर गया वातावरण में और तभी हवा के एक झोंके से धुंधली, काली चिमनी भी बुझ गयी ऐसा लगा, जैसे दरवाजे से भीतर आया कोई, आतंक से सिहर उठे मेरे प्राण। पंकज जी की भी हालत दयनीय हो गयी। शिराओं उपशिराओं में रक्त का प्रवाह रूकता सा जान पड़ने लगा। गर्दन घुमाकर दरवाजे की ओर देखने की कोशिश की मैंने। पहले तो कुछ नजर ही नहीं आया मुझे। अन्धकार ही अन्धकार। फिर धीरे–धीरे वह गहरा अंधियारा क्षीण होने लगा। मोम की तरह गलने लगी स्याही और फिर उस अजीब से धुंधले पटल पर धीरे–धीरे एक नारी मूर्ति प्रकट होने लगी।

आँखे गड़ाकर देखने की कोशिश की मैंने और फिर जैसे सुषुम्ना तक एक हिम प्रवाह दौड़ गया। हूबहू वही आकृति थी– जैसी वीरेश्वर ने वर्णन किया था– उद्दाम यौवन से तरंगित छवि, लेकिन वह कैसा आसुरी रूप......? आँखों में एक विचित्र सम्मोहन, रक्तिम होंठ, रक्तिम गाल, बिल्कुल वही।

क्या सिद्धेश्वर की राधा? किन्तु वीरेश्वर के पास क्या करने आयी थी वह?

प्राण कंपा देने वाले उस मौसम में असीम आतंक से अवश हो गया मेरा शरीर। लगा, जैसे प्राण निकल जायेंगे। वीरेश्वर की ओर देखने की कोशिश की मैंने लेकिन कहां था वह?

एक क्षण। एक क्षण का भी सौंवा हिस्सा। उसके बाद ही खुले हुए दरवाजे की ओर बढ़ गयी वह नारी मूर्ति और अगले ही क्षण भयानक अट्टहास से गूंज उठा सारा वातावरण।

लगा, जैसे भयातुर कण्ठ से पंकज जी ने चीत्कार किया, एक क्षण रूकना असम्भव हो गया। उस अजड़ वीरान इलाके में कहीं राधा ही न मिल जाय अपनी सन्ताप कथा सुनाने। कम्बल, झोला गठरी सब कुछ छोड़कर निकल भागे हम दोनों। भागते रहे, भागते रहे। जैसे होश ही न रहा। बारिश बन्द हो चुकी थी सवेरा हो चुका था। किसी प्रकार पहुंचे तेजपुर रेलवे स्टेशन। कब गाड़ी में बैठे, कब गोहाटी पहुँचे और फिर कैसे पहुँचे बनारस। सारी यात्रा जैसे नशे में हुई ऐसा लगा। घर पहुंचते

ही आलमारी खोली। घोषाल महाशय की दी हुई वह रहस्यमयी तांत्रिक पुस्तक वहां नहीं थी। गायब हो चुकी थी। दो दिन रूक कर दिल्ली वापस चले गये पंकज जी। एक सप्ताह बाद उनका एक पत्र मिला मुझे। संक्षिप्त में लिखा था– वह रहस्यमय योगी अब फिर सपने में आने लगा है और अपने साथ ले जाने के लिए कहता है। क्या करूँ समझ में नहीं आता। आप ही मार्गदर्शन करें।

महीनों कोई उत्तर देते न देते बन सका मुझसे। उसके बाद स्वयं काफी व्यस्त हो गया मैं। इस प्रकार तीन–चार वर्ष का समय धीरे–धीरे व्यतीत हो गया। बाद में दिल्ली से आये हुए एक सज्जन से ज्ञात हुआ कि दो वर्ष पहले पंकज जी रहस्यमय ढंग से गायब हो गये। उनका आज तक कोई अता–पता नहीं। काफी खोज की गयी। पुलिस ने भी काफी कोशिश की। अखबारो में विवरण के साथ फोटो भी छपवाया गया कई बार लेकिन परिणाम कुछ भी नहीं।

यह समाचार सुन कर स्तब्ध और अवाक् हो गया मैं। क्या वह योगी तो नहीं ले गया अपने साथ? बार–बार मस्तिष्क में यही प्रश्न उभरने लगा। लेकिन इसी के साथ एक और प्रश्न भी था– लेकिन कैसे? कैसे सम्भव हो सका यह? कभी–कभी एक प्रश्न और भी परेशान करने लगा मुझे– क्या अभी तक जीवित होंगे पंकज जी? यदि होंगे भी तो किस स्थिति में?

इस संबंध में आप पढ़िये अगली कथा 'कामरूप का वह रहस्यमय तंत्र साधक'।

•

रहस्य पन्द्रह

कामरूप विद्या और परकाया प्रवेश

कथा के पहले कामाख्या पीठ के संबंध में संक्षिप्त में कुछ विशेष बतला देना आवश्यक है।

कामाख्या पीठ वास्तव में योनिपीठ है इसलिए कि सती का अंग 'योनि' यहां गिरा है। 51 महाशक्ति पीठों में यह अति सिद्धपीठ समझा जाता है और यही कारण है इसके परम महत्व का। कालिका पुराण के अनुसार षोडशी महाविद्या कामेश्वरी इस पीठ स्थान पर विराजमान हैं लेकिन पीठ के कारण इस स्थान पर किसी प्रकार की मूर्ति या प्रतिमा की स्थापना नहीं है। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि तंत्र की दस महाविद्याएं भी यहां है स्थापित लेकिन योनि रूप में और यही कारण है कि अक्षता कुमारी कन्या के रूप में इन महाविद्याओं और स्वयं कामेश्वरी की पूजा अर्चना व अन्य तांत्रिक साधनाएं यहां होती है। अक्षता कन्या 'रूप महाशक्ति का मूल अभिव्यक्त स्थूल रूप है। जैसाकि तंत्र में कहा भी गया है–

ॐ सर्वविद्या स्वरूपा हि कुमारी नात्र संशयः।
एकाहि पूजिता बाला सर्वहि पूर्जितं भवेत।।

(योगिनी तंत्र 17। 33)

कुमारी कन्या सर्वविद्या स्वरूपा महामाया है। यदि तंत्र विधि के अनुसार एक अष्टवर्षीया कुमारी कन्या की पूजा की जाय तो फिर किसी अन्य देवी–देवता की पूजा अर्चना करने की आवश्यकता नहीं। शक्तिपीठ

की अपदेवताओं से रक्षा के लिए उनसे संबंधित एक भैरव होते हैं। भैरव शिव के ही एक रूप समझे जाते हैं। 'पीठ' के क्षेत्र की रक्षा करने के कारण भैरव को 'क्षेत्रपाल' की भी संज्ञा दी गयी है। कामाख्या पीठ के भैरव उमानन्द है। चालीस वर्ष पूर्व काशी के कामाख्या मन्दिर में एक तंत्र साधक रहा करते थे नाम था करधनी महाराज। करधनी महाराज कामेश्वरी के परम उपासक थे। तंत्र चर्चा उनसे बराबर मेरी होती रहती थी। एक बार प्रसंगवश उन्होंने बतलाया कि सर्वप्रथम उमानन्द भैरव का दर्शन पूजन अवश्य करना चाहिए। ब्रह्मपुत्र नदी के बीच में एक छोटा सा टापू है। उसी टापू पर उनका स्थान है। वहां तीन रात बिता कर तब आगे नीलांचल पर्वत की यात्रा करना चाहिए तभी भगवती अपने दर्शन की आज्ञा प्रदान करती है।

कामाख्या मन्दिर के निकट एक अति महत्वपूर्ण कुण्ड है सौभाग्य कुण्ड। तंत्र के अनुसार इस कुण्ड की प्रदक्षिणा करने से सम्पूर्ण पृथ्वी की प्रदक्षिणा का फल मिलता है। इस कुण्ड की विशेषता है उसका लाल रंग का पानी। कुण्ड के निकट गणेशजी का भी मन्दिर हैं। इनका भी दर्शन आवश्यक है।

कामाख्या मन्दिर में प्रवेश करते ही बारह खम्भों का एक बहुत बड़ा हॉल है। उस हॉल के बीच में हरगौरी के रूप में कामेश्वर—कामेश्वरी की युगल मूर्ति स्थापित है। हॉल से लगी हुई दस महाविद्या का प्रतीक रूप दस सीढ़ियाँ नीचे उतर कर एक तिमिराच्छन्न गहन गह्वर यानि गर्भगृह है। उसी गर्भगृह में देवी का योनिरूपा शिला विद्यमान है। वह शिला बराबर वस्त्र से आच्छादित रहती है। उसके सामने बराबर हर समय दीप प्रज्ज्वलित रहता है अन्य कोई प्रकाश की व्यवस्था नहीं। कामाख्यापीठ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि साधक और दर्शक जो भी भाव और कामना से वहां जाता है वह निश्चय ही पूर्ण होता है इसमें सन्देह नहीं।

कामाख्या योनिपीठ से निरन्तर जल प्रवाहित होता रहता है। वह जल कहाँ से आता है और कहां जाता है यह रहस्यमय है। नित्य कबूतर और बकरे की बलि होती है कभी—कभी भैंसे की बलि भी होती है। करधनी महाराज ने बतलाया कि कामाख्या पीठ हर समय जाग्रत

है जिस साधक को कहीं भी सिद्धि नहीं प्राप्त होती, वहां आकर अवश्य उसकी साधना सफल और सिद्ध होती है। यह भी जान लेना चाहिए कि यक्षलोक, तंत्र साधकों का अपना लोक है। वहां निवास करने वाले उच्चकोटि के तंत्र साधकगण सूक्ष्म शरीर द्वारा 'माँ, कामाख्या के दर्शन लाभ के लिए विशेष पर्व पर अवश्य आते हैं। अपने समय के महासाधक इस्माइल जोगी, जो तत्काल किसी कार्य की सिद्धि के लिए स्वयं मंत्र का निर्माण कर लेते थे और उसका प्रयोग कर परिणाम प्राप्त कर लेते थे– गुरु गोरखनाथ, लोना चमारी जैसी दिव्य विभूतियाँ तो प्रायः वहां आती रहती हैं। कभी कदा किसी भाग्यवान को उनका दर्शन भी हो जाया करता है।

कामाख्या पीठ का ''अम्बूवाची'' पर्व अति महत्वपूर्ण है। जब आषाण मास में सूर्य आर्द्रा नक्षत्र में प्रवेश करता है उस समय पृथ्वी ऋतुमति होती है। इस समय को अम्बूवाची पर्व कहते हैं। आषाढ़ मास से सूर्य कृष्णपक्ष के 7 से 11 तिथि पर्यन्त समय अम्बूवाची है। इस महापर्व पर 'माँ' का पट बन्द रहता है। चौथे या पांचवे दिन पर खुलता है। अभिषेक पूजन आदि के बाद ही दर्शन होता हैं।

अम्बूवाची पर्व तंत्रोक्त है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि किसी भी निर्जन एकान्त स्थान में लाल सिन्दूर का भूमि पर त्रिकोण बना कर उस पर नित्य रात्रि में 11 से 2 बजे की सीमा में इस पर्व पर कोई भी मंत्र जपने से अपने आप सिद्ध हो जाता है। शरीर पर एक लाल वस्त्र होना चाहिए और दिशा पश्चिम मुख। इस पर्व पर ब्राह्मण सन्यासी और विधवा अग्नि स्पर्श नहीं करते। मंत्र जप करने वाले को भी मना है यह। अग्नि में पकाया हुआ भोजन वर्जित है। केवल फल, दूध आदि सेवन करना चाहिए।

माँ के मासिक धर्म का वस्त्र अति मूल्यवान और महत्वपूर्ण होता है। उसे शरीर के उत्तमांग पर धारण करने से निश्चय ही अभीष्ट सिद्धि होती है, इसमें सन्देह नहीं। किसी भी तांत्रिक यंत्र को उस वस्त्र के साथ धागे से बांध देने से यंत्र तत्काल जागृत होकर अपना प्रभाव दिखाने लगता है। इसी प्रकार अपनी जप माला के सुमेरू पर वस्त्र का धागा बांध देने पर उस माला पर जप करने से मंत्र शीघ्र सिद्ध होता है।

कामाख्या वस्त्र मादाय जप पूजा समाचरेत्।
पूर्ण काम लभद्देवी सत्यं सत्यं न संशयः।।

(कुण्जिका तंत्र (पटल)

कामरूप कामाख्या पीठ के विषय में मुझे और बहुत कुछ तांत्रिक जानकारी प्राप्त हुई करधनी महाराज से। जिसके फलस्वरूप कामरूप जाने की लालसा जागृत हो उठी मेरे मन में। शायद मां की इच्छा थी। हो सकता है अपना दर्शन देने के लिए बुला रही हो वह मुझे अपने पास।

सन् 1965 ई0।

जैसाकि स्पष्ट है 51 महाशक्तिपीठों में कामाख्या पीठ सर्वोत्तम महिमामय, गरिमामय और परमसिद्ध है। कलियुग में बिना प्रतिष्ठित मूर्ति, प्रतिमा आदि का साधना उपासना की दृष्टि से कोई महत्व नहीं। वह पूर्ण व्यर्थ है (नागार्जुन तंत्रम्)। पीठ का मतलब हैं 'केन्द्र'। शक्ति केन्द्र का ही दूसरा नाम 'पीठ' है। आसन और पीठ में अन्तर है। इसे समझ लेना चाहिए। पीठ का निर्माण दैवी राज्य से स्वयं होता है लेकिन आसन का निर्माण स्वयं साधक करता है। पीठ का अगोचर संबंध क्रमशः तीन राज्यों से होता है– भाव राज्य, दैवी राज्य और शक्ति राज्य। इन तीनों राज्यों का संबंध शरीर के नाभि केन्द्र, हृदय केन्द्र और भ्रूमध्य केन्द्र से समझना चाहिए। इतना बोलकर नेत्र बन्द कर लिया महासाधक ने रात के दस बज चुके थे। बारिश थम चुकी थी। पंजाब मेल अपनी तीव्रगति से हावड़ा की ओर भागता जा रहा था। प्रथम श्रेणी का वातानुकूलित कम्पार्टमेन्ट। शराब की तीन बोतले खाली हो चुकी थी अब तक। कीमती शराब की उन खाली बोतलों के शव को कुछ क्षण देखता रहा मैं। अभी तक उनका कितना भारी मूल्य था लेकिन अब... ......। सामने के बर्थ पर पद्मासन की मुद्रा में बैठे पश्चिम बंगाल के महातंत्र साधक राखालचन्द्र भट्टाचार्य महाशय। मदिरा को प्रभाव उन पर पड़ चुका था। नेत्र लाल हो उठे थे।

क्या और दूँ? थोड़ी बची है कारणवारि।

नहीं, अब बस।

कलकत्ता के प्रसिद्ध उद्योगपति और मेरे परम मित्र श्री रतनलाल सुरेखा के आग्रह पर और अनुरोध भरी याचना पर काशी आना हुआ था

उस महातंत्र साधक का उन दिनों। सुरेखाजी के प्रसिद्ध मानस मन्दिर का निर्माण कार्य पूरा नहीं हुआ था लेकिन फिर भी सुरेखा जी उस महासाधक का मन्दिर के निमित्त काशी में दर्शन लाभ चाहते थे। सुरेखा जी को महातंत्र साधक का दर्शन लाभ तो हुआ ही उसके अतिरिक्त आशीर्वाद भी हुआ प्राप्त। उद्योगपति गद्‌गद् हो उठा। इस स्थान पर भगवती की भी उपस्थिति होनी चाहिए। मन्दिर से बाहर निकलते समय उंगली से एक ओर संकेत करते हुए उस महासाधक ने गम्भीर स्वर में आदेश दिया। आज्ञा का पालन हुआ। 'माँ' आज भी हैं वहां।

अब काशी से वापस जाना हो रहा था। श्री राखालचन्द्र भट्टाचार्य मेरे साधक गुरु थे। उनके निर्देशन में कुछ कठिन साधनाओं में भारी सफलता तो उपलब्ध हुई ही, इसके अलावा तंत्र के विषय में जो मैं खोज कार्य कर रहा था– उस दिशा में भी उनका सहयोग प्राप्त हुआ था मुझे।

राखाल बाबू को कलकत्ता में छोड़कर मुझे आसाम जाना था। यात्रा का एकमात्र उद्‌देश्य था गुप्त साधकों की खोज।

महासाधक की तन्द्रा भंग हुई। बोले– कामरूप, काम प्रधान राज्य है। 'काम' की शक्ति कामेश्वरी वहां की स्त्रियों में अत्यधिक मात्रा में कामाग्नि रूप में अभिव्यक्त है और यही कारण है कि कामरूप की स्त्रियां प्रारम्भ से तंत्र–मंत्र और जादू टोना आदि के लिए प्रसिद्ध रही हैं। वास्तव में कामरूप 'नारी राज्य' है। उस राज्य में प्रायः गोपनीय ढंग से उच्चकोटि की तंत्र साधिकाएं भी किसी–किसी भाग्यवान को दर्शन लाभ प्रदान करती हैं। यह संयोग की बात है। नारी बाहुल्य होने के कारण वहां की स्त्रियाँ पुरुष से अधिक कर्मठ और उनकी अपेक्षा अत्यधिक शक्ति सम्पन्न भी होती है। उनके रूप सौन्दर्य और यौवन में बड़ा ही कामोत्तेजक आकर्षण होता है।

●●●

दूसरे दिन सियालदह स्टेशन पहुँच गया मैं निश्चित समय पर। स्टेशन पर ही मिल गये मुझे कालीचरण भट्टाचार्य। तंत्र साधक थे। पुराना परिचय। कामरूप एक्सप्रेस से तारापीठ जा रहे थे। साथ अच्छा था ट्रेन में आधी रात तक उनसे तंत्र विषय पर चर्चा होती रही। उसी

सिलसिले में भट्टाचार्य महाशय ने बतलाया— लगभग तीन सौ वर्ष पहले कामरूप के साधना क्षेत्र में नटिनियाँ दाई का काफी प्रभाव था। शाक्त सम्प्रदाय के किसी उच्चकोटि के तंत्र साधक की महाभैरवी थी नटिनियाँ दाई। गुरु प्रदत्त कई प्रकार की तांत्रिक सिद्धियाँ थी उस भैरवी के पास। बीस वर्ष की आयु में ही जैसे उसकी कंचन काया थम सी गयी थी। नब्बे वर्ष की अवस्था में भी वह बीस की रूप यौवन सम्पन्न युवती थी। अगाध सौन्दर्य और अगाध तंत्र शक्ति। खूब उपयोग किया दोनों का उसने। अपार मानसिक शक्ति की स्वामिनी थी नटिनियाँ दाई, इसमें सन्देह नहीं। शरीर में न रहते हुए भी वह मानवी शरीर के अतिरिक्त किसी भी शरीर में प्रकट हो सकती है, पशु हो या पक्षी। जिसे देखकर प्रसन्न हो जाती है और उससे उसे पूर्ण तृप्ति मिल जाती है तो समझिए भाग्य खुल गया। शायद आपको ऐसा अवसर मिले यह कहकर हँसने लगे हो हो कर भट्टाचार्य महाशय।

●●●

न जाने क्यों और कैसे मन अशान्त हो उठा मेरा आसाम की भूमि पर पैर रखते ही। गोहाटी में मेरे एक परिचित थे उन्हीं के यहां सारा सामान रख कर निकल पड़ा अपने उद्देश्य और लक्ष्य को साकार करने के लिए आसाम के घने जंगलों पहाड़ों और सुनसान घाटियों की ओर। साथ में एक सर्वोदयी झोला और उस झोले में गुड़, नमक, चने और अन्य दैनिक उपयोगी की चीजें। हाँ! एक डायरी और कलम भी। परिचित से कहा— कब वापस लौटकर आऊँगा, यह कोई निश्चित नहीं है। वह चिन्ता नहीं करेंगे।

कार्तिक का महीना था। हल्की—हल्की ठंड पड़ने लगी थी। अशान्त तो था ही। आसाम की मनोरम छटायें और उसके प्राकृतिक दृश्य भी मेरे अशान्त मन को किसी भी तरह शान्ति नहीं दे पा रहे थे। ऐसा लगता था कभी—कभी कोई काफी दूर से मेरा नाम लेकर करुण और आर्द्र स्वर में पुकार रहा है मुझे लेकिन कौन पुकार रहा है यह समझ में नहीं आ रहा था। शायद मेरी अशान्ति का एकमात्र यही कारण रहा होगा? पूरे एक महीने से पागलों की तरह घने जंगलों, वीरान सुनसान इलाकों और बीहड़ पर्वतीय दुर्गम स्थानों में घूम रहा था मैं।

दोपहर हो चुकी थी। हवा में नमी थी। कई दिनों का भूखा प्यासा और थका था मैं। चला नहीं जा रहा था मुझसे उस समय। विचलित हो उठा था मेरा शरीर और मस्तिष्क भी। क्या करूँ, कहां जाऊ और तभी सुदूर एक छोटा सा गांव दिखलायी दिया मुझे। सिर उठाकर ध्यान से देखा– कई छोटी–छोटी झोपड़ियाँ थी वहां। किसी प्रकार अपने आपको घसीटता हुआ उस गांव के करीब पहुँचा मैं। तब तक सांझ हो चुकी थी। आसाम में सूरज जल्दी डूबने लगता है और सांझ भी जल्दी ही घिरने लगती है। कमजोरी के कारण मुझे चक्कर आ रहा था पैर लड़खड़ाने लगे थे और कब गिर पड़ा मैं चक्कर खा कर पता ही न चला मुझे। यहां थोड़ा यह बतला देना आवश्यक है कि उस समय तक लगभग चालीस वर्षों से जादू–टोना, तंत्र–मंत्र, भूत–प्रेत और उनके जानकार तांत्रिको की खोज में असीम कष्ट उठाया है मैंने। कल्पनातीत कष्टों का सामना करना पड़ा है मुझे। कई बार तो मरते–मरते भी बचा हूँ मैं। बहुत कष्ट दिया है मैंने शरीर को इस सिलसिले में बन्धु आप कभी सोच भी नहीं सकते। मैं तो आपको परामर्श देता हूँ कि बिना सोचे समझे और परखे जादू–टोना और तंत्र–मंत्र के चक्कर में न पड़े और अपने आपको इन सबका जानकार कहने वाले ढोंगी और पाखण्डियों के मायाजाल में भी न फँसे आप। बड़ी दुर्दशा होगी। बदनामी होगी पैसा भी निकल जायेगा आपके हाथ से। इसलिए यह निवेदन किया है कि आजकल चारो ओर इनकी भरमार है। चारो ओर इनका प्रचार प्रसार है। चारो ओर इनके मन को आकर्षित करने वाले बड़े–बड़े विज्ञापन है। समझ गये न? हाँ! तो जब मेरी चेतना लौटी तो मैंने अपने आपको एक बड़ी सी झोपड़ी के अन्दर खूब साफ सुथरे कमरे में मुलायम बिस्तर पर पड़ा हुआ पाया। मुझे घोर आश्चर्य हुआ? यह सब कैसे? यहां कैसे पहुंचा? कौन लाया मुझे? कमरे में हल्की रोशनी हो रही थी। लेटे ही लेटे चारो ओर सिर घुमाकर देखने लगा मैं और तभी किसी के कोमल हाथ का स्पर्श हुआ अपने माथे पर। हे भगवान! कितना सुखद स्पर्श था वह। थोड़ा सा सिर उठाकर देखा, तो देखता ही रह गया मैं। एक अत्यन्त षोडशवर्षीया सुन्दरी मेरे सिरहाने खड़ी मुस्करा रही थी मन्द–मन्द। एक ही पल में मेरा सारा कष्ट, सारा दुख और सारी वेदनाएं समाप्त हो

गयी एकबारगी। नारी के मन्द–मन्द मुस्कराहट में कितना जीवन्त प्राण रहता है इसका अनुभव पहली बार हुआ था मुझे उस समय। मुझे चैतन्य देखकर प्रसन्न हो उठी वह किशोरी। एक बार वक्र दृष्टि से मेरी ओर देखा, फिर हल्के से हँसी और हुलस कर बोली– 'तुम भूखे हो न? ठहरो अभी खाना लाती·हूँ मैं और यह कहकर बाहर चली गयी वह। उसके चलने से पैरों के पायल की रूनझुन ने मेरे मन को मोह लिया। अद्‌भुत रूपसी थी वह। इतनी सुन्दर, इतनी कोमल और इतनी स्निग्ध कि वर्णन करना कठिन ही है मेरे लिए शब्दों में। किसी कवि की कविता–सी थी वह रूपसी। बस यही इच्छा होती थी कि उसे अपलक निहारता रहूँ। लगता था जैसे प्रकृति का सारा सौन्दर्य भी उस बाला के उज्ज्वल स्वरूप के सामने तुच्छ था। एक विलक्षण आकर्षण था उसके अपरूप सौन्दर्य में। अब मैं यह सोचकर व्याकुल होने लगा था कि कुछ समय या दिनों के बाद इस अगाध सौन्दर्य को छोड़कर जाना पड़ेगा। उन क्षणों में ही मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा था कि उसे देखे बिना मैं एक पल भी जीवित न रह सकूँगा।

जब हिरनी सी कूदती और छम्–छम् पायल बजाती हुई वह लौटी तो उसके हाथ में चमचमाती हुई थाली थी भोजन की। मेरे सामने थाली रखकर बोली– लो पहले भोजन कर लो, फिर बातें होगी।

जैसे बहुत ही मधुर संगीत गूंज उठा हो। मैं मंत्र मुग्ध सा उसे देख रहा था और देखता ही रह गया। क्या हो गया था मुझे मेरी प्रबल मानसिक शक्ति को लकवा मार गया था विवेक जैसे खो गया था मेरा।

एकाएक वह लजा उठी। कनखियों से देख कर बोली– क्या देख रहे हो?

उसके इस प्रश्न से चौंक पड़ा मैं एकबारगी 'मैं कहां हूँ और तुम कौन हो? युवती ने संक्षेप में बतलाया– तुम जंगल में बेहोश पड़े थे। मेरे बाबा ने देखा तो तुमको उठा लाये। मुझे भूख तो नहीं है मैंने संकोच से कहा। तुम तो भूख, प्यास के कारण ही बेहोश हो गये थे और अब कहते हो कि भूख नहीं है।

मीठी झिड़की देकर मुस्करायी वह और अपने हाथ से जबर्दस्ती खाना खिलाने लगी मुझे।

तुमने अपना नाम नहीं बतलाया?

मेरा नाम लाजो है और तुम मेरे घर पर हो।

तुम बड़ी 'वो' हो। मैं जाने क्या कहना चाहता था पर जुबान लड़खड़ा गयी।

क्या?

सुन्दर बहुत सुन्दर। मेरे मुँह से अनायास ही निकल गया।

कितनी ? उसके प्रश्न में अल्हड़ता थी। चांद से भी गोरी और फूलों से भी कोमल। मैं भावुकता में कह गया।

ऐसा भी कोई हो सकता है भला? और वह हँस पड़ी कितनी सरल हँसी थी वह। उस समय मुझे आश्चर्य हुआ था कि इतनी सरल हँसी भी हो सकती है पर कितना मूर्ख था मैं।

कामरूप की नारी का प्रभाव था वह क्या? इतनी आयु में एक युवती की ओर आकर्षित........।

लाजो को लेकर मैं भविष्य के रंगीन सपनों में डूब गया। सचमुच आत्मा की गहरायी से मैं उससे प्रेम करने लगा था, मगर मेरा विचार और मेरी धारणा कितनी भ्रमपूर्ण थी। लाजो वैसी नहीं थी, जैसा मैं समझ रहा था।

नहीं लाजो ने मुझे धोखा नहीं दिया बल्कि मैं स्वयं अपने आपसे धोखा खा गया। उस समय मेरी आयु ही क्या थी? चालीस के पेट में था लाजो के पिता की आयु के बराबर। पागलपन ही तो समझा जायेगा इसे। लेकिन उस आयु में भी रंगीन सपने देखने लगा था मैं। वैसे मानव जीवन ही ऐसा जीवन है जिसमें विभिन्न प्रकार की स्त्रियों का आना स्वाभाविक है लेकिन लाजो के रूप में साक्षात् देवकन्या जैसी युवती इसके पहले नहीं आयी थी मेरे जीवन में। सचमुच हृदय में पहली बार प्रेम की तरंगे उठ रही थी। उस समय लाजो के सिवाय मेरे सामने और कुछ नहीं था। वह मेरे रोम–रोम में बस चुकी थी। हे भगवान! कैसी सोच थी? मैं उससे विवाह करना चाहता था। गृहस्थ होते हुए भी फिर से सुखी गृहस्थी बसाना चाहता था। लाजो तो मुझे पाकर जैसे पागल ही हो उठी थी। पहली रात को ही उसने अपना तन मन दोनों समर्पित

कर दिया मेरे सामने। उस समर्पण में कुछ विशेषता थी कुछ विचित्रता थी और कुछ था भौतिकता से परे भी। पर वह क्या थी यह मेरी समझ में नहीं आया उस अवस्था में। बस मैं यह जानता हूँ कि उस समर्पण में मुझे अवर्णनीय और अनर्वचनीय सुख, सन्तोष और आनन्द मिला था– वह जीवन में कभी नहीं मिला था। पहली बार हुआ था वह देवतुल्य अनुभव। निश्चय ही वह संसार से परे का था।

●●●

एक रात अचानक मेरी नींद खुल गयी। बाहर कहीं जोर–जोर से नगाड़ा बज रहा था और साथ ही औरतों–मर्दो का मिलाजुला शोर भी सुनायी दे रहा था। उठकर बैठ गया। लाजो भी थी मेरी बगल में वह भी जाग गयी थी। पूछा– कैसी आवाज है यह? नगाड़ा भी बज रहा है।

लाजो ने बतलाया– आज अमावस्या की रात है न "बालू" देवता को बुलाते हैं बाबा आज। उन्हीं के लिए ये सब हो रहा है।

ये बालू देवता कौन है?

बहुत शक्तिशाली हैं बालू देवता। वे हमारे कबीले की रक्षा करते हैं। विपत्तियों को टालते हैं मनोकामनाएं पूरी करते हैं। इसके अलावा और जो चाहे वह कर सकते हैं बालू बाबा। बड़े सिद्ध हैं उनका 'थान' (पीठ) भी बना है। थान पर जो भी मनौतियाँ मानिए जरूर पूरी होती है। रहा न गया मुझसे देखने चला गया लाजो भी साथ थी। सचमुच भारी भीड़ थी वहां। अधनंगे स्त्री–पुरुष शराब के नशे में हाथ में भाला लिए उटपटांग ढंग से कर रहे थे नृत्य। बीच में बालू देवता का थान था पक्के चबूतरे के रूप में जिस पर शायद कुछ देर पहले एक मोटे ताजे बकरे की बलि दी गयी थी। खून अभी भी चारो ओर फैल रहा था। शराब की दुर्गन्ध से बोझिल वातावरण। मन को विचलित और भयभीत कर देने वाली नगाड़े की सामूहिक गम्भीर ध्वनि। मुंह से निकलने वाली अबूझ और खिन्नता भरी आवाज। अज्ञात भय से सिहर उठा मैं एकबारगी।

और तभी मेरी नजर सामने ऊँचे तख्त पर बैठे बाबा पर पड़ी। साठ वर्ष का काला और लम्बी–चौड़ी काठी वाला वह व्यक्ति पूरी तरह नंगा था। जटाजूट से बाल खुलकर बिखरे हुए थे उसकी काली चौड़ी पीठ

पर। उसके दोनों ओर दो राक्षस जैसे रूप रंग वाले व्यक्ति हाथ में मशाल लिए खड़े थे। मशाल की पीली भकभकाती रोशनी उसके चेहरे पर पड़ रही थी, जिससे रौद्र रूप और भयानक दिखाई दे रहा था उस समय। बाबा कोई तांत्रिक मंत्र जोर–जोर से पढ़ रह थे और मंत्र पढ़ते–पढ़ते हाथ में लिए लम्बे त्रिशूल को हवा में उछाल दिया करते थे। हे भगवान! क्या हो रहा है यह सब? समझ के परे था। ध्यान से देख रहा था मैं सब कुछ और उसी समय एकाएक मुझसे अलग होकर लाजो दौड़ पड़ी थान की ओर। उसके शरीर के सारे कपड़े एक–एक कर उतरते चले गये रास्ते में अपने आप अब वह पूरी तरह निर्वस्त्र थी। आश्चर्य हुआ मुझे यह क्या हो रहा है? लाजो जाकर थान पर बैठ गयी और कटे हुए ताज बकरे के मांस को दोनों हाथों से नोंच–नोंच कर खाने लगी। बड़ा ही वीभत्स दृश्य था वह इससे सन्देह नहीं। अब बाबा भी अपने तख्त पर नाचने कूदने लगे और सामने आने वालो लोगों को देने लगे आशीर्वाद। कौन सा आशीर्वाद देते थे, यह मेरी समझ के बाहर था। सबसे बड़ा आश्चर्यजनक कौतूहलपूर्ण लोमहर्षक दृश्य था लाजो का मांस भक्षण। अब वहां एक पल रूकना मेरे लिए असहनीय था। पलट कर भागा मैं वहां से। हे भगवान! यह क्या? झोपड़ी में आकर देखा तो अपने बिस्तर पर गहरी नींद में सो रही थी लाजो। चकरा गया मेरा माथा। कौन सा खेल है यह? यह कैसा चमत्कार? जिसे मांस खाते हुए देख कर अभी आया था, वह यहां कब आयी और कब गहरी नींद में सो गयी। हाथ पैर देखा मुंह भी देखा कही मांस खाने का निशान नहीं। कैसा भ्रम था क्या कोई मायाजाल घटित हुआ था? उस रात फिर सोया न जा सका मुझसे। सवेरा हुआ अंगड़ाई लेती हुई उठी लाजो। मेरी ओर देख कर मुस्करायी। मैं भी कुछ नहीं बोला जैसे कुछ हुआ ही नहीं। लेकिन मैं थोड़ा सतर्क हो गया था। क्यों और किसलिए सतर्क हो गया था, यह मेरी समझ के बाहर था। सांझ हुई खाना खाया। सोने से पहले मैं लाजो से धीरे बोला– एक बात पूछ सकता हूँ। पूछो क्या पूछना चाहते हो? मेरे गले में हाथ डालते हुए बोली लाजो।

एक–एक कर पिछली रात की सारी घटनाएं बतला दी मैंने लाजो को। सोचा, इसकी कोई भारी प्रतिक्रिया होगी लेकिन सब कुछ सुन लेने

के बाद लाजो हल्के से हँस कर बोली– तुमने जो कुछ देखा, सुना वह सब अपने आप में सच था।

सच था? चिहुँक कर बोला।

हाँ सच था, मगर सब माया का खेल था। माया खेल यानी आसाम के जादू का खेल। घटनाएं घटती हुई भी घटना नहीं थी। सब प्रतिभास था। यह सुनकर एकबारगी स्तब्ध और अवाक् रह गया मैं। माया का खेल....... घटनाओं का प्रतिभास और सब कुछ होते हुए भी कुछ......। क्या मतलब है इसका, शायद मेरे मन के भाव को समझ गयी लाजो। बोली– सिर उठा कर जरा ऊपर आकाश की ओर देखो।

वैसा ही किया मैंने। सिर उठा कर आकाश की ओर देखा– आकाश का नीला स्याह पटल काफी दूर तक शुभ्र प्रकाश से भर रहा था। धीरे–धीरे प्रगाढ़ होता जा रहा था। बाद में उस अलौकिक प्रकाश में पूरी काशी का घाट देखा। वक्राकार घूमी हुई गंगा के तट पर श्रृंखलाबद्ध मनोरम घाट सूर्य की रोशनी में सोने जैसे चमक रहे थे उस समय। कुछ क्षण बाद काशी का वह मनोहारी दृश्य एकाएक अदृश्य हो गया। आश्चर्य से भर उठा मैं। बोल उठा– क्या है? कैसे.......? लाजो! हँस पड़ी बोली– यही मायाजाल है यानी माया विद्या। एक सरल सीधी और निश्छल ग्रामीण कला के मुख से माया विद्या का नाम सुन कर भला कौन नहीं चकित होगा?

क्या तुम माया विद्या जानती हो?

हाँ! क्यों नहीं तभी तो तुमको मैंने पूरी काशी नगरी दिखलायी आकाश में।

क्या तुम और भी कुछ कर सकती हो इस माया विद्या के जरिये। हाँ! क्यों नहीं सहज भाव से बोली लाजो।

हे परमात्मा! कहां आकर फँस गया मैं। यह लड़की तो पूरी जादूगरनी लगती है। मन ही मन सोचने लगा, आसाम की तांत्रिक विद्या की ही खोज में आया हूँ। सम्भव है इस लड़की से ही इस दिशा में कुछ उपलब्ध हो। मौन साध गया बोला नहीं कुछ।

एक दिन एक और अविश्वसनीय घटना घट गयी जिसके संबंध में कभी कल्पना तब भी नहीं की थी मैंने।

लाजो ने बतलाया– यहां से कुछ दूर पर एक बड़ी सी सुन्दर झील है और उस झील के किनारे एक छोटा सा महल है, मगर वह महल सुनसान है, कोई रहता नहीं उसमें सदियों से। झील में नाव भी है। चलो चलें झील की सैर करे और महल में घूमे। चलोगे? यह सुनकर स्तब्ध रह गया मैं। उस बियावान सुनसान जंगली पहाड़ी इलाके में झील और सुन्दर महल यह कैसे सम्भव है– मन ही मन सोचने लगा मैं। बोला–क्या तुम सच कह रही हो। हाँ! तब क्या झूठ? लाजो हुलस कर बोली– चलना हो तो चलो, मैं तो जाती हूँ। यह सुनकर भला करता क्या मैं। मन में उत्कंठा थी। मन में अकल्पनीय को साकार देखने इच्छा भी थी और साथ ही विवशता भी। जाना पड़ा। दोपहर ढलने वाली थी। नीलांचल पहाड़ के पीछे सूरज अब छिपने ही वाला था। वीरान सुनसान घाटी को पार करने में ही कुछ अधिक समय लग गया। अन्त में पहुंचा झील के किनारे काफी लम्बी–चौड़ी था वह झील। नीला स्वच्छ पानी चारो ओर गहरा सन्नाटा पसरा हुआ था। पानी के ऊपर जंगली पक्षी पंख फैलाए उड़ रहे थे। न जाने कैसे और कब एक बड़ी सी नाव आ गयी किनारे। अपने कोमल हाथों से मेरा हाथ थाम कर हौले से बैठ गयी लाजो और मुझे भी बैठा लिया नाव पर। जंगल की ओर से आती हुई ठण्डी हवा का झोंका, झील में उठती हुई लहरे, आकाश में उड़ते हुए रंग–बिरंगे पक्षियों के कलरव बड़ा ही मोहक और मन को शान्ति देने वाला था वातावरण।

न जाने कब तक नौका विहार करते रहे हम दोनों समय का पता ही न चला। सांझ की हल्की–हल्की छाया पड़ने लगी थी पहाड़ों और जंगलों पर और तभी सामने मेरी नजर पड़ी एक काफी लम्बी चौड़ी धुंधली सी आकृति पर। मेरी नाव उधर की ओर ही जा रही थी। कुछ ही देर बाद मेरी आंखों के सामने एक काफी लम्बा–चौड़ा महल खड़ा था बिल्कुल झील से लग कर ऊँचा भी काफी था– लगभग चार मंजिला रहा ही होगा। झील की ही ओर महल का मुख्य द्वार और वहां तक पहुंचने के लिए ऊँची–ऊँची दर्जनों सीढ़ियाँ थी सफेद संगमरमर की। नाव से उतरकर हम दोनों एक साथ सीढ़ियाँ चढ़ने लगे मुझसे सट कर और मेरी कमर में हाथ डालकर ऊपर चढ़ रही थी लाजो। बड़ी सुखद

अनुभूति थी वह। राजस्थानी शैली का बना वह महल बड़ा ही रहस्यमय लगा मुझे। बड़े–बड़े आलीशान भव्य कमरे। लम्बी–लम्बी बारादरियां। नक्काशीदार छतरियां, गुम्बज, मेहराव और महल के चारो ओर दालान और बरामदे। काफी देर तक मुझे घुमाती रही लाजो उस महल में। मैं भौचक्का था आश्चर्यचकित था अवाक् था और साथ ही मस्तिष्क भी न जाने क्यों सनसना रहा था मेरा।

अन्त में विशाल एक कमरे में ले गयी मुझे लाजो। उस कमरे को देखकर किसी राजकक्ष का भ्रम हो रहा था। सचमुच वह राजकक्ष ही था इसमें सन्देह नहीं। कमरे के चारों ओर ऊँची–ऊँची खिड़कियां थी जो झील, जंगल और घाटियों की ओर खुलती थी। खिड़कियों पर कीमती रेशमी पर्दे हवा में झूल रहे थे। झील की ओर एक बड़ा दरवाजा था, जिसमें सोने के तार की जालियाँ लगी हुई थीं और उसके सामने बड़े–बड़े सोने–चांदी के नक्काशीदार पिंजड़े टंगे हुए थे। जिनके भीतर बन्द थे सुन्दर रंग बिरंगे भोले भाले पक्षी, जो अपने आपमें चहक रहे थे और सीटी जैसी आवाज निकाल रहे थे। बड़ा ही अच्छा लग रहा था उन अज्ञात पक्षियों को देख कर। कमरे के एक ओर सफेद संगमरमर के एक छोटे से तख्त पर– जो एक सोने के चौकोर फ्रेम पर टिका हुआ था– एक भयानक शेर आक्रमण की मुद्रा में खड़ा घूर रहा था अपनी बायीं ओर गर्दन घुमाकर। उसकी लाल–लाल आंखे सजीव लगी मुझे। भय–सा लगा थोड़ा पीछे हट गया।

कमरे की छत पर कीमती कांच के झाड़फानूस झूल रहे थे। जिनमें रंग–बिरंगी मोमबत्तियां जल रही थीं। जिनकी हल्की रोशनी के धब्बे कमरे की पीली दीवारों पर पड़ रही थी। जमीन पर कीमती कालीन बिछी हुई थी, जिन पर पैर धंस जा रहा था मेरा। कमरे के बीच में एक छोटा सा फौव्वारा था, गोल, पीले स्फटिक का। चार दो जोड़ी हंसों के मुख से सुगन्धित जल हल्के–हल्के निकल कर नीचे स्फटिक के बने गोलाकार एक छोटे से कुण्ड में गिर रहा था। स्फटिक पत्थर के थे हंस आश्चर्य की बात तो यह थी कि उन हंसों के नेत्र हीरे के थे और चोंच माणिक के और वे चारों हंस अपने–अपने स्थान पर झूम रहे थे बराबर, चमत्कार था वह। थोड़ा और आगे बढ़ा तो देखा– स्फटिक पाषाण के

एक चौकोर, चतुबरे पर जो चारो ओर से सोने की जालियों से घिरा हुआ था। रंग–बिरंगे रेशमी वस्त्र पहने सोने–चांदी .की पुतलियां नृत्य कर रही थी चारो ओर घूम–घूम कर। पुतलियों के नृत्य का संचालन स्वयं हो रहा था। बड़ी सजीव लग रही थी वे। उनकी ऊँचाई छः से आठ इंच रही होगी और संख्या रही होगी एक दर्जन से शायद अधिक।

मैं चारों ओर मुंह बायें भौचक्का सा स्वर्ग के उस छोटे से टुकड़े को सिर घुमा–घुमा कर देख ही रहा था कि तभी मेरे सामने तीन–चार लड़कियां आकर खड़ी हो गयी अचानक। वे किधर से आयी थीं समझ न पाया। वे सभी सुन्दर थी। उनके गोरे शरीर पर नीले रंग का रेशमी घाघरा और पीले रंग की चोली थी। लड़कियाँ कोमल, आकर्षक और कमनीय थी। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि वे थी किसी धातु की बनी लेकिन देखने में जीती–जागती और सजीव लग रही थी।

हे ईश्वर क्या है, ये सब ? उस समय मैं और घबड़ा गया जब वे लड़कियाँ आपस में खिलखिलाकर हँसने लगी और तालियाँ पीटने लगी। मुझे होश ही नहीं रहा कि लाजो कहां है। चैतन्य हुआ देखा, लाजो मेरे ही साथ थी। ऐसा लगा, मानो हम दोनों काफी दिनों से बिछुड़े हुए थे और अब जाकर मिले है। लाजो लिपट गयी मुझसे विचित्र और सुखद अनुभव। प्रफुल्ल हो उठा तन–मन एकाएक बिजली जैसा झटका लगा अरे यह क्या? घोर अन्धकार मेरी गोद में सिर रखकर लेटी हुई थी पीपल के नीचे लाजो।

दोपहरी में पीपल के नीचे ऐसे ही तो बैठा था मैं। खाना लेकर आयी थी लाजो और खिलाने के बाद मेरी गोद में इसी तरह सिर रखकर लेट गयी थी वह। कहां गयी झील कहां गया महल और कहां गये वे सारे मोहक दृश्य ? लगा जैसे उस चिपचिपे तिमिराच्छन्न अन्धकार में लीन हो गया हो सब कुछ।

लाजो..........लाजो...... चींख पड़ा मैं।

चौंक कर उठ बैठी लाजो। माथा थामकर बोला– क्या है ये सब लाजो बोलो, लाजो बतलाओ सब.....।

माया विद्या।

माया विद्या,— माया विद्या, आखिर है क्या यह माया विद्या। लाजो ने कोई उत्तर नहीं दिया मुस्कराती रही। खीझ उठा मैं सोचने लगा— क्या यह भोली भाली लड़की सचमुच जादूगरनी है या और कुछ? क्या करूँ भगवान कैसे चक्कर में आकर फंस गया मैं और तभी उसी विषय स्थिति में शशिमोहन सान्याल की याद। सान्याल महाशय कलकत्ता विश्वविद्यालय में उच्च पद पर थे। भौतिक विज्ञान के निष्णात् विद्वान होते हुए भी भारतीय अध्यात्म में गहरी रूचि थी। आयु में पिता तुल्य होते हुए भी मेरा उनसे अति घनिष्ठ और निकट का संबंध था। एक बार सान्याल महाशय किसी विषय के प्रसंगवश ऐसी ही कोई बात कर रहे थे। बात 1959 ई0 की थी। मैं उन दिनों कलकत्ता में ही था। अचानक याद आ गयी थी वह बात। ....उनका कहना था कि भौतिक विज्ञान एक न एक दिन शाश्वत प्रतिपदार्थमय जगत यानी एण्टिमटिरियल वर्ल्ड की खोज में सफल होकर रहेगा। जो स्थूल भौतिकवाद से विवादास्पद और अपरिचित भी है। उन्होंने आगे कहा— प्रति पदार्थ एण्टीमैटर के संबंध में वैज्ञानिकों की वर्तमान संकल्पना के विषय में 27 अक्टूबर 1955 ई0 के टाइम्स ऑफ इण्डिया में एक विवरण प्रकाशित हुआ था।

स्कॉटहोम अक्टूबर 26, 1959 दो अमेरिकी आणविक वैज्ञानिकों को आज प्रति प्रोटान (एण्टी प्रोटीन) के अविष्कार के लिए 1959 का भौतिक शास्त्र का नोबल पुरस्कार प्रदान किया गया। इस आविष्कार से सिद्ध हो गया कि पदार्थ अपने दो रूप में विद्यमान रहता है— कण और प्रतिकण (पार्टीकल और एण्टी पार्टिकल) ये वैज्ञानिक हैं इटली के डॉ. एमिलो सेगर और डॉ. ओवन चेम्बरलीन।

सान्याल महाशय ने कहा— इस नवीन सिद्धान्त की मूलभूत धारणा के अनुसार एक ऐसा अन्य जगत यानी प्रति जगत का अस्तित्व अवश्य होना चाहिए जिसका निर्माण प्रतिपदार्थ (एण्टी मैटर) से हुआ हो। उन आणवीय और परमाणवीय कणों से बना वह प्रति पदार्थमय जगत निश्चय ही अपनी कक्ष में हमारे इस जगत के परमाणुओं के विपरीत अथवा विरूद्ध दिशा में घूम रहे होंगे। यदि वे दो जगत कभी आपस में टकरा जाय तो एक भयंकर और प्रगाढ़ प्रकाश के चकाचौध में वे दोनों

पूर्णतया विनष्ट हो जायेंगे। सान्याल महाशय हँसकर बोले– लेकिन यह सम्भव नहीं। पदार्थमय और प्रतिपदार्थमय जगत कभी भी अपनी सीमा नहीं तोड़ सकते। सोलह प्रकृष्ट विज्ञानों में एक विज्ञान है महाकाल विज्ञान। यह अति रहस्यमय गूढ़ विज्ञान है। प्रचलित भाषा में इसे प्रायः लोग माया विद्या भी कहते हैं। रावण इस माया विद्या का महा पण्डित था। इसमें लोगों की गति कम होती है। महाकाल विज्ञान के अन्तर्गत ही प्रतिपदार्थ जगत का विषय आता है।

जगत तो अनेक हैं कई प्रकार के हैं और उनकी अपनी–अपनी विशेषता है। लेकिन प्रतिपदार्थ का जगत सबसे विशिष्ट है। इसके कई कारण हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से इसका महत्व सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड में है। इसकी रचना त्रिशरेणुओं के कणों से हुई। यह भाव जगत है।

आपके कहने का तात्पर्य यह है कि प्रतिप्रदार्थ जगत 'भाव' जगत है।

हाँ! इस विश्व ब्रह्माण्ड में ''भाव' ही प्रधान है। इसलिए इस जगत की महिमा है। इस संसार में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति भाव लेकर ही जन्म लेता है। कालान्तर में उसी भाव से विचार, इच्छा, कामना, वासना आशा, अभिलाषा आदि का मानव में जन्म होता है। भाव जगत की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रकृति और प्रकृति से परे जितनी प्रकार की वस्तुएं हैं और पदार्थ हैं उन सब का भाव रूप वहाँ विद्यमान हैं स्थायी रूप से भाव जगत के नीचे रेणुओं के कणों से निर्मित जगत है। यहां इस जगत में भाव जगत और वहां के भावरूप वस्तुओं और पदार्थों का आभास होता है। इसे थोड़ा और स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि भाव जगत में वस्तु या पदार्थ नहीं उनका रूप भी नहीं बल्कि उनका आकार प्रकार है। कुछ ऐसे भी आकार प्रकार हैं जो मानव मन और मानव कल्पना से परे हैं और जिनका भौतिक रूप से गठन भी नहीं हुआ है। जिनको भौतिक जगत में भौतिक रूप धारण करने में हजारों हजार वर्ष का समय लग सकता है शायद इससे भी अधिक। भाव जगत के बाद एक और जगत है जो एक प्रकार से प्रति पदार्थ का ही जगत माना जाता है। इस जगत में भाव आभासित होता हैं यानी यह भासमान जगत है। इस जगत का संबंध मस्तिष्क की 68 लाख 96 हजार कोशिकाओं से बतलाया गया है। इसी प्रकार भाव जगत का संबंध है

मस्तिष्क की 1 करोड़ 19 हजार कोशिकाओं से। सभी कोशिकाओं से एक विशेष प्रकार की कास्मिक तरंगे विकीर्ण होती रहती है। जिनके माध्यम से मानव मस्तिष्क का संबंध भावराज्य और भाव जगत से बराबर बना रहता है।

सान्याल महाशय बोले– साधना बल पर 'मन' जब पूर्ण रूप से परिष्कृत हो जाता है तो उन्हीं कास्मिक तरंगों के द्वारा भाव राज्य में पहुंच जाता है। लेकिन सबसे बड़ी बात तो यह है– मन का पूर्ण विकसित और परिष्कृत होना सहज अथवा सरल नहीं। भावराज्य में मन उन आकारों को अपनी शक्ति के अनुसार ग्रहण करता है। फिर भासव जगत' में उसका आभास होता है। यही आभास वस्तु या पदार्थ का सर्वप्रथम अतिसूक्ष्म रूप है। कालान्तर में वही आभास मन में कल्पना का रूप धारण करता है। यदि कल्पना ठोस और स्थायी है तो वह आकार विचार के क्षेत्र में आकार वैचारिक रूप धारण कर लेता है फिर समयानुसार कर्म की सहायता से भौतिक रूप में होता जाता है परिवर्तित। महाकाल विज्ञान के अनुसार विचारों का भी अपना जगत है जो परमाणु के अनुसार विचारों का भी अपना जगत है। जो परमाणु निर्मित है विचार क्षेत्र में आकार का वैचारिक रूप परमाणु निर्मित तरल होता है और जब भौतिक जगत में आने को होता है तो अणुओं से होने लगता है उसका निर्माण। वस्तु या पदार्थ का भौतिक रूप धारण करते ही उसके अणु अत्यन्त तीव्रगति से नष्ट होने लग जाते हैं और उसी गति के अनुसार वस्तु या पदार्थ का स्वरूप भी नष्ट होने लगता है। उसमें परिवर्तनशीलता आ जाती है और अन्त में नष्ट हो जाती है। लेकिन यह समझ लेना चाहिए कि उसका मूल आकार बराबर विद्यमान रहता है भावराज्य में। यह कभी नहीं समझना चाहिए कि आँखों के सामने जो नष्ट हो गया और जिसका अस्तित्व समाप्त हो गया– वह अब नहीं रह गया है संसार में। वह कभी भी और किसी भी समय उसी प्रकार प्रकट हो सकता है मानव विचार में और तत्पश्चात् भौतिक रूप में।

●●●

इसी प्रसंग में सान्याल महाशय ने यह भी कहा था कि कोई–कोई लोग जिनका मानसिक स्तर ऊँचा है। वे भाव जगत में स्थित किसी भी

आकार को भौतिक जगत में भौतिक रूप प्रदान कर सकते है। इसे ही मानसिक सृष्टि कहते हैं। मानसिक सृष्टि से स्थायित्व नहीं होता। कुछ समय के लिए मनोरंजन हो जाता है। उसमें स्थायित्व नहीं होता। लाभ तभी संभव है जब उसमें स्थायित्व हो। कहने की आवश्यकता नहीं अब सब कुछ समझ में आ गया था। लाजों को मैं एक साधारण लड़की समझता था लेकिन वह असाधारण से भी असाधारण थी। इतनी कम आयु में इतनी ऊँची चीज। निश्चय ही उसकी मानसिक अवस्था उच्चस्तर की थी। तभी तो.... उसके प्रति मेरा विचार भाव—बदल गया था। दृष्टि में भी परिवर्तन आ गया था। सतर्क भी हो गया था मैं। निश्चय ही वह अपने आपमें अत्यन्त रहस्यमयी युवती थी इसमें सन्देह नहीं। अब किसी प्रकार लाजों से कुछ लेना चाहता था। कुछ जानना चाहता था, लेकिन कैसे?

बाद में इस प्रश्न का भी हल हो गया। मेरी कामना साकार होती प्रतीत हुई मुझे। प्रसन्न हो उठा मैं। गांव के बाहर वाले पीपल के नीचे बैठा था उस समय। शायद कुछ सोच रहा था— उसी समय उछलती कूदती इठलाती आ गयी लाजो। खिलखिलाकर हँसते हुए मेरे गले में अपना हाथ डाल दी उसने। बोली अगली पूर्णमासी की रात को उसके बाबा हम दोनों की शादी कर देना चाहते हैं। जानते हो, शादी के बाद बाबा की सारा जमीन जायदाद और घर मकान मुझे ही मिल जायेगी। लाजो के बाबा तीन—चार गांवों के चौधरी थे और ओझा भी। नागाओं से भी उनका अच्छा खासा मेलजोल था।

मेरी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। लाजो मुझे इतनी सरलता से मिल जायेगी। मुझे इसकी कल्पना तक नहीं थी। मुझे लाजो के पाने का कम और उसकी विद्या पाने की अधिक प्रसन्नता थी। पत्नी बन जाने के बाद बड़ी सरलता से मुझे सब कुछ बतला देगी वह, इसमें सन्देह नहीं। मैं अपनी जगह प्रसन्न था और लाजो अपनी जगह मगन। हम दोनों हम दोनों पहाड़ियों की सैर करते, प्रेम के गीत गाते और हिमालय के उत्तुंग शिखरों की शुभ्र छटा का आनन्द लूटते। तांत्रिक सिद्धियां प्राप्त करने के लिए सब कुछ करने को तैयार था मैं। लाजो जो कहती वह मैं करता।

तांत्रिक सिद्धियों को पाने के लिए बस, चलता तो आकाश से तारे भी तोड़कर ला सकता था मैं लाजो के लिए।

पूर्णमासी के दो तीन दिन रह गये थे। लाजो अपनी शादी के कामकाज में व्यस्त थी। मैं अकेला ही पहाड़ों की ओर घूमने चला गया था। मन पुलकित था। फागुन का महीना था। आसाम और बंगाल का प्राकृतिक सौन्दर्य अपने यौवन पर था। शीतल वायु के झोंके मन को मोह रहे थे। रंग–बिरंगे फूल अत्यन्त भले लग रहे थे और भीनी भीनी सुगन्ध से गमक रहा था सारा वातावरण। मेरी दृष्टि ऊपर बर्फ से ढकी एक पहाड़ी की ऊँची चोटी पर जम गयी थी। डूबते हुए सूर्य की किरणों ने वहां सुनहरी छटा बिखरा रखी थी। जब सूर्य डूब जायेगा तो फिर....

और सहसा दो कोमल हाथों ने पीछे से मेरी दोनों आंखे बन्दकर ली।

मैंने सोचा लाजो का अभाव खटक रहा था, वह भी पूरा हो गया और मैंने उसके हाथो पर अपने हाथ रख कर जोर से दबा दिया, 'लाजो।'

नहीं, मेरी आंखे खोल कर वह खिलखिला पड़ी और फिर कोमल और मधुर स्वर में बोली– 'क्या मैं लाजो से कम सुन्दर हूँ?

मेरे सामने एक रूपवती षोडशी विचित्र भाव भंगिमा से खड़ी थी। सचमुच वह बहुत ही सुन्दर और आकर्षक थी। आश्चर्य से उसकी ओर देखता रह गया मैं। एकाएक उसने मेरे गले में बाहे डाल कर पूछा– मुझसे शादी करोगे?

हे भगवान! यह दूसरी विपत्ति नियति कहाँ से आ गयी ? हत्प्रभ हो उठा मैं। सहसा कुछ बोला ही नहीं गया मुझसे।

उसने अपनी कजरारी रसीली आँखे मेरी आँखों में डालकर कहा– तुम जिस चीज को पाने के लिए भटक रहे हो, वह मैं तुमको दूँगी।

समझा नहीं।

बेवकूफ मत बनाओ। तांत्रिक सिद्धि पाने के लिए आये हो न बनारस से। मैं सब जानती हूँ समझें। यह सुनकर दंग रह गया मैं एकबारगी। आओ चलो मेरे साथ। यह कहकर उसने मेरा हाथ पकड़ कर जोर से खींचा तो मैं सम्मोहित सा उसके पीछे–पीछे चलने लगा। बातों ही बातों में पता चला कि उसका नाम रूपा था। पहाड़ी के दूसरी

ओर तराई के एक गांव में रहती थी वह, मगर उसकी झोपड़ी बस्ती से अलग–थलग वीरान जगह पर थी। सांझ की काली स्याही रात के अन्धकार में कब बदल गयी– पता ही नहीं चला। रात गहरा गयी थी। सांय–सांय कर रहा था सन्नाटा। झोपड़ी छोटी सी थी। लालटेन की मद्धिम रोशनी झोपड़ी में फैली हुई थी। एक ओर टूटी खाट पर मैली–कुचैली कथरी बिछी हुई थी। उसी पर बैठने का संकेत किया रूपा ने उंगली से और फिर न जाने कहां से वह अंग्रेजी शराब की भरी बोतल गिलास, नमकीन और भूना हुआ मुर्गा ले आयी और मेरे बगल में सटकर बैठ गयी। अब तक सम्मोहित सा हो उठा था मैं। मन मस्तिष्क काम जैसे नहीं कर रहा था। मैंने नमकीन खायी भूना मुर्गा खाया और शराब पी। सारा शरीर झनझना उठा एकबारगी। जीवन में पहली बार शराब पी थी। जी मिचलाने लगा फिर कब किस क्षण होश हवाश खो बैठा– पता ही न चला।

आधी रात के करीब आंख खुली। देखा रूपा वहां नहीं थी। उसकी जगह एक सत्तर–अस्सी वर्ष की बैठी बुढ़िया मेरी ओर देख–देख कर मुस्करा रही थी। उसके बाल सन की तरह सफेद थे। आँखें भीतर की ओर धंसी हुई थी और गालों की हड्डियां उभर कर सामने की ओर निकल आयी थीं। मुंह में एक भी दाँत नहीं था। समझा कि यह बुढ़िया रूपा की दादी होगी लेकिन मेरा यह भ्रम था। उस बुढ़िया ने अचानक लपक कर अपने आलिंगन में भर लिया और कामोत्तेजक व्यवहार करने लगी। क्षण प्रति क्षण उसकी कामुकता बढ़ती ही जा रही थी। कामोत्तेजना से एक प्रकार से भर उठी थी वह बुढ़िया। यह क्या घबड़ा गया मैं। समझ में नहीं आ रहा था कुछ। मेरे शरीर के अंगों के साथ ऐसा व्यवहार कर रही थी जैसे एक शेरनी अपने शिकार के साथ करती है। अंग–अंग टूटने लगा मेरा। हृदय की धड़कन तेज हो गयी जीभ तालू से चिपक गयी। मेरी नजर रूपा को खोज रही थी मगर रूपा वहां कहाँ थी? मैं चीख पड़ा, क्या हो रहा है ये सब। फिर थोड़ा विह्वल होकर कातर स्वर में बोला– माँ, माँ मैं तुम्हारे बेटे के बराबर हूँ। यह सब तुमको शोभा नहीं देता। मुझे छोड़ दो मैं तुम्हारे पैर पड़ता हूँ...। मेरा दम निकल जायेगा।

नहीं नहीं, अब तुमको छोड़ने वाली नहीं हूँ। मेरे चंगुल में हो तुम। जाओगे कहाँ? मैं तुमको वह सुख और आनन्द दूंगी जो कोई भी स्त्री जीवन भर तुमको नहीं दे सकती।

मैं घबरा गया। किसी तरह भागने की कोशिश की पर उसने लपक कर मेरा हाथ पकड़ लिया और बलि के बकरे की तरह खींचकर बिस्तर फिर पटक दिया। उसके बाद पूरी रात मुझ पर जो गुजरी और मेरी जो दुर्दशा हुई, उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। आज भी तन, मन सिर उठता है उस रात..........।' किसी तरह सवेरा हुआ सारा शरीर, दर्द कर रहा था। थोड़ी सी झपकी लगी और तभी किसी ने झकझोर कर जगा दिया मुझे। आँखे मलता हुआ अब उठा तो सामने रूपा खड़ी मुस्करा रही थी।

मैंने सिहर कर पूछा– वह बुढ़िया कहां गयी ओर तुम कहां चली गयी थी रात में?

रूप हँस पड़ी– कौन बुढ़ियां? मैं पूरी रात तुम्हारे साथ इसी झोपड़ी थी गई कहाँ ?

नहीं, नहीं ऐसा कैसे हो सकता हैं? तुम झूठ बोल रही हो। उस बुढ़िया ने रात भर............।

रूपा मेरे करीब आकर हँस कर बोली– 'मैं ही थी वह बुढ़िया।

क्या ? क्या कह रही हो तुम ? मैं कांपता हुआ बोला तुम मुझे परेशान कर रही हो..... छोड़ दो मुझे। अब मैं जाना चाहता हूँ यहां से। तुम्हारा यह गोरख धन्धा मेरी समझ में नहीं आ रहा है। तुम मुझ पर अपना अधिकार नहीं जमा सकती। तुम समझती क्या हो। मेरी बात सुनकर रूपा एकाएक तमतमा उठी चेहरा एकदम सुर्ख हो उठा। तमक कर बोली– 'अब तुम यहां से कभी भी न जा सकोगे– समझे, क्यों?

इसलिए कि तुम्हारे पौरुष की शक्ति चाहिए। मैं अब तक तुम्हारे जैसे ही किसी व्यक्ति की खोज में थी। अचानक तुम मिल गये। तुम मेरे पौरुष की शक्ति कैसे पा सकोगी और फिर उसका करोगी क्या?

भूल गये रात की सारी बात। तुम्हारे पौरुष की शक्ति का ही कुछ लिया था मैंने अंश। मैं उसका क्या करूँगी? यह जानने समझने की

जरूरत नहीं। फिर रूपा ने सिर झटक कर कहा– मेरा असली रूप क्या है और असली उम्र क्या है? यह कल रात तुम देख ही चुके हो। मैं कामरूप विद्या जानती हो। मुझसे सब डरते हैं। मैं अपनी विद्या की सिद्धि के बल पर सब कुछ कर सकती हूँ। रूप भी बदल सकती हूँ। हवा में गायब भी हो सकती हूँ। जो चाहे वह मंगा सकती हूँ कल रात की तरह तुम मुझे बराबर शक्ति दो। उसके ब़दले तुमको मैं अपनी कामरूप विद्या दे दूंगी। थोड़ा रूक कर वह आगे बोला– कल रात तुमसे मुझे जो थोड़ी सी शक्ति मिली उससे मैंने एक विलक्षण सिद्धि प्राप्त की है। यह देखो कह कर उसने अपनी बन्द मुट्ठी खोल दी। उसकी हथेली पर एक ताबीज पड़ा था। मैंने नासमझ की तरह पूछा यह कैसा ताबीज है। इससे क्या होगा?

रूपा मुस्कराकर बोली– अरे! इसी को तो कल रात तुम्हारी पौरुष शक्ति के बल पर सिद्ध की मैंने। यह ताबीज–'टहाविद्या' के मंत्रों से अभिमंत्रित है। फिर पल्थी मारकर बैठती हुई हँसकर बोली– इसी को मुंह में रखकर गायब हो सकती हूँ मैं। यह कहकर उसने उस मंत्रपूत ताबीज को अपने मुंह से रख लिया। ऐं यह क्या ? रूपा का भौतिक अस्तित्व मेरे सामने से तुरन्त गायब हो गया जैसे वह हवा में विलीन हो गयी हो। मैं एकबारगी सिहर उठा। हे भगवान्! किस झंझट में आकर फंस गया मैं। असम की जादूगरनियों के नाम और उनके कारनामे सुने अवश्य थे और पढ़े भी थे मगर अब उसे प्रत्यक्ष देख रहा था। अज्ञात आशंका और भय से मैं रोमाञ्चित हो उठा।

अचानक अदृश्य रूप से रूपा की आवाज सुनायी पड़ी मानो वह कहीं शून्य से बोल रही हो, घबराओ मत। घबराओ मत तुम्हें परेशान नहीं करूँगी। तुम्हे कौन सी तकलीफ दी है मैंने। मर्द होकर घबराते हो? छि, तुम्हारी प्रौढ़ जवानी का थोड़ा–सा उपयोग कर लिया तो तुम्हारी कौन सी हानि हो गयी? कौन सा नुकसान हो गया। बस, इतनी सी हिम्मत लेकर चले थे तंत्र–मंत्र की शक्ति देखने और उसकी सत्यता जानने?

फिर वह प्रकट हो गयी। मेरे सिर पर हाथ फेरती हुई वह सांत्वना भरे स्वर में कहने लगी– देखो तामसिक तंत्र–मंत्र की साधना सिद्धि में मांस, मदिरा और नारी भोग अति आवश्यक है। इन तीनों में बहुत बड़ी

शक्ति है जो तांत्रिक शक्तियों को जगाती है। बिना इसके कुछ भी नहीं मिलता तंत्र में मगर इसका दुरूप्रयोग नहीं करना चाहिए। इनका प्रयोग केवल भौतिक सुख के लिए करने से आदमी जानवर बन जाता है जानवर। उसकी बुद्धिभ्रष्ट हो जाती है। वह तन–मन दोनों से बेकार हो जाता है। काम का नहीं रह जाता। उसका जीवन भार हो जाता है। लोगों में भ्रम फैलता है और तंत्र मंत्र पर से विश्वास उठने लगता है, सो अलग समझे। पल भर रूककर उसने कहा, 'मेरी उम्र अस्सी साल से भी ज्यादा है। उस समय सोलह वर्ष की जवान लड़की थी। बहुत सुन्दर थी। न जाने कैसे एक कापालिक की नजर मुझ पर पड़ गयी। मोहित हो गया वह मुझ पर। पागल हो गया मेरे यौवन को देखकर। भेष बदल कर मुझसे प्रेम करने लगा वह। मैं भी तो जवान हो चुकी थी। प्रेम का मतलब भी समझने लगी थी मगर शरीर का सुख कैसा होता है यह नहीं जानती थी मैं। एक दिन मुझे बहका फुसलाकर अपने मठ में ले गया काफी लम्बा–चौड़ा था वह मठ। साधु–संन्यासियों के रूप में वहां बहुत सारे लोग थे। तब मैंने जाना कि सुन्दर युवक का रूप धर मुझसे प्रेम करने वाला एक तंत्र विद्या जानने वाला कापालिक है वह। अब डर लगने लगा मुझे। कापालिक अब मेरे सामने अपने असली रूप में था। उसका रूप रंग बहुत डरावना और वीभत्स था लेकिन प्रेम वह पहले की ही तरह करता था मुझसे। दीवाली की रात में उसने मुझे अपना भैरवी बना लिया। कई तरह की मंत्र सिद्धि भी दी उसने मुझे और अन्त में मेरे तन, मन को वह सुख दिया जिसकी कल्पना भी नहीं की थी मैंने कभी। पूरी तरह सन्तुष्ट थी मैं अब। लगभग चौदह पन्द्रह साल रही मैं मठ में और इस अवधि में बहुत सारी तंत्र विद्याएं सीख ली मैंने कापालिक अभयानन्द से।

ऐं क्या कहा– "अभयानन्द" चौंक पड़ा मैं एकबारगी। कभी सोचा भी नहीं था और कभी कल्पना तक नहीं की थी कि उस दुर्धर्ष कापालिक की किसी भैरवी से इस तरह सामना होगा। लेकिन मैं बतलाया नहीं कि अभयानन्द कापालिक से पूर्व परिचित हूँ।

रूपा आगे कहने लगी– अब मैं तीस–पैंतीस साल की हो चुकी थी। लेकिन इससे क्या? मन की प्यास कहां बुझी थी अभी पूरी तरह।

कापालिक अपनी साधना सिद्धि के लिए न जाने कहां–कहां से नवयौवना ले आता था और उसके द्वारा सिद्धि प्राप्त कर उसे छोड़ देता था या उसकी बलि दे देता था। एक प्रकार से मुझे भी छोड़ ही दिया था उस कापालिक ने। मैं भला उसका क्या कर सकती थी। कामरूप विद्या की सिद्धि उसी की दी हुई सिद्धि थी। वह काम आयी। उस विद्या के द्वारा उसके मन की बातें मैं जान जाती थी। वह क्या करना चाहता है और आगे क्या करेगा। यह सब मैं पहले ही जान समझ जाती थी। कापालिक मुझसे अपना पिण्ड छुड़ाने के लिए दीपावली को मेरी बलि देने के लिए सोच रहा था। लेकिन जो होना होता है वही होकर रहता है। इसी को नियति कहते है। मेरी बलि क्या देता वह स्वयं उसी की बलि हो गयी।

ऐ! वह कैसे? आश्चर्य और कौतूहल से भरा था मेरा प्रश्न। रूपा कुछ सोचती हुई आगे बोली– एक लड़की थी राधा।

राधा! नाम सुनकर अवाक् और स्तब्ध हो जाना पड़ा मुझे। क्या वीरेश्वर की राधा तो नहीं थी वह? राधा पर मोहित हो गया था कापालिक किसी प्रकार उसे अपनी भैरवी बनाना चाहता था वह मगर सफल नहीं हुआ। इतना कहकर कुछ क्षण के लिए चुप हो गयी रूपा। लेकिन मेरी जिज्ञासा और बलवती हो उठी थी। फिर क्या हुआ व्याकुल होकर पूछा मैंने?

होगा क्या? रूपा, मुंह बिचका कर बोली– उस दिन राधा की शादी होने वाली थी। कापालिक का शिष्य चण्डेश्वर भैरव राधा को मण्डप से उठा लाया और अपने सामने सोलह श्रृंगार किए राधा को देखकर अपना आपा खो बैठा कापालिक। वह आगे बढ़कर अपने आलिंगन में लेना चाहा और तभी आर्तनाद करता हुआ गिर पड़ा कापालिक जमीन पर। उसके पेट में छूरा भोंक दिया था राधा ने कापालिक अभयानन्द की लीला समाप्त हो गयी हमेशा–हमेशा के लिए बाद में वह कापालिक मठ उजाड़ मरघट जैसा हो गया। हां! कभी–कभी अतीत की परछाइयाँ जरूर किसी को दिखलायी देती है जो संयोगवश उस मठ में जाता है। यह सारा वृत्तान्त सुनकर मेरी मानसिक स्थिति जाने कैसी हो गयी। अतीत का सारा दृश्य एक–एक घूमने लगा मानस पटल पर। रूपा भी एक विशिष्ट अंग होगी उस स्मृति कथा का– यह कभी

सोचा तक न था और न तो कभी कल्पना ही की थी मैंने। हे भगवान! कौन संयोग है यह।

मन ही मन सोचने लगा, 1948 ई. से तंत्र मार्ग में प्रवेश किया है मैंने। तब से लेकर अबतक न जाने कितने सिद्ध साधकों से मिला। कितने साधु सन्तों का दर्शन किया और न जाने कितने भयंकर दुर्धर्ष और खतरनाक तांत्रिको और तंत्र की उच्चावस्था प्राप्त साधकों के साथ सत्संग किया। उनकी अपनी पारलौकिक जैसी अविश्वसनीय कथा है लेकिन इन पांच छः वर्षों में तंत्र मार्ग में जो विलक्षण और चमत्कारपूर्ण अनुभव हुए वे वास्तव में अपने आप में अविश्वसनीय और सनसनीखेज थे, इसमें सन्देह नहीं। गहरा अनुभव था और कुछ विशेष भी था इसमें भी सन्देह नहीं। मैंने अब तक इस दिशा में क्या–क्या किया है? कौन–कौन सी साधना की है? किस–किसी रास्ते गुजरा हूँ? कहां–कहां गया हूँ? कहां कहां भटका हूँ और गुह्य विद्याओं में क्या–क्या उपलब्धि हुई है मुझे– इन संबंधों में रूपा पूरी तरह अनभिज्ञ थी। मैंने बतलाने की आवश्यकता भी न समझी। यदि थोड़ा कुछ जोश में आकर बोल देता तो रूपा भड़क जाती और शादी के लोभ में भी कुछ न बतलाती मुझे– जो वह बतलाना चाहती थी इसलिए मौन रहा मैं।

●●●

पलभर रूककर रूपा आगे कहने लगी– अस्सी क्या? सौ साल से भी ऊपर कामरूप विद्या की अलौकिक शक्ति का भार ढो रही हूँ मैं। जिसके कारण कापालिक अभयानन्द बराबर मुझे परेशान करता रहता है मरने के बाद भी। यक्षलोक में रहता है। उस तंत्र लोक में भला उसकी गति कहाँ। तंत्र शक्ति के बल पर उसने जो काफी पापाचार और दुराचार किया है। भोगना ही पड़ेगा न बाबू उसे। इतना तो कहना जरूर पड़ेगा कि शक्तिशाली तो बहुत है। अभी भी कुछ कर सकता है। मनुष्य के रूप में आता है, मुझे तो तंग करता ही है और आसपास की जवान लड़कियों को भी। बड़ी मुसीबत से जान पड़ी है। अब मैं मरना चाहती हूँ। इतनी उमर हो गयी है रूप बदल कर कब तक रहूँगी। सोचती हूँ कि मर कर नई जिन्दगी और नया शरीर मिले मगर वह कपटी कापालिक मरने भी नहीं देता मुझे। सोचती हूँ तुम्हे 'कामरूप'

विद्या देकर हमेशा के लिए इस जिन्दगी से मुक्ति पा लूँ। तुम्हारी आत्मा की शक्ति मुझे इस तांत्रिक मायाजाल से मुक्त कर देगी। मुझे इसका विश्वास है।

मूर्ख की तरह मुंह बायें मैं रूपा की बातें सुनता रहा। अन्त में उसने कहा– आज रात तुमको कामरूप विद्या की कुछ सिद्धियों का चमत्कार दिखलाऊँगी घबराना मत' डरना भी मत वरना जान से हाथ धो बैठोगे, समझे। मन ही मन यह सोचकर हँसने लगा– एक पागल कापालिक की भैरवी बनकर और 'कामरूप विद्या' पाकर यह रूप बदलने वाली बुढ़िया अपने आपको सर्वज्ञ समझने लगी है। मैं जानता था– 'कामरूप' विद्या तंत्र के दस वीर साधना के अन्तर्गत एक साधन है। उसके अन्दर कई उच्चकोटि की दुर्लभ सिद्धियाँ भी है– यह अच्छी तरह जानता व समझता था मैं।

●●●

आखिर रात हुई। वह कौन सा प्रहर था? अब याद नहीं रह गया है। ढलान के बाद एक पहाड़ी नदी थी। नदी किनारे पुराना श्मशान था। एक पीपल का पुराना पेड़ भी था जिसकी सूखी डालों पर यमघण्ट बंधे हुए थे। तीन–चार मरियल कुत्ते इधर–उधर टहल रहे थे। कुछ मांसखोर पक्षी भी वहां मडरा रहे थे। चारो ओर श्मशानी निस्तब्धता व्याप्त थी। जंगल की ओर से जानवरों की आवाजों रूक–रूक कर आ रही थी, रोमाञ्चित हो उठा मैं। भय भी लग रहा था मुझे। रूपा मेरी स्थिति समझ गयी। कहने लगी कैसे मर्द हो तुम। तंत्र–मंत्र मामूली बात नहीं है। सबके वश की बात भी नहीं है उसकी साधना करना। एक बीजाक्षर को ही सिद्ध करने में शरीर की सारी ऊर्जा खत्म हो जाती है। आज कल बहुत सारे लोग तंत्र–मंत्र करने लगे हैं। श्मशान का चक्कर लगाते है। बेकार का दारू पीते हैं ढकोसला करते है। झूठ–मूठ का पूजा–पाठ करते हैं दिखाने के लिए। सब मजाक है बेकार है, कुछ भी नहीं होता इन सब से। बुद्धि मारी जाती है। बस, सबको बेवकूफ बनाना है। मैं तुम्हारे साथ हूँ। डर भय काहेका आओ, चलो। उसने ढेले से जमीन पर एक गोला खींचकर कहा– तुम इस गोले के भीतर बस, खड़े रहे हो। कुछ नहीं होगा मगर शान्त रहना। बोलना मत चिल्लाना भी मत।

मुझे बेवकूफ समझ रही थी। मन ही मन हँस पड़ा मैं उसके आदेश का पालन किया। गोले के भीतर खड़ा हो गया चुपचाप।

रूपा नदी की ओर गयी थी। थोड़ी देर बाद लौटी। वह कोई भारी चीज घसीट कर ला रही थी। चिपचिपे अंधे में कुछ समझ में नहीं आ रहा था, थोड़ा स्पष्ट हुआ। वह एक नंगा मुर्दा था किसी युवक का। इस अंधेरे में नदी में बहता हुआ कैसे मिल गया मुर्दा रूपा को? आश्चर्य हुआ मुझे।

मुर्दे को लाकर श्मशान में पटक दिया उसने। फिर आग जलाई। आग तुरन्त भभक कर जल उठी। कुछ ही देर में लाल पीली लपटे आकाश को छूने लगी। चारो ओर रोशनी हो गयी हल्की सी। अब रूपा साथ लाए बड़े से झोले से दो तीन शराब की भरी बोतल मुर्गे का मांस, तेल का बड़ा सा दीपक, कुछ कौड़ियां और कुछ कंकड़ निकाले। मैं उसकी सारी गतिविधि गोले में खड़े–खड़े चुपचाप मौन साधे देखता रहा मुंह बायें। अब क्या होगा? लगता है यह डायन है। बोतल से एक मिट्टी के बर्तन में थोड़ी शराब उढेलकर उसने पी। पूरे शरीर में कम्पन हुआ। अपने को समेट लिया नशे की उत्तेजना को। फिर थोड़ा सी शराब जलती आग में डाली। भड़क उठी आग और अन्त में मुर्गे का मांस डाला। मांस जलने की दुर्गन्ध फैल गयी शमशान में। उसके बाद कोई मंत्र पढ़ कर कौड़ी और कंकड़ों को चारो दिशाओं में जोर से फेंका उसने और उसी के साथ चीख–चीख कर बोलने लगी– आओ, ... बुझाओ प्यास, करो काम उड़ाओ माल.......... चल अपने दर से कसम बाबा मशान की..... रूपा के इस प्रकार चीखने और उटपटांग ढंग से बोलने से एकाएक श्मशान का निस्तब्ध वातावरण बोझिल हो उठा। मैंने देखा– चारो ओर से नरकंकालों के झुण्ड के झुण्ड आने लगे गिरते पड़ते आपस में टकराते और नाचते–कूदते। सचमुच बड़ा ही रोमाञ्चकारी और भयंकर दृश्य था वह इसमें सन्देह नहीं। उस समय तो मैं इतना अधिक रोमाञ्चित हो उठा था और इतना भयभीत भी हो उठा था कि जब झोली से एक लम्बा चमचमाता हुआ छूरा निकालकर रूपा ने सामने पड़े शव के अंगों को बोटी–बोटी काटने लगी उससे। बड़ा ही वीभत्स

दृश्य था वह। देखा, मांस का टुकड़ा उठा–उठा कर नरकंकालों के सामने फेकने लगी– ले खा... ले खा ले...... पेट भर के..... कहकर। सभी नरकंकाल समवेत स्वर में ही ही कर हँसने लगे उच्च स्वर में। बड़ा ही डरावना दृश्य था। श्मशान कांप उठा जैसे। मुर्दे का मांस खाने के बाद वापस लौटने लगे सभी नरकंकाल।

अभी मेरे सामने एक और भयानक दृश्य आने वाला था जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। हे भगवान! क्या देख रहा था मैं। खड़–खड़ भड़–भड़ की आवाज करते जब सभी नर कंकाल वापस लौट कर नदी के अन्धेरे में गायब हो गये तो रूपा मुर्दे के पास आयी। उसी समय नदी के उस पार से समवेत स्वर में सियारों के रोने की आवाज आने लगी। बिल्कुल पिशाचिणी जैसी लग रही थी रूपा। अभी भी उसके हाथ में वही रक्तरंजित लम्बा भयानक छूरा था। एकाएक उसने छूरे को हवा में लहराया और एक प्रबल झटके से मुर्दे के सीने में छूरा भोंक दिया। भलभला कर खून मिला पानी बह निकला। रूपा ने तुरन्त उसको कटोरे में रोक लिया और दोनों हाथ में कटोरा थाम कर गट्–गट् कर पीने लगी वह उस द्रव को। सचमुच बड़ा ही वीभत्स दृश्य था वह इसमें सन्देह नहीं। उसी क्षण कोई जंगली जानवर जोर से चीख पड़ा श्मशान के बगल में। वातावरण और अधिक भयानक हो उठा श्मशान का उस अन्धेरी काली रात में। द्रव से भरा कटोरा हाथ में लिए अब रूपा मेरी ओर बढ़ने लगी। भयभीत आँखों से उसकी ओर देखा मैंने। उसका चेहरा लाल हो रहा था और आँखों में से भी चिनगारियां निकल रही थी जैसे करीब आकर भारी आवाज में और आदेश भरे स्वर में बोली– ले पीले पूरा पी जा छोड़ना मत। मैं एकदम से चिल्ला पड़ा– नहीं, नहीं यह सब मुझसे नहीं होगा मैं खून नहीं पीयूँगा।

पीना ही पड़ेगा क्यों नहीं पीयेगा? रूपा गुर्राकर बोली और फिर उसने कटोरा मेरे मुंह से लगा दिया। न जाने कैसे क्यों और किस प्रेरणा के वशीभूत होकर एक सांस में ही सारा द्रव पी गया मैं। पहले तो पूरा शरीर सनसना उठा और अंग–अंग में चुभन जैसी होने लगी और फिर ऐसा लगा मानो कोई अज्ञात और अद्म्य शक्ति पूरे रग–रग में दौड़ गयी हो। आँखे जलने लगी। होंठ फड़कने लगे, पैर कांपने लगे

और उसी अवस्था में गिर पड़ा मैं वहीं और फिर चेतना लौटी तो अपने आपको रूपा की झोपड़ी में पाया।

क्या बतलाऊँ आपको। तंत्र–मंत्र के क्षेत्र में बहुत सारा खोज शोध अन्वेषण किया है मैंने। उस दिशा में कई प्रकार की विलक्षण अनुभूति भी हुई है मुझे। भयंकर से भी भयंकर अशरीरी तत्वों से भी सामना हुआ है मेरा। लेकिन बन्धु ! उस शव द्रव को पीने के बाद जो कुछ अनुभव हुआ– वह सबसे अलग था इसमें सन्देह नहीं।

उसी दिन से मैं अपने आप में एक विलक्षण अनुभव करने लगा। पारलौकिक अनुभव और साथ ही लौकिक अनुभव भी। मैं जो कुछ सोचता विचारता उसका तुरन्त समाधान हो जाता था। जब कोई प्रश्न मन में उत्पन्न होता था उसका उत्तर भी मिल जाता था तुरन्त। इतना ही नहीं, जो कोई भी मेरे पास आता था। उसके विषय में भी सब कुछ जान जाता था पलभर में। आसपास कोई घटना घटने वाली होती थी। उसका सारा दृश्य सामने आ जाता था। किसके मन में क्या है? कौन खिचड़ी पक रही है, यह भी जान जाता था। अब तक मैं अच्छी तरह समझ गया था हर आदमी बाहर कुछ है और भीतर कुछ। सभी दोहरा जिन्दगी जीते है इससे सन्देह नहीं। मेरी जिन्दगी एक प्रकार से स्वयं एक प्रबल समस्या बन गयी। आश्चर्य की बात तो यह थी कि स्वयं मैं अपने विषय में कुछ जानता समझता नहीं था और यही एकमात्र कारण था कि धीरे–धीरे अन्तर्मुखी होता चला गया मैं। हर समय उस अवस्था में यही अनुभव करता था कि मेरे चारो ओर असत्य और सत्य की मिली–जुली दीवार खड़ी है जिसमें सत्य की मात्रा बहुत ही कम है। रूपा की झोपड़ी में लेटा–लेटा यह जान गया था कि अब आगे क्या होने वाला है? कौन सी घटना घटने वाली है यदि मैं चाहता तो उसके पहले ही वहां से निकल भागता, लेकिन ऐसा हो न सका। कोई अदृश्य शक्ति रोक देती थी मुझे। समझ गया मैं। नियति सबसे प्रबल हैं। उससे कोई बच नहीं सकता। घटना का पात्र हर स्थिति में बनना ही पड़ता है आदमी को। न चाहकर भी घटना का पात्र बन ही गया मैं एक नहीं कई घटनाओं का।

कुछ आगे लिखने के पहले यह बतला देना आवश्यक है कि वर्तमान में तंत्र की बहुत सारी साधनाएं लुप्त हो चुकी हैं। अनेक गुप्त

और गोपनीय विद्याएं भी काल के अन्धकार में डूब चुकी हैं। अब कुछ भी नहीं है और जो कुछ है सब असत्य, नकल और आडम्बर है। जिस 'कामरूप' विद्या की चर्चा यहां है वह तंत्र की चौषठ विद्याओं में जो 16 तमोगुणी विद्याएं हैं उनमें सर्वश्रेष्ठ है। इस परम तमोगुणी विद्या काम तत्व पर आधारित नौ अपराविद्या की जननी है। (1) मन की गतिविधि को समझना (2) अतीत और अनागत घटनाओं का ज्ञान (3) मृत्यु ज्ञान (4) महाकाल चक्र ज्ञान (5) इच्छानुसार अल्पकाल के लिए किसी वस्तु या पदार्थ की सृष्टि (6) प्रकृति में विकृति उत्पन्न कर किसी भी प्रकार की भयंकर घटना या दुर्घटना को जन्म देना। (7) मृत तमोगुणी आत्मा द्वारा किसी जीवित व्यक्ति को तरह–तरह का कष्ट देना। (8) मूठ–बान जैसी प्राणघातक क्रियाओं द्वारा किसी का प्राण हरण करना। (9) कुछ सीमा तक त्रिकाल की बात भी जान लेना। इन सोलह अपरा विद्याओं में एक सर्वोपरि नाम है, कामरूप विद्या जिनसे सर्वदा के लिए मुक्त होकर शरीर और संसार से भी मुक्ति चाहने वाली रूपा एक प्रकार से मेरे प्रति पागल हो गयी थी और उसी पागलपन के वशीभूत होकर और भी अपरा विद्याएं मुझे बतलाती वह इसमें सन्देह नहीं, लेकिन जो होना था वह होकर रहा घटना घटनी थी और वह घटी।

यह तो निश्चित था कि रूपा कामरूप विद्या अच्छी तरह जानती थी इसमें शक नहीं। उसके चमत्कारपूर्ण तांत्रिक सिद्धियों और गतिविधियों को देखकर कभी–कभी भयंकर रूप से रोमाञ्चित हो उठता मैं। उसके चंगुल में बुरी तरह फंस गया था मेरा पूरा व्यक्तित्व इसमें सन्देह नहीं। अब मैं उससे मुक्ति चाहता था इसलिए कि उससे मुझे भय लगने लगा था। कब क्या कर दे? लेकिन मुक्ति का उपाय नहीं सूझ रहा था मुझे। लेकिन एक दिन उस पिशाचिनी से मिल ही गयी मुक्ति। फिर भी वह मुक्ति मेरे लिए एक प्रकार से अभिशाप ही सिद्ध हुई बन्धु। लाजो उधर मुझे बराबर खोज रही थी। मैं लगभग पन्द्रह दिनों से गायब था। एक दिन न जाने कैसे लाजो को यह जानकारी मिल गयी कि मैं रूपा के कब्जे में हूँ फिर क्या तुरन्त शेरनी की तरह गरजती तरजती हुई आ धमकी रूपा की झोपड़ी में। उसका रौद्र रूप देखकर मेरा रोम–रोम कांप उठा एकबारगी। एक प्रेम की देवी को कालरात्रि के रूप में देखकर

कौन नहीं भयभीत हो उठेगा भला। लाजो की नजर मुझ पर पड़ी। झपट कर मेरा हाथ पकड़ा कस कर और घसीटती हुई क्रोध भरे स्वर में बोली–'चाण्डालिन मेरे शिकार को फंसाने की तेरी हिम्मत कैसे हुई?

रूपा भी कम न थी तमक कर बोली– तूने खरीद थोड़े ही रखा है इस बकरे को। फिर पलट कर मुझसे पूछने लगी– बोल तू मुझसे शादी करेगा न? बोल वादा किया है न! बोल...... बोलता क्यों नहीं।

क्या बोलता? क्या कहता? मुझे तो जैसे लकवा मार गया था। न जबान हिली और न तो गर्दन ही डोली। मैं सहमा हुआ मुँह बायें कभी रूपा की तरह तो कभी लाजो की तरफ देखने लगा।

लाजो ने तड़प कर कहा– उससे क्या पूछती है। मुझे देख..... जिस पहाड़ से टकराने चली है उसकी ऊँचाई तो देख...... देख सकेगी। गर्दन टूट कर पीछे लटक जायेगी समझी।

लाजो का एक ऐसा भी रूप होगा वह इस प्रकार की भी बातें कर सकती है– ऐसा मन में कभी सोचा भी नहीं था।

उसकी बात सुनकर रूपा दहाड़ उठी– डींग मत हांक।

मैं तुझे चूरचूर कर सकती हूँ। मेरी कामरूप विद्या की शक्ति नहीं जानती। पल भर में मुंह से खून उगल कर मर जायेगी तू।

'क्यों मुझसे टकरा रही है?.........

रूपा विकट हँसी हँस कर बोली– 'जान की बाजी लगाने की हिम्मत है तो बोल अपने आप फैसला हो जायेगा। जान रहते भागने वाले को तीन कसम।' फिर नोना चमाइन और गुरु गोरखनाथ की दुहाई देकर कर उसने तीन बार जमीन पर पैर पटका।

जवाब में रूपा ने भी तीन कसमें खायी और तीन बार जमीन पर पैर भी पटका।

उस समय मेरी मानसिक स्थिति क्या थी? बतला नहीं सकता। आप भी समझ न सकेंगे। बस, समझ लीजिये हल्का बक्का–सा खड़ा देख रहा था जड़वत् बना। निश्चय ही कोई भयानक तंत्र का चमत्कार घटित होने वाला था किसी भी समय और किसी भी क्षण फिर वे एक साथ मेरे दोनों हाथ पकड़ कर बलि के बकरे की तरह मुझे घसीटते हुए

घाटी की ओर चल पड़ा। वहां पहुंच कर मैं भागने न पाऊँ इसलिए दोनों ने मेरे हाथ पैर रस्सी से बांध कर एक सुरक्षित स्थान पर डाल दिया।

सुनसान निर्जन घाटी दूसरी ओर घना जंगल। सूरज अब उस घने जंगल के पीछे छिपने ही वाला थां। धीरे–धीरे अबूझ सी खिन्नता भरी उदासी बिखरती जा रही थी घाटी के निस्तब्ध वातावरण में। हम तीन लोगों के अलावा वहां और कोई नहीं था। उन दोनों ने एकाएक अपने–अपने आंचल से पीले चावल निकाले। दोनों ने एक दूसरे की ओर क्रुद्ध शेरनी की तरह देखा। थोड़े से चावल हाथ में लिए फूंक मारी, फिर कोई मंत्र पढ़कर एक साथ चावलों की आकाश की ओर फेका।

मैंने देखा काफी ऊपर नीले स्याह आकाश में दो कच्ची हड़ियाँ आपस में टकरायी और भन्–भन् की आवाज करती हुई बड़े वेग से एक पूरब की ओर और दूसरी पश्चिम की ओर चल पड़ी। उस समय उन दोनों हड़ियों में भीतर से लाल–पीली आग की लपटे जोर–जोर से निकल रही थी जो काफी डरावनी थी। देखते ही देखते काफी दूर तक उन लपटों से भर गया आकाश। मैं थर–थर कर कांपने लगा था। रस्सी छुड़ाने की कोशिश की लेकिन कहां खुलने वाली थी वह बन्धु! वह तो लक्ष्मण की नागपाश बन गयी थी मेरे लिए। हे भगवान अब क्या होगा? मैं इन दो पिशाचिनियों के बीच फंस गया हूँ प्रभु! मेरा उद्धार करो परमेश्वर।.......... अब कभी भी आसाम की ओर आने के लिए सपने में भी नहीं सोचूँगा। कहां फंसा आकर तंत्र मंत्र चक्कर में? एक बार मुक्ति दिला दो राम।

और तभी एकाएक मुझे घाटी में दो भयंकर शेरों के गुर्राने और दहाड़ने की आवाज सुनाई पड़ी। मैंने देखा, घाटी के दोनों ओर दो भयानक शेर आकाश की ओर सिर उठाये अट्टहास कर रहे थे। उनकी आवाज से पूरी घाटी हिलहिल उठती थी। फिर दोनों में भयंकर मल्ल युद्ध छिड़ गया। दोनों पहले दूर से गरजे और फिर एक साथ उछल कर बीचोबीच घाटी के ऊपर आकाश में ही आपस में टकरा गये। फिर तो घंटो भयंकर युद्ध होता रहा। दोनों की भयंकर गर्जना से घाटी गूंज रही थी। ऐसा लग रहा था, मानो जंगल और पहाड़ अपनी–अपनी जगह हिल रहे हों जैसे भूचाल सा आ गया था। लगा जैसे ज्वालामुखी

कहीं फट पड़ा हो। स्तब्ध खड़ा वह अविस्मरणीय भयानक दृश्य देख रहा था मैं। लाजो और रूपा समानान्तर पर बैठी बराबर कोई मंत्र पढ़े जा रही थी उस समय दोनों के चेहरे काफी भयानक लग रहे थे। सिर के बाल खुल कर पीठ पर बिखर गयें थे और आंचल छाती से खिस कर हवा में लहरा रहे थे।

अचानक लाजो ने चाकू से अपना बायाँ हाथ चीर डाला। खून की धारा बह चली पर उसने तुरन्त जीभ से उस बहते खून को चाट डाला। उस समय वह एकदम राक्षसी–सी लग रही थी। खून चाटते ही नीचे एक शेर भयंकर रूप से अट्टाहास कर उठा। मैंने देखा वह एकदम दूसरे शेर की गर्दन पर चढ़ बैठा और दांतों और नाखूनों से उसका गला चीड़ने–फाड़ने लगा। कुछ ही क्षणों में दूसरे शेर की गर्दन टूट कर एक तरफ झूल गयी और वह गिर कर मर गया पहले शेर ने विजयोल्लास से सिर ऊँचा किए झूमते हुए एक बार आकाश की ओर देखा और फिर दहाड़ता हुआ जंगल की ओर चला गया। उसी समय पूरब की ओर से एक हड़िया सन्–सन् की आवाज करती और आग की ऊँची–ऊँची लपटे फेकती हुई आयी और रूपा के सिर के ऊपर चक्कर काटने लगी। बड़ा ही विचित्र दृश्य था वह। एकाएक मंत्राविष्ट हड़िया रूपा के सिर से टकराई और दूसरे ही क्षण रूपा का सारा शरीर आग की लपटों में झुलसने लगा।

रूपा कातर स्वर में चीखने चिल्लाने लगी–मुझे छोड़ दो..... मुझे छोड़ दो...... अब कभी तुम्हारे शिकार की ओर आँखे नहीं उठाऊँगी..... छोड़ दो मुझे।

मगर लाजो बिल्कुल निर्दयी निकली। उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। रूपा चीखती रही चिल्लाती रही। रोती रही कलपती रही और गिड़गिड़ाती रही और उसका शरीर आग की लपटों में झुलसता रहा जलता रहा, छटपटाता रहा। बड़ा ही लोमहर्षक दृश्य था वह। अन्त में रूपा का सारा शरीर जलकर राख में बदल गया कुछ पल में। सोचने लगा मैं– तंत्र मंत्र के संबंध में विशेष कर कामरूप विद्या के विषय में मुझे बहुत कुछ जानना समझना था रूपा से। वह बतलाने के लिए तैयार भी थी। मगर अब दो तांत्रिकों के आपसी द्वेष और ईर्ष्या की आग में

भस्म हो गया मेरा उद्‌देश्य। सचमुच मेरी भारी हानि हुई थी रूपा के मर जाने से। पर कर ही क्या सकता था?

लाजो ने एक झटके से मेरा बंधन खोला और अहंकार भरे स्वर में आदेश दिया– 'चलो चले। एक संकट किसी तरह टला तो अब दूसरा संकट सामने था। कुछ बोला न गया। सिर झुकाए गुमसुम उसके पीछे चलने लगा मैं।

रास्ते में लाजो कहने लगी। देखा मेरी शक्ति तुमने ? मुझसे टक्कर लेने चली थी चुड़ैल। उसको नहीं मालूम था कि मुझे कामरूप विद्या के अलावा एक और विद्या आती है टहाविद्या जिसके बल पर मैं जो चाहे वह कर सकती हूँ।

टहाविद्या! सुनकर स्तब्ध रह गया मैं एकबारगी। हे भगवान! कभी किसी समय प्रसंगवश पश्चिम बंगाल के महातंत्र साधक भवानीशंकर भादुड़ी महाशय ने टहाविद्या की उपयोगिता और भयंकरता की चर्चा की थी। उनका कहना था कि तंत्र की तमोगुणी विद्याओं में 'टहाविद्या अत्यन्त शक्तिशाली मानी जाती है। उसकी सिद्धि भी अत्यन्त कठिन है सभी के वश की बात नहीं। इसलिए कि स्थूल शरीर के बजाय सूक्ष्म शरीर द्वारा इस परम गोपनीय विद्या की साधना यक्षलोक के अधिष्ठात्र गणों के निर्देशन में सम्पन्न होती है। टहाविद्या के सामने कुछ भी असम्भव नहीं।

यह याद आते ही सिहर उठा मैं। निश्चय ही लाजो का उद्देश्य कुछ और ही है। क्या है? यह जानना समझना था मुझे। रूपा की विद्या, काम आयी उस पल। कुछ ही समय में सब कुछ स्पष्ट हो गया मेरे मानस पटल पर। लाजो एक ऐसी तांत्रिक सिद्धि प्राप्त करना चाहती थी। जिसके लिए पति के हृदय का मांस पकाकर खाना पड़ता है। मुझसे शादी करने का एकमात्र उद्देश्य यही था लाजो का। लेकिन सब कुछ जान समझ लेने से क्या होता है। बुरी तरह अब फंस गया था मैं लाजो के जाल में। उसके प्रति पहले जो प्रेम, आकर्षण और अपनत्व था। वह सब अब पूरी तरह घृणा में बदल चुका था। मेरी मानसिक स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गयी थी। क्या बतलाऊँ आपको मैं अपनी उस समय की स्थिति को। जोर शोर से शादी की तैयारी हो रही थी।

बलि के बकरे की तरह मुंह बाये असहाय सा सब कुछ देख रहा था मैं। कर ही क्या सकता था। वहां से मुक्त होना चाहता था। लेकिन कैसे? कोई उपाय, कोई रास्ता..... यही सोच रहा था मैं हर पल हर क्षण। आसान काम नहीं था वहां से भागना। यदि किसी प्रकार भाग कर वहां से निकल भी आता तो लाजो निश्चय ही अपनी तांत्रिक विद्या से मेरा कोई अनहित कर सकती थी। शादी का दिन निश्चित हो चुका था। मुझ पर लगातार नजर रखी जा रही थी कि कहीं मैं भाग न जाऊँ। जाति प्रथा के अनुसार सवेरे से ही जाति बिरादरी के लोग एकत्र होने लगे और उन एकत्र होने वाले लोगों में एक व्यक्ति अति विचित्र और अस्वाभाविक सा लगा मुझे। उसकी वेशभूषा और उसका व्यक्तित्व आदिवासी तांत्रिकों जैसा लगा रहा था। वह लम्बी–चौड़ी काठी का व्यक्ति था काला रंग कोहड़े जैसा बेड़ौल मुड़ा हुआ सिर, बड़े–बड़े कान और कानों में झूलते लाल–पीले मनके, गले में भी दर्जनों मालाएं विभिन्न पत्थरों की उन पत्थरों में कुछ ऐसे भी पत्थर थे जो अपने आप काफी तेज चमक रहे थे और उनमें से लाल, पीली, नीली किरणों का बौछार सा निकल रहा था। उसकी आंखे लाल और क्रूरता से भरी थी। आयु चालीस से अधिक नहीं थी। कमर में लाल रंग की लुंगी थी। शरीर का ऊपरी हिस्सा नग्न था। कुल मिलाकर अति भयानक व्यक्ति था उसमें सन्देह नहीं। पता चला कि उसका नाम गोगा था और शिलांग से चल कर आया है। इसी के साथ यह भी मालूम हुआ कि लाजो को वह सिद्धि देने आया है जिसको पाने के लिए पति के हृदय के मांस की जरूरत पड़ती है। यह जानकर सिहर उठा था मैं एकबारगी, लेकिन अब एक प्रकार से मुझे विश्वास होने लगा था कि कोई न कोई रास्ता अवश्य निकलेगा मेरी प्राण रक्षा का। पीपल के नीचे चबुतरे पर भालू के चमड़ो का आसन बिछा था। गोगा जाकर उसी पर बैठ गया। अब उसकी लाल आँखों में क्रूरता, हिंसा, घृणा और क्रोध का मिलाजुला भाव उतर आया था और उसी दृष्टि से बराबर देख रहा था वह मेरी ओर। उस क्रूर तांत्रिक का आशय समझते देर न लगी थी मुझे। उस समय मैं अपने आपमें एक विशेष शक्ति का अनुभव कर रहा था। वह विशेष शक्ति क्या थी, उससे मैं स्वयं अपरिचित था।

सांझ हो चली थी। देखते ही देखते शादी में सम्मिलित होने वालों की भीड़ एकत्र होने लगी। थोड़ी ही देर में सैकड़ों की संख्या में लोगों की भीड़ वहां लग गयी। एकाएक एक साथ कई नगाड़े बज उठे और उसी के साथ शुरू हो गया सामूहिक नृत्य भी। उसके बाद शराब का जो दौर शुरू हुआ तो बन्द होने का नाम ही नहीं लिया। कई बकरे काटे गये कई काटे गये मुर्गे भी। काफी रात गये तब लोग शराब पीते रहे और मांस खाते रहे। लाजो ने भी खूब शराब पी और नशें में काफी देर तक नाचती रही अन्त में अचेत होकर गिर पड़ी। उसने इतनी अधिक शराब पी ली थी कि उसी बेहोशी की स्थिति में सवेरा होने के पहले ही दम तोड़ दिया उसने। मैंने नजर घुमाकर चारों ओर देखा, बहुत सारे लोग तो खा पी कर वापस चले गये थे और जो बचे थे वे नशे बेसुध पड़े थे, जमीन पर। पीपल के नीचे गोगा तांत्रिक भी पड़ा था नशे में अचेत। मैंने एक लम्बी सांस ली और जल्दी–जल्दी चल कर गांव के बाहर आ गया। फिर जिधर कदम बढ़े उधर चलता रहा, चलता रहा, बेसुध सा। चलते–चलते जैसे खो बैठा था अपना आपा मैं। कब दिन ढल गया पता ही न चला मुझे उस स्थिति में। सिर घुमाकर चारो ओर देखा। आसाम के काले पहाड़ों के पीछे सूरज छिपने ही वाला था। जहां मेरे पैर थमे थे वह एक सुनसान घाटी थी। जिसके एक ओर जंगलों का सिलसिला था और दूसरी ओर ऊँचे–ऊँचे पहाड़ों की बेडौल श्रृंखलाएं। घोर सन्नाटा बिखरा था वातावरण में चारो ओर। ऊँचे–ऊँचे पेड़ों पर बैठे पक्षियों के चहचहाने की मधुर आवाज कभी कदा उस गहरे सन्नाटे को छन्न् से तोड़ देती थी।

कितनी दूर चल कर वहां पहुँचा था इसका होश नहीं था मुझे। अब क्या करूँ? कहां जाऊँ ? रात को कहां मिलेगा आश्रय? मेरी मानसिक स्थिति विचित्र हो रही थी। कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि तभी मेरी नजर सामने उठ गयी। देखा पहाड़ो की तलहटी में जहां घाटी का ढलान और झुक गया था– वहां धुंआ उठ रहा था। सोचा निश्चय ही वहां कोई रहता होगा। मेरा अनुमान सच निकला। एक पहाड़ी गुफा थी उसी के भीतर से धुंआ बाहर आ रहा था। जब मैं गुफा के सामने पहुंचा उस समय एक विचित्र सा अनुभव हुआ मुझे। उस

अनुभव को शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकता, लेकिन इतना अवश्य कह सकता हूँ कि उस अनुभव ने मेरी आत्मा को जैसे छू लिया था। काफी देर तक खड़ा रहा मैं। भीतर जाने की हिम्मत नहीं हो रही थी। अभी मैं कुछ सोच ही रहा था कि भीतर से एक स्त्री बाहर निकली। उसकी आयु चालीस के आसपास रही होगी। रंग गोरा था। चेहरे पर अजीब सा तेज था और शांति भी। निर्विकार भाव से उसने मेरी ओर देखा। उसके देखने का ढंग किसी साधिका जैसा लगा मुझे। वेशभूषा से साधिका लग भी रही थी वह स्त्री। हे भगवान कैसी थी उसकी बड़ी–बड़ी तेजस्वी आँखें? करुणा, दया, स्नेह, अनुकम्पा का मिलाजुला भाव तैर रहा था वहां, हिल गयी मेरी आत्मा एकबारगी।

फिर एक मीठा स्वर– कौन हो तुम? यहां कैसे आना हुआ?

पहले तो कुछ बोला ही न गया मुझसे। किसी प्रकार अपने आपको संभाला और किसी प्रकार सारी कथा सुना दी मैंने रूक रूककर और अन्त में विनय भरे स्वर में कहा– रात होने वाली है। कहां भटकूँगा मैं इस अरण्य प्रान्त में? यदि आपको कोई कष्ट न हो, कोई परेशानी न हो और यदि आप उचित समझे तो थोड़ी कृपा कर दे मुझ पर बस, एक रात के लिए आश्रय दे दे मुझे अपनी गुफा में।

मेरी कथा को और मेरी याचना को बड़े ध्यान से सुना उस दिव्यात्मा ने। फिर हल्के से मुस्कराकर कोमल स्वर में बोली वह– कौन 'माँ' अपनी गोद में शरण नहीं देना चाहती आश्रयहीन को। फिर तुम अकेले, अनाथ और आश्रय के भूखे हो आओ भीतर आ जाओ। गुफा काफी बड़ी थी। उस महिला की ही तरह वह गुफा भी लगी मुझे अत्यन्त रहस्यमयी। किसी अनजाने लोक सा प्रतीत हुआ मुझे उस रहस्यमयी गुफा का रहस्यमय वातावरण। गहरी शान्ति बिखरी हुई थी गुफा के निस्तब्ध वातावरण में। अपने आपको कुछ सम्मोहित सा अनुभव कर रहा था मैं उस समय। भीतर हल्का–हल्का सा प्रकाश हो रहा था, लेकिन उस प्रकाश का स्रोत क्या था यह समझ में नहीं आया। दीवार से लगकर तीन चार काठ के तख्त बिछे हुए थे और भी बहुत से सामान थे, जिनकी ओर ध्यान नहीं मैंने। सामने वाले तख्त पर एक महापुरुष ध्यान की मुद्रा में बैठे हुए थे। उनका चेहरा केवल खुला था और पूरा शरीर

सफेद चादर से ढंका हुआ था। सिर और दाढ़ी के बाल छोटे–छोटे थे। चेहरे पर साधना का प्रखर तेज था। चेहरे से वह प्रौढ़ व्यक्ति लगे मुझे। बाद में सब कुछ ज्ञात हो गया। उस महिला का नाम था ज्ञानश्री और वे महापुरुष ज्ञानश्री के गुरु थे और नाम था दिव्यानन्द विजय।

पूरे पांच सौ वर्ष की आयु है मेरे गुरुदेव की ज्ञानश्री ने बतलाया– अधिकतर समाधि में ही रहते हैं वह। अभी पन्द्रह दिनों से बैठे हैं समाधि में। सम्भव है आज रात्रि में भंग हो समाधि। यह सब सुनकर थोड़ा आश्चर्य हुआ। लेकिन विश्वास करना पड़ा, क्योंकि ऐसा बहुत कुछ देख सुन चुका था मैं पहले भी।

आपके गुरुदेव कब से इस गुफा में निवास कर रहे हैं? यह पूछने पर ज्ञानश्री ने बतलाया कि इसका ज्ञान मुझे नहीं है। हाँ, इतना अवश्य जानती हूँ कि तीन सौ वर्ष पहले गुरुदेव हिमालय के मान्धाता पर्वत की एक गुफा में रहते थे। उसी स्थान पर उन्होंने मुझे निर्विकल्प दीक्षा दी थी। सौ वर्ष पहले गुरुदेव वहां मुझे साधना के लिए अकेला छोड़ कर अज्ञात यात्रा पर निकल गये। लेकिन उनसे मेरा सदैव यौगिक संबंध बना रहा। यह मैंने पहली बार समझा कि गुरु कहीं भी रहते हैं। जिस अवस्था और जिस स्थिति में रहते हैं, अपने शिष्यों से निर्बाध संबंध बनाये रखते हैं आन्तरिक रूप से। एक दिन ज्ञात हुआ कि गुरुदेव परकाया प्रवेश को उपलब्ध हो गये हैं। अब उनके निकट जाना होगा। मैं आ गयी और पांच वर्ष से यहीं गुरुदेव की सेवा में हूँ। फिर तो आपकी भी अवस्था बहुत अधिक होगी। मेरे प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया माँ ज्ञानश्री ने समय पर भंग हुई समाधि। देखा, महात्मा का प्रदीप्त हो उठा मुखमण्डल। उन्होंने आंखे खोली। शान्त, निश्छल, निर्विकार और अलिप्त गुलाबी आँखे। स्थिर दृष्टि से देख रहे थे महात्मा मेरी ओर। एकाएक चौंक पड़ा मैं। कुछ कौंध सा गया था भीतर। चेहरा कुछ–कुछ जाना पहचाना–सा लग रहा था मुझे। आखिर रहा न गया। मुंह से निकल ही पड़ा–अरे पंकज जी.... आप....? छः सात सौ वर्षों में निश्चय ही व्यक्तित्व में अन्तर अवश्य आ गया था, लेकिन पंकजजी को पहचानने में भूल नहीं हुई थी मुझसे। गम्भीर स्वर में महात्मा, हल्के से मुस्कराते हुए बोले–शर्माजी आपको पहचानने में किसी प्रकार की भूल

नहीं हुई है। लेकिन आपने पंकजजी के शरीर को पहचाना है। उनके शरीर के भीतर आत्मरूप में कौन स्थित है उसे न आप जान सकते हैं और न तो पहचान ही सकते हैं।

यह सुनकर मैंने कहा– आप एक सिद्ध परम योगी हैं। मैंने हिमालय और तिब्बत की जीवन–मरणदायिनी यात्रा की है। अनेक सिद्ध साधकों और परम उच्चावस्था प्राप्त योगियों का दर्शन और सत्संग लाभ भी किया है और आप योगी दिव्यानन्द विजय हैं। अपने हिमालय यात्रा काल में मान्धाता में आपका भी दर्शन लाभ किया है मैंने। शायद आपको स्मरण नहीं है योग के विषय में चर्चा भी हुई थी आपसे। यह सुनकर स्तब्ध रह गए महात्मा लेकिन बोले कुछ नहीं मैंने आगे कहा– आपने अपनी लम्बी साधना–यात्रा के लिए जिस स्थूल शरीर में परकाया प्रवेश किया है– वह मेरे परम मित्र पंकजजी का है। आपसे पंकजजी का क्या आन्तरिक संबंध था? यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन इतना तो अवश्य जानता हूँ कि आप उसको किसी विशेष अवस्था में अपने साथ अपना शिष्य बतलाकर यहां इस स्थान पर प्रायः ले आते थे। आपको यह भी बतला दूँ कि आपको और आपके इस स्थान की खोज में पंकजजी को लेकर काफी भटका हूँ और उस स्थिति में जो–जो अनुभव हुए और जितने जो देखा, सुना, उसे जीवन पर्यन्त भुलाया नहीं जा सकता। वह अलग विचित्र और रोमाञ्चक कथा है। उसे सुनाने की आवश्यकता नहीं और यह भी जानने समझने कि आवश्यकता नहीं है कि आपका पूर्व पार्थिव शरीर कहां है और किस स्थिति में है? मैं तो बस आपसे इतना जानता चाहता हूँ कि मेरे मित्र पंकज जी की आत्मा इस समय कहां और किस अवस्था में हैं? महात्मा को ऐसा कुछ सुनने की शायद आशा नहीं थी। थोड़ा विचलित हुए वह। जिज्ञासा और कौतूहल भरी दृष्टि से मेरी ओर एक बार देखा उन्होंने और फिर रहस्यमय ढंग से मुस्कराये वह। फिर उन्होंने जो कुछ बतलाया वह सब अवश्य अपने आपमें विचित्र और अविश्वसनीय था किन्तु सत्य था।

•••

योग मार्ग के साधक इस बात से अच्छी तरह परिचित होते हैं कि 'योग' एक ही जन्म की साधना नहीं है। अनेक जन्मों के संस्कार

उत्पन्न होने पर योग में प्रवृत्ति का जागरण होता है। फिर सद्‌गुरु का अवतरण होता है। दीक्षा निवृत्ति होती है और सद्‌गुरु के संकेत पर अग्रसर होता है साधना मार्ग पर धीरे–धीरे। लेकिन साधना एक ही जन्म का विषय नहीं है। उसमें पूर्णता लाभ के लिए चौदह जन्मों की आवश्यकता पड़ती है। पहले पांच जन्मतक साधक की अवस्था है। दूसरे पांच जन्म तक योगी की अवस्था है। तीसरे दो जन्म तक सिद्ध अवस्था है। चौथे अन्तिम दो जन्म परम सिद्धावस्था है। परम सिद्धावस्था को उपलब्ध होने के बाद सिद्धलोक में आत्मा का प्रवेश होता है। वहां विश्राम करने के पश्चात् परम सत्ता में विलीन हो जाती है आत्मा जो योग मार्ग का परम लक्ष्य है। योग साधना की इतनी लम्बी यात्रा एक ही शरीर में रहकर सम्भव नहीं। कुछ ऐसे साधक हैं जो पहले पांच जन्मों के साधना काल को सद्‌गुरु की कृपा से पांच बार शरीर धारण कर साधना मार्ग की यात्रा पूर्ण कर लेते हैं। पिछले जन्म में जहां साधना रूकी रहती है, वहीं से अगले जन्म में शुरू हो जाती है आगे की। साधना की पूर्व विस्मृति बनी रहे इसके लिए सद्‌गुरु सहयोग देते हैं और सहायता भी परोक्ष रूप से करते हैं। लगभग ऐसी ही स्थिति दूसरे पांच जन्मों के योगमार्गीय यात्रा काल की भी समझना चाहिए। यह निश्चित है कि साधक से योगी होने की प्रक्रिया अति जटिल है। उस जटिलता का सामना करने के बजाय कोई–कोई साधक परकाया प्रवेश कर लेते हैं। ऐसी ही स्थिति योगावस्था से सिद्धावस्था को उपलब्ध होने के समय भी उपस्थिति होती है। योगावस्था में प्राप्त परामानसिक अनुभवों अथवा अनुभूतियों को मृत्योपरान्त दूसरे जन्म में प्राप्त शरीर में पूर्णरूप से सुरक्षित रखना असम्भव तो नहीं, लेकिन अत्यन्त कठिन अवश्य है सभी के वश की बात नहीं। यही कारण है कि योगावस्था को उपलब्ध योगी सिद्धावस्था में प्रवेश करने के लिए परकाया प्रवेश करते हैं आवश्यकता पड़ने पर कई बार।

कहने की आवश्यकता नहीं महात्मा दिव्यानन्द विजय ऐसे ही एक योगी थे। पहले भी दो बार परकाया प्रवेश उन्होंने किया था। इस बार सिद्धावस्था को उपलब्ध होने के लिए पंकजजी के शरीर में परकाया प्रवेश किया था। इस प्रकार के योगी विशेष कर अपने शिष्य के शरीर

में ही परकाया प्रवेश करते हैं या फिर उसमें जो व्यक्ति उनकी दृष्टि में योगपात्र होता है।

परकाया प्रवेश दो प्रकार से होता है– स्थायी रूप से और अस्थायी रूप से। अस्थायी रूप से परकाया प्रवेश अपने किसी महत्वपूर्ण उद्देश्य की पूर्ति के लिए योगी करता है और वह भी थोड़े समय के लिए। उद्‌देश्यपूर्ण होने पर शरीर से अलग होकर अपने शरीर को स्वीकार कर लेते हैं। जैसे एक योगी को तीर्थयात्रा करनी है। उसकी साधना में इतना समय नहीं था कि एक महीने का तीर्थ कर सकता इसलिए एक तीर्थयात्री के शरीर में प्रवेश कर गया उसका सूक्ष्म शरीर। इस प्रकार उसकी तीर्थयात्रा की इच्छा पूर्ण हो गयी।

वास्तव में 'परकाया प्रवेश' योग का एक रहस्यमय विज्ञान है और उस विज्ञान से दिव्यानन्द विजय भलीभांति परिचित थे। पंकजजी पिछले किसी जन्म में उनके शिष्य थे। पुनर्जन्म के कारण उनकी साधना स्मृति लुप्त हो गयी थी। जब उनका गुरु से सामना हुआ तो वह सुप्त स्मृति जागृत हो उठी और वे अपने गुरु के साथ बिना किसी को कुछ बतलाये चुपचाप उनके स्थान पर चले गये। सर्वप्रथम गुरु ने उन्हें स्पर्श दीक्षा दी और बाद में दी शक्तिपात दीक्षा। योग–तंत्र में शक्तिपात दीक्षा का अपना भारी महत्व है। इस दीक्षा द्वारा पिछले जन्मों के साधना संस्कार तो जागृत होता ही है। इसके अतिरिक्त आगे की साधना के लिए अपने आप मार्ग प्रशस्त हो जाता है साथ–साथ नवीन दैवी ऊर्जा भी प्राप्त होती है।

इसके बाद जो घटना घटी निःसन्देह वह अपने आपमें चमत्कारपूर्ण अविश्वसनीय और आश्चर्यजनक ही समझी जायेगी इसमें सन्देह नहीं।

दिव्यानन्द विजय सिद्धावस्था को प्राप्त महान योगी थे– इसमें सन्देह नहीं। अब के परम सिद्धावस्था को उपलब्ध होना चाहते थे और इसके लिए उनके जीवन में अब समय नहीं था और इसी कारण परकाया प्रवेश कर नये शरीर और नये जीवन द्वारा अपने परम लक्ष्य तक पहुँचना चाहते थे महाशय। बस, समस्या थी, शिष्य की आत्मा का क्या होगा? उसकी साधना का क्या होगा? ये दोनों प्रश्न अत्यन्त गम्भीर थे।

पंकजजी इन सब बातों से अनभिज्ञ अपरिचित अपनी आगे की साधना करने लगे थे और करने लगे थे गुरु सेवा।

आखिर समाधान हो ही गया।

अब तक पंकजजी को समाधि की अवस्था में शरीर से बाहर निकलने की योग्यता उपलब्ध हो गयी थी। अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा दूर–दूर की यात्रा करने लगे थे। इच्छानुसार कभी काशी, कभी गौरी–केदार तो कभी मानसरोवर यात्रा तो करते ही थे। मन लग गया तो कुछ दिन वहां निवास भी कर लेते थे।

इसे गुरु की प्रेरणा कहना चाहिए या फिर दैवयोग शिवरात्रि का महापर्व था। उस अवसर पर पंकजजी सूक्ष्म शरीर से पर्व का आध्यात्मिक सुख प्राप्त करने के लिए काशी आये।

काशी का प्रसिद्ध दशाश्वमेघ घाट। स्नानार्थियों की भीड़। काशी विश्वनाथ के दर्शन के लिए भी कम भीड़ नहीं थी। दान देने वालों और दान लेने वाले ब्राह्मणों, पण्डों और गंगापुत्रों का समूह अलग। भीड़–भीड़ और भीड़ और उसी भीड़ में गंगा किनारे सीढ़ी पर बैठ एक प्रौढ़ महिला अपनी गोद में दस, बारह वर्ष के बालक को लिए विलाप कर रही थी। बालक मर चुका था और उसकी मृत काया ठण्डी को गयी थी। वह ब्राह्मण बालक था और वह महिला उसकी माँ थी। वह विधवा अनाथ और आश्रयहीन गरीब परिवार की थी। उस भीड़–भाड़ में उस गरीब महिला का न कोई विलाप सुनने वाला था, न कोई उसका आँसू पोंछने वाला था और न तो कोई था उसकी सहायता ही करने वाला। अपने आचंल से अपने इकलौते बेटे की लाश को छिपाये दोनों हाथ पसारे सहायता के लिए भीख मांग रही थी वह अनाथ और आश्रयहीन भीड़ में से किसी की आवाज सुनाई दी। बगल के किसी गांव देहात से आई थी अपने बेटे को लेकर गंगा नहाने और बाबा विश्वनाथ का दर्शन करने रास्ते में बेटे को ठंड लग गयी। यहां आते–आते अकड़ गयी देह बेटे की। बेचारा अपनी माँ का अकेला सहारा था...... ।

और तभी वहां भीड़ को धकियाते हुए एक पण्डा आ गया। ऊँची और मजबूत कद काठी, मस्तक पर त्रिपुण्ड, गले में रूद्राक्ष की माला

कमर में रामनामी लपेटे और भंग की तरंग में डूबते उतराते। एक बार सिर घुमा कर देखा चारो ओर पण्डो ने और फिर बोला, थोड़ा कड़क कर ऐ– बुढ़िया! यहां बैठी क्या नाटक कर रही है। बच्चे को मरना था, मर गया। मरना तो सभी को है। धंधा का टाइम है, चल उठ यहां से मणिकर्णिका जा वहीं क्रिया करम होता है जाकर कर दे। बेटे को काशी लाभ होगा। हाँ! बाबू बचवा का क्रिया करम तो करही के पड़ी– महिला रोती हुई बोली– पर बाबू पईसा नाही बाटे का करी बाबू..... कहां जाई। केसे मांगी! कोई एक महतारी (माँ) का दुख ना समझत हौ बाबू।

मां की पीड़ा सुनने समझने के लिए पण्डा वहां नहीं था। कब का वह किसी यजमान के पीछे चला गया था। धन्धे का टाइम था न? काफी देर से सब कुछ देख सुन रहे थे पंकजजी। कब तक सहन करते। आखिर एक योगी का ह्रदय द्रवित हो उठा। करुणा से भर उठी उसकी आत्मा। विह्वल हो उठा एकबारगी वह योगी। एक माँ की पीड़ा, व्यथा, दुख और कष्ट को भले ही लोग आन्तर वेदना एक बार अनसुनी करते। अनदेखी कर दें और कर दे उसकी उपेक्षा लेकिन एक योगी के लिए यह सम्भव नहीं। वह तुरन्त अपना दोनों हाथ फैला देगा माँ का आँसू पोछने के लिए माँ की गोद में पड़े बालक के निश्चेष्ट और निष्प्राण शरीर धीरे–धीरे गर्म होने लगा। चैतन्य हो उठा वह। कुछ देर बाद आँखे खोलकर अपनी माँ की ओर देखा बालक ने और फिर धीरे से बोला माँ........।

बचवा अरे हमार बचवा कहते हुए एक दुःखियारी माँ ने अपने कलेजे के टुकड़े को। भला वह गाँव की गंवार देहाती क्या जानती थी कि जिसे कलेजे से लगायी है वह केवल उसके बेटे का पार्थिव शरीर है और उस शरीर के भीतर तो है एक परम सिद्ध योगी की आत्मा। सैकड़ों हजारों मील दूर अपनी गुफा में समाधि की अवस्था में बैठे योगी दिव्यानन्द विजय इन तमाम घटनाओं को करतलवत् देख सुन रहे थे। आँखे खोल कर देखा– सामने पंकजजी का समाधि में बैठा पार्थिव शरीर शीतल होता जा रहा था अब धीरे–धीरे। देर नहीं की योगी ने तुरन्त अपना जीर्णशीर्ण काया को छोड़कर पंकजजी के मृत शरीर में प्रवेश कर गया अपने योगबल से वह और अपने मृत देह को गुफा में

ही भूमिगत कर दिया। अब उसके पास नया युवा शरीर था। लम्बा जीवन था और था सामने परम सिद्धावस्था की उपलब्धि?

यह सब सुनकर एकबारगी स्तब्ध और अवाक् रह गया मैं। भारतीय अध्यात्म का जो एकमात्र मूल स्तम्भ है उस योग की यह विचित्र आश्चर्यजनक और मर्मस्पर्शी कथा पर भला कौन विश्वास करेगा? कौन स्वीकार करेगा उसकी सत्यता पर? एक लम्बा असर हो गया। दिव्यानन्द विजय अपनी शिष्य के साथ अभी उसी गुफा में है या नहीं? यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। मुझे तो प्रतीक्षा थी उस बालक की जिसके शरीर में विद्यमान थी पंकजजी की आत्मा। क्या मेरी प्रतीक्षा सफल हुई ?

हाँ! इसमें कोई सन्देह नहीं।

18 जनवरी 1990 ई0।

सांझ का समय। ठण्डी अधिक थी उस समय। कम्बल लपेटे बैठा था मैं अपने कार्यालय की कुर्सी पर और उसी समय मनोज शर्मा मेरे कार्यालय में आ गये। उनके साथ एक काफी लम्बी–चौड़ी कदकाठी का सन्यासी था। मनोजजी ने बतलाया कि आपके दर्शन के लिए गिरिनार से आये हैं ये सन्यासी महाशय।

मैंने स्थिर दृष्टि से संन्यासी की ओर देखा। सुगठित शरीर और गौर वर्ण कन्धे तक झूलते हुए काले घुंघुराले बाल, गले में स्फटिक और रूद्राक्ष के बीच सोने का मोटा चैन। चौड़े मस्तक पर त्रिपुण्ड की रेखायें कान में हीरे का झिलमिल करता कुण्डल, बड़ी–बड़ी भौराली आँखें रक्ताभ होंठ और तेजोमय मुखमण्डल। कुल मिलाकर अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्तित्व। एकबारगी सकपका गया मैं। असहज भी हो उठा थोड़ा। मेरी ओर देखकर संन्यासी हल्के से मुस्काराया और मन्द किन्तु कोमल स्वर में बोला– आपने मुझे पहचाना?

नहीं, कौन हैं आप।

मेरा उत्तर सुन कर हँस पड़ा संन्यासी। बड़ी ही कौतुक भरी हँसी थी वह।

मैं आपका मित्र पंकज हूँ।

ऐं! क्या कहा— आप पंकजजी हैं। हठात् निकल गया मेरे मुंह से।

हाँ बन्धु! इसमें शक सन्देह नहीं। वैसे मेरा नाम है शिवानन्द सरस्वती।

जन्म—मृत्यु और पुनर्जन्म जैसे रहस्यमय और जटिल विषय पर खोज शोध करने वाला मैं एकबारगी स्तब्ध रह गया और यह सोचने के लिए बाध्य हो गयां कि शरीर का महत्व संसार तक ही सीमित है। फिर उसका कोई मूल्य नहीं। महत्व और मूल्य है आत्मा का, इसलिए कि वह नित्य है और है शाश्वत। आत्मा एक ऐसा तत्व है जिसमें जन्म जन्मान्तर की श्रुति, स्मृति, ज्ञान, विज्ञान, अनुभव और तमाम अनुभूतियां उसी प्रकार विद्यमान रहती हैं जैसे सुन्दर पुष्प में उसकी सुगन्ध। पंकजजी का शरीर गुरु ने ग्रहण कर लिया और पंकज जी ने स्वीकार कर लिया एक अनाथ विधवा के मृत शरीर को। दोनों की यात्रा एक और लक्ष्य भी एक। शरीर बदलने से कुछ नहीं बदलता। सब कुछ पूर्ववत् रहता है। रही मृत्यु की बात वह तो केवल पूरी ईमानदारी के साथ आत्मा को एक शरीर से दूसरे शरीर में स्थानान्तरित कर देती है बस।

मैंने मृत्यु के लिए ईमानदारी, शब्द का प्रयोग किया है इस प्रसंग में। जरा सोचने समझने की बात है ईमानदारी एक संस्कार है बन्धु! जो प्रकृति मनुष्य के जीन्स में डालती है। वैसे मेरी दृष्टि से मृत्यु से बड़ी ईमानदार चीज इस सकल ब्रह्माण्ड में दूसरी नहीं और यही कारण है कि किसी 'कफन' में कोई जेब नहीं होता। यह अपने आपमें मृत्यु के सबसे ईमानदार होने का सबसे बड़ा प्रमाण है। वह आती है और आती हीं है। सबके पास आती है बिना किसी रोक—टोक के और बिना किसी डर भय के आती है। बिना बुलाये—भगाये सटीक क्षण (पल) पर आती है। आपको लेती है और प्रकृति के दरबार में प्रस्तुत कर देती है बिना किसी तकरार और हीलहुज्जत के। आप कुछ भी नहीं कर सकते। विश्व की सकल सम्पदा के मालिक होने के बावजूद भी कुछ भी नहीं कर सकते आप। रावण जैसा अमरत्व भी आपको नहीं बचा सकता। आये हैं तो जाना है और वह भी बिना टिकट, बिना जैसा, खर्च किए। बिल्कुल मुफ्त। इतनी ईमानदारी कहां है बन्धु।

मृत्यु और परकाया प्रवेश में अन्तर है और नहीं भी है। मृत्यु और पुनर्जन्म के बीच की दूरी घोर अन्धकारमय है। आत्मा की गहरी निद्रा

है और उसी निद्रा के कारण जब वह दूसरे शरीर में प्रवेश करती है तो भौतिक दृष्टि से पिछला सब कुछ भूल जाती है। रही परकाया प्रवेश की बात। इसमें ऐसा कुछ भी नहीं है। जैसी आत्मा है वैसी ही रहती है। एक लोटे का पानी दूसरे लोटे में डाल देने के समान पानी में तो कोई अन्तर नहीं होता। हां लोटा अवश्य बदल जाता है।

●●●

ब्राह्मण बालक का नाम था शिवा। आगे की कथा कुछ लम्बी है। संक्षिप्त में ही सुनाऊँगा। बीस वर्ष की आयु में शिवा ने हरिद्वार में संन्यास ले लिया और अपना नाम रखा स्वामी शिवानन्द सरस्वती। संन्यासी रूप में हरिद्वार से गिरिनार। वहां भेंट हुई महान सन्त ब्रह्मचारी ब्रजेश्वरानन्द से। लम्बा–चौड़ा आश्रम शिष्यों का समुदाय और अपार सम्पति। ब्रजेश्वरानन्द को गोलोकवासी होने के बाद उनके आसन पर बैठे स्वामी शिवानन्द सरस्वती। पूरे एक दशक का लम्बा समय। बीच–बीच में स्वामीजी के शिष्यगण काशी जब आते तो समाचार मिल जाता और जब मेरी पत्नी की मृत्यु का समाचार स्वामीजी को मिला तो एकबारगी उद्वेलित हो उठे वह। फोन किया, अब क्या रखा है जीवन में। सर्वस्व त्याग कर चले आइये गिरिनार, दो–तीन बार अपने शिष्यों को भेजा मुझे लाने के लिए। मना कर दिया मैंने। पत्नी ने साथ छोड़ दिया लेकिन मैं काशी नहीं छोडूँगा। अब समय ही कितना रह गया है। जो थोड़ा सा है उसे मत छीनिए आप मुझसे.....।

●

रहस्य सोलह

एक रहस्यमय सत्य

सन् 1958 ई0।

दिल्ली से मद्रास जाने वाला फ्रान्टियर मेल। अपने नब्बे मील प्रति घण्टा की गति से भागता जा रहा था मद्रास की ओर। वातानुकूलित प्रथम श्रेणी का आरामदेह कम्पार्टमेन्ट अटैज्ड बाथरूम। मेरा रिजर्वेशन कूपे में था दो बर्थ सिर्फ। दिल्ली से ट्रेन के छूटते ही अपने कूपे का चमचमाते कांच का दरवाजा बन्द किया। हरी बत्ती जलाई और बैग से खाने--पीने का सामान निकाला। चलते समय निशा ने टिफिन का लम्बा डब्बा थमाते हुए कहा था रास्ते में काम आयेगा, भूख तो लगेगी ही मैं हँस पड़ा और वह भी मुस्करा दी। निशा मेरी अच्छी सहयोगिनी थी। हर काम में उसका निस्वार्थ सहयोग, मानसिक तनाव से हमेशा मुक्त रखता था मुझे। एक प्रकार से आभारी था मैं उसका। टिफिन खोला गरम--गरम आलू की कचौड़ी, आलू मटर की सब्जी, अचार और मिठाई और क्या चाहिए? सामने टेबल पर इत्मीनान से सजाकर रख दिया मैंने और निकाला पानी का बोतल, गिलास और मैकडॉवल की चमचमाती बोतल। पहले आराम से तीन पेग गले के नीचे उतारने के बाद एक सिगरेट पी। अपने आपको थोड़ा स्वतंत्र अनुभव किया। फिर खाना खाया और नाइट लैम्प जलाकर मन्मथनाथ गुप्त का एक उपन्यास पढ़ने लगा मैं। बिना कुछ पढ़े नींद ही नहीं आती थी मुझे और तभी ट्रेन की गति धीमी पड़ने लगी। कोई स्टेशन आने वाला था शायद। थोड़ी

देर बाद मेरे दरवाजे पर ठक्–ठक् की आवाज हुई, देख, खोल कर सामने एक वृद्ध सज्जन खड़े थे अंग्रेजों की भेष–भूषा में। कुली एक बड़ा सा अमरिकन बैग रखकर चला गया। अपर बर्थ नागपुर तक के लिए उन वृद्ध सज्जन के नाम रिजर्व था। सोचा था पूरी रात अकेले आराम से सोऊँगा और कहाँ यह खूसट वृद्ध.......। अंग्रेज थे महाशय ब्रिटिशकाल में किसी ऊँचें पद पर थे लेकिन भारतीय विद्याओं में उनकी काफी रूचि थी इसलिए कभी कदा मौका मिलने पर लन्दन से भारत की यात्रा पर निकल पड़ते थे महाशय।

अंग्रेज बहुत ही कम बोलते हैं और बोलते भी तो आवश्यक बाते ही। भारतीय लोगों ने अंग्रेजों के अनेक गुणों को अपनाया, लेकिन न जाने क्यों..... इस गुण को क्यों नहीं अपनाया? नाम था जोन्स हेरेन और जब मि0 हेरेन को यह मालूम हुआ कि मेरी भी रूचि भारतीय गुप्त विद्याओं और रहस्यमय विषयों में है तो अत्यधिक प्रसन्न हुए वह। क्या आप ड्रिंक लेंगे? सहज भाव से पूछा मैंने। ओह स्योर ठंडी अधिक है। मजा आयेगा बातचीत में मि0 हेरेन चहकते हुए बोले। दो पेग गले के नीचे उतारने के बाद अपना सिगार सुलगाते हुए मि0 हेरेन ने कहना शुरू किया मि0 शर्मा आत्मिक ज्ञान और चमत्कारों का रहस्य समझने तथा योगियों और फकीरों के रहस्यों को जानने के लिए भारत की यात्रा कई बार की मैंने। मिस्र के जादुओं और चमत्कारों की भी चर्चा सुनी थी। मेरी ज्ञान पिपासा इतनी थी कि मैं मिस्र भी गया। यह सन् 1930 के आसपास की बात है। उस समय मैं खासा जवान था, स्मार्ट था, सुन्दर था और जीनियस भी। मेरा एक़मात्र लक्ष्य था उस व्यक्ति से भेंट करना था जिसके आश्चर्यजनक चमत्कारों के बारे में मैं बहुत कुछ सुन चुका था।

थोड़ा रूक कर चुरूट का लम्बा कश खींचा मि0 हेरेन ने और फिर आगे कहने लगे– मिस्र का वह सर्वाधिक चमत्कारी फकीर तेहराबे था। वह भारत के फकीरों जैसा नहीं था। कुछ दिन भारत में रहकर सीधा मिस्र चला गया मैं। मेरी यात्रा का एकमात्र लक्ष्य था उस रहस्यमय व्यक्ति से भेंट करना जिसके संबंध में कई चमत्कारी बातें प्रचलित थीं। वह अमीर था और शानदार व्यक्तित्व का बेहद खूबसूरत इन्सान था। उम्र चालीस से ज्यादा नहीं थी। उसके पास भौतिक

सुविधाओं की कमी नहीं थी। शाहीखानदान में प्रतिष्ठित व्यक्ति था। वह एक आधुनिक किस्म के महल में राजसी ढंग से रहता था। जादू के क्षेत्र में उसके चमत्कारों की धूम थी उस समय। उसने पहली बार ऐलान किया कि वह जीवित ही अपने आपको दफन करने जा रहा है। यह उसका पहला चमत्कार था। हजारों लोगों की भीड़ के सामने उसने एक गहरी कब्र खुदवाई और उसमें दफन हो गया वह पूरे एक महीने दफन रहा। फिर उसे कब्र से बाहर निकाला गया तो वह भलाचंगा था। कब्र से बाहर निकलते ही घूमने फिरने लगा।

इसके बाद तेहराबे के चमत्कारों का सिलसिला चल ही पड़ा जैसे। उसने सरविया, वल्गारिया और इटली में फिर वही करिश्मा दिखाने का ऐलान किया तो कुछ वैज्ञानिकों ने उसका परीक्षण किया। फिर उन्होंने शीशे का एक ताबूत तैयार किया और तेहराबे को उसमें बन्द कर दिया और उस ताबूत को नहाने के एक बड़े से टैंक में डूबो दिया। पूरे पन्द्रह दिनों के बाद ताबूत बाहर निकाल कर जब उसका ढक्कन खोला गया तो तेहरा आशा के विरूद्ध भलाचंगा निकला। उसने हँसते हुए उपस्थित लोगों से हाथ भी मिलाया। फ्रान्स में यही चमत्कार दिखलाया और पूरे चौबीस घंटे बाद हँसते हुए बाहर निकल आया ताबूत से।

तेहराबे के कुछ आलोचकों ने दावा किया कि उन्होंने भारत में योगियों को यह चमत्कार दिखाते हुए देखा था और उनके इस चमत्कार का भण्डाभोड़ हो चुका था। वे योगी जमीन के अन्दर एक सुरंग बना लेते थे और जमीन के अन्दर गाड़े जाने पर वे उस सुरंग से सांस लेते रहते थे। लेकिन तेहराबे ने तो अपना चमत्कार पानी में दिखाया था। वैज्ञानिकों और आलोचकों ने पानी में उसके ताबूत को अपनी आंखों से ही देखा था अतः आलोचकों के पास इसका कोई उत्तर नहीं था इन चमत्कारों के रहस्य का।

इन चमत्कार प्रदर्शनों के बाद तेहराबे का यश इतना फैला कि कई राजाओं ने उसे अपने दरबार में निमंत्रित किया।

•••

ट्रेन अब इटारसी से आमला जंक्शन की ओर बढ़ रही थी। हम दोनों ने एक–एक कॉफी पी और मि0 हेरेन ने एक चुरूट सुलगाया और

अपनी आदत के अनुसार लम्बा कश लेकर मटमैला धुंआ बाहर निकालने के बाद कहने लगे– मि0 शर्मा तेहराबे का चमत्कार मैं अपनी आंखों से देखना चाहता था। मैं तेहराबे से उसके बंगले पर मिला और मैंने उसे अपना चमत्कार दिखाने के लिए राजी कर लिया। तेहराबे के चेहरे पर अजीब सा आकर्षण भरा तेज था और उस तेज के अलावा था परम शक्ति का भाव। उसकी आंखों में भेदक शक्ति थी। वह अति विनम्र और सफल था। वह इतने धीमे और नम्रता से बोलता था कि कोई अपरिचित व्यक्ति इस बात का अनुभव ही नहीं लगा सकता था कि उसने प्रकृति की कुछ शक्तियों को अपने नियंत्रण में कर रखा है।

मेरे साथ बातचीत के दौरान तेहराबे ने अपनी शक्तियों के बारे में बतलाया– सबसे पहले तो हम अपने भीतर की महान गुप्त शक्तियों को नहीं पहचानते, तब तक हमारे हाथ–पैर उन सीमाओं से बंधे रहते हैं जो हमें अपनी आश्चर्यजनक शक्तियों के प्रयोग से रोकती है और, यही कारण है कि जो कुछ मैं दिखाता हूँ उसे देखकर लोग समझते हैं कि या तो यह एक प्रकार की माया है या फिर बिलकुल ही अलौकिक है परन्तु ये दोनों ही बातें गलत हैं। वे इस बात को समझ ही नहीं पाते कि ये बातें पूर्णतया वैज्ञानिक हैं और प्रकृति के नियमों के अनुरूप है। यह ठीक है कि मैं जिन आध्यात्मिक नियमों का प्रयोग करता हूँ– वे इतने सामान्य नहीं हैं, पर हैं तो नियम ही। मैं जो कुछ भी करता हूँ, वह अलौकिक या नियमों के विरूद्ध नहीं हैं।........ जो लोग यह समझते हैं कि मैं मायावी चमत्कार दिखाने वाला हूँ। मुझे उनके संकुचित मस्तिष्क पर दया आती है क्योंकि वे मानव में उच्चतर शक्तियों की उपस्थिति की सम्भावना को नहीं जानते। उन्हें मनुष्य की शक्तियों का अनुभव और ज्ञान अधिक नहीं होता।

तेहराबे अपने चमत्कार का प्रदर्शन अपने फ्लैट पर ही करने वाला था। लोगों ने कुछ डॉक्टरों और शरीर विज्ञान से सम्बन्धित कुछ ऐसे लोगों को निमंत्रित किया, जिन्हें उस प्रदर्शन में रुचि थी। उन सबके सम्मुख तेहराबे कुछ नये, हैरतअंगेज और भयंकर चमत्कार दिखाने वाला था। प्रदर्शन के समय तेहराबे ने मंच पर यूरोपीय वस्त्र उतार कर अरबी सफेद चोंगा पहना, सिर पर अरबों की तरह पगड़ी बांधी और

कमर में सुनहरा पट्टा बांधा। फिर सीने पर दोनों हाथ एक दूसरे पर रखकर खड़ा हो गया। उसके इस मुद्रा से दर्शकों ने समझ लिया कि अब खेल आरम्भ होने वाला है।

प्रदर्शन के लिए मंच पर बहुत–सा सामान रखा हुआ था। डॉक्टरों ने सब सामानों का परीक्षण किया। अन्य सामानों के अतिरिक्त वहां एक मेज पर कई चाकू, पिनें, सुइयाँ, पेचकश, कांच के टुकड़े आदि भी थे। एक दूसरी मेज पर कील जड़ा हुआ लकड़ी का एक तख्ता, पत्थर का एक भारी टुकड़ा, एक वजन लेने की मशीन, एक लम्बा हथौड़ा और एक टोकरी पड़ी थी। वहां एक मुर्गा और एक खरगोश भी था, जिनके पैर बांध दिये थे। दो दरातियां एक लम्बे ताबूत में एक लम्बा बक्सा, लाल बालू का ढेर, दो फावड़े और कुछ छोटे–छोटे तौलिए आदि भी रखे थे।

प्रदर्शन में तेहराबे की सहायता के लिए दो युवक थे। प्रदर्शन आरम्भ हुआ। तेहराबे अपनी गर्दन का पिछला भाग छूकर गुद्दी के ठीक ऊपर उंगलियों से दबाव डालकर दूसरे हाथ से कनपटियों को दबाता रहा। फिर वह तेजी से अपने मुंह के भीतर–भीतर ही जैसे कुछ चूसने लगा और उसके गले में एक हलचल–सी मच गयी। फिर एक पल बाद ही उसकी आंखे मुंद गयीं और एक अजीब–सी चीख मारते हुए वह बेहोश होकर गिरने लगा। यदि उसके सहायक उसे पकड़ न लेते, तो वह फर्श पर गिर पड़ता। सहायकों ने उसका शरीर संभालकर उसे फर्श पर लिटा दिया। उसका शरीर लकड़ी के टुकड़े की तरह कड़ा पड़ गया था।

तेहराबे के एक सहायक ने उसकी कमर से ऊपर के कपड़े फाड़कर अलग कर दिये। दूसरे सहायक ने एक–एक दराती मेज के आमने–सामने के सिरे पर कस दीं। फिर दोनों सहायकों ने तेहराबे के शरीर को उठाकर उन दरातियों पर इस तरह टिका दिया कि एक दराती उसके टखनों के नीचे थी। अब वहां उपस्थित डॉक्टरों में से एक डॉक्टर को बुलाकर तेहराबे की नब्ज दिखायी गयी। उसकी नब्ज की गति सामान्य मनुष्य की नब्ज की गति से दुगुनी, यानी एक मिनट में 130 थी।

अब सहायकों ने पत्थर के टुकड़े को तौला। उसका वजन नब्बे किलोग्राम था। वह पत्थर का टुकड़ा बिलकुल ठोस दिखायी देता था। सहायकों ने वह पत्थर का टुकड़ा तेहराबे के नंगे पेट पर रखा और

हथौड़े से उस पर एक के बाद एक जोर–जोर से चोट करने लगे। उन चोटों के बावजूद तेहराबे का शरीर सख्त और सीधा तना रहा, जैसे वह लोहे का बना हुआ हो। आखिर पत्थर चोटें खाकर दो टुकड़ों में टूटकर फर्श पर गिर पड़ा।

अब सहायकों ने तेहराबे को दरातियों पर से उठाया और उसे सहारा देकर उसके पैरों पर खड़ा कर दिया। उसे देखकर लगता था कि जैसे उसे इस बात का कुछ ज्ञान ही नहीं था कि उसे दरातियों पर लिटाया गया था, उस पर भारी पत्थर रखा गया था और हथौड़े से चोटें की गयी थीं। उसे कोई भी पीड़ा हुई हो, ऐसा बिलकुल न लगता था। वहां उपस्थित डॉक्टरों ने तेहराबे का बड़ी उत्सुकता से निरीक्षण किया, तो पता चला कि दरातियों की धार से उसकी त्वचा पर कोई निशान भी न बना था, जब कि पत्थर के बोझ के कारण उसके नंगे पेट पर लाल धब्बा–सा पड़ गया था।

अब सहायकों ने तेहराबे को कील–जड़े लकड़ी के तख्तें पर लिटाया और एक सहायक अपना एक पैर उसकी छाती पर और दूसरा पैर उसके पेट पर रखकर कूदने लगा।

सहायक उस पर से उतर गया, तो डाक्टरों ने उसकी नंगी पीठ का परीक्षण किया। पता चला कि उसकी पीठ में एक भी कील न चुभी थी। इस समय उसकी नब्ज की गति प्रति मिनट 132 थी। सहायकों ने फिर उसे पैरों पर खड़ा किया, तो उसने धीरे–धीरे पलकें खोली। उसकी आंखे स्थिर–सी थीं। उसने हवा भीतर खींचने के लिए अपना मुंह पूरा खोल दिया तो दर्शकों ने देखा कि उसकी जीभ का अगला सिरा उसके गले की ओर मुड़ा हुआ था। पल–भर सांस लेने के बाद उसने एक उंगली मुंह में डाल कर जीभ को सीधा किया। अब वह बिलकुल एक सामान्य मनुष्य की तरह था।

अगली कार्यवाही आरम्भ करने से पूर्व उसने केवल एक दो मिनट ही विश्राम किया। सहायकों ने डॉक्टरों से कहा वे तेहराबे का जबड़ा चीरें। एक डॉक्टर ने पहले उसके गालों में पिनें घुसेड़ीं। फिर वह बरछी से उसका जबड़ा छेदने लगा। इस बार तेहराबे बेहोश नहीं था, वह पूरे होश में था और उसे पता था कि उसके जबड़े के साथ क्या किया जा

रहा था परन्तु उसे देखकर यह बिलकुल न लगता था कि तनिक भी उसे पीड़ा का एहसास हो रहा हो। इससे भी अधिक आश्चर्य तो दर्शकों को तब हुआ, जब उसने खुद डॉक्टर से अपनी गर्दन में छुरा घुसेड़ने को कहा। डॉक्टर ने छुरा उसकी गर्दन में घुसेड़ दिया। छुरे की नोक गर्दन के दूसरी ओर निकल आयी। एक अन्य डॉक्टर उसकी आँखों का गौर से निरीक्षण कर रहा था। वह जानने के लिए कि कहीं उसने किसी दवा का प्रयोग किया हो परन्तु उसकी आँखों की हालत बिलकुल सामान्य थीं।

डॉक्टरों को सबसे अधिक आश्चर्य इस बात पर हुआ कि तेहराबे की गर्दन की त्वचा पर खून की एक बूंद भी न थी। उन्होंने कांच के टुकड़ों, सुई और चाकू आदि से उसके गालों, कन्धों और छाती पर छेदकर और काटकर देखा, पर कहीं भी खून नहीं निकला।

तब एक डॉक्टर ने तेहराबे से पूछा कि क्या वह अपने घावों से खून निकाल सकता है ? उसके पूछते ही तेहराबे के घावों से खून रिसने लगा। बाद में फिर उसने अपनी इच्छा–शक्ति के जोर से खून का बहना रोक दिया। कुछ ही पलों में उसके घाव भी बिलकुल ठीक हो गये।

इसके बाद एक सहायक जलती हुई एक मशाल तेहराबे की टांगों पर फिराने लगा। लपटों से जलकर उसकी टांगों की त्वचा तड़कने लगी, जिसकी आवाज साफ सुनायी पड़ रही थी। परन्तु उसका चेहरा शान्त और संयमित बना रहा, जैसे उसे कोई तकलीफ न हो रही हो।

एक डॉक्टर का खयाल था कि अवश्य ही तेहराबे ने किसी पीड़ा–निवारक दवा का प्रयोग कर रखा है। सो, उसने उसका फिर से परीक्षण किया लेकिन उसे तेहराबे में कोई भी असामान्य बात दिखायी न दी।

कुछ और चमत्कारपूर्ण प्रदर्शनों के बाद तेहराबे ने जानवरों पर अपनी शक्ति का प्रदर्शन शुरू किया। उसने मुर्गी और खरगोश को सम्मोहित कर उनकी गर्दनों के पिछले भाग में एक स्नायु–केन्द्रों को उंगलियों से दबा दिया जिससे वे बिलकुल स्थिर हो गये। अब वह उन्हें जैसे रख देता, वे वैसे ही पड़े रहते। खेल पूरा हो जाने पर उसने उन्हें छोड़ दिया, तो वे पहले की ही तरह फिर कूदने और फुदकने लगे।

अन्त में कार्यक्रम का सबसे अधिक चमत्कारपूर्ण प्रदर्शन हुआ। तेहराबे के सहायकों ने उसे जीवित ही गाड़ दिया।

यह कार्यवाही सबके सामने, कब्र की जांच कराने के बाद की गयी। अतएव उसमें किसी भी प्रकार की धोखेबाजी की कोई गुंजाइश न थी। तेहराबे ने दर्शकों को ठीक–ठीक घण्टा और मिनट बता दिया था, जब वह अपनी कब्र से निकलने वाला था।

कमरे के फर्श की भी भलीभांति जांच की गयी कि कहीं सांस लेने के लिए कोई गुप्त रास्ता न हो। फिर फर्श पर कालीन बिछाकर उस पर ताबूत रखा गया। तेहराबे बेहोश होकर गिरने लगा, तो उसके सहायकों ने उसे संभाल लिया। उसके शरीर का डॉक्टरों ने परीक्षण किया, तो पता चला कि उसके दिल की धड़कन और नब्ज बन्द थी। तब वह जीवित लाश ताबूत में रखी गयी। उसकी नाक और मुंह में रूई भर दी गयी। फिर लाल बालू से शरीर को ढँककर, ताबूत का ढक्कन बन्द कर, उसमें कील जड़ दिये गये। फिर ताबूत को उठाकर उससे भी बड़े एक बक्सें में रखा गया और बक्से की बची हुई जगह को अच्छी तरह बालू से भर दिया गया।

निर्धारित समय पूरा होने पर बक्से का बालू हटाया गया और ताबूत को बाहर निकालकर ढक्कन खोला गया, तो उसमें तेहराबे का शरीर मुर्दे की तरह अकड़ा हुआ पड़ा था। सहायकों ने उसका शरीर ताबूत से निकालकर एक कुर्सी पर रखा, तो धीरे–धीरे उसके शरीर की सख्ती कम होने लगी। फिर थोड़ी ही देर में धीरे–धीरे सांस लेने के लक्षण प्रगट हुए और उसकी पलकें फड़कने लगीं। दस मिनट में ही वह बिलकुल सामान्य हो गया और वहां उपस्थित लोगों से बातचीत करने लगा। उसने बताया "मेरी नींद इतनी गहरी थी कि मुझे कुछ भी मालूम नहीं कि आप लोगों ने मेरे शरीर के साथ क्या किया। मुझे केवल इतना याद है कि मैंने इसी कमरे में अपनी आंखे बन्द की थीं और फिर निर्धारित समय पर मैं इसी कमरे में नींद से जाग उठा।"

बातचीत के दौरान तेहराबे ने अपने आलोचकों के सम्बन्ध में कहा, "जब पिन मेरे जबड़ों में घुसेड़े जाते हैं तो उनका खयाल है कि मैं अपनी इच्छा–शक्ति से पीड़ा का अहसास रोक देता हूँ। उनकी यह

बात अगर ठीक है तो फिर उतनी बुरी तरह से खरोंचे जाने और काटे जाने पर भी मेरे शरीर पर जख्म क्यों नहीं होते? उनके पास इस सवाल का क्या जबाव है? दरअसल वे अधिक दूर तक सोच ही नहीं सकते। वे मेरी व्याख्या के तत्त्व को ग्रहण ही नहीं कर पाते। वे जब अपनी शरीर में चाकू और बरछा लगाकर देखें तो भले ही वे अपने मुंह से स्वीकार न करें पर उन्हें पीड़ा अवश्य होगी।....... मैं जो भी चमत्कार दिखाता हूँ, उसके दो रहस्य हैं। उनमें एक रहस्य है आवश्यकतानुसार किसी स्नायु केन्द्र पर दबाव डाल देने की क्षमता और दूसरा रहस्य है अपने को ही सम्मोहित कर लेने की योग्यता। इन दोनों का अभ्यास कर लेने पर कोई भी मेरी ही तरह ये चमत्कार दिखा सकता है। मुझमें और भारत के योगियों में केवल इतनी समानता है कि मैं भी उनकी तरह दुनिया से विरक्त होकर अपने ही अन्दर जी सकता हूँ। जीभ को पीछे की ओर खींच सकता हूँ और सम्मोहन की स्थिति में जा सकता हूँ लेकिन मैं उनकी तरह जान–बूझकर अपने–आपकों पीड़ा नहीं पहुंचा सकता।''

खून न निकलने के सम्बन्ध में पूछे जाने पर तेहराबे ने बताया, ''हमारे शरीर की सूक्ष्म नलिकाएं ही पीड़ा को इधर–उधर ले जाती है इसलिए उंगलियों से दबाव डालकर किसी चुने हुए स्नायु केन्द्र पर मस्तिष्क से खून खींच लिया जा सकता है तब वह स्नायु–केन्द्र रक्तहीन हो जाता।''

जीभ पीछे खींचने के बारे में उसने बताया, ''जीभ पीछे खींच लेने से वायु–नलिका बन्द हो जाती है और खतरनाक कण या कीड़े भीतर नहीं जा पाते।''

सम्मोहन की स्थिति को समझाते हुए तेहराबे ने कहा, ''इस स्थिति में शरीर की दी मुख्य क्रियाएं, सांस लेना और रक्त दौड़ना रुक जाता है। इस तरह मानो जीवन की गति भी रूक जाती है।''

बातचीत के सिलसिले में मैंने अधिकतर प्रश्न जीवित गड़े रहने के विषय में ही पूछे। उसने एक प्रश्न किया, ''जब आप जीवित ही गाड़ दिये जाते हैं, तब आपकी आत्मा आपके शरीर से अलग हो जाती है। फिर बाहर आने पर कब्र के कौन–से अनुभव आपको याद रहते हैं?

"कुछ कह नहीं सकता। अभी बहुत–सी ऐसी गहरी बातें हैं, जिनकी तह तक हम पहुंच नहीं पाये हैं। परेशानी तो यह है कि सम्मोहन की स्थिति में हमारी दशा उन लोगों–जैसी ही होती है, जो नींद में चला करते हैं। सम्मोहन की स्थिति से फिर सामान्य जीवन में वापस आ जाने पर हमें सम्मोहन की स्थिति में अपने किये गये कामों के बारे में कुछ भी याद नहीं रहता। सम्मोहन की स्थिति में सम्भवतः हम आत्माओं के क्षेत्र में प्रवेश कर जाते हैं, परन्तु सम्मोहन समाप्त होते ही हमें कुछ याद रह नहीं जाता। इसलिए हम आत्मा के क्षेत्र के विषय में कुछ भी नहीं कह सकते।"

उस रहस्यमय चमत्कारी जादूगर की कथा समाप्त हो चुकी थी। घड़ी की ओर देखा अपरान्ह का तीन बजने वाला था। ट्रेन की गति धीमी होती जा रही थी। नागपुर आने वाला था यात्रा समाप्त होने वाली थी मि0 हेरेन की। प्लेटफॉर्म पर ट्रेन रूकी मि0 हेरेन उतरे। हाथ हिलाया और फिर मिलने का वादा कर भीड़ में खो गये। मैं उन्हें भीड़ में खोते हुए देखता रहा। बड़ा ही आश्चर्यजनक और साथ ही एक रहस्यमय सत्य सुना गये थे वह। जिस पर अभी भी विचार कर रहा था मैं।

●

रहस्य सत्रह

दसमहाविद्या और छिन्नमस्ता का रहस्य

काशी के शिवालाघाट से लेकर दशाश्वमेधघाट तक की गलियाँ कभी किसी समय शाक्त और कापालिक साधकों की गुप्त साधना स्थलि थीं। ऐसे प्रच्छन्न और अप्रच्छन्न साधकों की खोज में प्रायः उन गलियों का नित्य चक्कर लगाया करता था मैं। वे गलियाँ अपने आपमें रहस्यमयी थीं। उनमें भटक जाने का भय बराबर बना रहता था। कहा जाय तो आज भी लगभग वही स्थिति है लेकिन अब तमाम गलियाँ गुलजार हो गयीं हैं। हर चीज की नई-नई दुकाने खुल गयी है। कई शोरूम खुल गये हैं। जहां सांझ होते ही सन्नाटा छा जाता था लेकिन अब ऐसी बात नहीं है। रात के बारह एक बजे तक भीड़भाड़ रहती है। लोगों का आना जाना लगा रहता है।

सन् 1950 से 56 तक योगी-तांत्रिकों और सिद्ध-साधकों की खोज में कुर्ता-पायजामा पहने और बगल में सर्वोदयी झोला लटकाए सैकड़ों बार चक्कर लगाया मैंने इन रहस्यमयी संकरी पतली और अपने आप में कोई न कोई रहस्य कथा समेटे गलियों का।

एक दिन देवनाथपुरा में मेरे मित्र मेघनाथ भट्टाचार्य मिल गये। वे भी साधु-सन्त और महात्माओं के चक्कर में रहते थे। मिलते ही कहने लगे एक तंत्र साधक के बारे में मालूम हुआ है। गुप्त भाव से सामने वाली जो गली है उसी में रहते हैं। सुना है छिन्नमस्ता के साधक हैं। अपना रक्त अर्पित कर पूजा करते हैं देवी की। बहुत कम बोलते-चालते

हैं। बाहर भी बहुत कम निकलते हैं। आयु साठ के ऊपर ही होगी, नाम है दिव्येन्दु शेखर सान्याल।

उसी समय भट्टाचार्य के साथ चला गया दर्शन लाभ के लिए उस साधक का। पतली सी गली थी सुनसान सी। दो–तीन मरियल कुत्ते कूड़े के ढेर पर बैठे ऊँघ रहे थे। एक मंजिला पीला सा मकान, काफी पुराना जर्जर सामने ही बैठ था, जिसका पुराना दरवाजा टूट कर एक ओर झूल गया था। बैठक में काठ का तख्त था, जिस पर काले रंग का पुराना कम्बल बिछा था। उसी पर साधक महाशय सिर नीचे किये पद्मासन की मुद्रा में मौन बैठे हुए थे। बैठक से लगे एक छोटे से कमरे में पूजागृह था। झांक कर देखा– कमरे के अन्दर छिन्नमस्ता की लगभग एक फुट ऊँची पीतल की मूर्ति थी। सामने दीप जल रहा था जिसके पीले हल्के प्रकाश में दस महाविद्याओं में श्रेष्ठ उस देवी की मूर्ति अत्यन्त सजीव लगी मुझे।

मुझसे मिलकर प्रसन्न हुए सान्याल महाशय और जब उनको यह ज्ञात हुआ कि मैं तंत्र में विशेष रूचि रखता हूँ और उनके जैसे महापुरुषों के दर्शन के लिए लालायित रहता हूँ तो गद्गद् हुए महाशय।

आप महाविद्या छिन्नमस्ता के साधक है। मैं आपके द्वारा उन्हीं के विषय में जानना समझना चाहता हूँ तांत्रिक दृष्टि से।

यह तो प्रबुद्ध समाज में सर्वत्र विदित है कि भगवान विष्णु ने मुख्य रूप से संसार कल्याणार्थ दस अवतार लिया था। इसी प्रकार भगवान विष्णु की योगमाया के रूप में प्रसिद्ध आद्या शक्ति ने भी दस अवतार लिया था जिनको तंत्र में दस महाविद्या की संज्ञा दी गयी है। दस महाविद्याओं का तंत्र साधना भूमि में देवी रूप भी है जो तीन श्रेणियों में विभक्त है– उग्र सौम्य और सौम्योग्र। (1) त्रिपुरसुन्दरी जिनका पर्याय नाम है– षोडशी त्रिपुरा, श्रीविद्या– सौम्य है। (2) भुवनेश्वरी (3) मातंगी (4) कमला– जिनको कमलात्मिका श्री और महालक्ष्मी के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। ये तीनों महाविद्याएँ भी सौम्य हैं। (1) काली (2) छिन्नमस्ता (3) धूमावती (4) बगलामुखी– ये चार महाविद्याएँ 'उग्र' हैं। (1) तारा (2) भैरवी, ये दो सौम्योग्र है। इनमें सौम्यता और उग्रता दोनों है। तारा का एक नाम उग्रतारा भी है। तंत्र में उग्रतारा को नील

सरस्वती भी बतलाया गया है। तंत्र के अनुसार नील सरस्वती सौम्य है। इसलिए कि सरस्वती श्वेतवर्णा न हो कर नीलवर्णा ही क्यों न हो जाय। विद्या की अधिष्ठात्री होने के कारण उनमें सौम्यता का होनां निश्चित है। नील सरस्वती तंत्र में कहा गया है कि गद्यकाव्य और पद्यकाव्य की रचना में सफलता, प्रभावोत्पादकता, गम्भीरता, विद्वता और उन्नति के इच्छुक लोगों को नील सरस्वती की साधना उपासना करनी चाहिए।

भैरवी महाविद्या भयानक हैं। फिर भी उन्हें सौम्य इसलिए माना जाता है कि देवी के सम्मिलित शक्ति रूप में अवतीर्ण होने वाली महिषमर्दिनी भवगती दुर्गा भी इसी भैरवी के अन्तर्गत मानी जाती हैं। एक प्रकार से दुर्गा भैरवी रूपा ही हैं। दुर्गा को सौम्य और उग्र मानने पर ही यह श्लोक का अर्थ सार्थक होता है।

रोगान शेषान पहंसि तुष्टा
रूष्टा तु कामान् सफलान भीष्ठान्।
त्वमाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता हया श्रूयतां प्रपन्ति।। (दुर्गा सप्तशती)

थोड़ा रूक कर सान्याल महाशय बोले– अब मैं छिन्नमस्ता पर थोड़ा प्रकाश डालूंगा। सूर्य मण्डल के मध्य में जो तेजोमय प्रकाश बिन्दु है वही बिन्दु महाविद्या छिन्नमस्ता का स्थान है। कामदेव की पीठ उनका आसन है जिस पर नृत्यमय चरणभंगी मुद्रा में वह खड़ी हैं। वह ऊर्ध्वमुखी हैं। अपने बाहुपाश में तल्लीनतापूर्वक आबद्ध कर कामदेव अपनी प्रिय पत्नी रति के साथ यौन संबंध के सम्पादन में मग्न हैं और कामदेव और रति की यही योग मुद्रा छिन्नमस्ता का पीठासन है जो अपने आप में अति रहस्यमय है। मंत्रमहोदधि तंत्र ग्रन्थ में इस संबंध में कहा गया है–

भास्वन्मण्डल मध्यगां निजशिररिछन्नं विकीर्णालकं।
स्फारास्यं प्रतिबद्गलात्स्वरूधिरं, वामकरे विभ्रतीम्।
यामाशक्तरतिस्म रोपरिगतां, सख्यौ निजे डाकिनी।
वर्णिन्यौ परिदृश्य मोद कलितां, श्री छिन्नमस्तां भजे।।

(मंत्रमहोदधि)

कब सांझ की स्याही रात के अन्धकार में बदल गयी पता ही न चला। मेघनाथ को पूजा–आरती करनी थी इसलिए उस दिन लौट आना पड़ा। सान्याल महाशय तंत्र के गम्भीर विद्वान हैं यह समझते देर न लगी थी मुझे। कहने की आवश्यकता नहीं प्रायः मेरा जाना होने लगा सान्याल महाशय के यहां। बड़ी शान्ति मिलती थी। अब जब भी जाता तो सन्देश और कारणवारि अवश्य ले जाता। प्रसन्न होते साधक महाशय।

माघ का महीना था शायद। हल्की–हल्की बारिश हो रही थी। उस दिन जरा जल्दी मेरा जाना हो गया था। दरवाजा अधखुला था। धीरे से एक पल्ला हटाकर भीतर चला गया मैं। उस समय सान्याल महाशय पूजा घर में किसी से कोमल स्वर में बात कर रहे थे। झांक कर देखा धृष्टता थी मेरी लेकिन मन नहीं माना था और देखा तो स्तब्ध रह गयी आत्मा। सान्याल महाशय के सामने एक किशोरवय की कन्या बैठी थी बिलकुल वस्त्रहीन नग्न और निर्भय। सिर के बाल मुड़े हुए थे गोल, सुन्दर और दीप्त मुख बड़ी–बड़ी आँखे लम्बी नाक और रक्ताभ होंठ। गले में हड्डी के टुकड़ों की माला और कानो में कुण्डल। सबसे आश्चर्य की बात तो यह थी कि उस अज्ञात और रहस्यमयी किशोरी का सारा शरीर लाल था खून जैसा लाल। हे भगवान! कौन थी वह रहस्यमयी। सान्याल महाशय अपने हाथों से उसे रसगुल्ला खिला रहे थे– खा ले, बस, एक और किशोरी हाथ हिलाकर कहती नहीं, बाबा अब बस... अब नहीं खाऊँगी बहुत हो गया बाबा..।

आश्चर्य और कौतूहल से भर उठा मैं। उस दिन झोले में रसगुल्ला की हड़िया, जवा की माला और कारणवारि की बोतल लेकर गया था मैं। देखा वही रसगुल्ले की हड़िया सामने रखी थी सान्याल महाशय के सामने और उसी में से निकाल–निकाल कर रसगुल्ला खिला रहे थे वह उस किशोरी को। टटोल कर देखा, झोले में हड़िया थी, लेकिन रसगुल्ला? रसगुल्ला उसमें नहीं था। हे भगवान! यह कैसा अद्‌भुत चमत्कार।..... हे भगवान! क्या देख रहा हूँ मैं।

एकाएक वह किशोरी अपने स्थान से गायब हो गयी और सान्याल महाशय खड़े होकर बाहर निकले। मुंह बाये हत्प्रभ खड़ा था मैं। मुझे

देखकर मुस्कराये, फिर बोले– माँ को भूख लगी थी रसगुल्ला चाहिए था उसे। कहाँ से लाता? बाहर निकलकर कहां जाऊँ लेने। सोचा, तुम्हारा ही रसगुल्ला माँ को खिला दूँ। अच्छा किया न?

क्या उत्तर देता मैं? कुछ बोला ही न गया मुझसे लेकिन जब झोले से माला और कारणवारि निकालने लगा तो हड़िया भारी लगी मुझे। चौंक पड़ा मैं हड़िया पहले ही की तरह भरी हुई थी रसगुल्ले से। हे माँ! कौन सी लीला है यह तुम्हारी? ला निकाल– हँस कर बोले सान्याल महाशय मुझे भी भूख लगी है।

खा–पीकर छिन्नमस्ता का प्रसंग फिर चल पड़ा। महाविद्या का छिन्नमस्ता रूप अनर्वचनीय और अति रहस्यमय है। जवा पुष्प जैसा, नहीं, नहीं वैसा नहीं उदीयमान भगवान सूर्य के समान अरुणवर्णीय है अत्यन्त गहरा लाल। देवी के दो हाथ हैं। बायें हाथ में अर्धचन्द्राकार खड्‌ग है जो रक्तरंजित है और शोणित की बूँदें नीचे गिर रही हैं। वह रक्त स्वयं देवी का ही है उन्होंने उसी रक्तरंजित खड्‌ग से अपना गर्दन काट डाला है। बायें हाथ में उनका कटा हुआ रक्तालिप्त सिर है। देवी के खण्डित मुण्ड के तीन नेत्र हैं। केश बिखरे हुए है मुख खुला है। कटे गर्दन से शोणित की तीन धारायें अत्यन्त वेग से ऊपर की ओर निकल रही है। बीच की धारा अन्य दो धाराओं की अपेक्षा अधिक मोटी है और काफी ऊपर तक गतिशील है। कापालिक तंत्र के अनुसार वे तीन रक्त धारायें ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की ओर संकेत करती हैं। वैसे वे तमोगुण, रजोगुण और सत्वगुण की भी प्रतीक है। बीच की जो मुख्य धारा है वह बायें हाथ में लिए देवी के स्वयं के मुख में गिर रही है। देवी के दोनों ओर दो अन्य देवियाँ हैं– जिनके नाम है– वर्णिनी और परा डाकिनी। वर्णिनी के बायें हाथ में नरपशु का खण्डित मुण्ड है और दाहिने हाथ में रक्तालिप्त खण्ड्‌ग है। परा डाकिनी के भी बायें हाथ में रक्तरंजित नरपशु का मुण्ड है और दाहिने हाथ में खड्‌ग। दो रक्त की धाराएं वक्राकार घूम कर वर्णिनी और परा डाकिनी के खुले मुख में गिर रही है। तीनों देवियां नृत्य मुद्रा में है और उनके पैरों में नागवेणी और नुपुर है। भगवती छिन्नमस्ता' का यह भौतिक स्वरूप है जो अपने आप में गूढ़, गोपनीय और रहस्यमय है। जो साधक तंत्र के आध्यात्मिक पक्ष

से भलीभांति परिचित है– वहीं 'माँ' के रूप के वास्तविकता को भी भलीभांति जान समझ सकता है।

●●●

कई कारणों से पूरा एक सप्ताह न जा सका मैं सान्याल महाशय के यहां। एक दिन केदारघाट पर मेघनाथ मिल गये। मुझसे रहा न गया उस दिन जो अविश्वसनीय चमत्कार देखा था, सब बतला दिया उन्हें मैंने। थोड़ा हँसकर बोले मेघनाथ सब माँ की लीला समझिए। सान्याल महाशय बहुत गहरे साधक हैं छिन्नमस्ता के। वह महाविद्या विलक्षण रूप में प्रकट होकर उनके हाथ से रसगुल्ला खाती है कभी–कभी। बड़े भाग्यवान हैं पुण्यात्मा हैं और संस्कार सम्पन्न हैं आप शर्माजी कि आपको 'माँ' महाविद्या का अप्राप्य दर्शन लाभ हुआ और आपके रसगुल्ला का भोग स्वीकार किया उस महाशक्ति ने। धन्य है, धन्य है प्रभु।

यह सुनकर रोमांचित हो उठा मैं। अब तो और अधिक कौतूहल और जिज्ञासा जागृत हो उठी छिन्नमस्ता के विषय में जानने समझने की। उसी समय पहुंच गया उस महासाधक के स्थान पर। देख कर हँसे महाशय विषय प्रसंग आगे बढ़ा कहने लगे– यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो तांत्रिक साधना परम्परा में इस महाविद्या के उपासक बहुत कम हैं। यत्र–तत्र जो हैं भी, वे अत्यन्त गुप्त भाव से रहते हैं अपने आपको प्रकट नहीं करते। यह महाशक्ति वीर रस प्रधान हैं। भगवान के नृसिंहावतार की है यह महाशक्ति रूपा महाविद्या छिन्नमस्ता। आपको मालूम होना चाहिए कि 'तंत्र' शब्द के 41 अर्थ हैं। उनके अन्दर 'आगम' आदि नामों से सम्बोधित किए जाने वाले तथा धर्म और दर्शन दोनों से संबंध रखने वाले शास्त्र विशेष को भी तंत्र शब्द का एक अर्थ बतलाया गया है। उस शास्त्र विशेष को ही प्रमाण मान कर चलने वाले लोग ही 'तांत्रिक' कहे जाते हैं और जिनकी परम्परा को कहते हैं– 'तांत्रिक परम्परा' जिसके अन्दर विरला ही कोई छिन्नमस्ता का होता है साधक। वर्तमान समय में 'तांत्रिक' शब्द अत्यधिक प्रचलित हो रहा है। साधारण से साधारण लोग भी थोड़ी बहुत साधना उपासना कर तांत्रिक बन बैठते हैं। भारी भ्रम है जो वास्तव में सच्चे अर्थों में तांत्रिक होता है वह किसी भी रूप में अपने आपको तांत्रिक नहीं कहता। इसके स्थान पर साधक

शब्द का प्रयोग करे तो ठीक और यही कारण है कि शनैः शनैः तांत्रिक परम्परा भी लुप्त होती जा रही है।

यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि तंत्र शास्त्र के विषय अत्यन्त गम्भीर, गूढ़ और गोपनीय रहस्यों से भरे हैं और यही एकमात्र कारण है कि लोग तंत्र साधना के प्रति उत्सुक, जिज्ञासु और उत्कण्ठित हो उठते हैं। स्वाभाविक भी हैं इसीलिए कभी कदा किसी जिज्ञासु के मन में छिन्नमस्ता तत्व के रहस्य को जानने समझने की उत्सुकता का जागृत भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है। किन्तु जिज्ञासु में संस्कार होना चाहिए तभी उसकी जिज्ञासा गम्भीर होगी। उत्कण्ठा भी स्वाभाविक होना चाहिए। तभी जिज्ञासा का समाधान सार्थक होगा। अन्यथा नहीं विषय के प्रति जिज्ञासा का भाव हो उस विषय का ज्ञान आवश्यक है। जिज्ञासु में श्रद्धा विश्वास और एकाग्रता का भी होना वाञ्छनीय हैं। यह बात सही हैं कि तंत्र साधना और उसके रहस्यों से हम परिचित नहीं है। यदि हमारी अन्तरात्मा में श्रद्धापूर्वक भक्ति भाव है तो तंत्र के रहस्य ज्ञान के अभाव में भी हम सामान्य रूप से अभीष्ठ फल प्राप्त अवश्य कर लेते हैं। इस प्रसंग में यह भी बतला देना आवश्यक है कि सामान्य सफलता अथवा अभीष्ट सिद्धि के लिए योग्य साधक और क्रिया सम्पादन की उचित प्रणाली– ये दोनों ही अपेक्षित है।

इसे किसी भी क्रिया की सफलता के मूल में देखा जा सकता है। फिर भी यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि ऐसा सफल साधक धर्म के क्षेत्र तक ही सीमित रह जाता है। उसका इष्ट के प्रति भक्ति भाव धर्म हो जाता है और हो जाता है कर्तव्य। जहां धर्म है वहां उसके प्रति कर्तव्य आवश्यक है। इसी कारण वह दर्शन के क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर पाता दर्शन से हमारा तात्पर्य है, आध्यात्मिक रहस्यों से संबंधित ज्ञान। विहित साधना क्रिया में यदि दर्शन एकाश्रित हो जाय तो उसे हम मणिकांचन योग यानी सोने में सुगन्ध कहेंगे। भक्ति में दर्शन का अभाव होने के कारण आन्तरिक सुख और आन्तरिक आनन्द की अनुभूति जैसी होनी चाहिए वैसी नहीं होती है। आन्तरिक भक्तिभाव के फलस्वरूप मन को अवश्य शान्ति और सुख उपलब्ध होता है। भक्त यह समझता है कि हमारा इष्ट हमारे समीप है, हमारे सुख–दुख का साथी है मेरी भक्ति

से प्रसन्न है वह। इस विचार में दो मत नहीं हो सकते कि भक्त के इस मनोभाव के कारण वैसा परिणाम भी उसे उपलब्ध होता है। ऐसी भक्ति में यदि पूर्ण समर्पण का भाव इष्ट के प्रति है तो फिर क्या? भक्त और उसके इष्ट में कोई और किसी भी प्रकार का आन्तरिक भेद नहीं रह जाता है। एक प्रकार से वह अद्वैत की स्थिति हो जाती है। रामकृष्ण परमहंसदेव इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। तांत्रिक साधना में सफलता की दृष्टि से भक्ति, ज्ञान और दर्शन– इन तीनों का समन्वय आवश्यक है। इन तीनों को स्वीकार कर साधना मार्ग पर चलने वाला साधक निःसन्देह अपने लक्ष्य को उपलब्ध हो जाता है आचार्य शंकर की परम्परा की भी यही विशेषता है कि वे तीनों चीज उनमें विद्यमान हैं– भक्ति है, ज्ञान है और दर्शन।

माँ का भोग–आरती करने के बाद सान्याल महाशय ने आगे कहना शुरू किया– मुख्य विषय छिन्नमस्ता है। तुम्हारी जिज्ञासा उसी के संबंध में है।

जी हाँ! मैंने सिर हिलाकर बोला– आप जैसे विद्वान और साधक द्वारा तंत्र के इस रहस्यमय तत्व पर जो प्रकाश पड़ेगा, वह निश्चय ही अध्यात्म की अमूल्य निधि समझी जायेगी मेरे लिए।

यह स्वीकार करना पड़ेगा कि छिन्नमस्ता वीर रस प्रधान महाविद्या है। प्राक्काल से ही तांत्रिक साधना परम्परा में छिन्नमस्ता की साधना उपासना आदि वीर रस की अधिष्ठात्री देवी के रूप में होती आ रही थी जिस रहस्य को वर्तमान में साधकगण भूल गये हैं। वैसे देखा जाय तो श्रृंगार आदि रस स्वसिद्ध साधकों को भोग और मोक्ष दोनों सम्पन्न करता है। फिर भी वीर रस की यह अपनी विशेषता केवल अपने लिए ही सुरक्षित है कि वह व्यक्तिगत समुन्नति का ही साधन नहीं, बल्कि वह बिलकुल स्पष्ट रूप से समस्त राष्ट्र का भी समुन्नत साधन दिखलायी देता है। राष्ट्र की रक्षा और राष्ट्र की समुन्नति दोनों राष्ट्रीय वीरजनों पर ही निर्भर है। इसे स्वीकार कर लेने पर यह स्वतः सिद्ध हो जाता कि समग्र राष्ट्र की सर्वतोमुखी समुन्नति वीर रस ही करता है और कोई नहीं। रसशास्त्र से परिचय रखने वाले यह अच्छी तरह जानते हैं कि 'वीर रस का स्थायी भाव है उत्साह। सैनिको में प्रबल उत्साह न हो तो

राष्ट्र की रक्षा और राष्ट्र का विजय संभव नहीं। राष्ट्र और उसके समाज में पूर्ण रूप से उत्साह का संचार अत्यन्त आवश्यक है। महाविद्या छिन्नमस्ता वीर रस की अधिष्ठात्रि कैसे हैं इस पर थोड़ा विचार होना चाहिए। मनुष्य के मानसिक परिस्थिति के अनुसार उसमें कामात्मक काम पहले उत्पन्न होता है और फिर आकर्षणात्मक रति का उदय होता है। सम्भोगरत काम और रति पर आसीन छिन्नमस्ता इस बात की ओर संकेत करती हैं कि वीरों को चाहिए कि वे अपनी वीरता द्वारा राष्ट्र की रक्षा के लिए रति और काम पर पहले विजय प्राप्त करें तभी उनको अपने लक्ष्य में सफलता प्राप्त होगी।

(1) काम और रति को छिन्नमस्ता अपने पैरों से कुचलती हुई नृत्य मुद्रा द्वारा यह बतलाती है कि वीरों को आकर्षण विषयों से सदैव अपने आपको निर्लिप्त रखना चाहिए।

(2) छिन्नमस्ता के शरीर का रक्त वर्ण यह बतलाता है कि उत्साहात्मक स्थायी भाव एवं तादात्मक वीर रस अत्यन्त गम्भीर होने के कारण वैसे तो सत्वं गुण से युक्त होता है परन्तु वीरता तभी उमड़ती है जब तक उसमें रजोगुण का समावेश नहीं होता। 'राग' रजोगुणात्मक होता है। इसे सभी दर्शन शास्त्री स्वीकार करते हैं।

(3) छिन्नमस्ता ने अपनी नग्नता से वीरो को असत्य से सदा दूर रहते हुए पूर्ण रूप से सत्य को अपनाने की ओर संकेत किया है क्योंकि सत्य नग्न है। छिन्नमस्ता अपने हाथों से अपना सिर काट कर अपने दूसरे हाथ में स्वस्थापित मुखमण्डल द्वारा पूर्ववत् सुस्थित अपने गले से निकलने वाले मुख्य रक्त धारा का पान दिखलाकर वीरों को मानो यह शिक्षा दे रही कि वे भी इसी प्रकार निर्भीक होकर किसी भी परिस्थिति में किंकर्तव्यविमूढ़ न हो। वे विजय प्राप्त करें और मरने पर भी अपने आपको जीवित ही समझे।

(4) अब छिन्नमस्ता के दोनों ओर स्थित दोनों योगिनियों पर विचार करिये। उनका संकेत क्या है? उनके द्वारा दो शोणित धारा का पान करा कर इस बात का संकेत कर रही है कि राष्ट्र की रक्षा का भार पूर्ण रूप से वीरो पर हैं। यह इसलिए कि राष्ट्र के समाज में दो प्रकार

के ही लोग होते हैं– पहला प्रवृत्तिशील और दूसरा निवृत्तिशील। वे दोनों योगिनियाँ प्रवृत्ति और निवृत्ति के रूप हैं जो भगवती का रक्त पान कर अपना–अपना अस्तित्व बनाए रखती हैं। छिन्नमस्ता के भौतिकता के आधार पर जिन गुह्य रहस्यों पर प्रकाश डाला गया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्र और समाज वीरों की वीरता के विश्वास पर, उनके भरोसे पर और उनकी शक्ति पर अपने को सुरक्षित समझता है और निश्चित हो कर जीवनयापन करता है और सुखी रहता है। सारांश यह है कि छिन्नमस्ता वीर रस का भाव है और उनकी साधना अन्तर्वीर और बहिर्वीर दोनों के लिए है। बहिर्वीर राष्ट्र की रक्षा के लिए है अन्तर्वीर हैं समाज और परिवार की रक्षा के लिए। तांत्रिक साधना भूमि में तीन भाव हैं– पशुभाव, वीरभाव और दिव्यभाव। साधक अपनी साधना की प्रथमावस्था में पशुभावी है। पशुता अथवा अज्ञानता के अन्धकार से निकलने की चेष्टा पशुभाव है। पशुभावी साधक प्रकृति के आधीन रहता है। प्रकृति से मुक्त होना, पशुभाव से मुक्त होना है। पशु प्रकृति के अधीन होते हैं। अपने आप में वह स्वतंत्र नहीं है। पशुभाव से मुक्ति का एक यह भी अर्थ है– स्वतंत्रता लाभ। पशुभाव की साधना भूमि में उग्र महाविद्याओं की साधना है। स्वतंत्रता लाभ के बाद वीरभाव उपलब्ध होता है। वीरभावापन्न साधक प्रकृति के आधीन नहीं प्रकृति स्वयं उसके आधीन हो जाती है। वीरभाव की साधना भूमि में समोग्र महाविद्या की साधना है। इस साधना की उपलब्धि है दिव्यभाव की प्राप्ति। इस दिव्यभाव की भूमि में सौम्य महाविद्याओं की साधना है जिसकी उपलब्धि है–भवमुक्ति, यानि शववत् जीवन। साधक के सभी कर्म निरपेक्ष, विरक्तता पूर्ण होते हैं। वह कर्म करते हुए भी कर्म नहीं करता। उसकी आत्मा, दिव्यात्मा का स्थान ग्रहण करती है। ऐसे ही साधक को दिव्यात्मा कहते हैं। इस अवस्था में महाशक्ति उसे आत्मसात कर लेती है। महाशक्ति की इच्छा साधक की इच्छा हो जाती है। महाशक्ति के भाव साधक के भाव हो जाते हैं। तात्पर्य यह कि महाशक्ति जो चाहती है वह साधक द्वारा पूर्ण करती है। इसी स्थिति को तंत्र में स्थितिप्रज्ञ कहते हैं। (विशेष अध्ययन के लिए पढ़े 'आवाह्न' शीघ्र प्रकाश्य)

एक महीने के भीतर सान्याल महाशय से जो ज्ञान प्राप्त हुआ था उसे तंत्र साधना भूमि की अमूल्य निधि समझनी चाहिए। विशेष कारण वश, लगभग दस–बारह दिन जाना न हो सका मेरा उस महासाधक के सान्निध्य में। एक दिन मेघनाथ ने बतलाया कि आज कल कोई एक राजा साहब रात्रि के समय सान्याल महाशय के यहां आते है थोड़ा सत्संग कर वापस चले जाते हैं।

कौन हैं वह राजा साहब ?

यह तो मैं नहीं जानता– मेघनाथ बोले– यह भी नहीं जानता कि राजा साहब का नाम क्या है और कहाँ से आते हैं।

क्या आपने उनको देखा है?

नहीं, देखा नहीं है, सुना है बस।

मैं उत्सुक हो उठा। कौन है वह राजा साहब ? निश्चय ही कोई आन्तरिक संबंध होगा, तभी तो व्यग्र हो उठा। मन नहीं माना उसी दिन गया मैं रात के आठ बजे थे। मिठाई, माला, कारणवारि सामने रखकर प्रणाम किया महासाधक को सिर घुमाकर देखा– एक महाशय चटाई पर बैठे हुए थे। चालीस के ऊपर ही रही होगी आयु लालिमा लिए गोरा रंग, सुगठित शरीर, लम्बा कद, रेशमी कुर्ता–पाजामा रत्नजड़ित स्वर्णाहार और मोतियों की मालायें झूल रही थी गले में, कानों में हीरे का कुण्डल। बड़ी–बड़ी झील जैसी गहरी आंखे, तुर्रेदार मूंछ, चेहरे पर चमक और उस चमक में मिलीजुली गम्भीरता का भाव। कुल मिला कर किसी राजा जैसा प्रभावशाली आकर्षक व्यक्तित्व समझते देर न लगी मुझे– वही राजा साहब थे जिनकी चर्चा मेघनाथ ने की थी।

सान्याल महाशय बोले– धर्मशील, कर्तव्यपरायण और सत्य मार्ग के अनुयायी वीर पुंगव राजाओं पर महाविद्या श्रेष्ठ छिन्नमस्ता की विशेष कृपा होती है। उनका विशेष अनुग्रह प्राप्त होता है। उनकी सभी प्रकार की मनोकामनाएं भी पूर्ण करती है और अपना दर्शन देकर कृतार्थ भी करती है वह महाशक्ति इसमें सन्देह नहीं।

महाराज की ओर संकेत करते हुए मुझसे बोले सान्याल महाशय स्वयं महाराज को देखिए ये भी मां की कृपा और माँ के अनुग्रह प्राप्त

एक परम सौभाग्यशाली पुरुष हैं। उन्हीं के आशीर्वाद से आपको पुत्र लाभ हुआ था। पुत्र के लिए अत्यधिक चिन्तित और दुखी थे महाराज। तुमको यह सुनकर घोर आश्चर्य होगा कि महाराज के कल्याण के लिए भगवती छिन्नमस्ता ने पूरी एक रात में ही अपने मायाजाल से अपने लिए एक सुन्दर मन्दिर का निर्माण किया था जो आज भी विद्यमान है।

यह सुनकर घोर आश्चर्य हुआ। राजा के कल्याण के लिए एक ही रात में मन्दिर का निर्माण और वह भी स्वयं छिन्नमस्ता द्वारा...... कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

मेरे मन में उमड़—घुमड़ रहे भावो को शायद समझ गये सान्याल महाशय। बोले चिन्ता न करो इतना व्याकुल भी होना शुभ नहीं सब मालूम हो जायेगा, धैर्य रखो। तुमको ज्ञात होना चाहिए कि छोटा नागपुर का जो घनघोर जंगली इलाका है— वह आदिकाल से महाविद्या श्रेष्ठ भगवती छिन्नमस्ता की क्रीड़ाभूमि रही है और आज भी है। आज भी किसी न किसी रूप में किसी भाग्यवान को उनका दर्शन लाभ हो जाता है।

थोड़ा रूक कर सान्याल महाशय आगे कहने लगे माघी पूर्णिमा का दिन था। रात काफी बीत गयी थी। निस्तब्ध जंगल में चारो ओर पूर्णिमा की रूपहली चांदनी बिखरी हुई थी। दामोदर और भैरवी नदी का संगम दो नदियों का मिलन। संगम से थोड़ा हटकर विशाल पीपल का बूढ़ा पेड़ जिसके नीचे कई स्थानों पर आग की लाल पीली लपटें उठ रही थीं। जाड़े की ठिठुरन भरी रात। छोटा नागपुर के राजा रजसंग्राम सिंह शिकार पर निकले थे और अपने फौज के साथ वहां अपना पड़ाव डाले हुए थे। पड़ाव का चौथा दिन था शायद। चारो ओर फौजियों के कैम्प थे और बीच में राजा साहब का था कैम्प राजोचित सुख सुविधाओं से पूर्ण। राजा साहब अपने पलंग पर गहरी नींद में सोये हुए थे उस समय। उसी अवस्था में उन्होंने एक सपना देखा— एक सुन्दर युवती लाल रेशमी साड़ी पहने हुए राजा साहब के सामने खड़ी थी। उसकी कलाइयों में लाल चूड़ियाँ थी और दमकते मस्तक पर लाल सिन्दूर का गोल टीका। उसके बाल खुल कर पीठ पर बिखरे हुए थे। मन्द—मन्द मुस्करा रही थी। राजा साहब अवाक् देख रहे थे उस रहस्यमयी युवती

की ओर और तभी वह युवती मन्द स्वर में बोली– राजन् पिछले कई जन्मों के शुभ संस्कारों से सम्पन्न तुम एक धर्मनिष्ठ और यशस्वी राजा हो फिर भी तुम्हारा जीवन उदास और सूना–सूना सा है इसलिए कि इतनी आयु हो जाने पर भी तुम पुत्र सुख से वंचित हो। तू मेरी आज्ञा का पालन कर तेरी रानी की सूनी गोद भर जायेगी। नींद खुल गयी इसके बाद स्वप्न भंग हो गया। राजा साहब उठकर बैठ गये। उन्हें रोमांच हो आया था। रह–रह कर सिहर उठते थे वह। न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर वह बाहर निकले कैम्प के। सभी फौजी गहरी नींद में सो रहे थे। चांद पश्चिम की ओर ढलने ही वाला था घोर निस्तब्ध ाता फैली हुई थी जंगली वातावरण में।

महाराज धीरे–धीरे संगम की ओर बढ़ गये। वहां भी घोर नीरवता थी। रह–रह कर सियारो के रोने और साथ ही कुत्तों के भौंकने की आवाज गूंज उठती उस सन्नाटे में और कुछ क्षणों के लिए चिथड़े हो कर बिखर जाता सन्नाटा।

न जाने किस माया के वशीभूत होकर चुपचाप मौन साधे और दोनों हाथ बांधे खड़े आकाश की ओर देखने लगे थे। उसी समय संगम के जल के भीतर से एक अति सुन्दर षोडशवर्षीया कन्या निकली जिसका रूप अलौकिक था। उसकी आंखे बड़ी–बड़ी थी और मुखमण्डल दप्–दप् कर रहा था सोने की तरह। बाल बिखरे हुए थे। सिर पर रत्नजड़ित स्वर्ण मुकुट था। पीले रंग की रेशमी साड़ी पहने हुए थी वह। वातावरण सुगन्धित हो रहा था। राजा साहब सम्मोहित होकर उस विलक्षण कन्या की ओर देख रहे थे अपलक।

राजा साहब की स्थिति देखकर वह कन्या एक बार मुस्करायी और कहने लगी मधुर और कोमल स्वर में राजन्! मैं दस महाविद्याओं में श्रेष्ठ महाविद्या छिन्नमस्ता हूँ। साधकगण प्रचण्ड चण्डिका के रूप में मेरी साधना करते हैं। मैं वीर भावापन्न शक्ति हूँ। वीरों पर प्रसन्न रहती हूँ। यहां तुम्हारा आना तुम्हारी इच्छापूर्ति के लिए हुआ है। हे राजन! मैं तुमको वरदान देती हूँ कि आज से ठीक ग्यारह मास के बाद तुम्हारे यहां सुन्दर और संस्कार सम्पन्न पुत्ररत्न का जन्म होगा। साधकों के अभाव में और मेरी साधना दुरूह होने के कारण मेरे मन्दिर का अभाव

है, इसलिए मैंने आज रात इस अरण्य प्रान्त में स्वयं अपने लिए एक मन्दिर का निर्माण किया है। मन्दिर के भीतर एक शिला पर मेरा रूप अंकित है। वह जाग्रत साधना रूप है। तुम प्रातःकाल इसी पवित्र संगम में स्नान कर मेरे मन्दिर में जाना। मेरे रूप की पूजा–अर्चना और आरती करना और अन्त में बलि भी देना एक पशु की। तुम्हारा कल्याण होगा।

इतना कह कर वह देवी पानी में ही अदृश्य हो गयीं। पूरब का नीला आकाश सफेद होने लगा था। उसी समय राजा साहब को खोजते हुए उनके मंत्री सुच्चासिंह वहां आ गये। राजा साहब ने उनको स्वप्न में देवी के दर्शन की बात बतलायी और फिर सुनाई पूरी कथा।

सुच्चासिंह सुनकर स्तब्ध और अवाक् रह गये। तुरन्त पूजन सामग्री और बलि की व्यवस्था की गयी, राजा साहब ने स्नान किया और अपने मंत्री और राजकर्मचारियों को साथ लेकर मन्दिर की खोज के लिए जंगल के भीतर चले गये। जंगल भयानक था और घना भी। अब तक सूर्योदय हो चुका था। पक्षी चहचहाने लगे थे। जैसे–जैसे राजा साहब आगे बढ़ते गये, वैसे ही वैसे घना और भयानक होता गया जंगल। दोपहर का समय हो चुका था। सभी लोग थक गये थे। भूख भी लगी थी लोगों को और उस समय एकाएक एक सुरम्य स्थान दिखलायी दिया। उस स्थान के चारो ओर विविध प्रकार के फूलों और फलों के हरे–भरे और घने वृक्ष थे और उन वृक्षों से घिरा हुआ एक नवनिर्मित सुन्दर मन्दिर था। देखकर लगता था कि अभी–अभी उसका निर्माण हुआ है। मन्दिर को देखकर सभी लोग स्तब्ध और अवाक् रह गये। सुच्चासिंह का तो मुँह खुला का खुला ही रह गया था। राजा साहब अपने सामने सपने को साकार देख कर भाव विह्वल हो उठे एकबारगी। झर–झर कर उनकी आँखों से गिरने लगे आंसू। माँ का आशीर्वाद गूंजने लगा था उनके कानो में।

धीरे–धीरे सीढ़ी चढ़कर ऊपर पहुंचे महाराज और सुच्चासिंह के साथ पूजा सामग्री बलि (बकरा) लेकर गर्भगृह में प्रवेश किया। सामने शिला पर अंकित छिन्नमस्ता का रूप देख कर भाव–विभोर हो उठे महाराज और उसी अवस्था में मां की पूजा आरती आदि की और उनके चरणों में अपने हाथ से बलि दी। बलिरक्त मां के चरणों का स्पर्श करता

हुआ चारो ओर फैल गया। स्तुतिगान में लिप्त हो गये थे महाराज। मंत्री सुच्चासिंह और दरबारी ये सारा अद्‌भुत और अविश्वसनीय चमत्कार देखकर हतप्रभ, आश्चर्यचकित और विह्वल थे। एकाएक उसी समय श्वेत वस्त्र धारण किये गौरवर्ण का एक सुन्दर युवा ब्राह्मण पूजा की प्रचुर सामग्री लिए वहां आ पहुंचा। ब्राह्मण युवक के चेहरे पर तेज था और उसकी मुद्रा शान्त थी। उसका व्यक्तित्व किसी देवपुरुष जैसा लगता था। उसने किसी की ओर न देखा और न तो किसी से कुछ बोला ही वह। माँ की छवि के सामने बैठ कर मुग्ध भाव से मंत्रोच्चारण करने लगा। फिर उसने विधिवत् पूजा की। नारियल तोड़कर उसके जल से मां का चरण धोया, हवन किया तांत्रिक मंत्रों से और अन्त में अपने साथ लाए हुए पशु की बलि दी।

उसी समय मां छिन्नमस्ता प्रकट हुई। उनके तेज से मन्दिर का गर्भगृह प्रकाशमय हो उठा एकबारगी। मां का रूप अवर्णनीय था। उन्होंने महाराज के मस्तक पर जवापुष्प फेंकते हुए उनसे मधुर स्वर में कहा– राजन्! मैं तुमको वरदान देती हूँ कि तुम्हारा नाम 'रज' है और पहली बार तुम्हारे हाथ से मेरी पूजा हुई। आपकी पत्नी का नाम 'रप्पा' है। इसलिए इन दो नामों के अनुसार मेरे द्वारा स्वनिर्मित मेरे इस स्थान का नाम 'राजप्पा' होगा। राजप्पा के नाम से मेरी प्रसिद्धि संसार में होगी और इतना नहीं राजप्पा के नाम से जो मेरी पूजा करेगा, बलि देगा और साधना उपासना करेगा– उसका मैं कल्याण करूंगी। इतना कहकर मौन युवा ब्राह्मण की ओर मुस्कराते हुए देखा और फिर मन्द स्वर में कहा– हे ब्राह्मण! तुम्हारे ही वंश के लोग मेरी पूजा आरती करेंगे दूसरा कोई नहीं। यह मैं तुमको अधिकार देती हूँ इतना कहकर महामाया का अस्तित्व गर्भगृह में फैले हुए प्रकाश में विलीन हो गया और उसी के साथ वह दिव्य प्रकाश भी। यह कब की घटना है? सहज भाव से पूछा मैंने। मेरा प्रश्न सुन कर कुछ क्षण मौन रहे सान्याल महाशय फिर बोले– 24 जनवरी सन् 1272 ई0 की है। फिर क्या हुआ?

होगा क्या? मां का आशीर्वाद फलित हुआ 30 नवम्बर सन् 1273 ई0 में रानी रप्पा ने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। बालक का नाम रखा गया रणविजय सिंह। वे भी पिता की तरह माँ छिन्नमस्ता के परम

भक्त थे। अमावस्या और पूर्णिमा के दिन स्वयं जाकर मन्दिर में मां की पूजा अर्चना करते। अब तो राज समाप्त हो गया लेकिन मां की नित्य पूजा आरती करने वाला उस युवक ब्राह्मण का वंश अभी भी है। सचमुच मां के चमत्कारों की कथा अनेक है। कभी समय मिलेगा तो उनको भी सुनाऊँगा मैं। इतना कहकर सान्याल महाशय उठे और मन्दिर के कमरे में चले गये। रात्रि का प्रथम प्रहर शायद व्यतीत हो चुका था। निश्चय ही साधक की साधना उपासना आदि का समय हो गया था। राजसी व्यक्तित्व का वह व्यक्ति जो अभी तक कोने में चटाई पर बैठे–बैठे सारी कथा सुन रहा था मौन साधे, वह भी अपने स्थान से उठकर मन्दिर के कमरे में चला गया। मैं बैठा रहा अपने स्थान पर। सोचने लगा यह व्यक्ति है कौन। अभी तक सान्याल महाशय ने उसका परिचय नहीं दिया? मेघनाथ से तो इतनी जानकारी मिली थी कि कोई राजा साहब हैं, वह आते हैं।

लगभग एक घंटे के बाद सान्याल महाशय मन्दिर के कमरे से बाहर निकले। वह शान्त थे मेरी ओर देखा भी नहीं लेकिन आश्चर्य की बात तो यह कि राजा साहब कमरे से बाहर नहीं निकले। बाहर निकलकर बाहर से दरवाजा बन्द कर दिया था सान्याल महाशय ने।

राजा साहब गये कहां? आश्चर्य और कौतूहल के मिले–जुले भाव से भर गया मेरा मन। सान्याल महाशय से कुछ पूछने का साहस नहीं हो रहा था उस समय।

बाद में मालूम हुआ। वे राजा साहब और कोई नहीं स्वयं रजसंग्राम सिंह थे। उनकी दिव्य आत्मा कभी–कभी भौतिक शरीर में वहां उपस्थित होती थी और सान्याल महाशय का दुर्लभ सान्निध्य प्राप्त करती थी। स्वयं सान्याल महाशय से यह रहस्यमयी बात ज्ञात हुई थी मुझे।

●

रहस्य अट्ठारह

भारतीय रसायन में स्वर्ण निर्माण का रहस्य

काशी के केदारघाट के ऊपर एक मुहल्ला है नाम है खिन्नी तले इस मुहल्ले में अहीर मल्लाह, बनिया बंगाली और ब्राह्मण आदि जाति विरादरी के लोग रहते थे। सन् 1957 ई0 में उसी मुहल्ले में एक ब्रह्मचारीजी रहते थे। नाम था सुखदेव ब्रह्मचारी। वृद्ध थे लेकिन कदकाठी मजबूत थी उनकी। उनके शिष्यों की संख्या काफी के ऊपर ही समझे। सभी शिष्य सुख समृद्ध और धन वैभव से पूर्ण सम्भावित लोग थे। सुखदेव ब्रह्मचारी नाम से आपके मानस पटल पर जो आध्यात्मिक भाव उत्पन्न होगा और जो रूप बनेगा वैसा कदापि मत समझियेगा आप ब्रह्मचारी महाशय को। उस जमाने में उनका मकान सबसे अच्छा और सबसे सुन्दर माना जाता था लम्बे चौड़े मकान में अकेले रहते थे अपने दो तीन सेवकों के साथ ब्रह्मचारी जी। उन सेवकों में एक का नाम था रामेश्वर। रामेश्वर जात का ठाकुर था और रहने वाला था बिहार का। आयु पच्चीस के आसपास थी मुझसे उसकी पटरी बैठती थी। उसी से मालूम हुआ कि ब्रह्मचारीजी का जीवन सुखमय है। राजसी ठाटबाट से रहते हैं। उनके धनी शिष्य लोग बहुत सारा रुपया उन्हें देते हैं। उनके पास किसी बात की कमी नहीं है। कम बोलते हैं, कम लोगों से मिलते हैं और प्रायः सजे–घजे कमरे में भीतर से दरवाजा बन्द कर रहते हैं। कमरे में अकेले क्या करते हैं यह किसी को नहीं मालूम। प्रायः मुहल्ले वाले यही समझते थे कि ब्रह्मचारीजी कमरे में साधना करते हैं।

रामेश्वर से इतनी बात सुनकर सुखदेव ब्रह्मचारी के प्रति कौतूहल और जिज्ञासा से भर उठा मैं। अभी तक ब्रह्मचारीजी को देखा नहीं था और अब उनके दर्शन की भी लालसा जागृत हो उठी मन में।

उन दिनों मेरे एक शुभचिन्तक थे। बनारस के पुराने रईस थे। सोहरत थी, धनी तो थे ही, नाम था चौधरी कुमुद चन्द्र। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के परिवार के थे महाशय। आयु में बड़े होने के बावजूद भी अत्यधिक सम्मान देते थे। चौधरी साहब मुझे। प्रायः नित्य प्रातःकाल मेरे यहां आते थे, जलेबी मगंवाकर नास्ता करते थे और इधर उधर की बातें करके चले जाते थे झूमते हुए। एक दिन बातों ही बातों में मैंने चौधरी साहब से सुखदेव ब्रह्मचारी की चर्चा कर दी।

उनका नाम सुनते ही एकबार चौंके चौधरी साहब फिर जलेबी का टुकड़ा मुंह में डालते, हुए बोले हाँ! जानता हूँ और यह भी जानता हूँ कि वे महाशय सोना भी बनाते हैं। तांबा से सोना जो अपने आपमें शुद्ध रहता है लेकिन वजन में दो तोले कम। क्योंकि सोने का वजन अन्य धातुओं से अधिक हैं।

यह सुनकर अवाक् रह गया मैं एकबारगी। बाद में बहुत सारी बातें मालूम हुई। शिष्यगण सुखदेव ब्रह्मचारी के भक्त नहीं थे ग्राहक थे सोना ले जाते थे और बेचकर एक हिस्सा अपने गुरु को देते थे और शेष अपनी तिजोरी में डाल देते थे। समझते देर न लगी मुझे ब्रह्मचारीजी एक गुप्त रसायनिक थे। रसायन विद्या के गूढ़ रहस्यों से परिचित थे, इसमें सन्देह नहीं काफी प्रयास के बाद मेरी लालसा पूरी हुई। चौधरी साहब के एक मित्र थे चन्द्रभूषण अग्रवाल वे ब्रह्मचारीजी के शिष्य थे। मतलब कि उनके मुख्य ग्राहक थे। चौधरी साहब के कहने पर मुझे एक दिन ले गये ब्रह्मचारीजी के यहां अग्रवालजी।

तीन मंजिला मकान। पहली मंजिल में साधारण बैठक था। बीच वाली मंजिल में एक काफी लम्बा चौड़ा कमरा था। जो पूर्ण रूप से सुसज्जित था। उसी कमरे में अपने शिष्यों से मिलते–जुलते थे और लेन–देन की बातें होती थी।

हालनुमे उस कमरे में तीन ओर ऊँची–ऊँची खिड़कियाँ थीं। जमीन पर ईरानी कालीन बिछा हुआ था और उसी कीमती कालीन पर

एक लम्बी–चौड़ी और सफेद मखमली चाँदर बिछी हुई थी। गद्दी के सामने थोड़ा सा अलग हटकर एक और लम्बी–चौड़ी गद्दी थी जिस पर पीले रंग का रेशमी चाँदर बिछ थी। शायद वह आगन्तुकों के लिए था। छत पर बेलजियम की कीमती झाड़फानूस झूल रहा था। दीवार पर भगवान शंकर और नागार्जुन का बड़ा सा तैल चित्र लगा हुआ था। सुखदेव ब्रह्मचारी रेशमी लुंगी और जारजट का पीला कुर्ता पहने बैठे थे। मसनद के सहारे। गले में पांच लड़ की सोने की मोटी–मोटी सिकड़िया लटक रही थी। निश्चय ही नकली सोने की रही होगी। हाथ की उंगलियों में भी रत्न जड़ित अगूठियां थी जो ब्रह्मचारीजी के वैभव को प्रकट कर रही थी। कहने का तात्पर्य यह कि किसी भी दृष्टि से महाशय ब्रह्मचारी नहीं लगा रहे थे। सिर के छोटे बाल खिजाब से रंगे थे। दाढ़ी मूंछ तो थी ही नहीं, क्लीनसेव हाँ! आंखों में एक विशेष चमक थी जिसको समझ न सका मैं।

अग्रवाल साहब ने मेरा परिचय कराया और अन्त में कहा– डॉ0 गोपीनाथजी कविराज की परम्परा को जो एक प्रबुद्ध कड़ी हैं। फिर बातों का सिलसिला चल पड़ा। मैंने सीधा प्रश्न किया– आप रसायन द्वारा ताँबे को सोने में स्थायी रूप से परिवर्तित कर देते हैं– ऐसा सुना है मैंने। मेरी बात सुनकर ब्रह्मचारीजी की आँखों में जो चमक थी वह बढ़ गयी। स्थिर दृष्टि से काफी देर तक देखते रहे। महाशय मेरी ओर। फिर बोले– मेरी आयु सत्तर वर्ष की है। जिनमें से पूरे पचास वर्षों का समय रस–रसायन के अन्वेषण में ही व्यतीत हो गया मेरा। सफलता मिली। मिलती क्यों नहीं, जब स्वयं नागार्जुन का आशीर्वाद प्राप्त हुआ मुझे और वह भी प्रत्यक्ष।

आश्चर्य हुआ मुझे। मन में सोचने लगा कि सामने बैठे व्यक्ति का जीवन निश्चय ही रहस्यमय है। ब्रह्मचारी के मुख से निकलने वाले शब्दों से मुझे यह समझते देर न लगी कि यह व्यक्ति भारतीय रस–रसायन का मर्मज्ञ है। उसमें इसकी पैठ गहरी है और है उपलब्धि भी गहरी थोड़ी देर रूककर ब्रह्मचारीजी आगे कहने लगे– जब आपने तंत्र का गहन अध्ययन किया है तो यक्षलोक से भलीभांति परिचित होंगे। हाँ! जानता हूँ और यह भी जानता हूँ कि यक्षलोक में

64 यक्षिणियों की अपनी एक बृहद् मण्डली भी है और गुण व शक्ति के अनुसार वह मण्डली चार मुख्य भागो में विभक्त है। उनको भी मण्डली ही कहा जाय तो ठीक रहेगा। प्रत्येक मण्डली की अधिष्ठत्री के रूप एक यक्षिणी है। उन चारों अधिष्ठात्र यक्षिणियों के ऊपर महायक्षिणी है। वह कुबेर की शक्ति है। यक्षराज कुबेर यक्षलोक के अधिपति देवता है। चौथी मण्डली की जो अधिष्ठात्र यक्षिणी हैं– उनको वटयक्षिणी कहते हैं। ठीक बतलाया आपने– ब्रह्मचारीयों बीच में बोले– मैंने उसी वट यक्षिणी की साधना की। पूरे पच्चीस वर्ष। साधना मार्ग में बहुत सारी विघ्न बाधाएं आयी, लेकिन साधना चलती रही मेरी।

आप तो जानते ही होंगे कि स्वर्ण विद्या को लेकर देश–विदेश में अनेक किंवदन्तियाँ और दन्त कथा में काफी प्रचलित थी मैंने कहा– सच पूछा जाय तो इन्हीं कारणों से रसायन शास्त्र की स्वर्ण विद्या से संबंधित भ्रामक उल्लेख ने रहस्यमय और अनोखा आकर्षण उत्पन्न कर रखा था लोगों में सोने के प्रति। यह सत्य है कि प्राचीन काल से ही सोने के प्रति मोह और आकर्षण था सभी प्रकार की जनजाति में। इसमें सन्देह नहीं। महाभारत काल को ही ले आप। उस समय और उनसे संबंधित लोग वस्त्र कम धारण करते थे। इतना स्वर्ण भूषण धारण करते थे कि उसी से उनके अंग ढक जाते थे।

मेरी बात मौन साधे चुपचाप सुनते रहे ब्रह्मचारीजी! मन में सोचा, इन महाशय को यह ज्ञान हो जाना चाहिए कि मेरी रसायन विद्या पर कितना अधिकार है और कितनी है पकड़। तभी तो वे उगलेंगे अपना रहस्य और बतलाएं अपनी साधना की उपलब्धि। मैंने आगे कहा– वैसे तो ब्रह्मचारीजी यह सत्य है कि सोना बनाने की रासायनिक सम्भावनाएं और तर्कहीन हुए बिना ही आधार बनी आधुनिक रसायन की। रही पारस पत्थर की बात। पारस एक ऐसा पत्थर है जो गुलाबी रंग का चिकना होता है उसे अभी तक प्रत्यक्ष रूप में साकार होते नहीं देखा गया है। किन्तु यह परम सत्य है कि पारस का अस्तित्व है और यह भी सत्य है कि उससे असली सोना बनता है।

क्या इसका प्रमाण है आपके पास?

हाँ! है मैंने उत्तर दिया, लेकिन इस संबंध में फिर मेरी चर्चा होगी आपसे। भारतीय रसायन के इतिहास में नागार्जुन का महत्वपूर्ण स्थान है। उनके समय में पारद एक महत्वपूर्ण और व्यापक शब्द था। पारद के द्वारा कापसिद्धि और धातु विद्या में पारद का इतना उपयोग उल्लिखित था कि कालान्तर में पारद का पर्याय 'रस' शब्द बन गया और वर्तमान समय तक रसायन पारद का ही शास्त्र ही शास्त्र बना हुआ है।

आपका अध्ययन गहन है– ब्रह्मचारीजी मुस्कराये। आपका अनुभव सत्य है, शैव तंत्र सम्प्रदाय का अध्ययन करते समय मैंने पारद पर विशेष ध्यान दिया था, व्याय सिद्धि की दृष्टि से। आप तो तारबीज और हेमबीज से परिचित ही होंगे।

हाँ पूर्ण रूप से। उन दोनों की सहायता से सामान्य पदार्थों को सोना या चांदी बनाया जा सकता था। भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में भी यह रसायन विद्या खूब फली–फूली अपने समय में। हेमबीज के नाम पर उसे हेमवती विद्या भी कहते थे लोग, वास्तव में हेमवती विद्या तंत्र के संबंधित है। इस विद्या की जो शक्ति है उसे तंत्र में 'हेमविता' कहते हैं। गन्धवी तंत्र में हेमावती की साधना और सिद्धि का विशुद्ध वर्णन किया गया है। वैसे तो गन्धर्व तंत्र' अप्राप्य है, लेकिन एक बार संयोगवश उसे पढ़ने का अवसर मुझे मिला था। उसमें हेमावती का तैल चित्र भी था जो इस प्रकार था– देवी स्वर्ण कमल पर पद्मासन की मुद्रा में बैठी हुई थीं। स्वर्ण मुकुट धारण किए हुए था। कानों में स्वर्ण कुण्डल था और गले में स्वर्णाहार। देवी के चार हाथ थे। ऊपर के दो हाथों में स्वर्ण कलश कमल पुष्प थे। नीचे के दो हाथों से स्वर्णकण भर झर कर गिर रहे थे।

ब्रह्मचारी बड़े मनोयोग से मेरी बातें सुन रहे थे। अब उनकी समझ में शायद आ गया था कि इस गूढ़ विषय में मेरी कितनी गति है।

नागार्जुन के संबंध में आप क्या जानते हैं?

ब्रह्मचारीजी बोले– वास्तव में नागार्जुन अपने समय के एक ख्याति प्राप्त रासायनिक थे। उनकी ख्याति भारत के अलावा तिब्बत और चीन में भी फैली हुई थी। इस बात से तीनों देशों के लोग भलीभांति परिचित

थे कि नागार्जुन रस विद्या के पण्डित थे और सोना बनाने की कला में दक्ष थे। इसी कला के कारण नालन्दा के अध्यक्ष बने नागार्जुन। तिब्बत में भी उन्होंने कुछ समय व्यतीत किया था। तिब्बत में ऐसे अनेक ग्रन्थ पाये जाते हैं जिनमें रसायन के विभिन्न प्रयोग दिए गये है। पर सबसे अधिक महत्व है बौद्ध तंत्र जिसके लेखक हैं नागार्जुन। बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय का जो तंत्र पक्ष है, वह "रस रत्नाकर" के नाम से नागार्जुन का अति प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ में नागार्जुन का परिचय एक महान रस सिद्ध के रूप में दिया गया है। यहां आपको यह बतला देना चाहता हूँ कि तिब्बत के सियांग मठ के नागार्जुन के भव्य तैल चित्र के साथ ही उनकी रचना "रस रत्नाकर" की भी एक प्रति है। संभवतः वह मूल प्रति ही हैं। मैंने उसका गम्भीरता से अध्ययन किया है। क्या आपने तिब्बत प्रवास भी किया है? आँखे फाड़ कर आश्चर्य के भाव से पूछे ब्रह्मचारीजी। हां! इसमें सन्देह नहीं। गुह्य विद्याओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए मैंने तिब्बत की जीवन मरण दायिनी हिम यात्रा की है महाशय (पाढ़िये– 'तीसरा नेत्र' (प्रथम और द्वितीय खण्ड) ले0 अरुण कुमार शर्मा आपको "रस रत्नाकर" का एक प्रसंग सुनाता हूँ– पहले आपको यह बतलाता हूँ कि रसायन विद्या के विषयों का प्रतिपादन सम्बाद के रूप में है। संवाद रत्नाघोष, नागार्जुन, वटयक्षिणी, शालिवाहन और माण्डक के बीच चलता है। संवाद इस प्रकार है– नागार्जुन सभा के अपने आसन पर बैठे हुए हैं। उनके सामने रत्नघोष हाथ जोड़कर खड़े है और रस कर्म विद्या का याचक है। नागार्जुन उन पर प्रसन्न होकर उसे वचन देते हैं जो तुम पूछोगे, उसका उत्तर दूंगा। उन सब औषधियों को भी बतलाऊँगा जिनसे मुख की झुर्रिया दूर हों, नाल श्वेत हों और वृद्धावस्था न आये।

नागार्जुन रहस्यों का उद्घाटन करते हैं– जीवित प्राणियों के हित के लिए बारह वर्ष महा क्लेश सहते हुए साधना की। वट यक्षिणी की सेवा की तब मैंने दिव्य वाणी सुनी। उस वाणी ने प्रसन्न होकर कहा–" महासिद्ध साधु! जो कुछ तुमने प्रार्थना की है, वह सब मैं तुमको अवश्य दूंगी। उत्तर में नागार्जुन उससे याचना करते हैं– हे! देवी यदि तुम मुझ

पर प्रसन्न हो तो मुझे 'रसबंध' यानी पारा बधने की विधि बतायें, जो तीनों लोको में दुर्लभ है।

आगे एक संवाद में शालिवाहन कहता है– हे! देवी मैंने आपको स्वर्ण और रत्न अर्जित किया है। अब मुझे आदेश दें। इस पर देवी ने कहा– साधु–साधुं मैं तुझे वे विधियां बतलाऊँगी, जिनको माण्डण्य ने सिद्ध किया था। ऐसी विधि भी बतलाऊँगी जिनमें सिद्ध किए गये पारा द्वारा सभी वस्तुएं स्वर्ण बन जाती हैं।

रत्नघोष ने कोटिवेधि महारास तैयार किया। जिसके द्वारा सामान्य धातु को भी स्वर्ण बना सकता था और इतना ही नहीं शरीर को जरा मृत्यु की बाधाओं से मुक्ति भी दिलाने में समर्थ था। उस महारस के शोध की कुछ विधियां दी गयी है रस रत्नाकर में। जैसे कायावर्त शोधन, गंधक शोधन, रसक शोधन, दग्द शोधन आदि। यहां यह बतला दूँ कि सियांगगढ़ के प्रधान लामा रस रत्नाकर का आश्रय लेकर भगवान तथागत् की लगभग दो फुट ऊँची स्वर्णमूर्ति बनाया था और पूजन में प्रयुक्त होने वाले पात्रों को भी, मैंने कहा– जहां तक मेरा विचार है, रस विद्या और तंत्र विद्या दोनों की धारायें तीन सौ वर्षों से लगातार साथ–साथ बहती रही। एक ओर सिद्ध तांत्रिक, रोग मुक्ति और मृत्यु के भव से अमर काया की प्राप्ति के लिए धातु शोधन करते थे तो दूसरी ओर सोना बनाने का भी प्रयास करते थे। इस प्रयास की एक रोमांचक कथा सुनाना अप्रासंगिक न होगा। राजा विक्रमादित्य का काल था वह। उनके नगर में एक रसायन शास्त्री रहता था, जिसका नाम था व्यडी। वह रसायन विद्या की खोज में इतना लीन हो गया था कि उसकी सारी सम्पत्ति बिक गयी और उसका जीवन भी नष्ट हो गया। अपना सब कुछ गवां देने के बाद उसे इस विषय से घृणा हो गयी। एक दिन शोक में डूबा हुआ छिद्र नदी के किनारे बैठा हुआ था चुपचाप, उदास। उसके हाथ में उस समय भेषज संस्कार नाम की एक मूल्यवान और हस्तलिखित पुस्तक थी। जिसमें से एक अपने शोध के लिए व्यवस्था पत्र लिखा करता था। निराश दुख और विरक्ति से उत्तेजित व्याडी एक–एक पत्र फाड़ कर नदी के प्रवाह में फेंक रहा था। ग्लानि से भरा व्यड़ी के लिए वह शोध अब व्यर्थ था। संयोग से नदी के किनारे कुछ दूर पर चुपचाप

मौन साधे एक वेश्या बैठी थी पानी में पैर लटकाये। वह उन बहते हुए पत्रों को निकाल–निकाल कर किनारे रखती जा रही थी। व्याडी की दृष्टि वेश्या पर तब पड़ी जब पुस्तक के सारे पत्र फाड़कर नदी में फेंक चुका था। वेश्या का नाम था चारूमति। अति रमणीय, कोमल सुन्दर और गौरांग वदना चारूमति ने अपने स्थान से उठी और धीरे–धीरे चलकर व्याडी के पास आकर पुस्तक फाड़ कर नदी में फेंकने का कारण पूछा।

आकाश की ओर शून्य में देखते हुए व्याड़ी ने निराशा में डूबे हुए स्वर में कहा– रसायन में सोना बनाने की विधि की बहुत खोज की, लेकिन विधि मिलने पर भी जैसी सफलता मुझे चाहिए वह प्राप्त नहीं हुई। मेरे पास प्रचुर धन था, वह इसी कारण खर्च हो गया। अब मैं भिखारी के अलावा और कुछ नहीं हूँ। सुख प्राप्ति की आशा से कठिन परिश्रम और खोज के बाद अन्त में दुःख एवं निराश ही मिली। इसलिए मुझे इस विद्या से ही घृणा हो गयी। यह सुनकर चारूमति विश्वास भरे स्वर में गम्भीरतापूर्वक बोली–व्याडी तुमको निराश नहीं होना चाहिए। गुह्य और गोपनीय विद्यायों पर से रहस्य का आवरण हटाना साधारण बात नहीं हैं। तुम उस कार्य को मत छोड़ी, जिसकी अग्नि में पलकर भस्म हो गया तुम्हारा धन सम्पत्ति सुख शान्ति और जीवन। तुमको सन्देह नहीं करनी चाहिए। ऋषियों का ज्ञान कदापि मिथ्या नहीं हो सकता। तुम्हारी कामनाओं की सिद्धि में जो बाधा है वह किसी कारण वश है। वह अकस्मात् ही दूर हो जायेगी। मेरे पास बहुत सा धन है। जिसका मेरे पास कोई उपयोग नहीं है। आप वह धन लेलें और अपना कार्य पुनः शुरू करें। व्याडी को घोर अन्धकार में प्रकाश मिला जैसे। प्रसन्न हो उठा वह। आशा का संचार हो उठा उसके मन में। वेश्या से धन लेकर पूरे उत्साह उभंग और स्फूर्ति से पुनः रसायन विद्या के उस रहस्य की खोज में एकबारगी जुट गया जिसके द्वारा रासायनिक विधियों से सोना बनाया जा सकता है। आपको ज्ञात होना चाहिए– मैंने ब्रह्मचारीजी की ओर स्थिर दृष्टि से देखते हुए कहा– उस समय के प्रसिद्ध विद्वान और इतिहासकार 'अलवरानी' ने व्याडी और स्वर्ण विद्या का उल्लेख करते हुए लिखा है– रसायन विद्या से संबंधित जितनी भी

प्राचीन पुस्तकें हैं वे सब पहेलियों के रूप में लिखी हुई हैं ताकि लोग उसे सही ढंग से समझ न सके और सार्वजनिक रूप से उसका उपयोग भी न हो सके। व्याडी से एक औषधि के व्यवस्था पत्र का एक 'शब्द समझने में भूल हो गयी थी। उस शब्द का अर्थ यह था कि इसके तेल और 'नर रक्त' दोनों की आवश्यकता है। वह शब्द 'रक्तामल' था जिसका अर्थ उसने चामलक समझा।

जानते है, इस भूल का क्या परिणाम हुआ? जब व्याडी ने औषधि का प्रयोग किया तो उसका कुछ भी असर नहीं हुआ। तब वह विचलित होकर औषधियाँ पकाने लगा। इस क्रिया में अग्निशिखा (आग) की लपट उसके सिर से छू गयी और उसका सिर जल गया। इसलिए उसने बहुत–सारा तेल अपनी खोपड़ी पर मला और फिर किसी काम के लिए भट्टी के पास से उठकर बाहर जाने लगा। उसके सिर के ऊपर छत में एक लोहे का छड़ बाहर निकला हुआ था। उसका सिर उससे काफी जोर से टकरा गया और खून की धारा फूट पड़ी। पीड़ा के कारण सिर नीचा कर लिया उसने। परिणाम इसका यह हुआ कि तेल के साथ मिले खून की कुछ बूँदे उस पात्र में गिर गयी– जिसमें रसायन पक रहा था लेकिन बूदों को गिरते हुए व्याडी ने नहीं देखा। लेकिन पात्र में रसायन पक गया तो उसने और उसकी पत्नी ने परीक्षा की दृष्टि से उस रसायन को अपने–अपने शरीर में मल लिया। जानते हैं, इसका क्या परिणाम हुआ? आश्चर्यजनक प्रतिक्रिया हुई। पति–पत्नी तत्काल वायु में पक्षी की तरह उड़ने लगे। उस समय दोनों के मुंख में कुछ भरा हुआ था। क्या भरा था? वे दोनों स्वयं नहीं जानते थे। उस समय महाराज विक्रमादित्य अपने राजदरबार में बैठे हुए और जब यह अविश्वसनीय घटना उन्होंने सुनी तो दरबार से बाहर निकल आये वह, व्याडी और उसकी पत्नी के आकाशगमन का अलौकिक दृश्य देखने के लिए। दोनों पति–पत्नी स्वच्छ आकाश में विचरण कर रहे थे उस समय। महाराज को देखकर पति–पत्नी ने उनके सामने मुख में जो भरा था उसे थूक दिया। आश्चर्य जो वस्तु थूकी थी दोनों वह खरे सोने के रूप में थी। सायंकाल का समय होने वाला था। अब तक ब्रह्मचारीजी के दरबार में कुछ और विशिष्ठ जन आ गये थे नित्य की भांति। मैं प्रणाम कर जब चलने लगा

तो ब्रह्मचारीजी हँसकर बोले– आप सचमुच एक सिद्ध खोजकर्ता हैं। मेरा आशीर्वाद आपके साथ है। अभी तो बहुत कुछ शेष है।

क्या आप कल आने का कष्ट करेंगे? क्यों नहीं। आप आज्ञा दें– मैंने विनम्र भाव से कहा।' अवश्य कल आप आइये, प्रतीक्षा करूँगा, यह कहकर ब्रह्मचारीजी ने पहले से ही अपनी मुट्ठी में रखी कोई वस्तु मेरे हाथ में थमा दी। बाहर निकल कर देखा– वह सोने की चमचमाती हुई एक असर्फी थी और वह भी मुगलकाल की और उस समय जिसकी कीमत थी एक हजार रुपये।'

(3)

मुक्ति कैसे प्राप्त हो और किस साधन से प्राप्त हो। इसके लिए तंत्रमत अन्य साधना मतों से अलग है। उसका कहना है कि चौरासी लाख योनियों का क्रमशः भ्रमण करने के बाद मानव योनि प्राप्त होती है। अन्य योनियों में सब कुछ रहता है लेकिन 'मन' नहीं रहता। मन की उपलब्धि होती है मनुष्य को। इसीलिए उसे मनुष्य कहते हैं। मन से मानव बना है। उसमें मन की प्रधानता है। जब पहली बार जीव मानव तन को उपलब्ध होता है। तो उस अवस्था में उससे लिप्त पिछले चौरासी लाख योनियों के पशुत्व से भरे भिन्न–भिन्न न जाने कैसे–कैसे संस्कार रहते हैं। जिसे तंत्र मत कहता है मल, कहीं–कहीं इसको आणवमल भी कहा गया है।

मिथ्या ज्ञान म धर्मश्च सक्तिर्हेतुश्च्युति स्तथा।
पशत्व मूलं पञ्चैते तंत्रें हेयाधि कारतः।।

(गण कारिकाच)

आणव मल बराबर जीवात्मा का पीछा करता रहता है– हर जन्म में और हर जीवन में। आणवमल मनुष्य के सभी प्रकार के मानसिक शारीरिक कष्ट, पीड़ा, दुख, क्लेश, चिन्ता आदि का एकमात्र कारण है। मनुष्य कितना ही अपना विकास करता जाए, कितना ही मानसिक उन्नति करता जाए, कितना ही भौतिक क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करता जाय और आध्यात्मिक मार्ग में भी अग्रसर होता जाय, लेकिन आणवमल से मुक्त नहीं हो सकता वह। उसके परिणामों का सामना बराबर करना

ही पड़ेगा। उसके फलों को भोगना ही पड़ेगा। भले ही हम योगी हों साधक हों, महात्मा हो सन्त हों और हों विरक्त संन्यासी या साधु आणवमल जन्य क्लेशों को तो भोगना ही पड़ेगा प्रत्येक अवस्था में।

आणव मल का अस्तित्व जब तक है, तब तक न मुक्ति, न कैवल्य मोक्ष और न तो महानिर्वाण।

अब प्रश्न यह है कि आणवमल के आवरण को किस उपाय से दूर किया जाय?

इस संबंध में तंत्र–मंत्र का कहना है कि आणवमल का सर्वथा के लिए नाश न ज्ञान द्वारा सम्भव है और न तो कार्य के ही द्वारा यदि सम्भव है तो 'क्रिया' द्वारा। क्रिया के माध्यम से ही उसके अस्तित्व का नाश संभव है। तंत्र–मंत्र का कहना है कि मानव शरीर में चौरासी लाख योनियों का आणवमल एकत्र होकर धीरे–धीरे परिपक्व होता है। जब–जब वह पूरी तरह परिपक्व नहीं हो जाता है। तब तक उसका नाश नहीं होता। उसे पूर्ण परिपक्व होना ही चाहिए। इसके लिए जीवन में निरपेक्ष और विरक्त भाव से रहना चाहिए। कर्म करते रहना चाहिए। उसका परिणाम क्या होगा? उसका फल क्या होगा। इस पर न सोचना विचारना चाहिए और न तो किसी प्रकार की आशा ही रखनी चाहिए। आणवमल एक सत्तात्मक द्रव्य है। जिस प्रकार नेत्र में मोतिया बिन्द हो जाने पर उसे आपरेशन कर हटाया जाता है ठीक ऐसी ही स्थिति अथवा दशा आणवमल की भी है। परिपक्वता दोनों में आवश्यक और आपेक्षित है। स्वयं जीवात्मा में भी कोई ऐसी शक्ति नहीं है और कोई ऐसा सामर्थ्य नहीं है, जिससे आणवमल का नाश हो सके। आध्यात्मिक ज्ञान तप, तपस्या, योग अथवा कोई भी साधना इस दिशा में पूर्ण असमर्थ है। कितनी भी तलवार की धार तेज हो, लेकिन वह स्वयं को नहीं काट सकती।

असिजारा सुतीक्षीण न स्वात्मच्छेदिका यव।

मोक्षकारिका (का0 67)

आणवमल के नाश का एकमात्र उपाय है भगवान सदाशिव की अनुग्रहात्मिका शक्ति की कृपा तंत्रमत के अनुसार अनुग्रहात्मिका शक्ति के दो रूप हैं– काली और तारा। मानव शरीर में मूलाधार चक्र में

कुण्डलिनी के रूप में काली सुप्तावस्था में विद्यमान है। इसी प्रकार आज्ञाचक्र में नीलज्योति के रूप में तारा विराजमान है। तारा का यांत्रिक स्वरूप △ उर्ध्व त्रिकोण का ध्यान आज्ञाचक्र में करने से अज्ञान का नाश होता है और मन अन्तर्मुखी होता है।

काली का यांत्रिक स्वरूप अधोत्रिकोण है ▽ है। अधोत्रिकोण का ध्यान मूलाधार चक्र में करने से मां काली की अहैतुकी कृपा प्राप्त होती है। कुण्डलिनी काली का लाक्षणिक नाम है। शक्तिपात दीक्षा प्राप्त होने पर कुण्डलिनी का जागरण और क्रमशः उत्थान होता है। जिसके परिणामस्वरूप आणवमल का होता है प्रणास (इस संबंध में पढ़े– योग तांत्रिक साधना प्रसंग, शीघ्र प्रकाश्य)

तंत्र सर्वप्रथम आणवमल को महत्व देता हैं और उसके बाद महत्व देता है शरीर को। तंत्र का कहना है कि जबतक दिव्य शरीर की उपलब्धि नहीं होती तबतक जीवन से मुक्त होना संभव नहीं। जिसे शरीर में रोग शोक उत्पन्न होता है। जिस शरीर में नाना प्रकार की व्याधियां उत्पन्न होती है। जो साधारण से साधारण कार्य करने में असमर्थ बना देती हैं। भला उस शरीर से कोई साधना उपासना हो सकती है। योगाभ्यास हो सकता है। पूजा अर्चना में मन एकाग्र हो सकता है। इष्ट सामिप्य लाभ हो सकता है और प्राप्त हो सकती है जीवन मुक्ति? असम्भव। ऐसे शरीर से कभी भी दुख कष्ट की निवृत्ति कदापि नहीं हो सकती इसलिए तंत्र का कहना है कि इस दिशा में सर्वप्रथम शरीर रोग व्याधि रहित पूर्ण स्वस्थ बनाना अति आवश्यक है। इसी को तंत्र में कहते हैं **"पिण्डस्थैर्य"** (शरीर की स्थिरता)।

तंत्र साधना का पहला चरण जीवन मुक्ति है। मुक्ति ज्ञान से प्राप्त होती है और ज्ञान, अभ्यास से प्राप्त होता है और अभ्यास के लिए स्थिर देह आवश्यक है यानी पूर्णरूप से, मानसिक रूप से और शारीरिक रूप से भी। स्थिर देह का महत्व– **'इति धन शरीर– मुक्तौ सा 'च' ज्ञानातंचाभ्यासात् सचस्थिरे देहे। (रस हृदय)**

शरीर भौतिक तत्वों से बना है। यह एक प्राकृतिक यंत्र के अलावा और कुछ नहीं है। आत्मा से शरीर का संबंध जोड़ने वाला एकमात्र

'प्राण' है। इस सूत्र के टूट जाने पर शरीर और आत्मा का संबंध हमेशा के लिए समाप्त हो जाता है। इसी अवस्था को कहते हैं मृत्यु। 'सूत्र' मजबूत रहे उसमें किसी भी प्रकार का विकार उत्पन्न न हो। उसका प्रवाह प्राकृतिक रूप से बराबर होता रहे– इसके लिए प्राणायाम आवश्यक है और उससे संबंधित आसन भी। मनुष्य की योगदृष्टि से तीन मुख्य अवस्थाएं हैं– 5 वर्ष से 25 वर्ष यह पहली अवस्था है। इससे संबंधित 16 प्रकार का प्राणायाम और 16 प्रकार का आसन है। 26 वर्ष से 46 वर्ष, यह दूसरी अवस्था है। इस अवस्था से संबंधित मात्र 12 प्रकार का प्राणायाम और 12 प्रकार का आसन है। 47 से 57 वर्ष, यह तीसरी अवस्था है। इस अवस्था से संबंधित 5 प्रकार का प्राणायाम और 5 प्रकार का आसन है। 57 वर्ष की आयु के बाद प्राणायाम और आसन वर्जित है। श्वास रोग और गठिया की सम्भावना बन जाती है। इस अवस्था में केवल सुखासन और ध्यान सर्वोत्तम है। **(भाव प्रकाश)**

शरीर लौकिक है इसलिए उसे स्थिर बनाने के लिए लौकिक उपाय ही होना चाहिए और वह लौकिक उपाय, 'पारद' है। पारद का प्रचलित नाम है 'पारा' पारद भस्म के सेवन से शरीर स्थायी रूप से निरोग व्याधि रहित, स्वस्थ और दिव्य हो जाता है। काल का भी प्रभाव उस पर नहीं पड़ता। कहने की आवश्यकता नहीं पारद की सार्थकता इस बात में है कि संसार के सभी दुखों से मुक्त कर भवसागर के पार पहुंचा देता है। जैसाकि कहा गया है–

संसार राम पांर दत्ते ऽ सौ पारद स्मृतः। हमारे मकान के बगल में एक बंगाली सज्जन रहते थे। नाम था केदारनाथ। उस समय मेरी अवस्था बीस वर्ष के आसपास रही होगी। मुहल्ले वालों के लिए केदारबाबू एक रहस्यमय व्यक्ति थे। वे क्या करते थे? कहां जाते थे। किससे मिलते–जुलते थे? यह कोई नहीं जानता था। वे अकेले थे। अपने लम्बे–चौड़े मकान में प्रायः समाये रहते थे। बाहर भी बहुत कम निकलते थे। अवस्था चालीस से अधिक नहीं थी। गोरा रंग, लम्बा कद सुन्दर आकर्षक व्यक्तित्व। बड़ी–बड़ी आंखों में गुलाबीपन बराबर बना रहता था। जब कभी उनका सामना मुझसे होता था, तंब मैं जिज्ञासु भाव से मन में उत्कण्ठा और कौतूहल लिए उनकी ओर न जाने क्यों अपलक

देखने लगता था और तब वे मुस्करा कर मेरी ओर देखते और अपने घर में चले जाते। कभी मेरी हिम्मत नहीं पड़ी उनके मकान में जाने की। शिवरात्रि का पर्व था। मेरे दादा पं0 बेचनजी शर्मा ने शिव का प्रसाद मुझे थमाते हुए कहा– जा! केदारबाबू को प्रसाद दे आ। प्रसन्न हो उठा मैं। अवसर तो मिला। जब मैं मकान का लम्बा–चौड़ा आंगन लांघकर और लम्बी सीढ़ियां चढ़कर केदारबाबू के कमरे में गया। वे एक तख्त पर नंगे बदन बैठे हुए थे और कोई भस्म शरीर पर मल रहे थे उस समय। जिस अंग पर मले तो थे वह सोने जैसा चमकने लगता था। आश्चर्य से देख रहा था मैं वह कौतुक और तभी सिर उठाकर मेरी ओर देखा, बोले– आओ खोखा, क्या लाये हो। मैंने थोड़ा सहम कर आगे बढ़ा और प्रसाद थमा दिया केदारबाबू को। फिर लौट आया। दादाजी से ज्ञात हुआ कि केदारबाबू की अवस्था सौ से अधिक है। रस सिद्धि उन्हें प्राप्त है। शुरू से ही उनको इसी रूप–रंग और अवस्था में देख रहा हूँ। अच्छे साधक हैं।

एक दिन केदारबाबू अचानक मिल गये गंगातट पर मुझे देखकर मुस्कराये, बोले– तुम मेधावी हो। जीवन में काफी संघर्ष करना होगा आध्यात्मिक क्षेत्र में। मेरे पास जब समय मिले चले आया करो। डरने और घबराने की बात नहीं।

लेकिन क्या जा सका मैं और मिल सका क़ेदारबाबू से? नहीं! मुझे नौकरी के सिलसिले में कलकत्ता जाना था और जब दो महीने बाद घर आया तो पता चला कि केदारबाबू ऊपर चले गये। पारद का अधिक सेवन से एकाएक उनका सारा शरीर अकस्मात् गलने लगा और पानी की तरह बहने लगी गल–गल कर हड्डियां। सुनकर बहुत क्लेश हुआ। मगर करता क्या निश्चय ही केदारबाबू से कोई भयंकर त्रुटि हो गयी होगी पारद के प्रयोग में। यह सत्य है कि शरीर को स्थिर, निरोग दीर्घायु और शक्ति सम्पन्न बनाने के लिए एकमात्र पारद ही है। पारद के भस्म के सेवन से जैसाकि बतलाया जा चुका है शरीर से संबंधित वात, पित्त, कफ जन्य जितने क्लेश है। वे सदैव के लिए दूर हो जाते हैं और शरीर स्थिरनित्य तथा दिव्य बना जाता है, सैकड़ों वर्ष के लिए।

पारद नाम की सार्थकता इसी में है कि वह संसार के सभी दुखों को दूर कर भवबंधन से मुक्त करा देता है–

'संसार रस्य परं पांर दत्ते ऽ सौपारदः स्मृतः।

वास्तव में पारद की शक्ति बड़ी अलौकिक है। पुराणों के अनुसार वह भगवान शंकर का वीर्य है और अभ्रक पार्वती का रज है। इन दोनों के मिश्रण से जो भस्म बनता है उससे शरीर दिव्य तो बनता ही है इसके अतिरिक्त मनुष्य में अलौकिक शक्तियों का आविर्भाव भी हो जाता है। मनुष्य आकाश गमन कर सकता है। दूर का दृश्य देख सकता है। दूर की बातें सुन सकता है। किसी के मन की बात जान सकता है। सभी प्रकार का कल्याण भी कर सकता है। कैलाश मानसरोवर यात्रा काल में मुझे एक सिद्ध महात्मा मिले थे। उनकी अवस्था तीन सौ वर्ष से भी अधिक थी परन्तु देखने में चालीस से अधिक के प्रतीत नहीं होते थे। मैं उनकी हिम गुफा में चार पांच दिन रहा। इस अवधि में प्रसंगवश महात्मा ने बतलाया कि शरीर के भीतर प्राण तथा बाहर पारद इन दोनों के उचित प्रयोग से शरीर को दिव्य बनाया जा सकता है।

पारद की तीन अवस्थाएं है– मूर्च्छित, मृत और वद्ध। जिस पारद में घनता और चंचलता नहीं होती वह मूर्च्छित कहलाया है। जिसमें तेज चमकीलापन, भारीपन, चपलता रहती है, उसे मृत कहते हैं। इसी प्रकार एक वद्ध दशा भी होती है। पारद की यह तीनों दशा परम कल्याण कारक है।

मूर्च्छिाती हराति व्याधिन् मृतीजीवपति स्वयंम्।
वद्ध खोचरतां कूर्यात रसो वायुश्च भैरवि।।

पारद को ही रस कहते हैं और वही रस 'ईश्वर' है। रस को सिद्ध करना होता है– स्वेदन मर्दन आदि 18 संस्कारों द्वारा। पारद का वही सच्चा भस्म होता है, जिसे रगड़ने से लोहा सोना हो जाता है। यह तो बाहरी परीक्षा है। ऐसे ही भस्म से शरीर के भीतरी अनित्य परमाणुओं को बदल कर नित्य बनाया जा सकता है। यह जान लेना आवश्यक है कि बिना योगाभ्यास के आत्म साक्षात्कार संभव नहीं और वह अभ्यास साधारण शरीर द्वारा साध्य नहीं हैं। इसीलिए पारद भस्म का प्रयोग

करने से दिव्यशरीर प्राप्त होता है। उस दिव्य शरीर द्वारा जब योगाभ्यास होता है तो वह सफल होता है और सफल योगाभ्यास द्वारा ही आत्म साक्षात्कार संभव है। रस की इसी उपयोगिता के कारण रस को ईश्वर कहा जाता है। रसेश्वर दर्शन में इस विषय पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। रसेश्वर दर्शन के अनुसार जीवन्मुक्ति ही वास्तविक मुक्ति है। तैत्तरीय उपनिषद का कहना है कि 'रस' 'ब्रह्म' का प्रतीक है। जिसे उपलब्ध होने पर साधक आत्मनन्द का अधिकारी होता है।

वास्तव में 'रस' शैव तंत्र का मुख्य विषय है। रस से संबंधित "रस रत्नाकर" रस हृदय "साकार सिद्धि" और रसेश्वर दर्शन आदि ग्रन्थ अति मूल्यवान है।

समयाभाव के कारण लगभग एक मास बाद जाना हुआ मेरा ब्रह्मचारी के यहां। मुझे देखकर अति प्रसन्न हुए, महाशय बोले– कहां रहे प्रभु। आज सुधि आयी है।.........

नहीं, ऐसी बात नहीं है मैंने कहा– व्यस्तता के कारण आ सका।" न क्षमा करेंगे।

सांझ घिरने लगी थी। उसी समय एक युवती आयी और कमरे का बल्ब जला दिया उसने। दुधिया प्रकाश फैल गया पूरे कमरे में। सिर घुमाकर स्वभावतः युवती की ओर देखा तो देखता ही रह गया मैं। बीस–बाईस से अधिक की नहीं की वह। बहुत सुन्दर थी। वैसी सुन्दरता बहुत कम ही देखने को मिलती है नारी में। सबसे आश्चर्य की बात तो यह थी कि उसके सुगठित और यौवन की मादकता से भरपूर शरीर का रंग न काला था, न सांवला और न तो था गोरा। बिलकुल सोने जैसा था दप–दप करता हुआ। विस्मत था मैं। ऐसा कैसे सम्भव है? यहां तक कि उस युवती के घने बाल भी सुनहले थे। पलके भी ओर भौंहे भी? युवती जैसे आयी थी वैसे ही चली गयी, युवती के चले जाने के बाद ब्रह्मचारीजी बोले– आप जानते हैं? जिस युवती को आपने देखा है, उसकी आयु नब्बे वर्ष के लगभग है। उसका नाम मनोरमा हैं। यह सुनकर आश्चर्य से भर उठा मैं। क्या कह रहे हैं आप? यह कैसे सम्भव है? मैं जानता था कि आप ऐसा ही प्रश्न करेंगे। लेकिन मैंने जो कुछ कहा है वह पूर्ण सत्य है। मेरी अवस्था उतनी ही समझे आप।

हाँ! नब्बे से अधिक ही समझे।

मेरा कौतूहल, आश्चर्य और साथ ही साथ अविश्वास का भाव भी बढ़ता जा रहा रहा था। ब्रह्मचारीजी आगे बोले– महाशय। उस समय मेरी आयु तीस के अधिक नहीं थी और उसी अवस्था में मनोरमा ने मेरे जीवन में प्रवेश किया। संयोग कहिए या कहिए नियति। रस रसायन की खोज में एक महात्मा का पता चला था। उनके संबंध में बतलाया गया था कि वे हेमवती विद्या सिद्धपुरुष हैं और अरुणाचल प्रदेश में कहीं किसी स्थान पर अकेले रहते हैं। पूरे दो वर्ष की कष्ट दायिनी खोज के बाद गुफा का पता चला। महात्मा से भेंट हुई है। साक्षात् वैदिक काल के कोई ऋषि लगे मुझे। अवस्था काफी थी लेकिन देखने में तीस पैंतीस से अधिक नहीं लगते थे वह। जैसा उनका व्यक्तित्व था वैसा मानवेतर शक्ति सम्पन्न ही किसी व्यक्ति का हो सकता है। बड़ी–बड़ी सुर्ख आंखें स्थिर और गहरी। ऊँचा–चौड़ा ललाट, कोमल रक्ताभ होंठ। साधना के प्रखर तेज से दप्–दप् करता हुआ मुख मण्डल, सिर के घने काले स्याह बाल कन्धों पर बिखर कर भूमि का स्पर्श कर रहे थे। कमर में सिर्फ एक लंगोटी। पूरा शरीर वस्त्र हीन। गले में सोने की काफी मोटी पंजीर। नाम था युक्तेश्वरनाथ समझते देर न लगी मुझे। नाथ सम्प्रदाय के थे महात्मा। मनोरमा उनकी शिष्या थी। आसाम और बंगाल का मिला–जुला खून। मनोरमा थी सचमुच मनोरम, लावण्यमयी कमनीय और सुन्दर। महात्मा युक्तेश्वरनाथ अपनी सिद्धि का प्रयोग कर रहे थे उस समय मनोरमा पर। अपने हाथ से पारद भस्म का नित्य लेप करते थे वह मनोरमा के पूर्ण शरीर पर। कुछ ही समय के बाद, मनोरमा की सांवली काया, कंचन काया में बदल गयी धीरे–धीरे लेप का पूर्ण प्रभाव पड़ चुका था उस कोमलांगी श्यामांगी युवती पर। लगता था जैसे कोई देवकन्या स्वर्ग से उतर कर उस गुफा में आयी है। चमत्कार था अद्भुत और अविश्वसनीय चमत्कार।

महात्मा ने कहा– पांच प्रकार की जड़ियाँ हिम प्रदेश में पायी जाती हैं, कर्करिक्ता, हेमपुष्पा, चारूलेही, वज्ररणी और कलुषिका। ये पांचों जड़ियाँ प्रकाशवान है। इनकी खोज और पहचान अत्यन्त कठिन है। किसी प्रकार वे दुर्लभ जड़ियाँ प्राप्त हुई मुझे। उनके समान योग से

पारद को वद्ध कर मैंने अतिश्रम से 'पारद गुटिका निर्माण किया। पूरे पन्द्रह वर्ष का समय लग गया, इस कार्य में। पूर्णरूप से स्वर्णकाया प्राप्त होने पर मनोरमा की विचारशक्ति, इच्छाशक्ति, कर्मशक्ति, संकल्प शक्ति आदि शक्तियाँ एक विशेष सीमा तक उन्नत हो जायेगी। एक प्रकार से मानवेतर सम्पन्न हो जायेगी मनोरमा। मेरी सिद्धि का यह प्रयोग निश्चय ही अति विलक्षण होगा इसमे सन्देह नहीं।

मैं मुंह बाये महात्मा की बातें सुन रहा था और जब महात्मा ने यह कहा कि तुम भी मेरी दिव्य और अलौकिक रसायन विद्या की सिद्धि की पूर्णता की दिशा में एक महत्वपूर्ण अंग बन कर आये हो और वह भी महान रसायनज्ञ नागार्जुन की प्रेरणा से तो, यह सुनकर दंग रह गया मैं एकबारगी मेरी समझ में नहीं आया कुछ। सकपका कर रह गया मैं।

ब्रह्मचारीजी थोड़ा रूके और फिर आगे बोलना शुरू किया उन्होंने– मानवेतर शक्ति प्राप्त होने पर शरीर की आवश्यकता नगण्य हो जाती है। इतना ही नहीं शरीर का भार भी कम हो जाता है। ऐसी अवस्था में पारद गुटिका का प्रयोग किया जाता है– जिसके फलस्वरूप साधक सभी को देख सकता है, लेकिन उसे कोई नहीं देख पाता। अपनी प्रबल इच्छाशक्ति की सहायता से अपना रूप रंग, आकार–प्रकार भी परिवर्तित कर सकता है। सबसे महत्व की बात तो यह है कि इच्छानुसार दृश्य अदृश्य रूप से आकाशगमन भी कर सकता है साधक। यह सुनकर मैंने पूछा– क्या आप पारद गुटिका का प्रयोग भी मनोरमा पर करेंगे?

क्यों नहीं। वह तो मेरे प्रयोग का माध्यम है। समझते देर न लगी मुझे शर्माजी। अपनी तमाम अलौकिक रसायन सिद्धियों की सफलता, असफलता देखने के लिए मनोरमा को एक विशेष साधन बनाया था महात्मा युक्तेश्वरनाथ ने। जिसका एकमात्र साक्षी न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर मैं बन गया था उस समय।

कब और कैसे सात महीने का समय व्यतीत हो गया, पता ही न चला। आश्चर्य की बात तो यह थी कि शरीर से संबंधित किसी भी आवश्यकता का अनुभव नहीं हो रहा था मुझे। न भूख, न प्यास, न निद्रा न थकान, न आलस्य। हर समय प्रफुल्ल बना रहता था मैं। ऐसा लगता

था कि शरीर से संबंधित किसी भी आवश्यकता का अनुभव नहीं हो रहा था मुझे। संसार से अलग किसी अनजाने में प्रवेश कर गयी है मेरी आत्मा। क्या पारद गुटिका का प्रयोग किया– मैंने पूछा? हाँ! किया ब्रह्मचारीजी बोले– पूर्ण सफलता मिली। मनोरमा आकाशगमन करने में समर्थ है लेकिन तभी जब उसकी इच्छा हो। इच्छा जागृत होने पर जिह्वा के नीचे रखना पड़ता है पारद गुटिका। अब थोड़ा तुमको गुफा के संबंध में बतला हूँ। ब्रह्मचारीजी थोड़ा रूककर कुछ सोचने के बाद बोले– वह गुफा क्या थी एक गुप्त प्रयोगशाला थी। काफी लम्बी थी गुफा। थोड़ा आगे बढ़ने पर चौड़ी हो गयी थी और उसी स्थान पर महात्मा की रसायन प्रयोगशाला थी। कई मिट्टी के पात्रों में अज्ञात द्रव भरे हुए थे। तरह–तरह की जड़ी–बूटियों का ढेर लगा हुआ था। एक तरफ आग की ऊँची भट्ठी थी। जिस पर रखे बड़े से लौह पात्र में कोई रसायन खौल रहा था। कुछ मिला कर अजीब सा वातावरण था गुफा का। एक विचित्र प्रकार के रहस्य का धुन्ध छाया रहता था हमेशा उस रहस्यमयी गुफा में? शुक्ल पक्ष की रात थी वह। चतुर्दशी का रूपहला चांद नीले आकाश में थोड़ा ऊपर आ गया था। वातावरण में घोर नीरवता बिखरी हुई थी। चारो ओर सायं–सायं हो रहा था। जंगल और पहाड़ों पर चांदनी फैली हुई थी। गुफा के बाहर निकल कर कुछ देर टहलने के बाद एक स्थान पर बैठ गया मैं। आधी रात का समय था शायद। सिर उठाये अपलक चांद की ओर देख रहा था मैं। मन को बड़ी शान्ति मिल रही थी उस क्षण। एकाएक मेरी दृष्टि बायीं ओर घूम गयी। देखा, एक छाया कभी तीव्र तो कभी मन्द गति से विचरण कर रही थी नीले आकाश में। धीरे–धीरे स्पष्ट हो गया सब कुछ। पहचानने में किसी प्रकार की भूल नहीं हुई थी मुझसे। वह मनोरमा थी? बड़ा ही अद्भुत और सुन्दर दृश्य था वह। एक स्वर्ण वर्णा सुन्दर और कमनीय युवती की काया पर रूपहली चाँदनी जैसे बिखर रही थी। उसके खुले हुए बाल हवा में लहरा रहे थे। अचानक तीव्र गति से आगे बढ़कर शून्य में जैसे विलीन हो गयी मनोरमा। उस विलक्षण दृश्य को कभी भूल न सकूँगा मैं। दूसरे दिन मनोरमा से मेरा सामना हुआ। एक बार गहरी दृष्टि से मेरी ओर देखा और फिर हल्के से मुस्करा कर चेहरा घुमा

लिया दूसरी ओर उसने। 'देखना' और फिर 'मुस्कराना' रहस्यमय लगा मुझे उस समय।

एक रसायन विद्या महात्मा की अनुगमिनी शिष्या क्या चाहती हैं मुझसे कई दिनों तक यही सोचता रहा मैं। फिर महीनों भेंट नहीं हुई मुझसे मनोरमा की। अब मैं साधना में लीन रहने लगा था।

कौन सी साधना थी? मैंने पूछा हेमावती विद्या की। महात्मा का कहना था कि पारद से कार्य सिद्धि हो सकती है। स्वस्थ और निरोग जीवन भी उपलब्ध हो सकता है। यहाँ तक कि आयु के प्रभाव को भी रोका जा सकता है। किन्तु मृत्यु को नहीं। मेरा समय आ गया है। कभी किसी समय आत्मा शरीर से अलग हो सकती है।

रात्रि का न जाने कौन सा प्रहर था? बतला नहीं सकता मैं। एकान्त में बैठा लीन था साधना में एकाएक मेरी आँख खुली। देखा– मेरे चारो ओर सुनहला प्रकाश फैला रहा था। देखा महात्मा मेरे सामने अपने दिव्य रूप में खड़े हैं और उनका दाहिना हाथ मेरे मस्तक का स्पर्श कर रहा है। निश्चय ही वह स्पर्श दीक्षा थी। समझते देर न लगी– महात्मा रसायन विद्या की अलौकिक शक्ति प्रदान की थी स्पर्श दीक्षा द्वारा। एकाएक वह पीला प्रकाश एक स्थान पर एकत्र होने लगा और देखते ही देखते एक दिव्य ज्योति के रूप में परिवर्तित हो गया। वह दिव्य ज्योति से विभिन्न रंगों की रश्मियां फूट रही थीं। उसके चारों ओर अलग से मण्डलकार शुभ्र प्रकाश था जो अपने स्थान पर धीरे–धीरे घूम रहा था। सहसा वह दिव्य ज्योति एक विशेष मानवाकृति के रूप में परिवर्तित होने लगी और देखते ही देखते मेरे सामने उस दिव्य ज्योति के स्थान पर एक विशाल सुन्दर दिव्य पुरुष प्रकट हो गया। गौर वर्ण, काफी ऊँचा कद, शरीर पर रेशमी वस्त्र, कान में कुण्डल, गले में रत्नों की चमकती दमकती मालाएँ, सिर के घने रेशम जैसे काले बाल, दाढ़ी मूंह नहीं, सफाचट, बड़ी–बड़ी भौराली आँखें। दमकते चेहरे पर अजीब सा दैवी आकर्षण और सिर पर गैरिक रंग की बड़ी सी पगड़ी। समझते देर न लगी और पहंचानने में भी नहीं। वे थे अपने समय के प्रसिद्ध और सिद्ध रसायन विद्या नागार्जुन। क्षण मात्र के लिए दर्शन हुआ उस महान रसायन शास्त्री का और फिर अन्धकार में डूब गया दूसरे क्षण।

वापस कुटिया में लौटने पर देखा– महात्मा लेटे हुए थे। उनके निकट उदास बैठी थी मनोरमा समझते देर न लगी, महात्मा ने नश्वर देह का त्याग कर दिया था सदैव के लिए। एक महान योगी का रहस्य उद्घटित हो चुका था मेरे मानस पटल पर। मुझे मात्र दीक्षा देने के लिए ही आत्मा से संबंध बनाए हुए थे वह अभी तक। मुझे योग्य पात्र समझा था उन्होंने। तभी तो न जाने किस अज्ञात प्रेरणा के वंशीभूत होकर चला गया था उनके समीप्य में। दूसरे दिन कुटिया में ही समाधि दे दी गयी महात्मा को। फिर कई तीर्थों की यात्रा करने के पश्चात् काशी आ गया और तभी से यहां निवास कर रहा हूँ।

तभी से मनोरमा भी आपके साथ हैं? मैंने सहजभाव से पूछा?

हाँ! वह बेचारी कहाँ जाती। फिर वह स्वयं सिद्धा एक दिव्य आत्मा है। मुझसे अलग होकर कहाँ जायेगी? कौन संभालेगा उसे? उसी समय किसी काम से कमरे में आयी मनोरमा। ब्रह्मचारी से झुक कर कुछ बात की और सिर घुमा कर मेरी ओर देखा और फिर मुस्करा कर वापस चली गयी। कितनी ऊँची महान दिव्य और सिद्ध आत्मा थी मनोरमा। सोचने लगा मैं– काश! उसका सान्निध्य प्राप्त होता और प्राप्त होता मुझे सहयोग तो निश्चय ही रसायन विद्या का कोई न कोई तिमिराच्छन्न और रहस्यमय पृष्ठ अनावृत्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं।

समाप्त

प्रकीर्ण

लेख अथवा निबन्ध के रूप में पं. अरुण कुमार शर्मा के ज्योतिष तंत्र और योग से संबंधित ऐसे कुछ विषय हैं जिनको उनके पुस्तक में समाविष्ट नहीं किया जा सकता। पाठकों के ज्ञानार्थ तथा साथ ही उनके कल्याणार्थ उन लघु विषयों को पुस्तक के अन्त में प्रकीर्ण रूप में प्रस्तुत करने का आयोजन मैंने किया है। आशा है पाठकगण मेरे आयोजन को सहर्ष स्वीकार करेंगे।

—व्यवस्थापक

चमत्कार अंगूठियों का

भारतीय ज्योतिष के दो रूप हैं– फलित और गणित। इन दोनों रूपों से प्रायः लोग परिचित हैं लेकिन उसके तीसरे रूप से अल्पसंख्यक लोग ही हैं परिचित और वह तीसरा रूप है, ज्योतिष तंत्र ज्योतिष तंत्र का विषय अत्यन्त गूढ़, गहन और अत्यन्त रहस्यमय है। इसी कारण एक प्रकार से वह तिमिराच्छन्न ही रहा पिछले दो हजार वर्षों से। महाभारत काल में ज्योतिष तंत्र अपने उच्च स्थान पर था। उसके बाद उसके ज्ञाता नगण्य ही रहे। विक्रम काल में एक बार पुनः ज्योतिष तंत्र अपने प्रभाव में आया। फिर अस्त तो नहीं हुआ लेकिन लुप्त अवश्य हो गया।

सन् 1194 ई0 में वाराणसी मुस्लिम शासन के आधीन हुआ था। उसी समय विश्वनाथ मंदिर की पुनः शुद्धि हुई थी। गुजरात के प्रसिद्ध जैन सेठ वास्तुमाल ने इस मन्दिर में पूजा–अर्चना के निमित्त एक लाख रुपये भेजे थे (प्रबन्धकोष कलकत्ता 1935 ई0 पृ0 132) सन् 1296 ई0 में परमेश्वर मन्दिर का निर्माण काशी में हुआ था जो विश्वेश्वर मन्दिर के निकट था। उस समय काशी का पण्डित समाज अपने उन्नत शिखर पर था उसी पण्डित समाज के एक रत्न थे आदित्य भट्ट। जिन्होंने ज्योतिष तंत्र का आश्रय लेकर एक पुस्तक की रचना की थी जिसका नाम था, "कालादर्श" आदित्य भट्ट के ही समकालीन एक और विद्वान हुए जिनका

नाम था माधवाचार्य। माधवाचार्य ने भी ज्योतिष तंत्र को लक्ष्य कर के एक पुस्तक की रचना की जो ''काल माधव'' के नाम से पण्डित समाज में प्रसिद्ध हुई। कलकत्ता के एशियाटिक लायब्रेरी में अंग्रेजी भाषा में एक पुस्तक देखने को मिली थी जो अति प्राचीन थी और ज्योतिष तंत्र के गूढ़ विषयों पर थी आधारित।

ज्योतिष तंत्र की मूलभित्ति एकमात्र सूर्य है। वैज्ञानिक दृष्टि से सूर्य में अकल्पनीय मात्रा में प्लाज्मा भरा हुआ है जिसकी संलयन अभिक्रिया द्वारा करोड़ों वर्षों से लगातार सूर्य ऊर्जा पैदा कर रहा है। इसमें प्रति सेकेण्ड 9X10 हाइड्रोजन परमाणुओं का परिवर्तन हीनियम में होता है। जिसमें $38X10^{24}$ वाट ऊर्जा यानी $9X10^{10}$ मेगा टन टी.एन.टी. पैदा होती है। यह हुई विज्ञान की बात। ज्योतिष तंत्र के अनुसार सूर्य की वे असीम शक्तिशाली ऊर्जाएँ तीन मुख्य भागों में विभक्त हैं। उन्हीं तीनों भागों को वैदिक विज्ञान की भाषा में सूर्य वलय कहते हैं। दूसरे शब्दों में वलय को सूर्य मण्डल भी कहा जाता है। जिनके नाम है ऋक्मण्डल, यजुमण्डल और साममण्डल। इन तीनों मण्डलों के वर्ण हैं रक्त, पीत और हरित और उन मण्डलों से जो भिन्न–भिन्न ध्वनि निकलती है और उन ध्वनियों से जो अक्षर प्रकट होता है वह हैं 'अ' 'ऊ' 'म' जिनका योग है 'ओम्'। ओम आदि शब्द है इसलिए उसे अणव कहते हैं। इन तीनों आदि वर्णों से ऋतम्भरा वाणी द्वारा क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद का आविर्भाव हुआ है।

ज्योतिष तंत्र के अनुसार उपर्युक्त तीनों मण्डल सूर्य के रश्मिमण्डल हैं। पहले मण्डल से 9 प्रकार के रक्तवर्णीय रश्मियां विकीर्ण होती है। दूसरे मण्डल से 36 प्रकार की पीतवर्णीय रश्मियां विकीर्ण होती है। इसी प्रकार तीसरे मण्डल से 7 प्रकार की हरितवर्णीय रश्मियां होती है विकीर्ण। इन तीनों प्रकार की रश्मियों की अपनी तरंगे हैं कम्पन्न हैं और है गति। इन रश्मियों की संख्या 52 है। इन 52 रश्मियों से शब्द जगत में 52 वर्ण मातृकाओं का आविर्भाव हुआ है जिन पर प्रकाशनाधीन पुस्तक ''सूर्य विज्ञान'' में विस्तार से विचार किया गया है। सूर्य की ही तरह अन्य ग्रहों के भी अपने–अपने मण्डल हैं। इन मण्डलों के अपने–अपने वर्ण हैं ध्वनि है और ऊर्जा तरंगे भी हैं। वे ऊर्जा तरंगे सूर्य की रश्मि

तरंगों के साथ मिश्रित होकर पृथ्वी पर आती हैं और उनका प्रभाव मनुष्य के तीनों शरीरों–स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और मनोमय शरीर पड़ता है जिनसे मानव जीवन प्रभावित होता रहता है बराबर। इतना ही नहीं सूर्य रश्मि से संयुक्त नौ ग्रहों की ऊर्जा तरंगों के विद्युत चुम्बकीय तत्वों से पृथ्वी पर नौ प्रकार के रत्न, नौ प्रकार के अन्न, नौ प्रकार के धातुओं की सृष्टि होती है इसीलिए ज्योतिष में 9 की संख्या को शुभ माना जाता है। जिन तीन शरीरों की चर्चा की गयी है उन पर अलग–अलग ग्रहों की ऊर्जा तरंगों का प्रभाव पड़ता है। सूर्य की अपनी विशिष्ट ऊर्जा है जिसका प्रभाव मनुष्य की आत्मा पर पड़ता है। पहला मनोमय शरीर है इस शरीर पर चन्द्रमा के ऊर्जा तरंगों का सीधा प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त बृहस्पति, मंगल, इन दोनों का भी पड़ता है प्रभाव। दूसरा है सूक्ष्म शरीर इस पर शुक्र, शनि और बुध की ऊर्जा तरंगो का पड़ता है प्रभाव। शेष राहु और केतु की ऊर्जा तरंगे प्रभावित करती है स्थूल शरीर को। शरीर से ऊर्जा की विद्युत चुम्बकीय तरंगे विकीर्ण भी होती है। यदि उनको विकीर्ण होने से रोका जाय तो कई प्रकार का लाभ होता है। सूर्य अन्य ग्रहों का अधिपति है। संसार को प्रकाशित तो करता ही है जीवन भी प्रदान करता है। शरीर के सभी अंगो में प्रमुख नेत्र है। सूर्य की ऊर्जा की विद्युत चुम्बकीय तरंगे बराबर नेत्रों से निकलती रहती है। वे तरंगे अति महत्वपूर्ण है। इनके विकीर्ण होने से मन विचार और बुद्धि तो अस्थिर होता हैं। मनुष्य बहिर्मुखी भी सर्वाधिक हो जाता है इसीलिए योगी साधकगण दोनों पलकों को बराबर मिलाये रहते हैं। प्रायः सिर नीचा कर के बैठते हैं ताकि तरंगे कम से कम बाहर विकीर्ण हों। जो वास्तव में योगी हैं सामान्य रूप से उनके बैठने और देखने की मुद्रा पर ध्यान दीजिये। पद्मासन में दोनों हाथों का जमीन पर टेक लगाकर बैठे दिखाई देखें। उनकी आंखे उन्मिलित होगी। बीच–बीच में अपने आप बन्द भी हो जाती होगी। एकान्त स्थान में बैठिए। चित्त को विचार रहित करिए। मन को शान्त रखिए। स्वाभाविक ढंग से नेत्र बन्द करिए। प्रारम्भ में कम से कम एक घण्टा ऐसी ही अवस्था में रहिए और फिर देखिए उसका क्या परिणाम आता है आपके सामने कुछ ही दिनों के बाद। मन स्थिर रहने लगेगा। चित्त में कम से कम विकार उत्पन्न होने लगेगा।

बुद्धि भी विकसित होने लगेगी। तनाव कम होने लगेगा। कहने की आवश्यकता नहीं, ध्यान योग का यही मूलाधार है।

अब रही ग्रहों की बात। सूर्य को लेकर नौ ग्रह हैं। आपको ज्ञात होना चाहिए कि नेत्रों से सूर्य की रश्मि ऊर्जा तरंगे तो विकीर्ण होती ही है। इसके अतिरिक्त हाथ पैर के अंगूठे से भी होती हैं विकीर्ण। अंगूठे से मस्तक पर तिलक लगाया जाता है इसलिए कि लगाने वाला इस माध्यम से अपनी आत्म शक्ति को प्रदान कर रहा है लगाये जाने वाले की आत्मा को। यह कार्य आत्मैक्य का बोध करता है। विवाह के समय पति–पत्नी को टीका लगता है– मेरी और तुम्हारी आत्मा में कोई भेद नहीं कोई अन्तर नहीं। हम दोनों की आत्मा एक है (पढ़िए– तीसरा नेत्र) साधक, योगी, महापुरुष आदि जन अपने पैर का स्पर्श करने नहीं देते हैं क्यों? इसलिए कि अंगूठे से निकलने वाली सूर्य की रश्मि ऊर्जा चरणस्पर्श करने वाले के शरीर में प्रवेश कर जाती है। जिसका परिणाम यह होता है कि चरणस्पर्श करने वाले महापुरुष का तो कोई नुकसान नहीं होता, लेकिन जिसका चरण है, उसकी मानसिक एकाग्रता और वैचारिक स्थिरता डवांडोल होने लगती है। व्याकुल हो उठता है वह सबसे बड़ी बात यह है कि यदि वह योगी या साधक है तो उसकी साधना में व्यतिक्रम उत्पन्न हो जाता है। जहां तक प्रश्न है ग्रहों के मण्डल से निकलने वाली विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा तरंगों का। उनके शरीर में प्रवेश करने के लिए नौ मार्ग हैं लेकिन निकलने के लिए हाथ पैर की उँगलियों की शिराएं हैं। हाथ के अँगूठे को छोड़कर शेष आठ ग्रहों की भिन्न–भिन्न तरंगे हाथों की आठों उंगलियों से बराबर विकीर्ण होती रहती हैं। वे तरंगे शास्त्र की दृष्टि से अच्छी भी है और बुरी भी। वात, पित्त, कफ से मिलकर वे शरीर में तरह–तरह की रोग व्याधियां पैदा करती रहती है। जिस ग्रह का जो रत्न है, धातु है, उससे संबंधित उंगली में धारण करने से उस ग्रह की तरंगे नियंत्रित हो जाती है और उसका परिणाम अनुकूल हो जाता है। अंगूठी पहनने के पीछे यहीं सार्वभौम धारणा है। अस्तु

●●●

अब हम आगे अंगूठी पर विशेष रूप से चर्चा करेंगे। यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि अंगूठी का महत्व हर युग में रहा है और

भावी युगों में भी रहेगा। आदिम काल से लेकर आज तक मानव सभ्यता ने अपनी उन्नति के जितने भी पड़ाव देखे हैं। उन सभी पड़ावों में अंगूठी या मुट्ठी का अपना विशेष स्थान रहा है। चाहे ग्रहों के प्रकोप से छुटकारे का प्रश्न हो, चाहे जादू–टोने का प्रश्न हो, चाहे भूत–प्रेत बाधा दूर करने की या अन्य तांत्रिक क्रिया हो–अंगूठी का प्रयोग उपयोग बराबर होता रहा है। अंगूठी, का न कोई आदि होता है और न तो अन्त और यही कारण है कि अंगूठी नित्यता और पूर्णता का प्रतीक मानी जाती है। साथ ही साथ दो व्यक्तियों के बीच स्नेह और विश्वास का आदर्श बंधन भी मानी जाती है। यही कारण है कि विवाह के मांगलिक अवसर पर वर–वधु को अंगूठी पहनाने की प्रथा युगों से चली आ रही है। अनेक धर्मों में विवाह को पक्का करने के लिए मंगनी के अवसर पर वर–वधु को अंगूठी पहनाने की प्रथा युगों से चली आ रही हैं।

तंत्र में बहुत से ऐसे मंत्रों का एवं क्रियाओं का विधान है कि उसके द्वारा अभिमंत्रित अंगूठियों का उपयोग स्वास्थ्य रक्षा के लिए भयंकर रोगों के नाश के लिए और भूतप्रेत बाधा निवारण के लिए किया जाता है। विलियम जोन्स ने 1877 में अपनी पुस्तक 'किंगर रिंग लार' ने लिखा है कि गठिया अथवा आम बात के उपचार में गैलवानी यानी जस्ता चढ़ी अगूंठी का उपयोग लाभप्रद होता है। लगभग सौ वर्ष पहले लन्दन की दुकानों में रोमांटिक अंगूठियों की बिक्री काफी होती थी। स्पष्ट है कि उसके खरीदारों की संख्या निश्चत ही बहुत रही होगी उस समय।

स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए अंगूठियों का अन्य ढंग से भी उपयोग होता था। 16वीं शताब्दी में महामारी फैलने पर 'लार्ड चान्सलर हट्टन ने लिखा था अपनी महारानी एलिजाबेथ के आदेशों का पालन करने, अपने कर्तव्य को साहस और निर्भीकता के साथ निभाने में मैं इस अभिमंत्रित अंगूठी– जो तीन भिन्न–भिन्न धातुओं से बनी हुई है– के प्रभाव से समर्थ हुआ हूँ। इस अंगूठी में संक्रामक रोग फैलाने वाली वायु को निष्कासित करने की अद्भुत क्षमता है। गधे के दाहिने पैर के खुर से जड़ी अंगूठी पहनने से मिरगी से छुटकारा मिलता है। यदि सोने की अंगूठी विशेष रूप से इससे जड़ी हो तो उसे पहनने से दाद से छुटकारा मिलता है। ऐसा माना जाता है कि सोने की अंगूठी को आंख की बिलनी पर रगड़ने से लाभ होता है।

कहा जाता है कि एक बार रानी एलिजाबेथ ने 'अर्ल ऑफ एसेक्स को अपनी अभिमंत्रित अंगूठी भेंट की थी और यह कहा था, "यदि कभी आपसे कोई अपराध हो जाए तो आप इसे लौटा दीजिएगा। सब कुछ माफ़ कर दिया जाएगा।" संयोगवश अर्ल से गंभीर अपराध हो गया। उसे मौत की सजा सुनायी गयी। उसने जेल से रानी एलिजाबेथ को अंगूठी भेजी उसका भला न चाहनेवाले किसी व्यक्ति ने इस अंगूठी को बीच में ही रोक लिया। रानी प्रतीक्षा करती रही, पर अंगूठी उसके पास न पहुंची अंगूठी न पहुंचने से अर्ल का अपराध क्षमा नहीं हुआ। उसे सूली पर चढ़ना पड़ा।

अंगूठी पहनने वाले की अधिसत्ता की प्रतीक होती है। मुहर अंगूठी का उपयोग पत्रों तथा अन्य महत्वपूर्ण कागजात पर मुहर लगाने के लिए होता था। स्वयं अपने में भी अधिकार की एक प्रतीक थी। एक प्रसंग के अनुसार फराओं ने जोसेफ से कहा था, "देखो, मैंने तुम्हें समूचे मिस्र का अधिष्ठाता बना दिया है।" इतना कहकर फराओं ने अपने हाथ से मुहर मुद्रिका निकाली और जोसेफ के हाथ में पहना दी। इस प्रकार उसने जोसेफ को मिस्र का अधिष्ठाता बना दिया।

राजा परम्परागत रूप में अपनी उपासना तथा साधना से चमत्कारिक अंगूठी को जो शक्ति प्रदान करता था, उसमें कुछ रोगों के उपचार की अद्‌भुत क्षमता थी। यह उसकी अभिमंत्रित अंगूठी का चमत्कार था कि वह व्यापक रूप से चमत्कारिक शक्ति रखने वाला माना जाता था। 'क्रैम्प रिंग' को उपहार या दान में देने का भी प्रचलन था। ऐसा समझा जाता था कि 'क्रैम्प रिंग' की उत्पत्ति उस पवित्र अंगूठी से हुई थी, जो बहुत दिनों तक वेस्टमिनिस्टर एबे में रखी गयी थी और जिसकी बराबर पूजा की जाती थी। एक पौराणिक कथा के अनुसार एक भिखारी ने जब सेंट जान के नाम पर भीख मांगी, तब एड़वर्ड ने यह अंगूठी उसे दे दी। अंगूठी पाते ही भिखारी अदृश्य हो गया। बाद में यही अंगूठी एक वृद्ध ने दो तीर्थयात्रियों को दी। तीर्थयात्रियों का कहना था कि वह वृद्ध सेंट जान को छोड़कर और कोई नहीं था। अंगूठी देते समय उसने यह कहा कि इसे राजा को वापस कर दिया जाये। ऐसा विश्वास था कि इस पवित्र और चमत्कारिक अंगूठी से ऐंठन और मिरगी रोग से मुक्ति मिलती है।

'गुड फ्राइडे' के दिन राजा क्रैम्प रिंग को 'क्रास' को अर्पित करता था और इसे अभिमंत्रित करता था। ये क्रैम्प रिंग सोने और चांदी की होती थीं। यह अनुष्ठान पूरा हो जाने के बाद सारी क्रैम्प अंगूठियां रत्नभण्डार में वापस भेज दी जाती थीं। हेनरी अष्टम के समकालीन एण्ड्रयू बूर्डे ने बताया था कि इंग्लैण्ड के राजा हर वर्ष क्रैम्प रिंग की पूजा करते थे। अंगूठियों की उपासना 'रिफार्मेशन' के बाद निन्दा के कारण प्रायः समाप्त हो गयी। रानी मेरी क्रैम्प रिंग की उपासना करती थी, किन्तु उसके बाद यह पुनः चालू हुई या नहीं, यह विवाद का विषय है।

क्रैम्प रिंग अपनी विविधताओं के साथ आधुनिक काल तक बनती रही है। आमतौर से यह ताबूत से जुड़े हैंडिल, चूल या कब्जा, स्क्रू तथा कील से बनती थी। इससे गठिया, पक्षाघात तथा गंभीर वात रोग दूर होते थे। मध्यकालीन युग में आमतौर पर यह माना जाता है कि अंगूठियों में विविध प्रकार की अलौकिक शक्तियाँ होती हैं। जॉन ऑफ आर्क के निन्दक कहते थे कि उसके पास जादुई अंगूठियाँ हैं जो उसे हर युद्ध में विजय दिलाती हैं।

•

भैरव के विभिन्न स्वरूप

श्री भैरवजी के शरीर का रंग श्याम है। उनकी चार भुजाएँ है जिनमें वे त्रिशूल, खड्ग, खप्पर तथा नरमुण्ड धारण करते हैं। अन्य मतानुसार वे एक हाथ में मोरपंखों का चंवर भी धारण करते हैं। उनका वाहन श्वान (कुत्ता) है। उनकी वेशभूषा लगभग शिवजी के समान है। शरीर पर भस्म मस्तक पर त्रिपुण्ड, बाघम्बर धारण किये, गले में मुण्ड माला और सर्पों से शोभायमान रहते हैं। भैरव श्मशानवासी हैं। ये भूत–प्रेत योगिनियों के अधिपति हैं। हर प्रकार के कष्टों को दूर कर बल, बुद्धि, तेज, यश, धन तथा मुक्ति प्रदान करने के कारण उनकी विशेष प्रसिद्धि है। श्री भैरव. के अन्य रूपों में महाकाल भैरव' तथा बटुक भैरव मुख्य हैं। अष्ट भैरव के रूप में जिन आठ नामों की प्रसिद्धि है, वे इस प्रकार है–(1) अतिसांग भैरव (2) चण्ड भैरव (3) भयंकर भैरव (4) भीषण भैरव (5) संहार भैरव (6) कापाली भैरव (7) रूरू भैरव (8) क्रोधोन्मत भैरव।

नौ स्वरूप भी भैरव के माने जाते हैं– (1) क्षेत्रपाल (2) दण्डपाणि (3) नीलकण्ठ (4) मृत्युंजय (5) मंजुघोष (6) ईशान (7) चण्डेश्वर (8) दक्षिणामूर्ति (9) अर्द्धनारीश्वर।

●

साक्षात् शिव के बालरूप हैं बटुकभैरव

श्री बटुक भैरव के बारे में भक्तों को अनेक प्रकार के भ्रम एवं शंकाएं पैदा होती रही हैं कि वे देवता कौन हैं? कुछ लोग श्री बटुक भैरव को अष्ट भैरव की संज्ञा एवं जितने भैरव हैं, उनमें गणना करते हैं, लेकिन वास्तव में श्री बटुकभैरव साक्षात् शिव के बाल–रूप हैं।

शक्तिसंगम तंत्र के कालीखण्ड में भैरव की उत्पत्ति का वर्णन है–

आपत् नामक दैत्य ने कठिन तपस्या कर वर प्राप्त किया कि मेरी मृत्यु पांच वर्ष के बालक के द्वारा उसके हो, पश्चात् वह मदोन्मत होकर लोकों में उत्पात करने लगा। पीड़ित देववर्ग जब आपत् को मारने हेतु उपाय करने के लिए एकत्र हुए उस समय उन सबके शरीरों से एक–एक तेज की धारा निकली और प्रत्येक के सम्मिलित तेज से एक–एक बटुक का आविर्भाव हुआ। जब असंख्य बटुकों के आविर्भाव के पश्चात् भी वह तेज धारा आगे बढ़ी तो निश्चित बिन्दु पर एक विशेष बटुक का आविर्भाव हुआ। उसी बटुक ने आपत् दैत्य का संहार किया। इसी कारण उन्हें आपदुद्धारक कहा जाता है।

इसी प्रकार कूर्म–स्कन्दादि पुराणों में भी भैरव के अवतार का वर्णन मिलता है। श्री बटुक के पटल में भगवान शंकर ने कहा कि "हे पार्वती मैंने प्राणियों को सभी प्रकार के सुख देने वाला बटुक रूप किया है। अन्य देवता तो देर से कृपा करते है किन्तु भैरव शीघ्र ही सभी मनोकामनायें पूर्ण करते हैं। उदाहरणार्थ भैरव का वाहन कुत्ता अपनी स्वामिभक्ति के लिए प्रसिद्ध है। अनेक सत्य कथाएँ हैं कि कुत्ते ने अपनी जान की बाजी लगाकर अपने स्वामी रक्षा की। जब एक सामान्य जीव अपने स्वामी का इतना वफादार है, फिर उसका स्वामी (भैरव) अपने साधक के कितने अधिक रक्षक होंगे। स्वयं सिद्ध है कि वह साधक की सभी मनोकामनाएं पूर्ण कर अपने भक्त की सभी प्रकार की विपत्तियों से रक्षा करते हैं।

शारदा तिलक आदि तन्त्र ग्रन्थों में श्री बटुक भैरव के सात्विक, राजस, तामस तीनों ध्यान भिन्न–भिन्न प्रकार से वर्णित हैं। रूप उपासना भेद से उनका फल भी भिन्न है। सात्विक ध्यान, अपमृत्युनाशक, आयु–आरोग्यप्रद तथा मोक्षप्रद है। धर्म, अर्थ, काम के लिए राजस ध्यान है। कृत्या भूतादि तथा शत्रु का शमन करने के लिए तामस ध्यान किया जाता है।

बटुक भैरव (बाल स्वरूप) का स्फटिक ने समान कान्तिमान शरीर, कुण्डलों में देदीप्यमान मुख, दिव्यनवीन मणिजटिल किंकिणी, पायजेबादि से सुशोभित, निर्मल, वस्त्र प्रसन्नचित्त एवं त्रिनयन हैं। वे अपने हाथों में शूल तथा दण्ड को धारण किये हुये हैं।

●

शिव की कालस्वरूपता

भारतीय विचार पद्धति में 'काल' का महत्वपूर्ण स्थान है। काल संहार का प्रतीक है और काल समय का भी। दोनों में बाहरी दृष्टि से थोड़ा भेद है, किन्तु वास्तव में एकार्थकता भी है। काल समय का प्रतीक होते हुए भी संहार का पर्याय है। काल सबको काटता है। यही कारण है कि व्यवहारिक दृष्टि में समय का प्रतीकत्व स्वीकार करते हुए भी भारतीय कला और दर्शन में काल को अधिकतर संहार और विनाश का ही प्रतीक माना गया है। काल के प्रति यह उभय दृष्टि बहुत प्राचीन है। 'कालो रुद्रः' वैदिक मान्यता है। माण्डूक्योपनिषद में अग्नि का जो संहार का प्रतीक है, स्रोत स्फुलिंगों में से एक स्फुलिंग काल कहा गया है। कला में काल का प्रतीक सर्प है और जहां भी काल का प्रदर्शन अभीष्ट होता है, वहां काल की जगह सर्प बताते हैं। विष्णु पुराण के काल सम्बन्ध ी विवेचन में कहा गया है कि परमपुरुष, जो सृष्टि का आदि तत्व या परम तत्व है, काल रूप में स्थित है। यही काल सृष्टिरचना का आदिकाल है–

तदेव सर्वमेवैतदव्यक्तस्वरूपवत्।
तथा पुरुषरूपेण कालरूपेण च स्थितम्।।

इसी परम पुरुष या तत्व को वैदिकों ने रुद्र कहा और पौराणिकों ने शिव। भगवत का वचन है–

मन्युर्मनुर्महेशानो महान् शिव ऋतुध्वजः।
उग्ररेता भवः कालो वामदेवो धृतव्रतः।।(भागवत 3,12, 12)

कलाकारों ने काल और शिव में भेद समझकर शिव को काल से भी महान माना है। अतएव नटराज आदि को प्रतिमाओं में काल (सर्प) शिव का वलय है। पौराणिकों में भी शिव को भुजंग भूषण माना गया है। किन्तु इस परम्परा के साथ ही साथ शिव को काल का ही स्वरूप भी स्वीकार किया गया। ज्योतिषशास्त्रों में शिव को कालपुरुष कहा गया है किन्तु वामन पुराण में कालपुरुष था जिसके अंगोपांगों का क्रमानुसार वर्णन नक्षत्रों और राशियों के नामों के आधार पर किया गया है। समय या काल के सूक्ष्म विवेचन में 'दण्ड' मुहूर्त, प्रहर, दिन, रात्रि, पक्षअयन, वत्सरादि है किन्तु शिव की कालस्वरूपता का विवेचन केवल नक्षत्र के आधार पर ही शास्त्रों में मिलता है।

कालरूपी शिव का वर्णन वामन पुराण में विस्तार के साथ है तथा शिव में ही नक्षत्र, उसके देवता तथा उसकी राशियों में अन्तर्भूत माना गया है। वामन पुराण के आधार पर शिव की कालस्वरूपता का परिचय इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

शिव के मस्तक में आश्विनी, भरणी और अर्द्धकृत्तिका का समावेश है। इन नक्षत्रों के देवता मंगल भी शिव के अंश है। मेष राशि का स्थान भी शिव का मस्तक है।

कृत्रिका का शेष अंश, रोहिणी और मृगशिरा के अंश से शिव का मुख निर्मित है। इन नक्षत्रों के देवता शुक्र और राशि वृष का वास भी शिव के ही मुख में रहता है। मृगशिरा का शेषांश सम्पूर्ण आर्द्रा और पुनर्वसु के कुछ अंश शिव के वक्ष में समाहित हैं तथा शिव के वक्ष में ही इन नक्षत्रों के देवता बुध और राशि मिथुन की प्रतिष्ठा है।

शिव के हृदय में पुनर्वसु का शेषांश, पुष्य और अश्लेषा का कुछ अंश स्थित है। इन नक्षत्रों के देवता चन्द्र और राशि कर्क का स्थान भी शिव का हृदय ही है। शिव के उदर का अंश मघा, पूर्वा फाल्गुनी और उत्तरा फाल्गुनी से बना है और इन नक्षत्रों के स्वामी रवि तथा राशि सिंह का निवास भी शिव का उदर है।

शिव के कटि स्थान में उत्तरा फाल्गुनी, हस्त और चित्रांश का स्थान है उनके देवता बुध और राशि कन्या का भी यही स्थान है।

चित्रा का शेषांश स्वाती और विशाखा के कुछ अंशों से शिव की वस्तिका का निर्माण है और देवता शुक्र तथा राशि तुला का स्थान भी शिव की वस्ति है। लिंगप्रदेश विशाखा के अंश तथा अनुराधा और ज्येष्ठा के अंश से बना है। दोनों नक्षत्रों के देवता मंगल और राशि वृश्चिक भी शिव के लिंगवत है। मूल, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ के कुछ अंश से शिव की जंघा बनी और शिव की जंघा में ही देवता गुरु तथा राशि धनु का निवास है। जानुप्रदेश में उत्तराषाढ़ का शेषांश, श्रवण और धनिष्ठा का कुछ अंश है। इसी स्थान पर इन राशियों के देवता शनि और राशि मकर का स्थान है।

धनिष्ठा के कुछ अंश शतभिषा और पूर्वभाद्र के कुछ अंश में शिव की पिंडली बनी है, इसके देवता शनि और राशि कुम्भ भी शिव की पिंडली में ही समाविष्ट है और शेष नक्षत्रों (पूर्व भाद्रपद का शेषांश, उत्तर भाद्रपद और रेवती) तथा इनके देवता गुरु और राशि मीन का स्थान शिव का चरण है। शिव की कालस्वरूपता का यह स्थूल विवरण पुराण और ज्योतिष शास्त्र में बड़ा लोकप्रिय हुआ। मार्कण्डेय पुराण में इसी आधार पर नारायण की भी कालस्वरूपता बताने की चेष्टा की गयी है। ज्योतिष के प्रायः सभी जातक सम्बन्धी ग्रन्थों में इसी आधार पर कालपुरुष की कल्पना और विवेचना की गयी है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह कल्पना कितनी पुरानी है, कहा नहीं जा सकता। किन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है। जब भारत में नक्षत्रों के आधार पर राशियों का विभाजन कर लिया गया तथा वर्ष गणना अश्वनी भरणी से करना प्रारम्भ कर दिया तभी से अन्दर ही विभिन्न राशियों और नक्षत्रों को समाहित माना जाने लगा होगा। कुछ विद्वानों का मत है कि वैदिक वर्ष गणना कृत्तिका से प्रारम्भ होती थी और बाद में आज की तरह अश्वनी भरणी से वर्ष गणना होने लगी। बहुत सम्भावना इस बात की है कि यह अनार्य तत्व के रूप में वर्तमान रही हो और चूंकि लोकजीवन में और अवैदिक लोकाचार में अश्वनी भरणी के ही आधार पर वर्ष गणना होती रही। अतएव बाद में वैदिकों ने भी अश्विनी के ही आधार पर वर्ष गणना उपयोगी समझा हो। यह स्थिति सम्भवतः (ज्योतिषियों के गणनानुसार

भी) ई0पू0 500 के लगभग आयी होगी और तभी नक्षत्रों और राशियों में सामंजस्य बैठाया गया हो। इसके पूर्व नक्षत्र वैदिक तत्व था और राशि लोक तत्व। वामन पुराण में शिव की कालस्वरूपता का वर्णन दक्ष यज्ञ के विध्वंस के प्रसंग में है। शिव की मार से जब समस्त देवता त्रस्त हो गये तो यज्ञ भी मृगरूप धरकर मुख से भागा।

'अग्रौ प्रसष्टे यज्ञोपिभूत्वादिव्यवपुर्मृगः'

इसी यज्ञ मृग के पीछे अपने आधे शरीर को यज्ञशाला में प्रतिष्ठित करके आधे शरीर को आकाश में कालरूप में आच्छादित किया। इसी कालरूप से ही उन्होंने मृग रूपी यज्ञ का संहार किया और उसे आकाश में स्थित किया।

•

नवरात्र के नव सोपान

नवरात्र एक ऐसा शब्द है, जिसे भारतीय संस्कृति के बहुधा लोग अच्छी तरह से जानते हैं। यह भी अति प्रचलित है कि नवरात्र प्रायः वर्ष में दो बार आते हैं। वसन्त ऋतु में आने के कारण वासन्तिक एवं शरद ऋतु में आने से इन्हें शारदीय नवरात्र के नाम से जाना जाता है। इन नवरात्रों के नव सोपान क्या हैं यह अत्यन्त विचारणीय प्रश्न है। नवरात्र शब्द की व्याख्या करने पर हमें दो शब्द मिलते हैं। नव+रात्र, नव शब्द के कई अर्थ है लेकिन उनमें मुख्य दो हैं। नव–नवीनता दूसरा नव–संख्यावाचक रात्र शब्द कालवाचक है। यदि नव शब्द संख्या वाचक है तो प्रथम द्रष्टया यह कहा जा सकता है कि नव ही एक ऐसी संख्या है, जिसे किसी अंक से गुणित करने पर उसका योग नव ही होता है। नव संख्या की बात करें तो शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कूष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यानी, कालरात्री, महागौरी और सिद्धिदात्री इन नव स्वरूपों को भगवती का ही स्वरूप माना गया है। एक–एक दिन एक–एक देवियों की उपासना करें तो सम्पूर्ण उपासना के लिए नव दिन का समय अपेक्षित है। यदि आवरणों के पूजन में पहुंचते हैं तो नव आवरणों के पूजन का विधान मिलता है, जिसे आवतरणार्चन के नाम से जाना जाता है। समस्त देवियों को तीन महाशक्तियों के रूप में इंगित किया गया है,

जिन्हें क्रमशः महाकाली, महालक्ष्मी एवं महासरस्वती के रूप में जाना जाता है। इनके प्रसन्न करने का सर्वोत्कृष्ट मंत्र नर्वाण मंत्र बतलाया गया जिसे ''ऐं ह्री क्लीं चामुण्डायै विच्चे'' के रूप में जाना जाता है। दुर्गासप्तशती में प्रमुख दैत्यों के रूप में कुल नवदैत्यों का वर्णन मिलता है जिन्हें मधु कैटभ, महिषासुर, धूम्रलोचन, चण्ड, मुण्ड, रक्तबीज, निशुम्भ के नामों से जाना जाता है। छह ऋतुएं एवं तीन देवियों का समन्वय भी नव संख्यावाची है। नव शब्द नवीनता का भी द्योतक है। प्रथम तो काल की नवीनता अर्थात् शरद ऋतु का आगमन। नवीन फसलों का तैयार होना आरम्भ हो जाता है। शरीर में हलचल प्रारम्भ हो जाती है। आश्विन मास से शीत का पदार्पण हो जाता है। वेदों की जीवेमः शरदः शतम् की उक्ति यह संकेत करती है कि यदि शरद ऋतु में कोई जीवित रह गया तो यह वर्ष भर जीवित रह जाएगा। इसीलिए एक जगह पर वर्ष को भी शरद् के नाम से बतलाया गया है। नव दिन उपवास करके व्यक्ति अपने शारीरिक स्वभाव को प्रकृति के स्वभाव के अनुरूप बना लेता है क्योंकि स्वस्थ जीवन जीने का रहस्य है कि अपने को प्रकृति के अनुकूल बनाया जाय। यदि हम प्रकृति के विपरीत आचरण करेंगे तो वह कथापि कल्याणकारक नहीं होगा। नवरात्र के उपवास पर यदि ध्यान दिया जाय तो यह आभ्यन्तरः शुचिः का उत्कृष्ट साधन लगता है। आभ्यान्तर का अर्थ शरीर के अन्दर की सारी प्रक्रियाएँ हैं। पौरोहित्य शास्त्र का सर्वप्रथम प्रतिपादन बाह्याभ्यन्तरः शुचि यह व्यक्त करता है कि व्यक्ति को बाहर से तथा भीतर से पवित्र होना चाहिए। बिना इसके स्वस्थ की उपमा नहीं दी जा सकती। पंचमहाभूत (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर) और अन्तःकरण चतुष्टय मन, बुद्धि, चित्त अहंकार ये नव तत्वों को शुद्धाति–शुद्ध रखने की प्रक्रिया है नवरात्र सभी के लिए नवीनता का संदेश लेकर आता है। यह ऐसा संदेश जन–जन को देता है कि किए गये कर्मों पर विचार करें। हम अपने क्रियाकलाप में कुछ नवीनता ले आवें। प्राचीन वैसे कार्य जो हमारे एवं समाज के लिए कष्ट के कारक हैं, उनको त्याग कर किसी ऐसे नवीन कार्य की शुरूआत करें जिससे जन–जन का कल्याण हो सके परन्तु बुरे कर्मों को छोड़कर अच्छे कर्मों का वरण करना कोई आसान

काम नहीं है। इसके लिए हमें चिन्तन करना होगा तथा उसके साथ–साथ तपस्यापूर्वक माता भगवती का आशीर्वाद भी लेना होगा। माता दुर्गा की उपासना का सर्वोत्तम काल है, नवरात्र। माता भगवती ने स्वयं कहा है कि शरद् काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी अर्थात् शरद् कालीन नवरात्र में जो मेरी उपासना भक्ति से समन्वित होकर करता है, उस पर मैं अतिशीघ्र प्रसन्न होती हूँ।

●

वर्णाक्षरों में समाहित है 'शक्ति बीज'

नवरात्र का पर्व शुरू होते ही घर–घर में भगवती दुर्गा की आराधना होने लगती है। दुर्गापूजा के पण्डालों में शक्ति का अद्‌भुत श्रृंगार–पूजन देखने को मिलता है। वस्तुतः पराम्बा ही विश्व का आधार है। वही मूलाधार में 'भू' रूप, अधिष्ठा में 'भुव' मणिपुर में, अनाहत विशुद्ध और आज्ञा में 'स्व', 'मह' 'जन' और तप तथा सहस्रार में 'सत्य' रूप में विद्यमान है।

ब्रह्मादयोऽपि यदपाङ्गतरङ्गभङ्गय सृष्टिस्थितिप्रलयकारणतां ब्रजन्ति। लावण्यवारिनिधि वीचिपरिप्लुतायै तस्यै नमोऽस्तु सततं हरवल्लभायै।

साधकों का मत है कि शक्ति का कोई भी स्वरूप चक्षुमात्र से ग्रहण नहीं किया जाता। इसके लिए साधना के साथ जुड़ना आवश्यक है। शक्ति ही विशिष्ट ब्रह्म का स्वरूप है। समस्त सृष्टि के सृजन, पालन एवं संहार के साथ–साथ जो कुछ भी दृष्टिगत है उसमें उसकी शक्ति कार्य कर रही है। यहाँ तक कि हमारे वर्णाक्षर भी उसी शक्ति की शक्ति को प्रतिबिम्बित करते हैं।

शिव के डमरू से प्राप्त चौदह माहेश्वर सूत्र नाद ब्रह्म के रूप में हमें प्राप्त हुए है। नाद से प्रस्फुटित स्वर शक्ति यंत्र का सृजन कर हमारी देवनागरी वर्णमाला को प्रकट करते हैं। इस वर्णमाला की रेखाकृति भी विशिष्ट प्रकार की है। 'अ' से लेकर 'ज्ञ' तक 52 मातृका (अक्षर) हैं। उनकी रेखाकृति पर हमें विचार करना चाहिए। आखिर यह ऐसी क्यों है? 'ॐ' को 'ओं' क्यों नहीं लिखते। शायद इसलिए कि इन सभी अक्षरों में निहित शक्तियाँ इनका निर्धारण करती हैं। इस वर्णमाला का उच्चारण करने में मूलाधार चक्र से, ब्रह्मरन्ध्र अर्थात् सहस्रार चक्र तक वायु का आघात कहाँ और किस प्रकार होता है, इन सभी दृष्टियों से विचारकर

ऋषियों ने भलीभांति अनुसंधान कर वर्णमाला की रेखाकृतियां निश्चित की हैं। भिन्न–भिन्न ध्वनि अर्थात् अ से ज्ञ तक के अक्षर में भिन्न–भिन्न शक्तियाँ निहित हैं। प्रत्येक अक्षर की स्वतंत्र शक्ति होती है। अतः भिन्न–भिन्न अक्षरों के मेल से अलग–अलग शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं। अतः किस शक्ति को उत्पन्न करने के लिए किन अक्षरों का मिलान किया जाए यह दुर्लभ खोज हमारे ऋषि मुनियों की दिव्य देन है। इन्हें ही मंत्र कहते हैं। सभी देवतागण अपने–अपने मंत्रों के अधीन रहते हैं।

हमारी वर्णमाला का प्रत्येक अक्षर शक्ति से परिपूर्ण है। उदाहरण के लिए जिस प्रकार मनुष्य अपने शरीर के प्रत्येक अंग से प्रेम करता है, उसी प्रकार देवगण भी अपने मंत्र के प्रत्येक अक्षर से प्रेम करते हैं। उन मंत्रों का उच्चारण यदि कुछ त्रुटिपूर्ण भी हो तो देवता प्रसन्न होते हैं। 'वर्ण' अपने आप में शक्ति रूप है, शक्तियों के पूंजीभूत वर्णों से निर्मित होने के कारण मंत्र स्वतः ही शक्तिमान और अचिन्त्य बन जाते हैं। इस प्रकार कई शक्तियों के परस्पर गुंजन से निर्मित मंत्र अजेय हो जाते हैं। जिस प्रकार से मंत्रों में देव प्रणव का महत्व है उसी प्रकार देवी प्रणव भी है–'ह्रीं'

वियत् (आकाश)–ह ईकार संयुक्त–ई वीति होत्र (अग्नि–र अर्द्धेन्दुलसितं चन्द्र बिन्दु)

अर्थात्–'ह्रीं' देवी प्रणव या देवी का बीज मंत्र है। ॐ के समान ही यह देवी–प्रणव भी व्यापक अर्थों से भरा हुआ है। **'वियदीकार संयुक्तं वीति होत्र समन्वितम्। अर्द्धेन्दुलसितं देव्याबीजं सर्वार्थ साधकम्।।'**

यदि नवार्ण मंत्र की व्याख्या करें तो 'ऐं' वाणी में महासरस्वती का, 'ह्रीं' माया रूप में महालक्ष्मी, 'क्लीं' काम, ब्रह्म रूप में महाकाली का प्रतीक है। तत्पश्चात् षष्ठं वक्त्र समन्वितम् वर्ण माला का छठा अक्षर आकारयुक्त (चा), सूर्य 'मुं' अवामश्रोतं–दक्षिण कर्ण (उ) और बिन्दु अर्थात- अनुस्वार से युक्त 'मुं' मंत्रों के टा तृतीया अर्थात् ट वर्ग की तीसरा अक्षर 'ड' नारायणेन सम्मिश्रत अर्थात् आकार से मिला हुआ 'डा', वायु 'य' वही अक्षर 'ऐ' से युक्त अर्थात् 'यै' और विच्चे यही नवार्णमंत्र है– **'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे**–उपासकों को आनन्द एवं मोक्ष देने वाला है। इसका साधारण अर्थ है कि 'हे चित्त स्वरूपिणी महासरस्वती! हे सद्रूपिणी महालक्ष्मी, हे आनन्द रूपि महाकाली, ब्रह्म विद्या पाने के लिए

हम सब तुम्हारा ध्यान करते हैं। हे महाकाली, महालक्ष्मी व महासरस्वती रूपिणी चण्डिके तुम्हे नमस्कार है। श्री विद्यारूपी सुदृढ़ गांठ को खोलकर हमें मुक्त करो।'

विशेष देवों के कुछ बीज मंत्र इस प्रकार हैं—हौं इसे प्रसाद बीज कहते हैं 'ह्' का अर्थ है शिव 'औ' का अर्थ है सदाशिव, बिन्दु का अर्थ हौ। दुखहरण। इस प्रकार पूर्ण अर्थ है—शिव और सदाशिव की कृपा से मेरे दुःख दूर हों।

दूं—'द' का अर्थ है—दुर्गा, ऊंकार का अर्थ है रक्षा और बिन्दु का अर्थ है करो अर्थात् हे माँ दुर्गे मेरी रक्षा करो।

क्रीं—क=काली, र=ब्रह्म, ईकार=महाकाया, नाद=विश्वमाता और बिन्दु=दुःखहरण अर्थात् ब्रह्मशक्ति स्वरूपा मां मेरे दुःखों को दूर करो।

ह्रीं—ह=शिव और र=प्रकृति, ई=नाद और बिन्दु का अर्थ दुःखहरण। अर्थात् शिवयुक्त महामाया मेरे दुःखों का नाश करें।

श्रीं—श=महालक्ष्मी, र=धन संपत्ति, ई=तुष्टि, नाद और बिन्दु=दुःखहरण, अर्थात धन सम्पत्ति तुष्टि—पुष्टि की देवी महालक्ष्मी मेरे दुखों का नाश करें। ऐं (सरस्वती बीज)—ऐ=सरस्वती और बिन्दु दुःखहरण अर्थात देवी सरस्वती मेरे दुखों का नाश करो। इसी प्रकार क्लीं (कृष्णबीज या काम बीज 'ग्लों (गणेश बीज), स्त्रीं (वधू बीज) आदि अनेक बीज मंत्र है। प्रयोग विधि का ज्ञान प्राप्त कर ही इन मंत्रों का जाप साधकों के लिए सिद्धि प्रदायक होता है। इस प्रकार यदि हम देवनागरी लिपि की सम्पूर्ण वर्णमाला पर दृष्टिपात करें तो यह कहीं न कहीं से भगवती पराम्बा की शक्ति से निहित है।

●

सुख-समृद्धि का प्रतीक कमल का फूल

हिन्दू धर्मानुसार प्रकृति में हम ईश्वर के स्वरूप का अवलोकन करते हैं जिसे हम स्वयं अपनी आँखों से देखते हैं तथा देवतुल्य मान कर उसका पूजन करते हैं जैसे साक्षात् सूर्य देवता, गंगा नदी, अग्नि देवता, तुलसी का पौधा, पीपल वृक्ष, वट वृक्ष, शमी वृक्ष तथा इन्हीं पेड़—पौधों के स्वरूप का हम वन देवता के नाम से पूजन करते हैं। वन देवता का वास पेड़ पौधों में होने पर उन्हें देव स्वरूप मानकर समयानुसार पूजन करते

हैं और उसी पेड़–पौधों से प्राप्त औषधियों से हमारा जीवन भी उन पर आश्रित रहता है।

इसी क्रम में हम 'कमल के फूल' को भी देव तुल्य मानते हैं। 'पद्य पुराण' में कमल पर आसीन ब्रह्म आख्यान मिलता है। भगवान विष्णु के नाभि से कमल के नाल की उत्पत्ति हुई और सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी का अवतरण हुआ। अतएव हमारी प्रकृति में 'कमल पुष्प' का बड़ा ही महात्म्य है। जिस प्रकार 'तुलसी दल' की मान्यता है, उसी प्रकार 'कमल के फूल' का भी हिन्दू धर्म में मान्य है। हम धीरे–धीरे इसे भूलते जा रहे हैं। कमल गट्टा, कमल ककड़ी भी एक औषधि है। वेद पुराणों के अनुसार कमल का फूल हमारी संस्कृति एवं धार्मिक भावनाओं से जुड़ा हुआ है। यदि हम ध्यानपूर्वक पुराणों का अवलोकन करें या प्राचीन चित्रों या मूर्तियों को देखें तो भगवान विष्णु के नाभि से कमल नाल निकलता हुआ ऊपर जाता है वहां पर सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी कमल के फूल पर विराजमान रहते हैं। श्री लक्ष्मीजी भी पद्य पुष्प पर ही आसीन रहती है। भगवान श्रीराम ने भगवान आशुतोष की पूजा कमल के पुष्पों द्वारा की। श्रीराम के नैनों की कमल स्वरूप व्याख्या की जाती है, राजीव लोचन अर्थात जिसकी आंखें कमल के समान हैं।

कार्तिक मास में कमल पुष्प से पूजा अर्चना करने से पुण्य प्राप्त होता है। पद्म पुष्प से पूजा करने वाले के घर में सदैव लक्ष्मी का निवास रहता है तथा पुत्र–पौत्रों एवं समस्त कुटुम्ब का कल्याण होता है। पद्म पुराण में तो यहां तक कहा गया है कि इस विश्व में कमल पुष्प दलों से जो व्यक्ति कमलाकान्त अर्थात ईश्वर की आराधना नहीं करता है, उसके घर में कमला (श्री) का जन्म जन्मान्तर निवास नहीं रहता है।

"कमलै कार्तिके मासियेन नारा धितो 'हरिः।
जन्म जन्मनि तद्गेहे कमला नहि तिष्ठति।।"

पद्म पुराण श्लोक–91

कमल पुष्प हिन्दू धार्मिक भावनाओं में समाहित है। हिन्दू महिलाएँ सुमंगल हेतु अपने आभूषणों में कमल पुष्प का प्रतीक बनवाकर धारण करती है, क्योंकि कमल का विकसित पुष्प श्री का प्रतीक है।

"नास्ति पद्यसमं पुष्पं जैमिने"

अर्थात् कमल के समान कोई अन्य पुष्प **अर्थात् कमल के समान कोई अन्य पुष्प** नहीं है। तीनों देवताओं के त्रित्व का प्रतीक कमल पुष्प है। लाल कमल ब्रह्मा, जो सम्पूर्ण त्रैलोक के सृष्टिकर्ता हैं। भगवान आशुतोष के लिए श्वेत पद्म जो ब्रह्म शक्ति के स्वरूप हैं एवं लक्ष्मीपति विष्णु के लिए नील पद्म जो सम्पूर्ण विश्व के रक्षक एवं धारक हैं। पद्म पुष्प को अतुलनीय माना गया है जो हमारे सुख–समृद्धि तथा मंगल का साधन है। प्राचीन समय में विवाह या मांगलिक अवसरों पर खिले कमल के स्वरूप का रंगोली या अधिकांश चौक या आलेपन में अंकित करना शुभ माना जाता है। देवी–देवताओं के हाथों में पद्म पुष्प ही विराजमान रहता है। सोलह दिन के लक्ष्मी पूजन पर नित्य कमल पुष्प लक्ष्मीजी को चढ़ाया जाता है। स्वयं ब्रह्मा पद्मयोनि है, विष्णु के नाभि से कमल तथा सृष्टिकर्ता परम ब्रह्म की उत्पत्ति हुई। पुराणों के अनुसार ऐसी मान्यता है कि सृष्टि की रचना में कमल की प्राचीनता स्वयं प्रकट है। प्राचीनकाल से इतिहास भी साक्षी बना है कि पद्म हमारे हिन्दू धर्म के इर्द–गिर्द रहता है। मत्स्य पुराण तथा अग्निपुराण में भगवान आदित्य को भी पद्महस्त बनाया गया है। पद्म पुष्प सूर्योदय के समय खिलता है तथा सूर्यास्त होते–होते बंद हो जाता है, इससे यह स्पष्ट होता है कि कमल नये जीवन का संदेश देता है। पद्मांकन की प्रथा से हिन्दू धर्म समलंकृत की गयी है। शुभ अवसरों तथा अन्य पूजन पर कमल का महत्व अत्यन्त लाभकारी एवं श्री का स्वरूप माना गया है इस पुष्प से पूजन–अर्चन करने वाले व्यक्ति के घर में सदैव सुख समृद्धि रहती है तथा श्री का वास सदैव रहता है।

●

कृष्ण जन्म का रहस्य

कृष्ण का जन्म होता है, अंधेरी रात में अमावस में। सभी का जन्म अन्धेरी रात में होता है और अमावस में होता है। असल में जगत की कोई भी चीज उजाले में नहीं जन्मती, सबका जन्म अन्धेरे में ही होता है। एक बीज भी फूटता है, तो जमीन के अंधेरे में जन्मता है। फूल खिलते हैं प्रकाश में, जन्म अंधेरे में होता है।

असल में जन्म की प्रक्रिया इतनी रहस्यपूर्ण है कि अंधेरे में ही हो सकती है। आपके भीतर भी जिन चीजों का जन्म होता है, वे सब गहरे

अंधकार में होती है। एक कविता जन्मती है, तो मन के बहुत अचेतन अंधकार में जन्मती है बहुत अनकांशस डार्कनेस में पैदा होती है। एक चित्र का जन्म होता है, तो मन की बहुत अतुल गहराइयों में। जहाँ कोई रोशनी नहीं पहुँचती जगत की, वहाँ समाधि का जन्म होता है, ध्यान का जन्म होता है, तो सब गहन अंधकार में। गहन अंधकार से अर्थ है, जहाँ बुद्धि का प्रकाश जरा भी नहीं पहुँचता। जहाँ सोच–समझ में कुछ भी नहीं आता, हाथ को हाथ नहीं सूझता है। कृष्ण का जन्म जिस रात में हुआ, कहानी कहती है कि हाथ को हाथ नहीं सूझता था, इतना गहन अंधकार था, लेकिन इसमें विशेषता खोजने की जरूरत नहीं है। यह जन्म की सामान्य प्रक्रिया है। दूसरी बात कृष्ण के जन्म के साथ जुड़ी है– बंधन में जन्म होता है, कारागृह में। किसका जन्म है, जो बंधन और कारागृह में नहीं होता है? हम सभी कारागृह में जन्मते है। हो सकता है कि मरते वक्त तक हम कारागृह से मुक्त हो जाएँ, जरूरी नहीं है। हो सकता है, हम मरें भी कारागृह में। जन्म एक बन्धन में लाता है, सीमा में लाता है। शरीर में आना ही बड़े बंधन में आ जाना, बड़े कारागृह में आ जाना है। जब भी कोई आत्मा जन्म लेती है, तो कारागृह में ही जन्म लेती है।

वैसे इस प्रतीक को ठीक से नहीं समझा गया। इस बहुत काव्यात्मक बात को ऐतिहासिक घटना समझ कर बड़ी भूल हो गई। सभी जन्म कारागृह में होते हैं, लेकिन सभी की मृत्यु कारागृह में नहीं होती। कुछ की मृत्यु मुक्ति में होती है। जन्म तो बंधन में होगा, मरते क्षण तक अगर हम बंधन से छूट जाएं, टूट जाएं सारे कारागृह, तो जीवन की यात्रा सफल हो गई।

कृष्ण के जन्म के साथ एक और तीसरी बात जुड़ी है और वह यह है कि जन्म के साथ ही उन्हें मारे जाने की धमकी है। किसको नहीं है? जन्म के साथ ही मरने की घटना संभावी हो जाती है। जन्म के बाद–एक पल बाद भी मृत्यु घटित हो सकती है। जन्म के बाद प्रतिपल मृत्यु संभावी है। किसी भी क्षण मौत घट सकती है। मौत के लिए एक ही शर्त जरूरी है, वह जन्म है और कोई शर्त जरूरी नहीं है। जन्म के बाद एक पल जीया हुआ बालक भी मरने के लिए उतना ही योग्य हो जाता है, जितना सत्तर साल जीया हुआ आदमी होता है। मरने के लिए

और कोई योग्यता नहीं चाहिए, जन्म भर चाहिए। लेकिन कृष्ण के जन्म के साथ एक चौथी बात भी जुड़ी है कि मरने की बहुत तरह की घटनाएं आती हैं, लेकिन वे सबसे बचकर निकल जाते हैं। जो भी मारने आता है, वही मर जाता है। कहें कि मौत ही उनके लिए मर जाती है। मौत सब उपाय करती है और बेकार हो जाती है। कृष्ण ऐसी जिन्दगी हैं, जिस दरवाजे पर मौत सब उपाय करती है और बेकार हो जाती है। कृष्ण ऐसी जिन्दगी हैं, जिस दरवाजे पर मौत बहुत रूपों मे आती हैं और हार कर लौट जाती है। लेकिन कभी हमें ख्याल नहीं आया कि इन कथाओं को हम गहरे में समझने की कोशिश करें। सत्य सिर्फ उन कथाओं में एक और वह यह है कि कृष्ण जीवन की तरफ रोज जीतते चले जाते हैं और मौत रोज हारती चली जाती है। मौत की धमकी एक दिन समाप्त हो जाती है। जिस–जिस ने चाहा है, जिस–जिस ढंग से चाहा है कृष्ण मर जाएं वे–वे ढंग असफल हो जाते हैं और कृष्ण जीए ही चले जाते हैं।

कृष्ण शब्द को भी थोड़ा समझना जरूरी है। कृष्ण शब्द का अर्थ होता है, केन्द्र। कृष्ण शब्द का अर्थ होता है, जो आकृष्ट करे, जो आकर्षित करे; (सेन्टर ऑफ ग्रेविटेशन) कशिश का केन्द्र। कृष्ण शब्द का अर्थ होता है, जिस पर सारी चीजें खिंचती हों। जो केन्द्रीय–चुंबक का काम करे। प्रत्येक व्यक्ति का जन्म एक अर्थ में कृष्ण का जन्म है, क्योंकि हमारे भीतर जो आत्मा है, समाज खिंचकर उसके आसपास निर्मित होता है। जगत खिंचकर उसके आसपास निर्मित होता है। वह कशिश का केन्द्र है। वह सेन्टर ऑफ ग्रेविटेशन है, जिस पर सब चीजें खिंचती है और आकृष्ट होती हैं। शरीर खींच कर उसके आस–पास निर्मित होता है, परिवार खिंच कर उसके आस–पास निर्मित होता है, वह जो हमारे भीतर कृष्ण का केन्द्र है, आकर्षण का जो गहरा बिन्दु है, उसके आस–पास सब घटित होता है तो जब भी कोई व्यक्ति जन्मता है तो एक अर्थ में कृष्ण ही जन्मता है। वह जो बिन्दु है आत्मा का, आकर्षण का वह जन्मता है और उसके बाद सब चीजें उसके आस–पास निर्मित होनी शुरू होती हैं। उस कृष्ण–बिन्दु के आस–पास क्रिस्टलाइजेशन शुरू होता है और व्यक्तित्व निर्मित होते हैं इसलिए कृष्ण का जन्म एक व्यक्ति

विशेष का जन्म मात्र नहीं है, बल्कि व्यक्ति मात्र का जन्म है।

कृष्ण जैसा व्यक्ति जब हमें उपलब्ध हो गया तो हमने कृष्ण के व्यक्तित्व के साथ वह सब समाहित कर दिया है जो कि प्रत्येक आत्मा के जन्म के साथ समाहित है। कृष्ण जैसे व्यक्ति की जिन्दगी एक बार नहीं लिखी जाती, हर सदी में बार–बार लिखती है। हजारों लोग लिखते हैं। जब हजारों लोग लिखते हैं तो हजार व्याख्याएँ होती चली जाती हैं। फिर धीरे–धीरे कृष्ण की जिन्दगी किसी व्यक्ति की जिन्दगी नहीं रह जाती। कृष्ण एक संस्था हो जाते हैं, एक इंस्टीट्यूशन हो जाते हैं। फिर वे समस्त जन्मों का सारभूत हो जाते हैं। फिर मनुष्य मात्र के जन्म की कथा उनके जन्म की कथा हो जाती है इसलिए व्यक्तिवाचक अर्थों में मैं कोई मूल्य नहीं मानता हूँ। कृष्ण जैसे व्यक्ति–व्यक्ति रह ही नहीं जाते। वे हमारे मानस के, हमारे चित्त के, हमारे कलेक्टिव माइंड के प्रतीक हो जाते हैं और हमारे चित्त ने जितने भी जन्म देखे हैं वे सब उनमें समाहित हो जाते हैं।

●

दशमहाविद्या का आध्यात्मिक स्वरूप

काली– महाभागवत के अनुसार महाकाली ही मुख्य हैं और उन्हीं के उग्र और सौम्य दो रूपों में अनेक रूप धारण करनेवाली दस महाविद्याएँ हैं। विद्यापति भगवान् शिव की शक्तियाँ ये महाविद्याएँ अनन्त प्रदान करने में समर्थ हैं। दार्शनिक दृष्टि से कालतत्व की प्रधानता सर्वोपरि है इसलिए महाकाली या काली ही समस्त विद्याओं की आदि हैं अर्थात् उनकी विद्यामय विभूतियाँ ही महाविद्याएँ हैं। जो दस महाविद्या के नाम से विख्यात हुईं।

दुर्गासप्तशती के अनुसार एक बार शुम्भ–निशुम्भ के अत्याचार से व्यथित होकर देवताओं ने हिमालय जाकर देवी सूक्त से देवी की स्तुति की, तब गौरी की देह से कौशिकी का प्राकट्य हुआ। कौशिकी के अलग होते ही अम्बा पार्वती का स्वरूप कृष्ण हो गया, जो 'काली' नाम से विख्यात हुईं। काली को नीलरूपा होने के कारण तारा भी कहते हैं।

काली की उपासना में सम्प्रदायगत भेद है। प्रायः दो रूपों में इनकी उपासना का प्रचलन है। भव–बन्धन–मोचन में काली की उपासना श्वास–पीठ पर करने योग्य है। भक्तिमार्ग में तो किसी भी रूप में उन

महामाया की उपासना फलप्रदा है, पर सिद्धि के लिये उनकी उपासना वीरभाव से की जाती है। साधना के द्वारा जब अहंता, ममता और भेद–बुद्धि का नाश होकर साधक में पूर्ण शिशुत्व का उदय हो जाता है, तब काली का श्रीविग्रह साधक के समक्ष प्रकट हो जाता है। उस समय भगवती काली की छवि अवर्णनीय होती है। कज्जल के पहाड़ के समान, दिग्वसना, मुक्तकुन्तला, शव पर आरूढ़ मुण्डमालाधारिणी भगवती काली का प्रत्यक्ष दर्शन साधक को कृतार्थ कर देता है। तांत्रिक मार्ग में यद्यपि काली की उपासना दीक्षागम्य है तथापि अनन्य शरणागति के द्वारा उनकी कृपा किसी को प्राप्त हो सकती है। मूर्ति, मंत्र अथवा गुरु द्वारा उपदिष्ट किसी भी आधार पर भक्तिभाव से, मन्त्र–जप, पूजा होम और पुरश्चरण करने से भगवती काली प्रसन्न हो जाती है। उनकी प्रसन्नता से साधक को सहज ही सम्पूर्ण अभीष्टों की प्राप्ति हो जाती है।

तारा— भगवती काली को ही नीलरूपा होवे के कारण तारा भी कहा गया है। वचनान्तर से तारा नाम का रहस्य यह भी है कि ये सर्वदा मोक्ष देने वाली, तारनेवाली हैं, इसलिये इन्हें तारा कहा जाता है। महाविद्याआं में ये द्वितीय स्थान पर परिगणित हैं। अनायास ही वाक्शक्ति प्रदान करने में समर्थ हैं, इसलिये इन्हें नीलसरस्वती भी कहते हैं। भयंकर विपत्तियों से भक्तों की रक्षा करती हैं, इसलिए उग्रतारा हैं। बृहन्नील–तंत्रादि ग्रन्थों में भगवती तारा के स्वरूप की विशेष चर्चा है। हयग्रीव का वध करने के लिये इन्हें नील–विग्रह प्राप्त हुआ था। ये शवरूप शिव पर प्रत्यालीढ़ मुद्रा में आरूढ़ हैं। भगवती तारा नीलवर्ण वाली, नीलकमलों के समान तीन नेत्रों वाली तथा हाथों में कैंची, कपाल, कमल और खड्ग धारण करनेवाली हैं।

शत्रुनाश, वाक्शक्ति की प्राप्ति तथा भोग–मोक्ष की प्राप्ति के लिये तारा अथवा उग्रतारा की साधना की जाती है। रात्रि देवी की स्वरूपा शक्ति तारा महाविद्याओं में अद्भुत प्रभाववाली और सिद्धि की अधिष्ठात्री देवी कही गयी हैं। भगवती तारा के तीन रूप हैं– तारा, एकजटा और नील सरस्वती। तीनों रूपों के रहस्य, कार्य–कलाप तथा ध्यान परस्पर भिन्न हैं, किन्तु भिन्न होते हुए सबकी शक्ति समान और एक है। भगवती तारा की उपासना मुख्यरूप से तन्त्र पद्धति से होती है, जिसे आगमोक्ष

पद्धति भी कहते हैं। इनकी उपासना से सामान्य व्यक्ति भी बृहस्पति के समान विद्वान हो जाता है।

भारत में सर्वप्रथम महर्षि वसिष्ठ ने तारा की आराधना की थी। इसलिये तारा को वसिष्ठाराधिता तारा भी कह जाता है। वसिष्ठ ने पहले भगवती तारा की आराधना वैदिक रीति से करनी प्रारम्भ की, जो सफल न हो सकी। उन्हें अदृश्य शक्ति से संकेत मिला कि वे तांत्रिक–पद्धति के द्वारा जिसे 'चिनाचारा' कहा जाता है, उपासना करें। जब वसिष्ठ ने तांत्रिक पद्धति का आश्रय लिया, तब उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई। यह कथा 'आचार' तंत्र में वसिष्ठ मुनि की आराधना उपाख्यान में वर्णित है। इससे यह सिद्ध होता है कि पहले चीन, तिब्बत, लद्दाख आदि में तारा की उपासना प्रचलित थी। तारा का प्रादुर्भाव मेरु–पर्वत के पश्चिम भाग में 'चोलना' नाम की नदी या चोलत सरोवर के तट पर हुआ, जैसा कि स्वतंत्र तंत्र में वर्णित है–

मेरोः पश्चिमकूले नु चोत्रताख्यो ह्रदो महान्।
तत्र जज्ञे स्वयं तारा देवी नीलसरस्वती।।

'महाकाल संहिता के काम–कलाखण्ड में तारा रहस्य वर्णित है, जिसमें तारा रात्रि में तारा की उपासना का विशेष महत्व है। चैत्र–शुक्ल नवमी की रात्रि 'तारारात्रि' कहलाती है–

छिन्नमस्ता– परिवर्तनशील जगत का अधिपति कबन्ध है और उसकी शक्ति ही छिन्नमस्ता है। विश्व की वृद्धि–ह्रास तो सदैव होती रहती है। जब ह्रास की मात्रा कम और विकास की मात्रा अधिक होती है, तब भुवनेश्वरीका प्राकट्य होता है। इसके विपरीत जब निर्गम अधिक और आगम कम होता है, तब छिन्नमस्ता का प्राधान्य होता है।

भगवती छिन्नमस्ता का स्वरूप अत्यन्त ही गोपनीय है। इसे कोई अधिकारी साधक ही जान सकता है। महाविद्याओं में इनका तीसरा स्थान है। इनके प्रादुर्भाव की कथा इस प्रकार है– एक बार भगवती भवानी सहचरी जया और विजया के साथ मन्दाकिनी में स्नान करने के लिये गयीं। स्नानोपरान्त क्षुधाग्नि से पीड़ित होकर वे कृष्ण वर्ण की हो गयी। उस समय उनकी सहचरियों ने भी उनसे कुछ भोजन माँगा। देवी ने उनसे कुछ समय प्रतीक्षा करने के लिये कहा। थोड़ी देर प्रतीक्षा करने

के बाद सहचरियों ने जब पुनः भोजन के लिये निवेदन किया, तब देवी ने उनसे कुछ देर और प्रतीक्षा करने के लिये कहा। इस पर सहचरियों ने देवी से विनम्र स्वर में कहा कि 'माँ तो अपने शिशुओं के भूख लगने पर अविलम्ब भोजन प्रदान करती हैं। आप हमारी उपेक्षा क्यों कर रही हैं? अपने सहचरियों के मधुर वचन सुनकर कृपामयी देवी ने अपने खड्ग से अपना सिर काट दिया। कटा हुआ सिर देवी के बायें हाथ में आ गिरा और उनके कबन्ध से रक्त की तीन धाराएँ प्रवाहित हुई। वे दो धाराओं को अपनी तीनों सहचरियों की ओर प्रवाहित कर दीं, जिसे पीती हुई दोनों प्रसन्न होने लगीं और तीसरी धारा को देवी स्वयं पान करने लगी। तभी से देवी छिन्नमस्ता के नाम से प्रसिद्ध हुई।

ऐसा विधान है कि आधी रात अर्थात् चतुर्थ संध्याकाल में छिन्नमस्ता की उपासना से साधक को सरस्वती सिद्ध हो जाती हैं। शत्रु–विजय, समूह–स्तम्भन, राज्य–प्राप्ति और दुर्लभ मोक्ष–प्राप्ति के लिये छिन्नमस्ता की उपासना अमोघ है। छिन्नमस्ता का आध्यात्मिक स्वरूप अत्यन्त महत्वपूर्ण है। छिन्न यज्ञशीर्ष की प्रतीक ये देवी श्वेतकमल पीठ पर खड़ी हैं। दिशाएं ही इनके वस्त्र हैं। इनकी नाभि में योनिचक्र है। कृष्ण (तम) और रक्त (रज) गुणों की देवियाँ इनकी सहचरियाँ हैं। ये अपना शीश काटकर भी जीवित हैं। यह अपने–आपमें पूर्ण अन्तर्मुखी साधना का संकेत है।

विद्वानों ने इस कथा में सिद्धि की चरम सीमा का निर्देश माना है। योगशास्त्र में तीन ग्रन्थियाँ बतायी गयी हैं, जिनके भेदन के बाद योगी को पूर्ण सिद्धि प्राप्त होती है। इन्हें ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि तथा रुद्रग्रन्थि कहा गया है। मूलाधार में ब्रह्मग्रन्थि, मणिपुरम में विष्णुग्रन्थि तथा आज्ञाचक्र में रुद्रग्रन्थि का स्थान है। इन ग्रन्थियों के भेदन में ही अद्वैतानन्द की प्राप्ति होती है। योगियों का ऐसा अनुभव है कि मणिपुर चक्र के नीचे की नाड़ियों में ही काम और रति का मूल है, उसी पर छिन्न महाशक्ति आरूढ़ है, इसका ऊर्ध्व प्रवाह होने पर रुद्रग्रन्थि का भेदन होता है।

छिन्नमस्ता का वज्र बैरोचनी नाम से शाक्तों, बौद्धों तथा जैनों में समान रूप से प्रचलित है। देवी की दोनों सहचरियाँ रजोगुण तथ

तमोगुण की प्रतीक हैं, कमल विश्वप्रपश्च है और कामरति चिदानन्द की स्थूल वृत्ति है। बृहदारण्यक की अश्वशिर–विद्या, शाक्तों की हयग्रीव विद्या तथा गाणपत्यां के छिन्नशीर्ष गणपति का रहस्य भी छिन्नमस्ता से ही संबंधित है। हिरण्यकशिपु, बैरोचन आदि छिन्नमस्ता के ही उपासक थे। इसीलिए इन्हें वज्र बैरोचनीया कहा गया है। बैरोचन अग्नि को कहते हैं। अग्नि का स्थान मणिपुर में छिन्नमस्ता का ध्यान किया जाता है और वज्रनाड़ी में इनका प्रवाह होने से इन्हें वज्र वैरोचनीया कहते हैं। श्रीभैरव तंत्र में कहा गया है कि इनकी आराधना से साधक जीवभाव से मुक्त होकर शिवभाव को प्राप्त कर लेता है।

षोडशी– षोडशी माहेश्वरी शक्ति की सबसे मनोहर श्रीविग्रहवाला सिद्ध देवी हैं। महाविद्याओं में इनका चौथा स्थान है। सोलह अक्षरों के मंत्र वाली इन देवी की अंगकान्ति उदीयमान सूर्यमण्डल की आभा की भांति है। इनकी चार भुजाएँ एवं तीन नेत्र हैं। ये शान्तमुद्रा में लेटे हुए सदाशिव पर स्थित कमल के आसन पर आसीन हैं। इनके चारों हाथों में क्रमशः पाश अंकुश, धनुष और बाण सुशोभित हैं। वर देने के लिए सदा–सर्वदा तत्पर भगवती का श्रीविग्रह सौम्य और हृदय दया से आपूरित है। जो इनका आश्रय ग्रहण कर लेते हैं, उनमें और ईश्वर में क़ोई भेद नहीं रह जाता है। वस्तुतः इनकी महिमा अवर्णनीय है। संसार के समस्त मंत्र–तंत्र इनकी आराधना करते हैं। वेद भी इनका वर्णन करने में असमर्थ हैं। भक्तों को ये प्रसन्न होकर सब कुछ दे देती हैं, अभीष्ट तो सीमित अर्थवाच्य है।

प्रशान्त हिरण्यगर्भ ही शिव हैं और उन्हीं की शक्ति षोडशी हैं। तन्त्रशास्त्रों में षोडशी देवी को पंचवस्त्र अर्थात् पाँच मुखों वाली बताया गया है। चारों दिशाओं में चार और एक ऊपर की ओर मुख होने से इन्हें पंचवक्त्रा कहा जाता है। देवी के पाँचों मुख तत्पुरुष, सद्योजात, वामदेव अघोर और ईशान शिव के पांचों रूपों के प्रतीक हैं। पांचों दिशाओं के रंग क्रमशः हरित, रक्त, धूम, नील और पीत होने से मुख भी उन्हीं रंगों के हैं। देवी के दस हाथों में क्रमशः अभय टंक, शूल, वज्र, पाश, खड्ग अकुंश, घण्टा, नाग और अग्नि हैं। इनमें षोडश कलाएँ पूर्णरूप से विकसित हैं, अतएव ये षोडशी कहलाती हैं।

षोडशी को श्रीविद्या भी माना जाता है। इनके ललिता, राज–राजेश्वरी, महात्रिपुरसुन्दरी, बालापंचदशी आदि अनेक नाम हैं। इन्हें आद्याशक्ति माना जाता है। अन्य विद्याएँ भोग या मोक्ष में से एक ही देती हैं। ये अपने उपासक को मुक्ति और मुक्ति दोनों प्रदान करती हैं। इनके स्थूल, सूक्ष्म, पर तथा तुरीय चार रूप हैं।

एक बार पराम्बा पार्वतीजी ने भगवान शिव से पूछा– भगवन्! आपके द्वारा प्रकाशित तंत्रशास्त्र की साधना से जीव आधि–व्याधि, संताप, दीनता से तो दूर हो जायेगें पर दुःख से निवृत्ति और मोक्षपद की प्राप्ति का कोई उपाय बताइए।' परम कल्याणमयी पराम्बा के अनुरोध पर भगवान् शंकर ने षोडशी श्रीविद्या–साधना–प्रणाली प्रकट किया। भगवान् शंकराचार्य ने भी विद्या के रूप में इन्हीं षोडशी देवी की उपासना की थी। इसीलिए आज भी सभी पीठों में भगवती षोडशी राजराजेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी की श्रीयंत्र रूप में आराधना चली आ रही है। भगवान् शंकराचार्य ने सौन्दर्य लहरी में षोडशी श्रीविद्या की स्तुति करते हुए कहा है कि 'अमृत के समुद्र के एक मणिका द्वीप है, जिसमें कल्पवृक्षों की बारी है, नवरत्नों के नौ परकोटे हैं; उस वन में चिन्तामणि से निर्मित महल में ब्रह्मल में ब्रह्ममय सिंहासन है, जिसमें पंचकृत्य के देवता ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ईश्वर आसन के पाये हैं और सदाशिव फलक हैं। सदाशिव के नाभि से निर्गत कमल पर विराजमान भगवती षोडशी त्रिपुरसुन्दरी का जो ध्यान करते हैं, वे धन्य हैं। भगवती के प्रभाव से उन्हें भोग और मोक्ष दोनों सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं। भैरवयामल तथा शक्तिलहरी में इनकी उपासना का विस्तृत परिचय मिलता है। दुर्वासा इनके परमापराधक थे। इनकी उपासना श्रीचक्र में होती है।

भुवनेश्वरी– देवीभागवत में वर्णित मणिद्वीप की अधिष्ठात्री देवी हल्लेखा (ह्णी) मंत्र की स्वरूप शक्ति और सृष्टि क्रम में महलक्ष्मीस्वरूपा आदिशक्ति भगवती भुवनेश्वरी शिव की समस्त लीला विलास की सहचरी हैं। जगदम्बा भगवती का स्वरूप सौम्य अंग क्रान्ति अरुण है– भक्तों को अभय प्रदान करना इनका स्वभाविक गुण है।

दस महा विद्याएं में ये पांचवें स्थान पर परिणित है। देवी पुराण के अनुसार मूल प्रकृति का दूसरा नाम ही भुवनेश्वरी है। ईश्वर रात्रि में जब

ईश्वर के जगद्रूप व्यवहार का लोप हो जाता है, उस समय केवल ब्रह्म अपनी अव्यक्त प्रकृति के साथ शेष रहता है, तब ईश्वरी रात्रि की अधिष्ठात्री देवी भुवनेश्वरी कहलाती हैं। अंकुश और पाश इनके मुख्य आयुध हैं। अंकुश नियंत्रण का प्रतीक है और पाश राग अथवा आसक्ति है। इस प्रकार सर्वरूपा मूल प्रकृति ही भुवनेश्वरी हैं, जो विश्व को वमन करने के कारण माँ, शिवमयी होने से ज्येष्ठा तथा कर्म–नियंत्रण, फलदान और जीवों को दण्डित करने के कारण रौद्री कही जाती हैं। भगवान शिव का वाम भाग ही भुवनेश्वरी कहलाता है। भुवनेश्वरी के साथ से भुवनेश्वर सदाशिव को सर्वेश होने की योग्यता प्राप्त होती है।

महानिर्वाण तंत्र के अनुसार सम्पूर्ण महाविद्याएँ भगवती भुवनेश्वरी की सेवा में सदा संलग होती हैं। सात करोड़ महामंत्र इनकी सदा आराधना करते हैं। काली तत्व से निर्गत होकर कमला तत्व तक की दस स्थितियाँ है, जिनमें अव्यक्त भुवनेश्वरी व्यक्त होकर ब्रह्माण्ड का रूप ध ारण कर सकती हैं तथा प्रलय में कमला से अर्थात व्यक्त जगत से क्रमशः लय होकर कालीरूप में मूल प्रकृति बन जाती हैं। इसलिये इन्हें काल की जन्मदात्री भी कहा जाता है।

दुर्गासप्तशती के ग्यारहवें अध्याय के मंगलाचरण में भी कहा गया है कि 'मैं भुवनेश्वरी देवी का ध्यान करता हूँ। उनके श्री अंगों की शोभा प्रातःकाल के सूर्यदेव के समान अरुणाभ है। उनके मस्तक पर चन्द्रमा का मुकुट है। तीन नेत्रों से युक्त देवी के मुख पर मुस्कान की छटा छायी रहती है। उनके हाथों में पाश, अंकुश, वरद एवं अभय मुद्रा शोभा पाते हैं। इस प्रकार ब्रहन्नील तंत्र की यह धारणा पुराणों के विवरणों के विवरणों से भी पुष्ट होती है कि प्रकारान्तर से काली और भुवनेश्वरी दोनों में अभेद है। अव्यक्त प्रकृति भुवनेश्वरी ही रह्मवर्णा काली हैं। देवी भागवत के अनुसार दुर्गम नामक दैत्य के अत्याचार से संतप्त होकर देवताओं और ब्राह्मणान हिमालय पर सर्वकारण स्वरूपा भगवती भुवनेश्वरी की ही आराधना की थी उनकी आराधना से प्रसन्न होकर भगवती भुवनेश्वरी तत्काल प्रकट हो गयीं। वे अपने हाथों में बाण, कमल–पुष्प तथा शाक–मूल लिये हुए थीं। उन्होंने अपने नेत्रों से अश्रु जल की सहस्रों धाराएँ प्रकट कीं। इस जल से भूमण्डल के सभी प्राणी तृप्त हो

गये। समुद्रों तथा सरिताओं में अगाध जल भी गया और समस्त औषधियाँ सिंच गयीं। अपने हाथ में लिये गये शाकों और फल–मूल से प्राणियों का पोषण करने के कारण भगवती भुवनेश्वरी ही 'शताक्षी' तथा शाकम्भरी' नाम से विख्यात हुई। इन्होंने ही दुर्गमासुर को युद्ध में मारकर उसके द्वारा अपहृत वेदों को देवताओं को पुनः सौपा था। उसके बाद भगवती भुवनेश्वरी का एक नाम दुर्गा प्रसिद्ध हुआ।

भगवती भुवनेश्वरी की उपासना पुत्र–प्राप्ति के लिये विशेष फलप्रदा है। रुद्रयामल में इनका कवच, नील सरस्वती तंत्र में इनका हृदय तथा महातंत्रार्णव में इनका सहस्रनाम संकलित है।

त्रिपुरभैरवी– क्षीयमान विश्व के अधिष्ठान दक्षिणामूर्ति कालभैरव हैं। उनकी शक्ति ही त्रिपुरभैरवी है। ये ललिता या महात्रिपुरसुन्दरी की रथवाहिनी हैं। ब्रह्माण्डपुराण में इन्हें गुप्त योगिनियों की अधिष्ठात्री देवी के रूप में चित्रित किया गया है। मत्स्यपुराण में इनके त्रिपुरभैरवी, कोलेशभैरवी, रुद्रभैरवी, चैतन्यभैरवी तथा नित्याभैरवी आदि रूपों का वर्णन प्राप्त किया है। इन्द्रियों पर विजय और सर्वत्र उत्कर्ष की प्राप्ति हेतु त्रिपुरभैरवी की उपासना का वर्णन शास्त्रों में मिलता है और महाविद्याओं में इनका छठा स्थान है। त्रिपुरभैरवी का मुख्य उपयोग घोर कर्म में होता है।

इनके ध्यान का उल्लेख दुर्गासप्तशती के तीसरे अध्याय में महिषासुर–वध के प्रसंग में हुआ। इनका रंग लाल है। ये लाल वस्त्र पहनती हैं, गले में मुण्डमाला धारण करती हैं और स्तनों पर रक्त चन्दन का लेप करती हैं। ये अपने हाथों में जयमाला, पुस्तक तथा वर और अभय मुद्रा धारण करती हैं। ये कमलासन पर विराजमान हैं। भगवती त्रिपुरभैरवी ने मधुपान करके महिष का हृदय विदीर्ण किया था। रुद्रयामल एवं भैरवीकुलसर्वस्व में इनकी उपासना तथा कवच का उल्लेख मिलता है। संकटों से मुक्ति के लिए भी इनकी उपासना करने का विधान है।

घोर कर्म के लिये काल की विशेष अवस्थाजनि मानों को शान्त कर देने वाली शक्ति को ही त्रिपुरभैरवी कहा जाता है। इनका अरुण वर्ण विमर्श का प्रतीक है। इनके गले में सुशोभित मुण्डमाला ही वर्णमाला है। देवी के रक्तलिप्त ययोधर रजोगुण सम्पन्न सृष्टि–प्रक्रिया के प्रतीक हैं।

पुस्तक ब्रह्मविद्या है, त्रिनेत्र वेदत्रयी हैं तथा स्मिति हास करुणा है।

आगम ग्रन्थों के अनुसार त्रिपुरभैरवी एकाक्षररूप (प्रणव) हैं। इनसे सम्पूर्ण भुवन प्रकाशित हो रहे हैं तथा अन्त में इन्हीं में लय हो जायेंगे। 'अ' से लेकर विसर्ग तक सोलह वर्ण भैरव कहलाते हैं तथा क से क्ष तक के वर्ण योनि अथवा भैरवी कहे जाते हैं। स्वच्छन्दोद्योत के प्रथम पटल में इस पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। यहाँ पर त्रिपुरभैरवी को योगीश्वरी रूपों में उमा बतलाया गया है। इन्होंने भगवान शंकर को पतिरूप में प्राप्त करने के लिये कठोर तपस्या करने का दृढ़ निर्णय लिया था। बड़े–बड़े ऋषि–मुनि भी इनकी तपस्या को देखकर दंग रह गये। इससे सिद्ध होता है कि भगवान शंकर की उपासना में निरत उमा का दृढ़निश्चयी स्वरूप ही त्रिपुरभैरवी का परिचायक है। त्रिपुरभैरवी की स्तुति में कहा गया है कि भैरवी सूक्ष्म वाक् तथा जगत के मूल कारण की अधिष्ठात्री है।

त्रिपुरभैरवी के अनेक भेद हैं; जैसे सिद्धिभैरवी, भुवनेश्वरीभैरवी, कमलेश्वरीभैरवी, षट्कूटाभैरवी, नित्याभैरवी, कोलेशीभैरवी, रुद्रभैरवी आदि।

सिद्धिभैरवी उत्तराम्नाय पीठ की देवी हैं। नित्याभैरवी पश्चिमान्माय पीठ की देवी हैं, इनके उपासक स्वयं भगवान् शिव हैं। रुद्रभैरवी दक्षिणाम्नाय पीठ की देवी हैं। इनके उपासक भगवान विष्णु हैं। त्रिपुरभैरवी के भैरव वटुक हैं। मुण्डमालातंत्रानुसार त्रिपुरभैरवी को भगवान नृसिंह की अभिन्न शक्ति बताया गया है। सृष्टि में परिवर्तन होता रहता है। इसका मूल कारण आकर्षण–विकर्षण है। इस सृष्टि के परिवर्तन में क्षण–क्षण में होने वाली भावी क्रिया की अधिष्ठातृशक्ति ही वैदिक दृष्टि से त्रिपुरभैरवी कही जाती हैं।

धूमावती– त्रिपुरभैरवी का रात्रि का नाम कालरात्रि तथा भैरव का नाम कालभैरव है। धूमावती देवी महाविद्याओं में सातवें स्थान पर परिगणित हैं। इनके सन्दर्भ में कथा कही जाती है कि एक बार भगवती पार्वती भगवान शिव के साथ कैलास पर्वत पर बैठी हुई थीं। उन्होंने महादेव से अपनी क्षुधा का निवारण करने का निवेदन किया है। कई बार माँगने पर भी जब भगवान् शिव ने उस ओर ध्यान नहीं दिया, तब उन्होंने महादेव को ही उठाकर निगल लिया। उनके शरीर से धूमराशि निकली।

शिवजी ने उस समय पार्वती से कहा कि 'आपकी सुन्दर मूर्ति धूएँ से ढक जाने के कारण धूमावती या धूम्रा कही जायगी।' धूमावती महाशक्ति अकेली हैं तथा स्वयं नियंत्रिका हैं। इसका कोई स्वामी नहीं है, इसलिये इसे विधवा कहा गया है। दुर्गासप्तशती के अनुसार इन्होंने ही प्रतिज्ञा की थी 'जो मुझे युद्ध में जीत लेगा तथा मेरा गर्व दूर कर देगा, वही मेरा पति होगा। ऐसा कभी नहीं हुआ, अतः यह कुमारी हैं, ये धन या पतिरहित हैं अथवा अपने पति महादेव को निगल जाने के कारण विधवा हैं।

नारदपाश्चरात्र के अनुसार इन्होंने अपने शरीर में उग्रचण्डिका को प्रकट किया था, जो सैकेड़ों गीदड़ियों की तरह आवाज करने वाली थी, शिव को निगलने का तात्पर्य हैं, उनके स्वामित्वका निषेध है। असुरों के कच्चे मांस से इनकी अंगभूला शिवाएँ तृप्त हुई, यही इनकी भूख का रहस्य है। इनके ध्यान में इन्हें विवर्ण, चंचल, काले रंगवाली, मैले कपड़े धारण करने वाली, खुले केशोंवाली, विधवा काकध्वजा वाले रथ पर आरूढ़ हाथ में सूप धारण किये, भूख–प्यास से व्याकुल तथा निर्मम आँखों वाली बताया गया है। स्वतंत्रतंत्र के अनुसार सती ने जब दक्षयज्ञ में योगाग्नि के द्वारा अपने–आपको भस्म कर दिया, तब उस समय जो धुआँ उत्पन्न हुआ उसमें धूमावती विग्रह का प्राकट्य हुआ था।

धूमावती की उपासना विपत्ति–नाश, रोग–निवारण, युद्ध–जय, उच्चाटन तथा मारण आदि के लिये की आती है। शाक्तप्रमोद में कहा गया है कि इनके उपासना करने से दुष्टाभिचार का प्रभाव नहीं पड़ता है। संसार में रोग–दुःख के कारण चार देवता हैं। ज्वर, उन्माद तथा दाह रुद्र के कोप से मूर्च्छा, विकलांगता यम के कोप से, धूल, गठिया, लकवा, वरुण के कोप से तथा शोक, कलह, क्षुधा, तुषा आदि निर्ऋति एक हैं। यह लक्ष्मीकी ज्येष्ठा हैं, अतः ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न व्यक्ति जीवनभर दुःख भोगता है।

तंत्र ग्रन्थों के अनुसार धूमावती उग्रतारा ही हैं, जो धूमा होने से धूमावती कही जाती हैं। दुर्गासप्तशती में वाभ्रवी और तामसी नाम से इन्हीं की चर्चा की गयी है। ये प्रसन्न होकर रोग और शोक को नष्ट कर देती हैं तथा कुपित होने पर समस्त सुखों और कामनाओं को नष्ट कर देती हैं। इनकी शरणागति से विपत्तिनाश तथा सम्पन्नता प्राप्त होती है।

ऋग्वेदोक्त रात्रिसूक्त में इन्हें 'सुतरा' कहा गया है। सुतरा का अर्थ सुखपूर्वक तारने योग्य है। तारा या तारिणी को इनका पूर्वरूप बतलाया गया है। इसलिये आगमों में इन्हें अभाव और संकट को दूरकर सुख प्रदान करने वाली भूति कहा गया है। धूमावती स्थिरप्रज्ञता की प्रतीक है। इनका काकध्वज वासनाग्रस्त मन है, जो निरन्तर अतृप्त रहता है। जीवन की दीनावस्था भूख, प्यास, कलह, दरिद्रता आदि इसकी क्रियाएँ हैं, अर्थात् वेद की शब्दावली में धूमावती कद्रु है, जो वृत्रासुर आदि को पैदा करती हैं।

वगलामुखी– व्यष्टिरूप में शत्रुओं को नष्ट करने की इच्छा रखने वाली तथा समष्टि रूप में परमात्मा की संहार शक्ति ही वगला है। पीताम्बराविद्या के नाम से विख्यात वगलामुखी की साधना प्रायः शत्रुभय से मुक्ति और वाक्–सिद्धि के लिये की जाती है। इनकी उपासना में हरिद्रामाला, पीत–पुष्प एवं पीत वस्त्र का विधान है। महाविद्याओं में इनका आठवाँ स्थान है। इनके ध्यान में बताया गया है कि ये सुधासमुद्र के मध्‍ य में स्थिति मणिमय मण्डप में रत्नमय सिंहासन पर विराज रही हैं। ये पीतवर्ण के वस्त्र, पीत आभूषण तथा पीले पुष्पों की ही माला धारण करती हैं। इनके एक हाथ में शत्रु की जिह्वा और दूसरे हाथ में मुद्गर है।

स्वतंत्र तंत्र के अनुसार भगवती वगलामुखी के प्रदूर्भाव की कथा इस प्रकार है– सत्ययुग में सम्पूर्ण जगत् को नष्ट करने वाला भयंकर तूफान आया। प्राणियों के जीवन पर आये संकट को देखकर भगवान महाविष्णु चिन्तित हो गये। वे सौराष्ट्र देश में हरिद्रा सरोवर के समीप जाकर भगवती को प्रसन्न करने के लिये तप करने लगे। श्रीविद्या ने उस सरोवर से वगलामुखीरूप में प्रकट होकर उन्हें दर्शन दिया तथा विध्वंसकारी तूफान का तुरन्त स्ताम्भन कर दिया। वगलामुखी महाविद्या भगवान विष्णु के तेज से युक्त होने के कारण वैष्णवी है। मंगलवारयुक्त चतुर्दशी की अर्धरात्रि में इनका प्रादुर्भाव हुआ था। इस विद्या का उपयोग दैवी प्रकोप की शन्ति, धन, धान्य के लिये पौष्टिक कर्म एवं आभिचारिक कर्म के लिये भी होता है। यह भेद केवल प्रधानता के अभिप्राय से है; अन्यथा इनकी उपासना भोग और मोक्ष दोनों की सिद्धि के लिये की जाती है।

यजुर्वेद की काठकसंहिता के अनुसार दसों दिशाओं को प्रकाशित करने वाली, सुन्दर स्वरूपधारिणी 'विष्णुपत्री' त्रिलोक जगत की ईश्वरी मानोता कही जाती हैं। स्तम्भनकारिणी शक्ति व्यक्त और अव्यक्त सभी पदार्थों की स्थिति का आधार पृथ्वी रूपा शक्ति है। वगला उसी स्तम्भनशक्ति की अधिष्ठात्री देवी है। शक्तिरूपा बगला की स्तम्भन शक्ति से द्युलोक वृष्टि प्रदान करता है। उसी से आदित्यमण्डल ठहरा हुआ और उसी से स्वर्ण लोक भी स्तम्भित है। भगवान श्रीकृष्ण ने भी गीता में **'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्त्रमेकांशेन स्थितो जगत्'** कहकर उसी शक्ति का समर्थन किया है। तन्त्र में वही स्तम्भनशक्ति वगलामुखी के नाम से जानी जाती है।

श्रीवगलामुखी को 'ब्रह्मास्त्र' के नाम से भी जाना जाता है। ऐहिक या पारलौकिक देश अथवा समाज में दुःखद अरिष्टों के दमन और शत्रुओं के शमन में वगलामुखी के समान कोई मंत्र नहीं है। चिरकाल से साधक इन्हीं महादेवी का आश्रय लेते आ रहे हैं। इनके बडवामुखी, जातवेदमुखी, उल्कामुखी, ज्वालामुखी तथा बृहद्भानुमुखी पाँच मंत्रभेद हैं। कुण्डिकातंत्र में वगलामुखी के जप के विधान पर विशेष प्रकाश डाला गया है। मुण्डमालातन्त्र में तो यहाँ तक कहा गया है कि इनकी सिद्धि के लिये नक्षत्रादि विचार और कालशोधन की भी आवश्यकता नहीं है।

वगला महाविद्या ऊर्ध्वाम्राय के अनुसार ही उपास्य है। इस आम्राय में शक्ति केवल पूज्य मानी जाती है, भोग्य नहीं। श्रीकुल की सभी विद्याओं की उपासना गुरु के सान्निध्य में रहकर सतर्कतापूर्वक सफलता की प्राप्ति होने तक करते रहना चाहिये। इसमें ब्रह्मचर्य का पालन और बाहर–भीतर की पवित्रता अनिवार्य है। सर्वप्रथम ब्रह्माजी ने वगला महाविद्या की उपासना की थी। ब्रह्माजी ने इस विद्या का उपदेश सनकादिक मुनियों को किया। सनतकुमार ने देवर्षि नारद को और नारद ने सांख्यायन नामक परमहंस को इसका उपदेश किया। सांख्यायन ने छत्तीस पटलों में उपनिबद्ध वगला तंत्र की रचना की। वगलामुखी के दूसरे उपासक भगवान विष्णु और तीसरे उपासक परशुराम हुए तथा परशुराम ने यह विद्या आचार्य द्रोण को बतायी।

मातंगी– मतंग शिव का नाम है, इनकी शक्ति मातंगी है। मातंगी के ध्यान में बताया गया है कि ये श्यामवर्णा हैं और चन्द्रमा को मस्तक पर ध्यान किये हुए हैं। भगवती मातंगी त्रिनेत्रा, रत्नमय सिंहासन पर आसीन, नीलकमल के समान क्रान्ति वाली तथा राक्षस–समूह रूप अरण्य को भस्म धारण करने में दावानल के समान हैं। इन्होंने अपनी चार भुजाओं में पाश, अंकुश, खेटक और खड्ग धारण किया है। ये असुरों को मोहित करने वाली एवं भक्तों को अभीष्ट फल देने वाली है। गृहस्थ जीवन को सुखी बनाने, पुरुषार्थ–सिद्धि और वागविलास में पारंगत होने के लिए मातंगी की साधना श्रेयस्कर है। महाविद्याओं में ये नवें स्थान पर परिगणित हैं।

नारदपांचरात्र के बारहवें अध्याय में शिव को चाण्डाल तथा शिव को उच्छिष्ट चाण्डाली कहा गया है। इनका ही नाम मातंगी है। पुराकाल में मतंग नामक मुनि ने नाना वृक्षों से परिपूर्ण कदम्ब वन में सभी जीवों को वश में करने के लिये भगवती त्रिपुरा की प्रसन्नता हेतु कठोर तपस्या की थी, उस समय त्रिपुरा के नेत्र से उत्पन्न तेज ने एक श्यामल नारी–विग्रह का रूप धारण कर लिया। इन्हें राजमातंगिनी कहा गया है। यह दक्षिण तथा पश्चिमाम्नायकी देवी हैं। राजमातंगी सुमुखी वश्यमातंगी तथा कणमातंगी इनके नामान्तर हैं। मातंगी के भैरव का नाम मतंग है। ब्रह्मयामल इन्हें मतंग मुनि की कन्या बताता है।

दशमहाविद्याओं में मातंगी की उपासना विशेष रूप से वाक्सिद्धि के लिये की जाती है। पुरश्चर्यार्णव में कहा गया है–

अक्षवक्ष्ये महादेवी मातंगी सर्वसिद्धिदाम्।
अस्याः सेवनमात्रेण वाक्सिद्धिं लभते ध्रुवम्।।

मातंगी के स्थूलरूपात्मक प्रतीक विधान को देखने से यह भलीभांति ज्ञात हो जाता है कि ये पूर्णतया वाग्देवता की ही मूर्ति हैं। मातंगी का श्यामवर्ण परावाक् बिन्दु है। उनका त्रिनयन सूर्य, सोम और अग्नि है। उनकी चार भुजाएं चार वेद हैं। पाश अविद्या है, अंकुश विद्या है, कर्मराशि दण्ड है। शब्द–स्पर्शाद गुण कृपाण है अर्थात पंचभूतात्मक सृष्टि के प्रतीक हैं। कदम्बवन ब्रह्माण्ड का प्रतीक है। योगराजोपनिषद् में ब्रह्मलोक को कदम्बगोलाकार कहा गया है– **'कदम्बगोलाकारं ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते'।**

भगवती मातंगी का सिंहासन शिवात्मक महामंत्र या त्रिकोण है। उनकी मूर्ति सूक्ष्मरूप में यंत्र तथा पररूप में भावनामात्र है।

दुर्गासप्तशती के सातवें अध्याय में भगवती मातंगी के ध्यान का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वे रत्नमय सिंहासन पर बैठकर पढ़ते हुए तोते का मधुर शब्द सुन रही हैं। उनके शरीर का वर्ण श्याम है। वे अपना एक पैर कमल पर रखी हुई हैं। अपने मस्तक पर अर्धचन्द्र तथा गले में कल्हार पुष्पों की माला धारण करती हैं। वीणा बजाती हुई भगवती मातंगी के अंग में कसी हुई चोली शोभा पा रही है। वे लाल रंग की साड़ी पहने तथा हाथ में शंखमय पात्र लिये हुए हैं। उनके वदन पर मधु का हलका–हलका प्रभाव जान पड़ता है और ललाट में बिन्दी शोभा पा रही है। इनका वल्लकी धारण करना नाद का प्रतीक है। तोते का पढ़ना 'ह्रीं' वर्ण का उच्चारण करना है, जो बीजाक्षर का प्रतीक है। कमल वर्णात्मक सृष्टि का प्रतीक है। शंखपात्र, ब्रह्मरत्न तथा मधु, अमृत का प्रतीक है। रक्तवस्त्र अग्नि या ज्ञान का प्रतीक है। वाग्देवी के अर्थ में मातंगी यदि व्याकरणरूपा हैं तो शुक्र शिक्षा का प्रतीक है। चार भुजाएँ वेदचतुष्टय हैं। इस प्रकार तांत्रिकों की भगवती मातंगी महाविद्या वैदिकों की सरस्वती ही हैं। तंत्र ग्रंथों में इनकी उपासना का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

कमला– श्रीमद्भागवत के आठवें स्कन्द के आठवें अध्याय में कमला के उद्भव की विस्तृत कथा आयी है। देवताओं एवं असुरों के द्वारा अमृत प्राप्ति के उद्देश्य से किये गये समुद्र मंथन के फलस्वरूप इनका प्रादुर्भाव हुआ था। इन्होंने भगवान विष्णु को पतिरूप में वरण किया था। महाविद्याओं में ये दसवें स्थान पर परिगणित हैं। भगवती कमला वैष्णवी शक्ति हैं तथा भगवान विष्णु की लीला सहचरी हैं, अतः इनकी उपासना जगदाधार शक्ति की उपासना है। ये एक रूप में समस्त भौतिक या प्राकृतिक सम्पत्ति की अधिष्ठात्री देवी हैं और दूसरे रूप में सच्चिदानन्दमयी लक्ष्मी हैं; जो भगवान विष्णु से अभिन्न हैं। देवता, मानव एवं दानव सभी इनकी कृपा के बिना पंगु हैं। इसलिये आगम और निगम दोनों में इनकी उपासना समान रूप में वर्णित है। सभी देवता, राक्षस, मनुष्य, सिद्ध और गन्धर्व इनकी कृपा–प्रसाद के लिये लालयित रहते हैं

महाविद्या कमला के ध्यान में बताया गया है कि इनकी क्रान्ति सुवर्ण के समान है। हिमालय के सदृश श्वेत वर्ण के चार हाथी अपने सूँड में चार सुवर्ण कलश लेकर इन्हें स्नान करा रहे हैं। ये अपनी दो भुजाओं में वर एवं अभय मुद्रा तथा दो भुजाओं में दो कमल पुष्प धारण की हैं। इनके सिर पर सुन्दर किरीट तथा तन पर रेशमी परिधान सुशोभित है। ये कमल के सुन्दर आसन पर आसीन हैं।

समृद्धि की प्रतीक महाविद्या कमला की उपासना स्थिर लक्ष्मी की प्राप्ति तथा नारी–पुत्रादि के सौख्य के लिये की जाती है। कमला को लक्ष्मी तथा षोडशी भी कहा जाता है। भार्गवों के द्वारा पूजित होने के कारण इनका एक नाम भार्गवी है। इनकी कृपा से पृथ्वीपतित्व तथा पुरुषोतमत्व दोनों की प्राप्ति हो जाती है। भगवान आद्य शंकराचार्य के द्वारा विचरित कनकधारा स्तोत्र और श्रीसूक्त का पाठ, कमलगट्टों की माला पर श्रीमंत्र का जप, बिल्वपत्र तथा बिल्वफल के हवन से कमला की विशेष कृपा प्राप्त होती है। स्वतंत्र तंत्र में कोलासुर के वध के लिये इनका प्रादुर्भाव होना बताया गया है। वाराही तंत्र के अनुसार प्राचीनकाल में ब्रह्म, विष्णु तथा शिव द्वारा पूजित होने के कारण कमला का एक नाम त्रिपुरा प्रसिद्ध हुआ। कालिकापुराण में कहा गया है कि त्रिपुर शिव की भार्या होने से इन्हें त्रिपुरा कहा जाता है। शिव अपनी इच्छा से त्रिधा हो गये। इनका ऊर्ध्व भाग गौर वर्ण, चार भुजावाला, चतुर्भुज ब्रह्मरूप कहलाता है। मध्य भाग नीलवर्ण, एकमुख और चतुर्भुज विष्णु कहलाया तथा अधोभाग स्फटिक वर्ण, पंचमुख और चतुर्भुज शिव कहलाया। इन तीनों शरीरों के योग से शिव त्रिपुर और उनकी शक्ति कही जाती है। चिन्तामणि गृह में इनका निवास है। भैरवयामल तथा शक्तिलहरी में इनके रूप तथा पूजा–विधान का विस्तृत वर्णन किया गया है। इनकी उपासना से समस्त सिद्धियाँ सहज ही प्राप्त हो जाती है।

पुरुषसूक्त में **'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्या'** कहकर कमला को परम पुरुष भगवान विष्णु की पत्नी बतलाया गया है। अश्व, रथख हस्ति के साथ उनका सम्बन्ध राज्य–वैभव का सूचक हैं, पद्मस्थित होने तथा पद्मवर्णा होने का भी संकेत श्रुति में है। भगवच्छक्ति के कमला के पांच कार्य हैं– तिरोभाव, सृष्टि, स्थिति, संहार और अनुग्रह। भगवती कमला

स्वयं कहती हैं कि नित्य निर्दोष परमात्मा नारायण के सब कार्य मैं स्वयं करती हूँ।

इस प्रकार काली से लेकर कमला तक दशमहाविद्याएँ सृष्टि और व्यष्टि, गति, स्थिति, विस्तार, विस्तार, भरण–पोषण, नियन्त्रण, जन्म–मरण, उन्नति–अवनति, बन्धन तथा मोक्ष की अवस्थाओं की प्रतीक हैं। ये अनेक होते हुए भी एक ही शक्ति हैं परंब्रह्म परमेश्वर की.........।

●

मंत्र जप का शास्त्रीय महत्व

जप साधना प्रत्येक धर्म के आध्यात्मिक मेरुदण्ड है। भगवान् श्रीकृष्ण ने इसे सब यज्ञों से श्रेष्ठ कहा है और अपनी विभूति माना है। मनुस्मृति में कहा गया हैं कि जप करने वालों का कभी पतन नहीं होता। उनका अन्तःकरण परब्रह्ममय हो जाता है इसलिए समस्त यज्ञों से जप अधिक श्रेष्ठ है। जितने भी धर्म, कर्म, ज्ञान, यज्ञ, दान, तप हैं, जपयज्ञ की सोलहवीं कला के समान भी नहीं होते। जप स्तुति से देवता प्रसन्न होकर बड़े–बड़े भोग तथा अक्षय शक्ति प्रदान करते हैं। इस कारण समस्त पुण्य–साधनों में जप सर्वश्रेष्ठ है। मंत्रजप से अन्तःकरण की पवित्रता प्राप्त होती है, जो सर्वश्रेष्ठ सिद्धि है। योग दर्शन मानता है कि जप साधना, धीरे–धीरे ऊँचा उठकर इसी साधना से समाधि अवस्था को प्राप्त कर लेता है। जीवन साधना–काल में आए विघ्नों का इसमें नाश होता है और अन्तरात्मा के स्वरूप का क्रमशः ज्ञान होने लगता है। ईश्वर के साक्षात्कार का मार्ग खुल जाता है और साधक नित्य आनन्द में निमग्न हो जाता है। लगातार विधि–व्यवस्था से ठीक–ठीक जप करने पर ही उक्त लाभ प्राप्त हो सकते हैं लिंग पुराण में लिखा है, जप करने वाले का कभी अनिष्ट नहीं होता। इससे जन्म–जन्मातरों के पाप नष्ट हो जाते हैं, सुख और सौभाग्य की वृद्धि हो जाती है और मुक्ति की प्राप्ति होती है।

जकारो जन्म विच्छेदः पकारः पाप नाशक– अर्थात् जिसमें जन्म मरण और पापों का विनाश हो, वह जप कहलाता है। जप की महत्ता के कारण ही विद्वानों ने जप के विभिन्न प्रकार निर्मित किए हैं।

नित्य जप—संख्या और विधि विधान में कुछ शिथिलता भले ही आ जाए, परन्तु नियमितता में कोई अन्तर न आए, वही नित्य जप कहलाता है। इससे शीघ्र ही सूक्ष्म शक्ति का विकास होता है।

नैमित्तिक जप—देव पितरों के संबंध में जो जप किया जाता है, उसे नैमित्तिक जप की संज्ञा दी जाती है। इस जप से पितरों की सद्‌गति होती है तथा उनका अनुदान मिलता है।

काम्य जप—किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए जो सकाम साधना की जाती है, वह काम्य जप कहलाया जाता है। इससे देव शक्तियों को आकर्षित किया जाता है। जो अभीष्ट सिद्धि में सहायक होते हैं।

निषिद्ध जप—अनाधिकारी गुरु से दीक्षा लेकर अशुद्ध उच्चारण के साथ अपवित्र अवस्था में और निकृष्ट स्थान पर यदि अविधिपूर्वक जप किया जाय तो, वह निषिद्ध जप कहलाता है।

प्रायश्चित जप—जाने–अनजाने पापों के परिमार्जन के लिए जो जप किया जाता है, उसे प्रायश्चित जप कहा जाता है।

अचल जप—अभीष्ट सिद्धि के लिए जब साधक यह निश्चय करता है कि नित्यप्रति वह इतना समय लगाकर इतना जप करके ही आसन से उठेगा। वह अचल जप कहलाता है।

चल जप—चलते–फिरते, यात्रा में कहीं भी जप किया जाय उसे चल जप कहते है। इसके लिए किसी प्रकार प्रतिबंध नहीं है। प्रदर्शन के बिना यह साधना चलती रहे, तो इसमें अपूर्व सफलता मिलती है।

वाचिक जप—जिस मंत्र उच्चारण को अन्य व्यक्ति भी सुन सकें, उसे वाचिक जप कहते हैं। योगियों का कहना है कि इससे वाक्‌सिद्धि होती है।

उपांशु जप— मनुस्मृति के अनुसार उपांशु जप में होंठ हिलते रहें, परन्तु पास बैठा व्यक्ति भी उसे सुन न सके, जापक स्वयं ही उसे सुने इस जप के प्रभाव से सूक्ष्म शरीर में प्रवेश होता है और ब्रह्म वृत्तियाँ अन्तर्मुख होने लगती हैं। एकाग्रता बढ़ने लगती है।

भ्रमर–जप—भ्रमर के गुंजार की भांति गुनगुनाना इस जप की विशेषता है। इस तरह बंशी बजाई जाती, उसी तरह प्राणवायु के

सहयोग से मंत्रवृद्धि की जाती है। इस जप से यौगिक तन्द्रा की वृद्धि होती है।

मानसिक जप—इस जप में होंठ और जिह्वा कुछ भी नहीं हिलते। कई शास्त्रों पुराणों में इसकी महत्ता बताते हुए कहा है कि विधि—यज्ञ की अपेक्षा मानसिक जप सहस्र गुना श्रेष्ठ बताया गया है।

अखण्ड जप—इसका अभिप्राय इसके नाम से ही स्पष्ट है। इस अखण्ड साधना को तप की संज्ञा दी है।

अजपा—जप—बाहर निकलते श्वास की ध्वनि 'हम्' और श्वास जब अन्दर आता है उसकी ध्वनि 'सः' की तरह होती है। इस तरह से 'हंसः' मंत्र का जप हमारे शरीर में अपने आप होता रहता है। इसे अजपा गायत्री भी कहते हैं।

प्रदक्षिणा जप—इसमें वट, औदुम्बर, पीपल एवं ज्योतिर्लिंग मंदिर की प्रदक्षिणा करते हुए जप किया जाता है।

मंत्र जप के इन अनेक तरीकों के बावजूद इस बात पर चिन्तन करना आवश्यक है कि वर्तमान भागदौड़ भरी जिन्दगी में वह कौन सा मंत्र है, जो आपके लिए सार्थक हो सकता है। सभी मंत्र महत्वपूर्ण हैं, अपने गुरु या किसी ब्राह्मण से जिसके प्रति आप पूर्ण विश्वास और श्रद्धा रखते हैं। उनसे अपने जाति, वर्ण, नक्षत्र, देवी—देवता, कुल देवता आदि का विधिवत ज्ञान कर पंचोपचार पूजन कर जप करने का विधान शास्त्रों में कहा गया है। जप, गुरु के मुख से श्रवण कर या उनसे अनुमति लेकर जप करने से सफलता मिलती है। अगर ऐसा संभव नहीं है तो आप को जो मंत्र शुभ व फलदायक लगे, उसे शुद्ध कागज पर लाल स्याही से लिखकर अपने इष्ट, कुल देवता अथवा आप जिन देवी—देवता की पूजन करते हों, उनके समक्ष रखकर उनकी प्रार्थना कर प्रसाद स्वरूप ग्रहण कर जप करने का विधान है।

शेष शुभम्।

●

अरुण कुमार शर्मा
की
अन्य कृतियाँ

मारणपात्र
वह रहस्यमय कापालिक मठ
तिब्बत की वह रहस्यमयी घाटी
मृतात्माओं से सम्पर्क
तीसरा नेत्र (प्रथम खण्ड)
तीसरा नेत्र (द्वितीय खण्ड)
मरणोत्तर जीवन का रहस्य
परलोक विज्ञान
कारणपात्र
कुण्डलिनी शक्ति
अभौतिक सत्ता में प्रवेश
वक्रेश्वर की भैरवी
वह रहस्यमय सन्यासी
रहस्य
कालञ्जयी
आवाहन
योग तांत्रिक साधना प्रसंग
आकाशचारिणी

आगम निगम संस्थान
बी. 5/23 अवधगर्वी हरिश्चन्द्र रोड
वाराणसी-0221001 (उ०प्र०)
Phone No. (0542) 2277093